श्रीभागवत पत्रिकाके ४४ वें वर्षकी
विषय सूची

विषय	*संख्या – पृष्ठ*
अंडे क्यों नहीं खायें	—५/११४
अनुराग-वल्ली	—३/४९
अब पछताए होत कहा	—९/२०९
आधुनिकवाद	—४/७५
उपदेशामृतकी पीयूषवर्षिणी वृत्ति	—११/२४३
ऊधो! इतनी कहियो जाइ	—१०/२२४
कलियुगमें श्रीकृष्ण नाम जप साधना	—१/१६, २/४१, ३/६६, ४/८४
काजीसे हिन्दू पर्व पूछना	—१२/२८०
कृष्णस्तुति, श्री	—२/२५
कृष्णे मतिरस्तु	—१२/२६८
कृष्णस्तोत्रम्, श्री	—५/९७
कृष्णजन्माष्टमी, श्रीश्री	—५/१२०
गयाक्षेत्र	—१०/२३४
गुरुभक्ति, श्री	—५/९९
गोकुलानन्द-गोविन्द-देवाष्टकम्, श्रीश्री	—७/१४५
गोवर्द्धनाश्रयदशकम्, श्री	—८/१६९
गौराङ्ग-सुधा, श्री	—१/१८, २/३८, ३/७१, ४/८९, ५/१०२, ६/१३९, ७/१५५, ८/१७८, ९/२००, १०/२२९, ११/२५६, १२/२७५,
चैतन्यदेव और हरिनाम, श्री	—३/५८, ४/८१
चैतन्याष्टकम्, श्रीश्री	—१०/२१७
तुलसी देवी, श्री	—३/६१
दो नावोंमें पाँव	—२/४०
नामाश्रयका फल	—१०/२१९
नृसिंह-स्तवः, श्री	—१/१
पत्रोत्तर	—१/२३
पानीमें उतरे बिना तैरना सीखनेकी इच्छा	—१/१२
पूर्वी विश्वमें प्रचार	—१/२०

विषय	*संख्या - पृष्ठ*
पौराणिक उपाख्यान	—१२/२८१,
प्रचार प्रसङ्ग	—२/४५, ४/९२, ५/११८, ७/१६५, ८/१८८, ९/२१५, १०/२४०, ११/२६१,
प्रश्नोत्तर	—९/२१२,
प्रीति	—१/७
प्रेमाम्भोज-मरन्दाख्य-स्तवराजः, श्री	—९/१९३
भक्तिकुसुम सन्त महाराजजी द्वारा प्रेषित पत्र, श्री	—१/२४
भागवतं प्रमाणममलम्, श्री	—११/२५३ १२/२७०
मकड़ा मारनेसे धोकड़ मिलता है	—१०/२३९
महाभागवतवर वृत्रासुर	—५/१०८,६/१३३, ७/१६३, ८/१८३, ९/२०५
मात्सर्य	—३/५१
मूर्ख माली और मूर्ख पण्डित	—५/११६
राधाकृष्ण-विज्ञप्ति	—१०/२३८
रामानुजाचार्य, श्री	—२/२९
वृन्दादेव्यष्टकम्, श्रीश्री	—१२/२६५
वैराग्य	—६/१२३, ७/१४७
वैष्णव मर्यादा	—११/२४९
व्यास पूजा	—११/२६०
शिव तत्त्व	६/१३०, ७/१६०, ८/१७५
शचीनन्दन-विजयाष्टकम्, श्रीश्री	—११/२४२
शरणागति	—३/५३, ६/१३०, ७/१६०, ८/१७५
संकर्षण-स्तोत्रम्, श्रीश्री	—६/१२१
संतके लक्षण	—१/४,२/२७, ३/५३, ४/८०, ५/१०१, ६/१२९, ७/१५३, ८/१७४, ९/१९९,
सच्चे महाजन कौन हैं	—१०/२२१
सद्गुण और भक्ति	—१२/२६७
सनातन धर्म	—३/५४
सम्राट् कुलशेलखरकी प्रार्थाना	—२/३५, १/१३
हरिकुसुम-स्तवकम्, श्री	—४/७३
हरिनाम	—८/१७२, ९/१९५
हाथमें पञ्जिका और मंगलवार	—८/१८७
हिन्दु शब्द कैसे बना है	—२/२८

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

वैकुण्ठ–वार्त्तावह

बृहत्–मृदङ्ग

श्रीभागवत–पत्रिका

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना।।

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।।

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः।।

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र।।
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश।।

वर्ष ४४ } *श्रीगौराब्द ५१४*
वि. सं. २०५७ चैत्र मास, सन् २०००, २० मार्च — १८ अप्रैल { **संख्या १**

श्रीनृसिंह–स्तवः

[श्रील–श्रीधरस्वामि–विरचितः]

जय जयाजित जह्यग–जङ्गमावृतिमजामुपनीत–मृषागुणाम्।
न हि भवन्तमृते प्रभवन्त्यमी, निगमगीत–गुणार्णवता तव।।१।।

(१) हे अजित! आप जड़–जङ्गम समस्त प्रकारके प्राणियोंके स्वरूपको आच्छादित करने वाली अनित्य गुणोंकी आश्रय–स्वरूपा मायाका विनाश कर अपना पराक्रम दिखलावें—अपनी विजयकी घोषणा करें। आपके बिना इस विश्वमें कोई भी कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं है।।१।।

द्रुहिण–वह्नि–रवीन्द्रमुखामरा, जगदिदं न भवेत् पृथगुत्थितम्।
बहुमुखैरपि मंत्रगणैजस्त्वमूरुमूर्तिरतो विनिगद्यसे।।२।।
सकल–वेदगणेरित सद्गुणस्त्वमिति सर्वमनीषि जन्त रताः।
त्वयि सुभद्रगुण–श्रवणादिभिस्तव पद–स्मरणेन गतक्लमाः।।३।।
नरवपुः प्रतिपद्य यदि त्वयि, श्रवण–वर्णन–संस्मरणादिभिः।
नरहरे न भजन्ति नृणामिदं दृतिवदुच्छ्वसितं विफलं ततः।।४।।
त्वदंशस्य ममेशान त्वन्मायाकृतबन्धनम्। त्वदङ्घ्रिसेवामादिश्य परानन्द निवर्त्तय।।५।।
त्वय्यात्मनि जगन्नाथे मन्मनो रमतामिह। कदा ममेदृशं जन्म मानुषं सम्भविष्यति।।६।।
क्वाहं बुद्ध्यादि संरुद्धः क्व च भुमन् महस्तव। दीनवन्धो दयासिन्धो भक्तिं मे नृहरे दिश।।७।।
यत्सत्त्वतः सदाभाति जगदेतदसत् स्वतः। सदाभासमसत्यस्मिन् भगवन्तं भजाम तम्।।८।।
तपन्तु तापैः प्रपतन्तु पर्वता दटन्तु तीर्थानि पठन्तु चागमान्।
यजन्तु यागैर्विवदन्तु वादैर्हरिं विना नैव मृतिं तरन्ति।।९।।
संसारचक्र–क्रकचैर्विदीर्ण मुदीर्ण नानाभवतापतप्तम्।
कथञ्चिदापन्नमिह प्रपन्नं, त्वमुद्धर श्रीनृहरे नृलोकम्।।१०।।
यदा परानन्द गुरो भवत्पदे, पदं मनो मे भगवल्लभेत।
तदा निरस्ताखिल–साधनश्रमः श्रयेय सोख्यं भवतः कृपातः।।११।।
भजतो हि भवान् साक्षात् परमानन्द चिद्घनः।
आत्मैव किमतः कृत्यं तुच्छदार–सुतादिभिः।।१२।।
मुञ्चन्नङ्ग तदङ्गसङ्गमनीशं त्वामेव सञ्चिन्तयन् सन्तः सन्ति यतो यतो गतमदास्तानाश्रमानावसन्।
नित्यं तन्मुख पङ्कजाद्विगलित–त्वत्पुण्यगाथामृतस्त्रोतः संप्लव–संप्लुतो नरहरे न स्यामहं देहभृत्।।१३।।
उद्भुतं भवतः सतोऽपि भुवनं सन्नैव सर्पः स्रजः कुर्वत् कार्यमपीह कुटकनकं वेदोऽपिनैवं परः।
अद्वैतं तव सत् परन्तु परमानन्दं पदं तन्मुदा वन्दे सुन्दरमिन्दिरानुत हरे मा मुञ्च मामानतम्।।१४।।
मुकुट–कुण्डल–कङ्कण–किङ्किणी, परिणतं कनकं परमार्थतः।
महदहङ्कृति–ख–प्रमुखं तथा नरहरेर्न परं परमार्थतः।।१५।।
नृत्यन्ती तव वीक्षणाङ्गनगता काल–स्वभावादिभिर्भावान् सत्त्व रजोस्तमोगुणमयानुन्मीलयन्ती बहून्।
मामाक्रम्य पदा शिरस्यतिभरं सम्मर्दयन्त्यातुरं माया ते शरणं गतोऽस्मि नृहरे त्वमैव तां वारय।।१६।।
दण्डन्यासमिषेण वंचित–जनं भोगैकचिन्तातुरं संमूह्यस्तमहर्निशं विरचितोद्योगक्लमैराकुलम्।
आज्ञालङ्घिनमज्ञमज्ञजनतो सम्मानना–सम्मदं दीनानाथ–दयानिधान परमानन्द प्रभो पाहिमाम्।।१७।।
अवगमं तव मे दिश माधव, स्फुरति यन्न सुखासुखङ्गमः।
श्रवण वर्णन, भावमथापि वा नहि भवामि यथा विधि–किङ्करः।।१८।।
द्युपतयो विदुरस्तमनन्त ते न च भवान् न गिरः श्रुतिमौलयः।
त्वयि फलन्ति यतो नम इत्यतो जय जयेति भजे तव तत्पादम्।।१९।।
सर्वश्रुति शिरोरत्न–नीराजित–पदाम्बुजम्। भोग–योगप्रदं वन्दे माधवं कर्मि–नम्रयोः।।२०।।

अनुवाद—

(२) ब्रह्मा, अग्नि, सूर्य और इन्द्र आदि देवता एवं यह विश्व आपसे स्वतन्त्र रूपमें उत्पन्न नहीं हो सकते। इसलिये अनेक मंत्र आपको ही 'अज' और 'विराटमूर्त्ति' बतलाते हैं।।२।।

(३) निखिल वेद आपकी गुणावलीका प्रचार करते हैं। आपके परम मङ्गलमय गुणोंके श्रवण और कीर्त्तन आदि द्वारा सारे मनीषिजन आपके चरणकमलोंमें अनुरक्त रहते हैं तथा आपके चरणकमलोंका स्मरण कर समस्त प्रकारके दुःखोंसे छुटकारा पा लेते हैं।।३।।

(४) हे नृसिंहदेव! नर शरीर पाकर भी यदि मनुष्य श्रवण-कीर्त्तन-स्मरण आदि द्वारा आपका भजन नहीं करता है, तो उसका सांस ग्रहण करना अर्थात् जीवन धारण करना प्राणहीन भाथीके समान व्यर्थ ही है।।४।।

(५) हे ईश्वर! हे परमानन्द! मैं आपका (अणु) अंश हूँ। आप मुझे अपने श्रीचरणकमलोंकी सेवा प्रदान कर मेरे माया-बन्धनको खोल दें।।७।।

(६) आप जगन्नाथ हैं, आप ही परमात्मा हैं। आपके चरलकमलोंमें मेरा मन लग जाय। आपकी सेवाके लिये सब तरहसे योग्य मेरा मनुष्य-जन्म कब होगा?।।९।।

(७) हे भूमा पुरुष! हे दीनबन्धो! हे दयासागर! कहाँ बुद्धि आदि द्वारा ढका हुआ मैं, और कहाँ आपका तेज या महिमाराशि। हे नरहरि! मुझे भक्ति प्रदान करें।।११।।

(८) जिनकी सत्तासे यह असत् (अनित्य) जगत् सत् (सत्य) जैसा प्रतीत होता है; इस जगत्में जो एकमात्र सत् पदार्थ हैं; उस भगवान्का हम भजन करते हैं।।१३।।

(९) मानव भले ही सूर्यके तापमें बैठकर कठोर तपस्या करे, पर्वतसे गिर पड़े, तीर्थोंमें भ्रमण करे, वेद और वेदान्त आदिका पाठ करे, विविध प्रकारके यज्ञोंद्वारा याग करे अथवा तर्क द्वारा वाद-विवाद ही क्यों न करे, बिना भगवान्की कृपासे कोई भी मृत्युको जीत नहीं सकता।।१४।।

(१०) हे नृसिंहदेव! संसारचक्र रूपी आरेसे चीरे गये तथा नाना प्रकारके भवतापों अर्थात् संसारिक क्लेशोंसे तप्त, किसी प्रकार आपके निकट आये हुए तथा आपकी शरणमें आये हुए मनुष्योंका आप उद्धार करें।।१९।।

(११) हे भगवान्! हे परमानन्द गुरु! जब मेरा मन आपके श्रीचरणकमलोंमें आश्रय लाभ करेगा, तब आपकी कृपासे ही साधन जन्य मेरा सारा श्रम दूर हो जायेगा एवं मैं परम शान्ति प्राप्त कर सकूँगा।।२०।।

(१२) हे नृसिंहदेव! भजन करनेवालोंके निकट आप साक्षात् परमानन्द चिद्घन प्राण-स्वरूप हैं; अतएव इसके बाद स्त्री-पुत्र आदिकी आवश्यकता ही क्या है?।।२१।।

(१३) हे नरहरे! स्त्री-पुत्र आदिका संग छोड़कर दिन-रात सर्वदा आपका चिन्तन करते-करते, अहङ्कार रहित साधुजन जिन-जिन आश्रमों और तीर्थोंमें वास करते हैं, उन-उन स्थानोंमें वास करता हुआ सदा-सर्वदा उन संतोंके मुखसे झरते हुए आपके पवित्र कथामृत रूपी झरनेमें स्नान करूँ, तो मेरा पुनर्जन्म न होगा।।२२।।

(१४) फूलोंके हारसे निकला हुआ सर्प जैसे असत् होता है, उसी प्रकार सत्-स्वरूप आपसे उत्पन्न होनेपर भी जगत् सत्य नहीं है, अर्थात् अनित्य है। स्वर्ण-राशि विविध प्रकारके अलङ्कारोंके रूपमें होकर भी जैसे अविकृत रहती है, परन्तु वेद वैसा नहीं है अर्थात् गौणार्थ द्वारा वेदार्थ भी कल्पित होता है। किन्तु आपका शुद्ध अद्वैत (अतुलनीय) भाव ही सत्य है। अतएव आनन्दपूर्वक रमा द्वारा सेवित आपके सुन्दर परमानन्दप्रद श्रीचरणकमलोंकी वन्दना करता हूँ! हे हरे! मैं आपके चरणोंका दास हूँ, मेरा परित्याग न करेंगे।।२३।।

(१५) जैसे स्वर्ण मुकुट, कुण्डल, कंगन और नुपुरके रूपमें बदल करके भी वस्तुतः स्वर्ण ही रहता है, उसी प्रकार महत् या चित्त्, अहंकार, आकाश आदि श्रीनृसिंह–विष्णुसे वस्तुतः भिन्न नहीं हैं।।२४।।

(१६) आपके ईक्षणसे क्षुब्ध हुई आपकी माया नाचते–नाचते काल और स्वभाव द्वारा सत्त्व–रजस्तममय अनेक भावोंको प्रकाश कर मुझ आतुर–असमर्थके सिर पर अत्यन्त निष्ठुर रूपसे आक्रमण कर मुझे पीस रही है; हे नरहरे! मैं आपके शरणमें आया हूँ, आप अपनी मायाका प्रभाव रोकिये।।२५।।

(१७) हे दीनानाथ! हे अनाथबन्धो! हे प्रभो! मैं दण्ड और संन्यास ग्रहण करनेका छलकर केवल भोग चिन्तामें पीड़ित एक वंचित व्यक्ति हूँ। मैं सर्वदा अत्यन्त मोह प्राप्त हो रहा हूँ, मैं अपने तैयार किये हुए कर्म–क्लेशमें पड़कर बहुत ही दुःखी हूँ। हे परमानन्दमय प्रभो! मैं आपकी आज्ञा न मानने वाला नितान्त मूर्ख हूँ तथा मूर्खोंके निकट सम्मान पाकर अतिशय अभिमानी हो गया हूँ, आप मेरी रक्षा करें।।२६।।

(१८) हे माधव! आपके स्वरूप–ज्ञान और आपके विषयमें श्रवण और कीर्तनमें आसक्ति पैदा करें, जिससे मुझे विषयजन्य सुख–दुःख स्पर्श न करें और जिससे मैं केवल प्रेम–शून्य विधियोंका दास न हो जाऊँ।।२७।।

(१९) हे अनन्त! देववृन्द आपका अन्त नहीं जानते, आप भी अपना अन्त नहीं जानते, वेद भी आपका तत्त्व निरूपण करनेमें समर्थ नहीं हैं; इसलिये आपको नमस्कार है। 'आपकी जय हो,' 'जय हो' इत्यादि वचनोंका उच्चारण कर मैं आपके उन दुर्लभ चरणकमलोंका भजन करता हूँ।।२८।।

(२०) कर्मी और भक्तके लिये जिनके चरणकमल क्रमशः भोग और योगको देनेवाले हैं एवं जिनके चरणकमल निखिल श्रुति–समूहके शिरोरत्न समूह द्वारा नीराजित होते हैं, उन माधवको मैं प्रणाम करता हूँ।।२९।। ❑

सन्त (सज्जन) के लक्षण

—ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर

अकाम–१३

जीव जिस समय अपना स्वरूप भूल जाता है, उस समय वह अभावके राज्यमें प्रवेश करता है। ऐसी दशामें उसे सर्वत्र अभाव ही अभाव दृष्टिगोचर होता है। वह इन अभावोंकी पूर्त्तिके लिये तरह–तरहकी कामनाएँ किया करता है। धर्माधर्म–ज्ञानसे रहित कामनाका नाम स्वेच्छाचार है, पुण्यमय कामनाको सत्कर्म कहते हैं तथा कामनाओंका त्याग मोक्षकाम कहलाता है। सकाम–व्यक्ति अर्थ–धर्म–काम रूप त्रिवर्गका अनुसंधान करते हैं तथा कामनारहित जीव मोक्षके लिये प्रयत्न करते हैं। त्रिवर्गकी कामना करनेवाले अथवा मोक्षको चाहनेवाले, दोनों ही अपने–अपने अन्वेषणीय कामनाओंके दास हैं। इन दोनों श्रेणीके मनुष्योंमें कामना वर्त्तमान रहनेके कारण वे सज्जन या अकाम नहीं कहे जा सकते।

भगवद्भक्तजन—संतजन ही अकाम या निष्काम हैं

संतजन ही एकमात्र निष्काम होते हैं। वे पृथ्वीकी किसी भी वस्तुकी कामना नहीं करते। वे वर्ण और आश्रम सबका परित्याग कर सम्पूर्ण

रूपसे कृष्णैकशरण होते हैं। चौदहों भुवनोंमें ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जो उनको लुभा सके और जिसकी वे कामना करें। उनके काम्य तो एकमात्र श्रीकृष्ण ही हैं; उनकी समस्त कामनाएँ श्रीकृष्णकाममें ही पर्यवसित होती हैं। उनमें अपने लिये सुखकी तनिक भी इच्छा या कामना नहीं होती। उनकी सारी इन्द्रियाँ सदा-सर्वदा श्रीकृष्ण-सेवामें ही संलग्न होती हैं। अतएव उनमें श्रीकृष्णेतर वस्तुओंकी कामना होनेका अवकाश ही कहाँ है?

शुद्ध भगवद्भक्तोंको छोड़कर सभी किसी न किसी प्रकार कामके अवश्य ही दास हैं। कर्मी-ज्ञानी अभक्तजन किसी प्रकार भी विश्वास नहीं करते कि सज्जन पुरुष कामनाशून्य होते हैं। परन्तु वे मानें चाहे न मानें कपटी भक्तजन और वैष्णव संतोंमें मिथ्या और सत्यका अन्तर है। भक्त और अभक्त सबको समान समझने वाले व्यक्ति निष्काम भक्तोंका स्वरूप नहीं जान पाते हैं—यह उनका दुर्भाग्य है।

निरीह—१४

श्रीमद्भागवतमें नैष्कर्म्यकी बड़ी महिमा बतलायी गयी है। नैष्कर्म्य कहनेसे कर्मचेष्टा-राहित्यका बोध होता है। किसी प्रकारका फल पानेकी आशासे जो चेष्टाकी जाती है, उसे कर्मचेष्टा कहते हैं। भगवद्धर्ममें कर्मचेष्टाका स्थान नहीं है; इसलिये भक्तजन निरीह हैं। निरीह शब्दका तात्पर्य कर्मचेष्टासे रहित होना ही है।

फलभोग—कर्मकाण्डका उद्देश्य है। जीव बद्धावस्थामें सूक्ष्म और स्थूल शरीरोंसे अचित् वस्तुओंका भोग करता है। परन्तु संतजन बद्धावस्थामें भी अपने स्थूल और सूक्ष्म शरीरोंके द्वारा स्वयं कर्मफल भोग करनेके बदले अपने आत्मानुशीलनमें निरत अप्राकृत मन द्वारा कर्मफल-भोगवासनासे सर्वथा मुक्त होते हैं। ऐसे सज्जनोंको अप्राकृत या जीवन्मुक्तकी संज्ञा दी जाती है। 'ईहा' शब्दका अर्थ है—चेष्टा। खण्डकालके भीतर स्थूल और सूक्ष्म शरीरोंसे भोग और मोक्षके उद्देश्यसे जो कुछ भी अनुष्ठित होता है, वह सब अनात्म चेष्टा है। परन्तु जो भोग और मोक्षको अंतिम फल नहीं समझते, वे ही हरिपरायण अथवा सज्जन व्यक्ति हैं। भगवान् श्रीहरि नित्य और अप्राकृत वस्तु हैं; उनकी लीला नित्य है और उनके सेवक भी नित्य हैं। कर्मकाण्डमें कर्मफल भोगकी वासना प्रधान होती है। यदि ऐसी क्रियाएँ भगवान्‌से सम्बन्धित भी हों, तो भोगप्रधाना होनेके कारण शुद्ध नहीं हैं। जिस समय जीवकी चिन्मय प्रवृत्तिका उदय होता है, उस समय वह प्रवृत्ति सूक्ष्म और स्थूल शरीरोंमें प्रकाशमान होकर कर्मी और ज्ञानियोंकी क्रियाके समान ही दिखलाई पड़ती है। परन्तु सूक्ष्म रूपमें विचार करनेसे सज्जन पुरुषों अर्थात् संतोंकी चेष्टाएँ और भोग-मोक्षकी चेष्टाएँ परस्पर विपरीत होती हैं।

संतजन निरीह होते हैं—इसका अर्थ यह नहीं कि संतजन कुछ भी नहीं करते और उनकी कोई भी चेष्टा नहीं होती। वरं उसका तात्पर्य यह है कि संतजनोंकी सारी चेष्टाएँ सपरिकर श्रीकृष्णके सुखके लिये होती हैं, जड़के प्रति उदासीन होती हैं। तन, मन और वचनके द्वारा समस्त अवस्थाओंमें ही जब कृष्ण-सुखके लिये निष्कपट चेष्टाएँ होने लगती हैं, तब वैसे व्यक्तिको जीवन्मुक्त या संत (सज्जन) कहा जाता है। अचित् वस्तुका अनुशीलन ही कर्मचेष्टा है; अचित् वस्तुसे केवल सर्वथा उदासीन होना ज्ञान-चेष्टा या वैराग्य है। परन्तु संतजनोंकी चेष्टाएँ इन दोनोंसे सर्वथा विलक्षण होती हैं।

हरि-विमुख मुक्त और हरिसेवक संत दोनों ही कर्म-चेष्टासे दूर रहते हैं। हरि-विमुखोंके आलस्य और निर्विशेष भावने उनको भगवान्‌के चरणोंमें अपराधी बना दिया है, इसीलिये वे जड़

आलस्यको ही अतिशय हितकर समझ कर भगवत्सम्बन्धी वस्तुओंको सांसारिक मानते हैं। ज्ञानियोंकी अत्यधिक ज्ञानचेष्टा अथवा निर्भेद-ब्रह्मानुसंधान उनको परम हितकर भगवानके तत्त्वज्ञानसे विमुख कर देता है। संतोंमें ऐसी चेष्टा नहीं होती, इसलिये वे निरीह हैं। साथ ही हरिसेवामें निखिल चेष्टामय होनेपर भी जड़के प्रति उदासीन होते हैं।

स्थिर—१५

शरीर और मनके धर्म परिणामशील हैं, अतएव अनित्य हैं

आत्माका धर्म अचंचल है। मन और शरीरका धर्म चंचल—परिणामशील होता है। अनित्य और परिणामशील वस्तु किसी भी दशामें स्थिर नहीं हो सकती हैं। परिवर्त्तनशील वस्तुके ऊपर विश्वास नहीं किया जा सकता है। शरीर नित्य नहीं है। मन भी अनित्य वस्तुओंसे अपनी अनुशीलनीय वृति संग्रह करता है। अतएव ये दोनों ही अस्थिर हैं।

सज्जन स्थिर वस्तु—भगवानके उपासक होनेके कारण स्थिर प्रकृतिके होते हैं

तात्कालिक वृत्तिकी प्रेरणासे शरीर और मन नाना प्रकारके प्रारम्भोंमें प्रवृत्त होते हैं। परन्तु चांचल्यरहित होनेपर नित्य धर्मकी स्थिरताका अनुभव आत्मा द्वारा किया जाता है। भगवद्‌भक्त परिणामशील असत् वस्तुके प्रति प्रवृत्त नहीं होते। जब तक जीवकी चित्तवृत्ति भगवान्‌की सेवामें नियुक्त नहीं होती, तब तक अस्थिर धर्म जीवको छोड़ते नहीं। जिस समय तक जीवकी मनोवृत्ति असत् वस्तुओंके प्रति दौड़ती रहती है, उस समय तक वह स्थिर कैसे हो सकती है? भगवान्‌की उपासना करनेवाले सज्जन सर्वदा स्थिर रहते हैं। भगवान् स्थिर वस्तु हैं और सज्जन अर्थात् भगवद्‌भक्तजन स्थिर प्रकृतिसम्पन्न होते हैं।

शम-दमादि-योगाभ्यास भगवान्‌के उद्देश्यसे अनुष्ठित न होनेपर उनसे प्रकृत स्थिरता या चित्तवृतिका निरोध सम्भव नहीं

पतञ्जलि ऋषिके योगदर्शनकी आलोचना करके कोई ऐसा कह सकते हैं कि कृत्रिम उपायसे चित्त-वृत्तिका निरोध हो सकता है। इसके अतिरिक्त ईश्वर प्रणिधान द्वारा भी चित्त स्थिर किया जा सकता है। शम-दमके अभ्याससे जिस स्थिरताका उद्देश्य किया जाता है, वह परिणामशील और अस्थिरताकी पूर्व-वृत्ति है। नित्य वस्तु भगवान्‌के साथ सम्बन्धस्थापनके बिना वास्तविक स्थिरता कदापि संभव नहीं है।

साध्य-साधन या उपेय-उपायमें भेद-बुद्धि नित्यत्वका विरोधी है

अन्याभिलाषी, कर्मी, ज्ञानी या योगी—ये कोई भी स्थिर नहीं हैं। ये अपने-अपने अभावोंकी कल्पना कर अस्थिरसे सुस्थिर होनेके लिये विभिन्न काल्पनिक अनित्य अस्थिरताके लिये प्रयत्न करते हैं। अपनेको अभावग्रस्त दुःखी मानकर अपनी कामनाकी पूर्तिके लिये संसारमें इतस्ततः भटकते फिरते हैं। विशेषतः साधन और साध्यमें वैषम्य होनेपर अस्थिरता ही अन्तिम फल होता है अर्थात् उपाय और उपेयका भेद नित्यत्वका विरोधी है।

सज्जनगण इष्टकी प्राप्तिमें धैर्यशील होते हैं अतएव वे धीर और स्थिर होते हैं

श्रीगौरसुन्दरने एक दिन श्रीरघुनाथदास गोस्वामीको कहा था—

स्थिर हइया घरे जाओ ना हओ बातुल।
क्रमे-क्रमे पाय लोक भवसिन्धुकूल।।

सभी कार्योंमें स्थिरताकी आवश्यकता होती है। धैर्यके अभावमें भक्तिका विकास नहीं होता। अनात्म धर्मोंमें अनित्यता और अस्थिरता है। सज्जन व्यक्ति इनसे दूर रहते हैं। सज्जन सभी अनुष्ठानोंमें धीर होते हैं। सज्जनों पर ही एकमात्र विश्वास किया जा सकता है। उनकी दृढ़ता जगत्‌के लिये आदर्श है। ❑

प्रीति

—ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

'प्रीति'—यह बड़ा ही मधुर शब्द है। इसका उच्चारण होनेके साथ-साथ उच्चारणकारी और श्रोताके हृदयमें एक अतीव मधुर भाव उदित हो पड़ता है। यद्यपि सभी इसका अर्थ ठीक ठीक नहीं समझ पाते, फिर भी वे इस नामको सुनकर आनन्दित होते हैं। जीवमात्र प्रीतिके वशीभूत है। प्रीतिके लिये बहुतेरे अपने प्राणों तकका विसर्जन कर देते हैं।

प्रीति ही मानव-जीवनका एकमात्र उद्देश्य है। बहुतसे लोग ऐसा समझते हैं कि अपने स्वार्थकी प्राप्ति ही जीवनका मुख्य प्रयोजन है। परन्तु यह बात ठीक नहीं है। प्रीतिके लिये मनुष्य अपने समस्त प्रकारके स्वार्थोंका तृणके समान त्याग कर देता है। स्वार्थ—केवल अपनी सुख-स्वाच्छन्दताका ही अन्वेषण करता है; परन्तु प्रीति—प्रिय-वस्तु या प्रिय व्यक्तिकी सुख-स्वच्छन्दताके लिये अपने समस्त प्रकारके स्वार्थोंका त्याग कर देती है, जहाँ स्वार्थ और प्रीतिमें परस्पर विरोध होता है, वहाँ प्रीतिकी ही सदा विजय होती है। विशेषतः स्वार्थ अत्यन्त प्रबल होनेपर भी वह सदा-सर्वदा प्रीतिके अधीन ही रहता है। स्वार्थ किसे कहते हैं, जो अपना प्रिय हो, उसे स्वार्थ कहते हैं। अतएव मानव-जीवन प्रीतिके अधीन है—यह कथन निरर्थक नहीं है। स्वार्थ आदि जीवनका तात्पर्य होनेपर भी प्रीति ही जीवनका मुख्य तात्पर्य है।

परमार्थ-तत्त्वमें भी प्रीतिकी प्रधानता देखी जाती है। जो लोग जागतिक सुखोंको अनित्य मानकर पारमार्थिक सुखकी खोज करते हैं, वे या तो अपनी भोग-वासनाओंके अधीन होते हैं अथवा मुक्तिकी कामनासे उत्तेजित होते हैं। जो भोग-वासनाओंके अधीन होते हैं, वे धन-सम्पत्ति, पुत्र-कलत्र और राज्य-सुख आदिकी खोजमें व्यस्त रहते हैं अथवा स्वर्ग और ब्रह्मलोकके सुखोंको प्राप्त करनेके लिये लालायित रहते हैं। ये भोग-समूह उनको अतिशय प्रिय हैं, इसीलिये वे उनको पानेके लिये व्यस्त रहते हैं। पुनः जो मुक्तिकी कामना करते हैं, उनको भोग-विषयोंमें प्रीति नहीं होती, उन्हें भोगोंसे दूर रहनेमें ही आनन्द आता है। अतएव ऐसे लोग मुक्तिमें प्रीति रहनेके कारण मुक्तिका अन्वेषण करते हैं। भोग-प्रिय व्यक्ति भोगोंमें प्रीति पानेकी आशा रखता है और मुक्ति-प्रिय व्यक्ति उस प्रीतिको मुक्तिमें ही पानेकी आशा करता है। अतएव दोनों प्रकारके मनुष्योंका उद्देश्य 'प्रीति' ही है। इन दोनोंके अतिरिक्त पारमार्थिक मनुष्योंका उद्देश्य भी प्रीति ही है। वैष्णव कवि चण्डीदास प्रीतिके सम्बन्धमें कहते हैं—

पिरीति बलिया ए तिन आखर,
ए तिन भुवन-सार।
एई मोर मने हय राति दिने,
इहा वई नाहि आर।।
विधि एक चिते भाविते भाविते,
निरमान कैल "पि"।
रसेर सागर मंथन करिते,
ताहे उपजिल "री"।।
पुन ये मथिया अमिया हईल,
ताई भियाँइल "ति"।
सकल सुखेर ए तीन आखर,
तुलना दिव कि।।
जाहार मरमे पशिल यतने,
ए तीन आखर सार।
धरम करम, सरम भरम,
किवा जाति कुल तार।।

एहेन पिरीति ना जानि कि रीति,
परिणामे किवा हय।
पिरीति-बन्धन बड़ई विषम,
द्विज चण्डीदास कय।।

—चण्डीदासजी कहते हैं कि मुझे तो ऐसा लगता है कि 'पिरीति'-ये तीन अक्षर ही सम्पूर्ण जगत्के सार-स्वरूप हैं। यही नहीं, मुझे दिन-रात आठों पहर ऐसा प्रतीत होता है कि इन तीन अक्षरोंके सिवा इस संसारमें कुछ है ही नहीं। लोक पितामह ब्रह्माने एकान्त मनसे चिन्तन करते-करते 'पि'-अक्षरका निर्माण किया। पश्चात् रस-समुद्रका मन्थन करनेसे उसमेंसे 'री'-अक्षर उत्पन्न हुआ। पुनः जब फिरसे उस रस समुद्रका दुबारा मन्थन किया गया, तब उससे जो अमृत निकला, वही तृतीय अक्षर 'ति' हुआ। ये तीनों अक्षर समस्त प्रकारके सुखोंके आकर हैं। इनकी तुलना किससे दूँ; तुलनाका कोई स्थल ही नहीं दिखालयी पड़ता है। जिस सौभाग्यवानके हृदयमें ये तीनों अक्षर बलपूर्वक प्रवेश कर जाते हैं, उसका लौकिक धर्म-कर्म दूर हो जाता है, उसकी लज्जा, शील जाति और कुलधर्म सब कुछ छूट जाता है। ऐसी पिरीति (प्रीति) की रीति क्या है? मैं नहीं जानता एवं इसका परिणाम क्या होगा यह भी नहीं जानता।

पदार्थ दो प्रकारके होते हैं—चित् और जड़। चित् पदार्थ ही मूल पदार्थ है और जड़ उसकी विकृति है। जड़ पदार्थको चिद्वस्तुकी छाया भी कह सकते हैं। मूल वस्तुमें जो-जो बातें पायी जाती हैं, उसकी छायामें भी वे सब बातें कुछ हद तक पायी जाती हैं। अतएव मूल वस्तुरूप चित्तत्त्वमें जो कुछ है, जड़में भी अवश्य रहेगा।

चित्-पदार्थका धर्म अनुसंधान करनेसे यह जाना जाता है कि प्रीति ही चिद्वस्तुका एकमात्र धर्म है। यह धर्म प्रतिफलित होकर जड़वस्तुमें कुछ-कुछ अवश्य ही वर्तमान रहता है। जड़ जिस प्रकारसे चिद्वस्तुकी विकृति है, उसी प्रकार 'आकर्षण और गति' प्रीति धर्मकी विकृति है। यह विकृति ही जड़-पदार्थके धर्मके नामसे परिचित होती है। प्रत्येक जड़ीय परमाणुमें आकर्षण और गतिरूप प्रीतिका विकृत भाव पाया जाता है। अब यह देखा जाय कि प्रीतिका स्वरूप क्या है?

आकर्षण और गति विशुद्धरूपमें चिद्वस्तुमें प्रीतिके रूपमें लक्षित होते हैं। आत्मा ही चिद् वस्तु है। आत्मा कहनेसे विभुचैतन्य परमात्मा और अणुचैतन्य जीवात्मा, दोनोंका बोध होता है। विभुचैतन्य और अणुचैतन्य दोनों ही प्रीतिधर्मवाले हैं। आत्माके अतिरिक्त और कहीं भी विशुद्ध प्रीतिधर्म नहीं है। आत्माकी छाया—जड़ पदार्थमें विशुद्ध धर्मकी विकृतिमात्र होती है, उसमें धर्म स्वयं नहीं रहता। इसीलिये जड़ जगतकी किसी भौतिक वस्तुमें विशुद्ध प्रीति नहीं पायी जाती है। उसी विकृत धर्मके अनुसार परमाणु-समूह परस्पर एक जगह मिलकर स्थूल होते हैं। आकर्षणके द्वारा एक वस्तु दूसरी वस्तुके निकट पहुँचती है। स्वतन्त्र गति-शक्तिद्वारा पृथक् होकर सूर्य आदि मण्डलकी भ्रमण क्रिया सम्पादित होती है। प्रतिफलित वस्तु और प्रतिफलित धर्ममें हम जो कुछ देख पाते हैं, वह सब कुछ मूल वस्तुमें विशुद्ध रूपमें विद्यमान है।

आत्मामें भी स्वतन्त्रता और आकर्षणवश्यता लक्षित होती है। इस जगतमें आत्मा बद्ध जीवके रूपमें वर्तमान है। जीवात्मा या अणुचैतन्य संख्यामें अनन्त हैं। वे सभी प्रीतिधर्मविशिष्ट है। उस प्रीति-धर्मका परिचय यह है कि प्रत्येक आत्मा परस्पर आकर्षण करती है। अथच प्रत्येक आत्मा स्वतन्त्रतावशतः पृथक् रहना चाहती है। जड़ जगत्में अर्थात् प्रतिफलित जगत्में एक वस्तु दूसरी वस्तुको अपनी ओर खींचती है और प्रत्येक वस्तु अपनी-अपनी स्वतन्त्र गतिके कारण अलग-अलग

रहना चाहती है। वृहत् जड़वस्तु क्षुद्र जड़वस्तुको खींचती है। सूर्य वृहत् है, इसलिये वे दूसरे-दूसरे ग्रहों और उपग्रहोंको अपनी ओर खींचते हैं। परन्तु वे ग्रह और उपग्रह-समूह अपनी-अपनी स्वतन्त्र गतिके बलसे सूर्यसे पृथक-रहना चाहते हैं। इस खींचा तानीमें वे गोलाकार रूपमें भ्रमण करते हैं। पुनः ग्रहोंका भी परस्परमें आकर्षण और गति होती है, जो भ्रमणके कार्यमें सहायक होती है। प्रतिफलित जगत्में हम जैसा देखते हैं, चिज्जगतमें भी वही विशुद्धरूपमें विद्यमान है। छान्दोग्य उपनिषद्में कहते हैं—

'स ब्रूयाद् यावान् वा अयमाकाशस्तावानेषोऽन्तर्हृदय आकाश उभे अस्मिन् द्यावापृथिवी अन्तरेव समाहिते उभावग्निश्च वायुश्च सूर्यचन्द्रमसावुभौ विद्युन्नक्षत्राणि यच्चास्येहास्ति यच्च नास्ति सर्वं तस्मिन् समाहितमिति।।'

(छा० ८/१/३)

प्रतिफलित जगत्में पंचभूत, चन्द्र, सूर्य, विद्युत, नक्षत्र आदि देखे जाते हैं। ये सब-के-सब आदर्शरूपमें चिज्जगतमें अर्थात् ब्रह्मपुरमें वर्तमान हैं। अन्तर यह है कि चित् जगत्में सब कुछ विशुद्ध, आनन्दमय और सर्वदोषशून्य होता है; परन्तु जड़ जगत्में वही दोषयुक्त, असम्पूर्ण और सुख-दुखजनक होता है।

अब देखिये चिद् जगत्का मूलधर्म प्रीति है। अतएव कविवर चण्डीदास जी कहते हैं—

"ब्रह्माण्ड व्यापिया आछये जे-जन,
केह न देखये तारे।
प्रेमेर पिरीति जे-जन जानये,
सेइ से पाइते पारे।।
'पिरीति' 'पिरीति' तीनटी आखर
पि-री-ति त्रिविध मत।
भजिते भजिते निगूढ़ हइले
हइवे एकइ मत।।'

चिन्मय वृन्दावन-बिहारी कृष्ण ही चिज्जगतके सूर्य हैं। जीवसमूह उनके लीला-परिकर हैं। कृष्ण जीवको प्रेमाकर्षणधर्म द्वारा अपनी ओर खींचते हैं। जीवसमूह अपनी स्वतन्त्र गतिके कारण कृष्णसे पृथक् रहनेकी चेष्टा करते हैं। फल यह होता है कि बलवान आकर्षण जीवोंको खींचकर कृष्णके समीप ला देता है। क्षुद्र-क्षुद्र जीवगतियाँ पराभूत होकर भी जीवोंको कृष्णरूप सूर्यके चारों ओर मण्डलाकारमें घुमा रही हैं। यही कृष्णका नित्य रास है। इसमें कृष्णकी स्वरूपशक्तिगत सहचरियाँ कृष्णके अत्यन्त निकट होती हैं और साधनसिद्धा सहचरियाँ कुछ दूर अवस्थित होती हैं। कृष्णकी चिन्मयी लीला ही प्रीति धर्मका विशुद्ध परिचय है।

अब प्रश्न होता है कि क्या कृष्ण सभी जीवोंको आकर्षण करते हैं? यदि ऐसा करते हैं, तब क्या कारण है कि सभी जीव कृष्णके प्रति उन्मुख नहीं हैं?

इसका उत्तर यह है कि कृष्ण सचमुच ही सभी जीवोंको आकर्षण कर रहे हैं। परन्तु इसमें एक रहस्य है। जीव दो प्रकारके होते हैं अर्थात् बद्ध और मुक्त। मुक्तजीव अपनी प्रीतिका स्पष्ट अनुभव करते हैं तथा उसे क्रियाशील रखते हैं। अतएव मुक्त जीवोंके ऊपर कृष्णाकर्षण स्वभावतः ही अधिक कार्यकारी होता है।

बद्धजीव दो भागोंके विभक्त हैं। जो जीव सम्पूर्णरूपसे कृष्ण-विमुख होते हैं, उनका प्रीतिधर्म अत्यन्त जड़गत होकर विकृत होता है। अतएव वे विषय-प्रीतिके सिवा और कुछ भी नहीं जानते। इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त होकर वे भोगोंको भोगनेमें दिन-रात आसक्त हैं। अपने आपको भूलकर जड़ सुखकी खोजमें व्यस्त हैं। पुनः जड़-सुख-समृद्धिकारी जड़ीय विज्ञानका आदर कर पार्थिव पूजामें निरत रहते हैं। 'आत्मा कुछ नहीं है, आत्म चिन्तन निरा भ्रम है, आत्मोन्नति-चेष्टा केवल मानसिक दुश्चिन्ता है'—इत्यादि प्रलाप

वाक्योंसे अपने को निरन्तर ठग रहे हैं। कोई-कोई स्वर्ग सुखके लिये नाना प्रकारके कर्मोंका अनुष्ठान करके आत्मजगतके सुखसे चिर-वंचित रह जाते हैं।

बद्धजीवोंमें कोई-कोई जीव विवेक और वैराग्य-सम्पन्न होते हैं। इस श्रेणीके जीव आत्म-विषयमें श्रद्धालु होते हैं। इस श्रद्धाके बल पर ये चित् जगत्के सूर्यस्वरूप कृष्णके शुद्धाकर्षणको किंचित् परिमाणमें अनुभव करते हैं तथा ये कृष्णके प्रति कुछ-कुछ आकृष्ट भी होते हैं। ये लोग नाना प्रकारकी सांसारिक, वैज्ञानिक और परमार्थिक चेष्टाओंमें निरत रहने पर भी कृष्ण-संग-सुखका उपभोग करते हैं। श्रीचण्डीदासने इनके भावोंको बड़ा ही सजीव चित्र खींचा है—

कानु जे जीवन, जाति प्राणधन,
ए दुटी नयनेर तारा।
हियार मझारे, परान पुतलि,
निमिखे निमिख हारा।।
तोरा कुलवती भज निज पति,
यार मने येवा लय।
भाविया देखिनु श्याम-बँधु बिने
आर केह मोर नय।।
कि आर बुझाओ धरम-करम,
मन स्वतन्त्री नय।
कुलवत हैञा पिरीति-आरति
आर कार जानि हय।।
जे मोर करम कपाले आछिला
विधि मिलाइला ताय।
तोरा कुलवती भज निज पति,
थाक घरे कुल लई।।
गुरु दुरजन, बले कुवचन,
से मोर चन्दन-चुया।
श्याम अनुरागे ए तनु वेचिनु
तिल-तुलसी दिया।।
परसी दुर्जन बले कुवचन,
ना जाब से लोक, पाड़ा।
चण्डीदासे कय कानुर पिरीति
जाति-कुल शील छाड़ा।।

जीव इस संसारमें जड़ाभिमानके कारण अपने स्वरूपको भूल गया है। यहाँ पर वह नाना प्रकारका सम्बन्ध जोड़कर अनेक लोगोंके साथ नाना प्रकारका व्यवहार कर रहा है। उसने मन-बुद्धि-अहंकार और चित्त द्वारा निर्मित लिंग शरीरमें आत्मबुद्धि कल्पित कर रखी है। इस लिंग शरीरके सम्बन्धसे वह मनोविज्ञान और पदार्थ विज्ञानका आदर कर उसे अपनी सम्पत्ति मानकर भ्रान्त हो पड़ा है। पुनः पंचभूतके द्वारा बने स्थूल देहमें 'मैं' की बुद्धि कर मैं ब्राह्मण हूँ, मैं इसाई हूँ, मैं बौद्ध हूँ—ऐसा अभिमान करता है। कभी जन्मता है, तो कभी मरता है। कभी आनन्दसे फूला नहीं समाता, तो कभी दुःखसे जर्जर हो पड़ता है। धन्य है यह परिवर्तन और धन्य है यह मायाका रंग! कभी पुरुष होकर एक स्त्रीके साथ विवाह कर रहा है, तो कभी स्त्री होकर एक पुरुषके साथ विवाहकर एक विराट संसार कर रहा है। संसारमें आकर गुरुवर्गकी सेवा करता है, अपने आश्रितजनोंका पालन करता है, सरकारसे भयभीत रहता है एवं शत्रुसे घृणा करता है। कभी कुलबधू बनकर बड़ी ही शर्मिली हो पड़ता है और लोकनिन्दा से छुई-मुईकी तरह काँपता है। इस प्रकार मायाके चक्करमें पड़कर जीव नाना प्रकारके झूठ-मूठके सम्बन्ध जोड़कर अपने वास्तविक स्वरूपगत परिचयसे बहुत ही दूर जा पड़ता है तथा भयानक दुर्दशा भोग करता है। संसारकी कतिपय आरोपित विधियोंको अङ्गीकार कर एक दूसरेको अपना स्वामी मान कर अपने नित्यपति श्रीकृष्णको सम्पूर्णरूपसे भूल जाता है।

यहाँ पर श्रीकृष्णके सम्बन्धमें एक भाव पैदा होता है। श्रीमन्महाप्रभुजीने उस भावको स्वरचित

एक श्लोकमें इस प्रकार व्यक्त किया है—

परव्यसनिनी नारी व्यग्रापि गृहकर्मसु।
तदेवास्वादयत्यन्तर्नवसङ्गरसायनम् ॥

(चै.च.म. १/२११)

किसी पर-पुरुषमें आसक्त रमणी गृहके कर्मोंमें व्यग्र (संलग्न) रहकर भी नये नये संगरसका आस्वादन करती है।

संसारकी विधियोंमें बँधे हुए जीवकी श्रीकृष्णमें विशुद्ध प्रीति उदित होनेसे पूर्व इसी प्रकारका पूर्वराग होता है। धीरे-धीरे अभिसार और मिलन होता है। श्रीकृष्णतत्त्वका विषय श्रवण होनेपर, उन विचित्र सच्चिदानन्द मूर्त्तिका चित्र दर्शन करनेसे, उनकी आकर्षणी शक्तिका स्मरण करनेसे तथा वंशीनाद श्रवण करनेसे पूर्वराग उदय होता है। जिनमें पूर्वराग उदित हो जाता है, उनका स्वजातियाशययुक्त सहचरियोंकी सहायतासे सच्चिदानन्द पुरुषके साथ मिलन होता है। क्रमशः सच्चिदानन्द पुरुषके साथ प्रीति सुदृढ़ हो जाती है।

चिज्जगतरूप ब्रजधाममें सच्चिदानन्द लीला नित्य है। जीव चित्कण है, अतएव वह उस लीलाका अधिकारी है। मायाबद्ध होनेपर जीवके चित् स्वरूपका परिचय जिस प्रकार लिंग और स्थूल शरीरमें भ्रान्तरूपसे उदित हुआ है, उसी प्रकार चित् स्वभावरूप विशुद्ध कृष्ण-प्रीति भी जड़-विज्ञान-प्रीति या स्थूल-विषय-प्रीतिके रूपमें भ्रान्तरूपमें उदित है। अतएव मांसगत प्रीति या मानस भागवत प्रीति—शुद्ध प्रीतिका विकार मात्र है। वह प्रीति नहीं है। अपना स्वरूप भूल जानेके कारण जीव इनको ही प्रीति कहता है। एक आत्माकी दूसरी आत्मामें जो अनुरक्ति होती है, वही 'प्रीति' शब्दका यथार्थ अर्थ है। वृहदारण्यक (४/५/६) में कहा गया है—

न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवति आत्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति। (इत्युपक्रम्य) न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति आत्मानस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति। आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रैय्यात्मनि खलु अरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञात इदं सर्वं विदितमिति।

याज्ञवल्क्यकी पत्नी मैत्रेयी जड़ जगत तथा सूक्ष्म जगतसे विरक्त होकर अपने पतिके पास गयी और सदुपदेशके लिये प्रार्थना की। याज्ञवल्क्यने कहा कि मैत्रेयी! इस संसारमें पत्नी अपने पतिको सुख प्रदान करनेके लिये उससे प्रीति नहीं करती, बल्कि अपने भौतिक सुखके लिये ही वह पतिसे प्यार करती है। स्त्रीके सुखके लिये स्त्री पतिकी प्रिया नहीं होती, परन्तु पति अपने सुखके लिये ही स्त्रीसे प्रीति करता है। इसी प्रकार पति, पुत्र और धन आदिके प्रति जो प्रीति होती है, वह केवल कपट प्रीति होती है। तू इस कपटताका परित्याग कर और जो सबके नित्य प्रिय वस्तु हैं, जो आत्माके आत्मा हैं, एकमात्र उन भगवान्की प्रीतिके लिये ही उनकी आराधना कर, उनके दर्शन कर, उनकी कथाएँ श्रवण कर, उनका मनन कर और उनका ही ध्यान कर। मैत्रेयी! उनको जाननेसे सब कुछ जानना हो जाता है, सबका ज्ञान हो जाता है। उससे प्रीति करनेसे सबसे प्रीति करनी हो जाती है।' इस परम प्रामाणिक वेद वाणियोंका तात्पर्य यह है कि स्थूल और लिंगमय इस जड़ जगत्में प्रेम नहीं है। यहाँजो कुछ प्रेमका आभास दिखलायी पड़ता है, वह केवल आत्माके सम्बन्धसे ही अनुभूत होता है। शुद्धजीव चिन्मय है। अतएव वह आत्मा है। आत्माके प्रति आत्माका जो प्रेम होता है, वही विशुद्ध प्रीति है। वही प्रीति एकमात्र अन्वेषण करने योग्य है। विश्व प्रेम अथवा मनुष्यके प्रति मनुष्यका जो प्रेम होता है, वह केवल आत्म-प्रेमका विकारमात्र है। आत्मा और आत्मामें जो प्रेम होता है, वही एकमात्र आदर्श प्रेम है। श्रीमद्भागवतमें कहते हैं—

कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम्।
(श्रीमद्भा. १०/१४/५५)

चौसठ महागुणोंसे युक्त श्रीकृष्ण ही निखिल आत्माओंके आत्मा हैं। कृष्णके प्रति जीवका जो प्रेम होता है, वही निरुपाधिक और चरम प्रेम है। जिन्होंने प्रीतिका स्वरूप बिना समझे ही मनोविज्ञान और प्रीतिविज्ञान-इति—ऐसा लिखा है, वे चाहे जितनी भी युक्तियाँ क्यों न पेश करें, केवल भस्ममें घी ढालनेके समान उन्होंने व्यर्थ ही परिश्रम किया है। उससे जगतका कोई हित होना तो दूर रहे, अधिकतर अहित ही हुआ है और होगा। भाइयो! दाम्भिक व्यक्तियोंके शब्द-जालसे बचकर शुद्ध आत्मरति और आत्मक्रीड़ होकर निरुपाधिक प्रीतितत्त्वका अनुभव कीजिये और जीव-स्वभावको परमोज्ज्वल बनाइये। ❑

पानीमें उतरे बिना तैरना सीखनेकी इच्छा

एक महिलाके एक पुत्र था। वह अपने पुत्रको कभी भी नदीमें स्नान नहीं करने देती थी। उसे यह भय बना रहता था कि यदि मेरा पुत्र नदीमें स्नान करनेके फेरमें डूब गया, तो मेरा क्या होगा?

एक दिन एक वृद्ध और बुद्धिमान पड़ोसी उस महिलाके पास आया और उससे कुछ कहने लगा। वह बालक भी पासमें बैठकर उनकी बातें सुन रहा था। पड़ोसीने महिलासे कहा—"यदि बालकको नदीमें स्नान नहीं करने दिया जायेगा, तो यह कभी भी तैरना नहीं सीख पायेगा। कभी इसे यहाँ से दूर देश भी जाना पड़ सकता है। यदि कहीं नावसे नदी पार करनेका योग हो और पार करते समय दैवसंयोगसे नाव नदीमें उलट जाये या डूब जाये, तब तो इसे जानसे हाथ धोना पड़ेगा और आप भी निःसंतान हो जायेंगी। इसलिए तैरनेके लिए सीखना इसके लिए एकान्त आवश्यक है।"

यह सुनकर बालकने तपाकसे पड़ोसीसे कहा—"मैं कभी पानीमें डूबकर मर न जाऊँ, इसके लिए तैरना सीखनेकी मेरी तीव्र अभिलाषा है। किन्तु, क्या आप ऐसा कोई उपाय ढूँढ़ सकते हैं, जिससे कि पानीमें उतरे बिना मैं तैरना सीख सकूँ।" उस महिलाने भी पुत्रकी बुद्धिमत्ताकी प्रशंसा करते हुए उसके विचारका समर्थन किया।

संसारमें ऐसे बहुत-से लोग हैं जो यह जानते हैं अथवा सुनते हैं कि हरिभजन नहीं करनेसे नरकमें जाना पड़ेगा या अनेक कष्ट भुगतना पड़ेगा। ऐसा जानकर भविष्यमें इन कष्टोंसे त्राण पानेकी इनकी इच्छा भी होती है। किन्तु ये लोग गुरुके पास जाकर दीक्षा ग्रहणकर हरिभजनकी प्रणाली सीखकर हरिभजन करनेकी चेष्टा नहीं करते हैं। इस विषयमें इन्हें आशंका, भय, संकोच, निरुत्साह, जड़ता आदि होनेके कारण ये इससे वंचित हो जाते हैं। पानीमें उतरे बिना तैरना सीखनेकी भाँति संसार सागरसे पार होनेकी उनकी शुभेच्छा कल्पना या दिवास्वप्नमें ही पर्यवसित होती है।

जिस प्रकार तैरना सीखनेके लिए पानीमें उतरनेका सत्साहस करना पड़ेगा उसी प्रकार हरिभजन करनेके लिए प्रकृत साधुका अनुसंधान, सद्गुरुका आश्रय ग्रहण और साधुसंगमें अवस्थान करना पड़ेगा। इसमें अनेक प्रकारकी विघ्न-बाधाएँ हैं, यह देखकर यदि भय और संदेहकर पहले ही हाथ-पाँव खींच लिया जाय, तो कभी भी हरिभजन नहीं होगा और हरिभजनके बिना जीवन मृत्युतुल्य है। ❑

सम्राट कुलशेखरकी प्रार्थना

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज

निराश्रित शून्यवादी व्यक्ति कदापि सुखी नहीं हो सकते। इसलिए श्रीनरोत्तम ठाकुर कहते हैं—"आश्रय लइया भजे, तारे कृष्ण नाहि त्यजे, आर सब मरे अकारण।" आत्मा और परमात्मा नित्य सहचर हैं। आत्माके साथ परमात्मा सर्वदा ही रहते हैं। आत्मा परमात्माको भूलकर जब विषय भोग करता है या कर्मफल भोग करता है, तब आत्माको दुःख भोगना पड़ता है। किन्तु जब विषय भोग छोड़कर आत्मा परमात्माकी सेवा करता है, तब ही उसे स्वाभाविक आनन्द प्राप्त होता है। यही आत्मा और परमात्माका सम्बन्ध है। आत्मा परमात्माको भूलने पर भी परमात्मा आत्माको भूल नहीं सकते। यही प्राकृतिक नियम है। उसी नियमानुसार परमात्मा भगवान सर्वदा ही आत्माके मंगलकी कामना कर आत्माको अपने साथ सम्बन्ध करानेके लिए कई प्रकारसे चेष्टा करते हैं। क्योंकि परमात्मा यही चाहते हैं कि जीव सर्वदा ही सुखी रहें। ऐसी चेष्टाओं द्वारा वे हमारी सभी चेष्टाओंको अपने साथ युक्त कर कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग आदिकी शिक्षा देते हैं। कर्म और ज्ञान दोनों ही जीवात्माके लिए दुःखदायी हैं। भगवान अत्यन्त मूढ़ कर्मज्ञानपरायण व्यक्तियोंको सुखी करनेके लिए कर्म और ज्ञानके साथ भक्तिका योग कर मूढ़ व्यक्तियोंको कर्मयोगी या ज्ञानयोगी करनेकी चेष्टा करते हैं। विपथगामी पुत्र या जीवात्माको सर्वदा सुखी करनेके लिए भगवान जो चेष्टा करते हैं, वही उनका दयाका परिचय है। दयापरवश होकर वे केवल अपने अनुगत भृत्योंको बद्धजीवोंके निकट प्रेरित करते हैं, ऐसी बात नहीं है। बल्कि समय-समय पर वे स्वयं आते हैं और महावदान्य अवताररूपसे भगवत्प्रेम सभी जीवोंको प्रदान करते हैं। इन सभी लीलाओं द्वारा वे बद्धजीवोंको सनातन आनन्दका आस्वादन कराते हैं और उस सनातन आनन्दके बहुतसे स्तरके आनन्द चिन्मयरस (दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुरादि रस) में उन्हें नियुक्त करते हैं। इन आनन्द चिन्मय रसोंके छायारूप जड़ीय रस जो भी इस जगतमें वर्त्तमान हैं, वे सभी हेय और तुच्छ हैं। इसलिए उनमें निरवच्छिन्न शुद्ध आनन्द नहीं है। योगी लोग उन सभी भौतिक रसोंके प्रति आकृष्ट नहीं होते। वे सत्यानन्द आत्मजगतके आनन्दको प्राप्त करनेके लिए महावदान्य अवतारके नित्य प्रकाश स्वरूप श्रीश्रीनित्यानन्दजीके कोटिचन्द्र सुशीतल पदकमलका आश्रय ग्रहण करते हैं। वञ्चित मूढ़ व्यक्ति जड़ अहङ्कारमें मत्त होकर नित्यानन्दका सम्बन्ध त्याग कर देते हैं।

भगवान यदि दयालु नहीं होते, तो हमारी इस कृष्ण विमुख अवस्थामें भी हमें इतना द्रव्य नहीं प्रदान करते। उनकी दयासे हम इस बद्ध अवस्थामें भी जीवनधारण करनेके उपयुक्त जल-वायु, खाद्य द्रव्य, ठण्ड-गर्मी, वर्षा आदि प्राप्त किये हैं। भगवानने हमारी सुख-सुविधाके लिए जो भी वस्तुएँ प्रदान की हैं, वे भगवानकी प्रदत्त वस्तु हैं—ऐसा हम समझ नहीं पाते। इसीलिए हम उन वस्तुओंको समान भावसे वितरण न कर अपनी सम्पत्ति समझकर उन्हें अवैध रूपसे भोगनेकी चेष्टा करते हैं। यही चेष्टा जगतमें बहुत प्रकारके अनर्थोंकी सृष्टि करती है। साम्यवादी जिस प्रकार समताका वितरण (Equal Distribution of wealth) करनेकी चेष्टा कर रहे हैं,

वह समयोपयोगी प्रकृतिका संतुलन होनेपर भी जब तक साम्यवादमें भगवत्-सम्बन्धका उदय न होगा, तब तक उस साम्यवाद (Communism) की सफलता बहुत दूर ही है। ऐसे साम्यवाद और पूंजीवाद (Capitalism) कदापि जगतका उपकार नहीं कर सकते। सामायिक आकर्षण रहनेके कारण वे तात्कालिक उपयोगी हो सकते हैं, सर्वकालिक सुखके लिए नहीं। ईशोपनिषद्के वचनानुसार यदि हम सभी द्रव्योंको भगवानका जाने और "तेन त्यक्तेन" प्रसाद बुद्धिसे जगतके सभी वस्तुओंको ग्रहण करें, तो हमारे कर्मोंका बुरा फल हमें भोगना न पड़ेगा। यदि हम इस प्रकार शत-सहस्त्र वर्ष भी जीवित रहें, तो हमें और कर्मबन्धनका भय न रहेगा। किन्तु यदि भगवानको भूलकर एक मुहूर्तके लिये भी भोगपिपासा हो, तो उससे यथेष्ट कर्मबन्धन होता है। भगवद् विद्वेषी दुरात्मा व्यक्ति सर्वदा ही भोगकी चेष्टा करते हैं, किन्तु दयालु भगवान उनकी सर्वदा ही रक्षा करनेका प्रयास करते हैं। भगवद् भक्त भी भगवानका आदर्श ग्रहण कर वैसी ही चेष्टा करते हैं। इसीलिए ऐसे भगवद् भक्त भगवानके अत्यन्त प्रिय हैं। जो व्यक्ति अपनी उन्नतिकी इच्छासे भगवद् भक्तिका साधन करते हैं, उनकी अपेक्षा हरिदास ठाकुर, वासुदेव विप्र आदि भक्त अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। क्योंकि श्रीनित्यानन्दानुगत भक्तोंने अपने चिद्रक्तका विसर्जन करके भी भगवत् विमुखतासे दूसरोंका उद्धार किया है। भगवानकी दयापरतासे भगवत् भक्तोंकी दयापरता और भी अधिक है।

भगवानके भक्त भगवानके प्रेममें अत्यन्त अधीर होकर भगवत्सेवाके लिए बद्धजीवोंके निकट अधिक दयाका प्रकाश करते हैं। इसलिए भगवान् स्वभावतः ही उन सभी भक्तोंकी सेवासे प्रसन्न होकर 'भक्तप्रिय' या 'भक्तवत्सल' नाम धारण करते हैं। इससे भगवानमें पक्षपातित्वका दोष नहीं आता। भगवान भगवद् विद्वेषियोंका विनाश करते हैं और भगवद् भक्तोंकी रक्षा करते हैं। विरुद्ध धर्मोंका सामंजस्य करनेमें समर्थ होनेके कारण भगवानके ऐसे विरुद्ध कार्य द्वारा भी उनकी दयाका ही प्रकाश होता है। भगवानका बाहरी पक्षपातित्व माता-पिताके पक्षपातित्वके समान है। भगवद्गीतामें भगवानने स्वयं अपने पक्षपातित्वको स्वीकार किया है। यद्यपि भगवान् सभी जीवोंको समानरूपसे ही देखते हैं, उनका शत्रु भी कोई नहीं है और मित्र भी कोई नहीं है, तथापि भगवान भक्तके हृदय हैं और भक्त भगवानके हृदय हैं। क्योंकि जीवन विपन्न होनेपर भी श्रीहरिदास ठाकुर आदि भक्त भगवानका पक्षपातित्व त्याग नहीं कर सके। इसीलिए भगवान् भी अपनेसे प्रगाढ़ स्नेह करनेवाले भक्तोंका पक्षपातित्व त्याग नहीं कर सकते। प्रह्लाद महाराजने भगवानका पक्षपातित्व त्याग कर अपने पितासे भी मतैक्य करना स्वीकार नहीं किया। अतएव भगवान् 'भक्तप्रिय' हुए बिना रह नहीं सकते। भगवान अपनी भक्तप्रियताके प्रमाणमें सर्वदा ही कहते हैं—"मेरे भक्तोंका कदापि विनाश नहीं होता", "मैं भक्तोंका योग-क्षेम स्वयं वहन करता हूँ" आदि आदि। भक्त लोग भगवानकी सेवाके लिए पुत्र, स्त्री, गृह और गृहके सभी सुखोंका परित्याग कर पागलोंकी भाँति घूमते-फिरते हैं। भगवान भी भक्तोंकी "आत्मेन्द्रिय-तृप्ति वाञ्छाका परित्याग" और "भगवत्-सेवा" की बात कदापि भूल सकते हैं? यह बात असम्भव है। शास्त्रों इस बातके प्रचुर प्रमाण हैं कि भगवान अपने एकान्तिक भक्तोंकी सर्वदा ही रक्षा करते हैं। भगवद्भक्त अम्बरीष जब दुर्वासाजीके क्रोधके शिकार हुए थे, उस समय भगवानने उनकी रक्षाके लिए सुदर्शन चक्र भेजा था। भक्त निरीह और शान्त होते हैं। योगी योगबलसे ब्रह्माण्ड भेदकर साक्षात् भगवानके धाममें तुरन्त प्रवेश करनेकी योग्यता

रखते हैं। भगवान अपने स्वधर्मनिष्ठ निरीह आडम्बरशून्य भक्तोंकी सब प्रकारसे रक्षा करते हैं।

शुद्ध निरीह भक्त धृष्टता द्वारा जब तब भगवानका दर्शन करनेकी इच्छा नहीं करते। वे सेवा-सुखमें ही निमग्न रहते हैं। भगवानकी सेवा और भगवान एक ही वस्तु है, यह बात भुक्ति-मुक्ति-सिद्धिकामी समझ नहीं सकते। जो व्यक्ति भगवान्‌की सेवाको छोड़कर भगवानका दर्शन करनेकी अभिलाषा रखते हैं, वे सकाम भक्त हैं। भगवत्-सेवापरायण भक्तोंको देखनेके लिये भगवान ही व्यस्त हो पड़ते हैं। श्रीहरिदास ठाकुर दैन्यके कारण जगन्नाथ मन्दिरमें प्रवेश नहीं करते थे। किन्तु भक्तप्रिय जगन्नाथ प्रतिदिन उनका दर्शन कर जाया करते थे। ऐसी 'भक्तप्रियता' भगवानकी स्वभाविक वृत्ति है। इसमें पक्षपातित्वका दोष बिलकुल नहीं है। भक्त और भगवानके बीचमें इस प्रकारके अप्राकृत स्नेहका आदान-प्रदान है। चिज्जगतके विकृत प्रतिफलनरूप इस भौतिक जगतमें उस अप्राकृत रसका कुछ अभास है। यह स्नेहाभास केवल मनुष्य समाजमें ही नहीं, बल्कि पशु-पक्षी, कीट-पतंग, आदि मनुष्येतर प्राणियोंमें भी देखा जाता है। जो वस्तु भगवानमें नहीं है, वह जीवोंमें आ नहीं सकती। जीव विभुचैतन्यरूप भगवानके अंश है। इसलिये विभुचैतन्य भगवानके अंश जीवमें भी वह स्नेह रहना स्वाभाविक है। मायिक जगतमें जब अप्राकृत गुणोंका विकृत प्रतिफलन होता है, तब उस प्रतिफलित स्नेह या अन्यान्य गुणोंकी हेयता और अवरता देखी जाती है। जब वे प्राकृत गुण या प्राकृत स्नेह भगवत् सम्बन्ध द्वारा निर्मल हो जाते हैं, तब भक्त और भगवानके बीच नित्य वर्त्तमान अप्राकृत स्नेह बन्धनका प्रकाश होता है। दोनों प्रकारके स्नेहमें सादृश्य रहने पर भी दोनों एक नहीं हैं। यही अचिन्त्यभेदाभेद तत्त्वका रहस्य है।

भगवानकी दयालुताको मायामुग्ध जीव भूल सकते हैं, किन्तु सर्वज्ञ भगवान कैसे भूल सकते हैं? इसलिये जब मूर्ख मनुष्य दूसरे जीवोंकी हत्याकर अपना उदर-पर्ति करते हैं, तब दयालु भगवान ऐसे मनुष्योंको उचित दण्ड देते हैं। मनुष्योंके राज्यमें जब एक मनुष्य दूसरे मनुष्यको मारता है, तब उसे दण्ड मिलता है। किन्तु भगवानके राज्यमें यदि मनुष्य कीट-पतंगकी भी हत्या करता है, तब उसे उसका दण्ड मिलता है। किन्तु जब वह मनुष्य भगवानका प्रिय बन जाता है, तब उसके स्वभाविक सद्‌गुण अपने आप प्रकाशित होते हैं। अतएव यदि किसी मनुष्यको सद्‌गुणसम्पन्न बनाना हो, तो उसे भगवत्‌प्रिय भगवद्‌भक्त बननेकी ही आवश्यकता है। कानून बनाकर, रिश्वत लेकर असत्‌को सत् बनाया नहीं जा सकता। भगवत् प्रेम ही समस्त सद्‌गुणोंका एकमात्र आधार है। भक्तप्रिय भगवान सभी मनुष्योंके हृदयमें अवस्थान कर जीवोंको शिक्षा देते हैं—यदि जीव भगवद् उन्मुख होकर उन सब शिक्षाओंको ग्रहण करनेका आग्रह प्रकाश करें तो जीवके साधारण आग्रहको देखकर भगवान् उससे अधिक आग्रह प्रकाश करते हैं। इसलिये निष्कपट शुद्धभक्त अज्ञानी नहीं हैं। इसके शास्त्रोंमें कई प्रमाण मिलते हैं। लिखे पड़े भक्त ही ज्ञानीभक्त हैं, ऐसी बात नहीं है। जो निष्कपट भगवद्‌भक्त हैं, वे ही ज्ञानीभक्त हैं अर्थात् भगवानके सम्बन्ध ज्ञानके परिपूर्ण ज्ञाता हैं। सिद्धान्तविद् ज्ञानीभक्त ही भगवानकी भक्तप्रियताको जाननेमें समर्थ होते हैं। ❑

(क्रमशः)

कलियुगमें श्रीकृष्ण नाम जप साधना

—डा. सत्यपाल गोयल

वैष्णव अपराध एवं धाम अपराध

नामापराध, नामाभास तथा सेवा अपराधोंके साथ-साथ वैष्णव तथा धाम अपराधोंसे भी साधकको यत्नके साथ बचना चाहिए। वैष्णव अपराध भी बहुत भयंकर अपराध होता है। इस अपराधके कारण भाव और भजन दोनों कम हो जाते हैं।

६ प्रकारके वैष्णव अपराधोंका वैष्णव शास्त्रोंमें उल्लेख मिलता है—

हन्ति निन्दति वै द्वैष्टि वैष्णवान्नाभिनन्दति।
क्रुध्यते याति नो हर्ष दर्शने पतनानि षट्।।

अर्थात् (१) किसी वैष्णवकी निन्दा करना, (२) किसी वैष्णवसे द्वेष करना, (३) किसी वैष्णवको मारना पीटना, (४) किसी वैष्णवका अनादर करना, (५) किसी वैष्णवको देखकर प्रसन्न न होना अपितु घृणाका भाव प्रकाशित करना तथा (६) वैष्णव पर क्रोध करना—ये ६ प्रकारके वैष्णव अपराध हैं।

वैष्णव निन्दा

प्रायः नास्तिक, मायावादी तथा अनार्य विचार धाराके लोग वैष्णवोंकी निन्दा करते पाये जाते हैं। वे उनके माला-तिलक आदि की निन्दा करते हैं। उन्हें निरा भिक्षु या ढोंगी कहकर निन्दा करते हैं। अनेक बार वैष्णव भी दूसरे वैष्णवकी निन्दा करते देखे जाते हैं। ऐसे लोग उनके साधन भजनकी निन्दा करते हैं। अपनेको श्रेष्ठ वैष्णव तथा दूसरेको हीन या नाम मात्रका वैष्णव समझकर उनकी निन्दा करते हैं—ऐसा करना भीषण वैष्णव अपराध है।

कनिष्ठ, मध्यम तथा उत्तम वैष्णवके रूपमें श्रीचैतन्य चरितामृतमें निम्न प्रकार सामान्य लक्षण बतलाये गये हैं—

प्रभु कहे जार मुखे शुनि एकबार।
कृष्णनाम सेई पूज्य श्रेष्ठ सबाकार।।

(चै. च. म. १५/१०६)

अर्थात् जिसके मुखसे एक बार भी कृष्णनाम सुना जाये वह सामान्य लोगोंसे श्रेष्ठ तथा पूज्य कनिष्ठ वैष्णव होता है।

कृष्णनाम निरन्तर जाहार बदने।
सेई वैष्णव श्रेष्ठ भज ताहार चरणे।।

(चै. च. म. १६/७२)

अर्थात् जिसके मुखसे निरन्तर कृष्ण नामका उच्चारण होता है वह वैष्णव मध्यम श्रेणीका है। उसके चरणोंकी सेवा करनी चाहिए।

याहार दर्शने मुखे आइसे कृष्णनाम,
ताहारे जानिह तुमि वैष्णव प्रधान।

(चै. च. म. १६/७४)

अर्थात् जिस व्यक्तिके दर्शन मात्रसे आप भी कृष्ण नामका जप करने लगें, समझिए वह सर्वश्रेष्ठ उत्तम श्रेणीके वैष्णव है।

अतएव जानबूझकर या अनजानेमें भी ऐसे वैष्णवोंकी निन्दाकर, वैष्णव अपराधसे बचना चाहिए। यदि कोई ढोंग कर रहा है तो उसे करने दो, अपनी सेहत पर क्या प्रभाव पड़ रहा है?

(२) किसी वैष्णवसे द्वेष करना

भूलकर भी किसी वैष्णवसे द्वेष नहीं करना चाहिए। प्रायः साधनाके स्तरको लेकर द्वेष रहता है—यह अनाचार है। जब संसारके समस्त भौतिक सुखोंका त्याग कर दिया तब द्वेष जैसे घृणित भावका भी त्यागकर सभी वैष्णवोंका आदर करना चाहिए।

(३) किसी वैष्णवको मारना पीटना

सामान्यजनकी तो बात ही क्या परस्पर साधुओंमें भी द्वेष, निन्दा, हिंसापूर्ण कृत्य एक दूसरेके प्रति देखे जाते हैं। किसी भी राम या कृष्ण भक्तको मारना पीटना और ताड़ना नहीं चाहिए। यदि वह किसी दुष्कर्ममें लिप्त है तो अवश्य उसकी वंचना करना चाहिए, क्योंकि वैष्णववेष धारणकर रावण वृत्ति रखना समाजको धोखा देना है।

(४) किसी वैष्णवका अनादर करना

इस संसारमें मनुष्य मात्रका आदर करना एक सामाजिक नियम है, तब जो वैष्णव है, कृष्ण या राम भक्त है, उसके प्रति अनादर करना तो अपराध है। वैष्णव तो अपने प्रति किये गये अपराधको क्षमा कर देते हैं परन्तु भगवान अपने भक्तके प्रति किये गये अपराधको क्षमा नहीं करते हैं। वैष्णजन अत्यन्त कोमल स्वभावके होते हैं। वृक्षकी अपेक्षा भी सहिष्णु तथा तृणकी अपेक्षा भी अपनेको नीच समझते हैं। फिर उनके हृदयमें किसीके अपराधको रखनेका स्थान कहाँ? वहाँ तो श्रीश्यामसुन्दर विराजते हैं। किसीके अपराधको क्षमा न करना, उसे द्वेष, ईर्ष्या तथा घृणासे भरकर बदलेकी आगमें जलाता रहता है, जो कोई भी शुद्ध वैष्णव नहीं चाहता।

(५) किसी वैष्णवको देखकर प्रसन्न न होना

किसी वैष्णवको देखकर तटस्थ रहना या प्रसन्न न होना अथवा उसके प्रति उदासीन भाव बरतना वैष्णव अपराध कहलाता है। वैष्णव चूंकि भगवानके निजजन है अतएव हमको भी उन्हें अपना निजजन मानकर प्रसन्न होना चाहिए। व्यवहारमें देखा जाता है कि दुर्गुणी लोग, दूसरे दुर्गुणीको देखकर प्रसन्न होते हैं तथा उससे मित्रताका हाथ मिलाते हैं। हमें भी वैष्णवको देखकर उनका आदर सत्कार सेवा आदि कर प्रसन्न होना चाहिए।

(६) वैष्णव पर क्रोध करना

जो लोग हरिभक्तों (वैष्णवों) पर कोप (क्रोध) करते हैं, उनके साथ अभद्र व्यवहार करते हैं, भगवान उनके प्रति अप्रसन्न होकर उनको दण्ड देते हैं। यद्यपि शुद्ध वैष्णव किसीके प्रति अपराध नहीं करते हैं परन्तु नास्तिक या निरीश्वरवादी लोग अनावश्यक ही हरिभक्तोंको देखकर चिढ़ते हैं और उनपर क्रोध करते हैं। जितनी क्रोधाग्नि कोई किसी वैष्णवके प्रति दिखाता है, श्रीहरि ऐसे क्रोध करनेवाले पर अपनी हजार गुणा अधिक अग्नि बरसाते हैं।

यदि वैष्णव अपराध हो जाये तो जिस वैष्णवके प्रति अपराध हुआ है, उसीके श्रीचरणोंमें क्षमा प्रार्थना करने तथा पुनरावृत्ति न करनेकी प्रतिज्ञा करनेसे वे कृपालु संत क्षमा कर देते हैं। वैष्णव दयालु तथा सदैव क्षमाशील होते हैं।

धाम अपराध

धामके महत्त्वको कल्पित तथा अतिशय उक्तिपूर्ण मानना, धाममें हुई भगवान या किसी संतकी लीलाको असत्य मानना, धाममें रहकर भी उसके पवित्र स्थलोंके दर्शन एवं परिक्रमा आदि करने न जाना, वहाँ रह रहे संतोंकी अवज्ञा करना, उनकी सेवा न करना उनके प्रति उपेक्षाका भाव रखना, धार्मिक स्मृति स्वरूप स्थलोंको नष्ट करना, वहाँ प्रवाहित होनेवाली गंगा, यमुना, सरस्वती आदि पवित्र देवनदियोंको प्रदूषित करना, उनके दैविक प्रभाव एवं पवित्रतामें विश्वास न करना, मन्दिरोंकी सेवा हेतु प्राप्त धनराशिका निजी उपयोगमें लेना, लोभवश प्राप्त भोग सामग्रीको भगवानको अर्पित न करके स्वयं उपयोग करना। धामके स्वरूपको बिगाड़ना, वहाँ मलमूत्र विसर्जन करना आदि धामापराध हैं। धर्मग्रन्थोंमें अधिक समय तक धर्म स्थलों पर रहने का प्रावधान नहीं है। मेरे विचारमें जो लोग मात्र स्थान परिवर्तन, स्वास्थ्य लाभ आदिकी दृष्टिसे आलीशान भवन-बंगले आदि निर्माण कर लेते हैं

और भगवान, भजन तथा धामके धार्मिक स्वरूपमें जिनकी आस्था नहीं है उनके लिये ही इस प्रकारका प्रावधान है। जो लोग केवल भजन सत्संग तथा धार्मिक अनुष्ठानोंके लिये रहते हैं उनके लिये तीर्थवास भक्ति सापेक्ष है, अपराध नहीं है। अपितु भजन पिपासु सज्जनोंको धाममें रहकर ही भजन करना चाहिए। श्रीहरिभक्तिविलास, श्रीभक्ति-रसामृतसिन्धु, श्रीचैतन्य चरितामृत तथा व्रजभक्तिविलास आदि भक्तिग्रन्थोंमें व्रजवासका प्रावधान है। सभी सामान्य एवं साधकोंको नामापराध, सेवापराध, वैष्णव अपराध एवं धाम अपराधसे सावधानीपूर्वक बचना चाहिए। अपराध घटित होनेपर नामजप निष्ठापूर्वक करना चाहिए तथा अपराधकी पुनरावृत्ति न हो ऐसी चेष्टा करनी चाहिए। ❑

श्रीगौराङ्ग-सुधा

—श्रीपरमेश्वरी ब्रह्मचारी

श्रीभगवानका कभी जन्म नहीं है, इसलिए उनका नाम 'अज' हैं अर्थात् जिसका जन्म नहीं होता। श्रीगीतामें भगवान श्रीकृष्णने स्वयं कहा है—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया।।
(गीता ४/६)

मैं समस्त प्राणियोंका ईश्वर, जन्मरहित एवं अव्ययस्वरूप होनेपर भी जीवोंपर कृपा करनेके लिए अपनी चित्-शक्तिका आश्रयकर अपने इसी स्वरूपमें इस जगतमें आविर्भूत होता हूँ।

आविर्भाव एवं तिरोभावके विषयमें जाननेके लिए एक उदाहरण दिया जाता है—यदि एक व्यक्ति चलकर अथवा गाड़ीमें बैठकर हमारे सामनेसे जाता है, तब हम कहते हैं कि कोई हमारे सामने आया तथा जब वह आगे निकल जाता है, हमें दिखाई नहीं पड़ता है, तब हम कहते हैं कि वह चला गया। इस प्रकार हमारी दृष्टिके सामने आनेका नाम ही आविर्भाव तथा दृष्टिसे ओझल होनेका नाम ही तिरोभाव है। शास्त्रोंमें वर्णन है—

"भगवान व भक्तेर जन्म मृत्यु नाइ।
आविर्भाव तिरोभाव वेदे कहे एई।।"

अर्थात् भगवान् तथा भक्तोंका जन्म-मृत्यु नहीं होता। वेदोंमें इसे आविर्भाव एवं तिरोभावके रूपमें वर्णन किया गया है।

किस उद्देश्यसे श्रीगौरसुन्द इस जगतमें आए, इसे जानना प्रत्येक व्यक्तिके लिए आवश्यक है। श्रील स्वरूपदामोदर कड़चासे जाना जाता है कि गौरचन्द्रके आविर्भूत होनेके तीन प्रधान कारण हैं—

१. श्रीराधाजीकी प्रणयमहिमा कैसी है?

२. कृष्णकी महामधुरिमा कैसी है, जिसे कि राधाजी आस्वादन करती हैं?

३. श्रीकृष्णकी मधुरिमाका आस्वादनकर राधाजीको कैसा सुख प्राप्त होता है? इन तीन विषयोंको जानने एवं अनुभव करनेकी इच्छासे स्वयं कृष्ण ही श्रीमती राधिकाजीके भाव एवं अंग-कान्तिको ग्रहणकर गौररूप धारणकर श्रीनवद्वीप धाममें श्रीशचीदेवीके पुत्ररूपमें अवतरित हुए। इन कारणोंके अतिरिक्त युगधर्म नामकीर्तनका प्रचार और नामके माध्यमसे प्रेमा भक्तिका प्रचार उनके अवतरणके गौण कारण थे—

कलियुगे संकीर्तन धर्म पालिबारे।
अवतीर्ण हैला प्रभु सर्व-परिकरे।।
कलिकाले "नाम" बिना नाइ आर धर्म।
सर्वमन्त्रसार "नाम" एइ शास्त्रमर्म।।
नामे रति हले तबे प्रेमेर उदय।
शुद्ध प्रेम प्रभावेते हरिकेइ पाय।।

अर्थात् कलियुगमें संकीर्तन धर्म (युगधर्म) का प्रचार करनेके लिए अपने परिकरोंके साथ स्वयं

भगवान ही जगतमें अवतरित हुए। कलियुगमें समस्त मन्त्रोंका सारस्वरूप श्रीहरिनाम ही एकमात्र उद्धारका उपाय है। श्रीनामप्रभुके प्रति रति उदित होनेपर प्रेम उदित होता है तथा इस शुद्ध प्रेमके द्वारा ही हरिको पाया जा सकता है।

श्रीकृष्ण इस प्रेमको वितरण करनेके लिए स्वयं श्रीनवद्वीप धाममें अवतरित हुए। अन्तर्द्वीप (श्रीमायापुर), सीमन्तद्वीप, गोद्रुमद्वीप, मध्यद्वीप, ऋतुद्वीप, जह्नुद्वीप, मोदद्रुमद्वीप तथा रुद्रद्वीप—इन नौ द्वीपोंको मिलाकर नवद्वीप धाम है। ये नौ द्वीप क्रमशः श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदनरूप नवविधा भक्तिके स्वरूप है। परमात्मारूपी भगवान जिस प्रकार जीवके अष्टदलयुक्त हृत्पद्मकी कर्णिकाके मध्यमें विराजमान होकर एक जादूगरकी भाँति जीवको नचाते हैं, उसी प्रकार महाप्रभुने सीमन्तद्वीप इत्यादि अष्टदलके कर्णिकास्वरूप अन्तर्द्वीप (मायापुर) में अवतरित होकर सबको नाम-कीर्तनमें मत्त कराकर नचाया।

मायापुरमें जगन्नाथ मिश्र नामक एक ब्राह्मण निवास करते थे, जो परम भगवद्भक्त थे। ये पहले श्रीहट्टमें रहते थे। उस समय श्रीनवद्वीप सारे भारतवर्षमें विद्याका प्रधान केन्द्र होनेके कारण जगन्नाथ मिश्र यहाँ विद्या अध्ययन करनेके लिए आये। परन्तु उनके हृदयमें गंगाके किनारे निवास करनेकी इच्छा भी थी। इस प्रकार कुछ समय तक यहाँ रहनेपर उन्होंने श्रीनीलाम्बर चक्रवर्तीकी कन्या श्रीशचीदेवीसे विवाह कर लिया। कालक्रमसे शचीदेवीके गर्भसे आठ कन्याओंने जन्म लिया, परन्तु दुर्भाग्यवशतः एकके पश्चात् एक आठों कन्याएँ परलोक सिधार गईं, जिससे पति-पत्नी बहुत दुःखी हुए। कुछ समय पश्चात् शचीमाताने पुनः एक पुत्रको जन्म दिया, जो बहुत ही सुन्दर था। बालकके सुन्दर मुखकमलका दर्शन कर दोनोंका दुःख दूर हो गया तथा वे बहुत आनन्दित हुए। उन्होंने बालकका नाम रखा विश्वरूप।

इसके कुछ समय पश्चात् १४०७ शकाब्द १४८६ ई. में फाल्गुन मासकी २३ तारीख पूर्णिमाक दिन सन्ध्याके समय अकस्मात् आकाशके कलङ्कयुक्त चन्द्रको राहुने ग्रास कर लिया। ठीक उसी समय गोलोकका कलंकरहित निर्मल चाँद शचीमाताकी गोदमें प्रकट हुआ। चन्द्रको राहुने ग्रास कर लिया था अर्थात् चन्द्रग्रहण लग गया था। इसलिए ग्रहणके समय अमंगलकी आशंकासे संसारके सभी लोग मृदंग एवं करतालके साथ उच्चस्वरसे भगवानका नामकीर्तन कर रहे थे। 'जेइ नाम सेइ कृष्ण' अर्थात् जो नाम है वे ही कृष्ण हैं—यह बात जगतवासियोंको बतानेके लिए ही गौरकृष्ण या गौरचन्द्र नामके साथ गोलोकसे इस भूलोक पर उतरे। आनन्दमय भगवानके आविर्भूत होनेके साथ ही शुद्धसत्त्व श्रीजगन्नाथ मिश्रका घर आनन्दसे भर गया। स्वर्गसे देवी-देवतालोग भी मनुष्यलोकमें आकर ब्राह्मण-ब्राह्मणियोंके वेशमें नाना प्रकारके उपहार लेकर श्रीभगवानका दर्शन करनेके लिए उपस्थित हुए। बालकके अत्यन्त मनोहर मुखकमलका दर्शनकर सभी मुग्ध हो गये। कोई भी बालकको छोड़कर अपने घर नहीं जाना चाहता था और यदि कोई घर चला भी गया तो उनका मन बालकके पास ही रह गया।

बाल्यकाल

कुछ समय पश्चात् नामकरणका समय उपस्थित हुआ। इस शुभ अवसरपर उनके स्वजन-बान्धव एवं आस-पड़ोसके सभी लोग जगन्नाथ मिश्रके घर पर उपस्थित हुए। शचीमाताकी अनेक कन्याएँ परलोक पधार गई थीं, इसलिए कहीं इस बालककी भी वही स्थिति न हो, इस भयसे स्त्रियोंने उनका नाम निमाई रखा। क्योंकि नीम अत्यन्त कड़वा होता है, अतः इसे काल ग्रास नहीं

कर पायेगा।

उनके मातामह श्रीनीलाम्बर चक्रवर्ती ज्योतिषशास्त्रके प्रकाण्ड विद्वान थे। उन्होंने बालककी कुण्डली देखकर उनका नाम विश्वम्भर रखा। क्योंकि वे जान गये थे कि यह कोई साधारण बालक नहीं है, यह अवश्य ही जगतका पालन-पोषण करेगा। किसीने उनके श्रीअंगका गौरवर्णको देखकर उनका नाम गौरांग रखा। किसीने उनका नाम गौरहरि रखा क्योंकि, जिस समय वे प्रकट हुए, उस समय सर्वत्र ही हरिनामसंकीर्तनकी ध्वनि गूंज रही थी। अब बालककी रुचि-परीक्षा का समय आया। यह प्रथा प्राचीन कालसे चली आ रही है। इसके द्वारा अनुमान लगाया जाता है कि भविष्यमें बालक कैसा होगा। इसलिए गौरसुन्दरके सामने भी धान, खिल, सोना, चाँदी एवं श्रीमद्भागवत महापुराण रखा गया। किन्तु उन्होंने सब वस्तुओंकी अनदेखी कर श्रीमद्भागतवको ही उठाकर अपने हृदयसे लगाया। इससे स्पष्ट हो गया कि यह बालक सांसारिक वस्तुओंके लोभमें नहीं पड़ेगा तथा एक महान वैष्णव बनेगा। क्योंकि इसने ऐसी वस्तुको उठाया जिससे अवश्य ही आत्मकल्याण होता है। यह देखकर सभी आश्चर्यचकित होकर कहने लगे—यह बालक धन्य है और वे माता-पिता भी धन्य हैं, जिन्हें महापुरुषके समान ऐसा पुत्र प्राप्त हुआ है।

इस प्रकार निमाई धीरे-धीरे बड़े होने लगे तथा घुटनोंके बलपर चलना भी सीख लिया। अब तो वे एक क्षणके लिए भी एक स्थान पर नहीं टिकते, कभी इस घरमें तो कभी उस घरमें घूमते रहते हैं। सामने जिस वस्तुको देख लेते उसीको पकड़नेके लिए दौड़ जाते। एक दिन उनके आंगनमें कहींसे एक विशाल काला सर्प आया। निमाईने उसे पकड़ लिया तथा उसके साथ खेलने लगे। कभी उसके फनको पकड़कर हिलाते तो कभी पूछ पकड़कर खींचते। तब सर्प कुण्डली बनाकर बैठ गया तथा गौरसुन्दर उसके ऊपर बैठ गये। इस लीलाके द्वारा श्रीगौरसुन्दरने शेषशायी लीलाको प्रकाशित किया। इस प्रकार शेषनाग अनन्तदेवने भी कुछ समय तक अपने प्रभुकी सेवा की। परन्तु जब शचीमाताने देखा कि बालक सर्पके साथ खेल कर रहा है, तो भयके कारण उनका चेहरा पीला पड़ गया, शरीर काँपने लगा तथा वे मन ही मन गरुड़देवका स्मरण करते हुए भगवानसे अपने बच्चेके प्राणकी रक्षाके लिए प्रार्थना करने लगीं। उनको भयसे व्याकुल दुःखी देखकर अनन्तदेव (नाग) उन्हें छोड़कर चले गये। ❑

पूर्वी विश्वमें प्रचार

—श्रीनवीनकृष्ण ब्रह्मचारी 'विद्यालंकार'

अपनी अष्टम विदेश प्रचार यात्राके प्रथम चरणमें फिलीपीन्समें ११/१२/९९ से ९/१/२००० तक रहते हुए श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजीने सच्चिदानन्द श्रीभक्ति विनोद ठाकुरकृत भजन रहस्य ग्रन्थपर भजनरहस्य वृत्तिकी रचना की, फिलीपीन्सकी राजधानी मनीलाके अतिरिक्त Mocton, cebu आदि स्थानोंमें प्रचार किया। फिलीपीन्समें प्रचारका प्रधान विषय था—(१) विश्वव्यापी गौड़ीय मठके प्रतिष्ठाता श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद' का उपदेश, भजन प्रणाली एवं उनका अप्राकृत जीवनचरित, (२) श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके वर्तमान सभापति-आचार्य मदीय परमाराध्य गुरुपादपद्म ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन

गोस्वामी महाराजजीकी आविर्भाव तिथिपूजाके उपलक्षमें श्रीगुरुसेवकके रूपमें उनका आदर्श जीवनचरित एवं शिक्षा, (३) श्रीब्रह्म-माध्व-गौड़ीय सम्प्रदाय एवं श्रीजीव गोस्वामी।

(१) श्रील सरस्वती ठाकुरका जीवन चरित सुनकर किसी एक भक्तका मनोभाव देख श्रील महाराजजीने पूर्वपक्ष करते हुए कहा—बहुतसे लोग सोचते हैं कि श्रील प्रभुपाद श्रीमन्महाप्रभु एवं श्रीश्रीराधाकृष्णके अत्यन्त प्रिय परिकर थे, पर वे अपनी जीवनरक्षा स्वयं नहीं कर सके। उन्हें श्रीविनोद विहारी ब्रह्मचारी (श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज) की सहायता लेनी पड़ी। उत्तर पक्षमें श्रील महाराजजीने बताया—कोमलश्रद्ध साधकके मनमें यह जिज्ञासा या संशय होना स्वाभाविक है, पर आपलोग बुद्धिमान विचारक हैं, विचार कर देखें। द्वारकाधीश श्रीकृष्णके परिकर लक्ष्मी- अंश सम्भूता द्रौपदी क्या अपनी लज्जाकी रक्षा नहीं कर सकती थीं? द्रौपदी इच्छा मात्रसे ही अपनी रक्षा कर सकती थीं, तो किया क्यों नहीं? जगतवासियोंको कुछ शिक्षा देनेके लिए नहीं किया। क्या शिक्षा? भक्तवत्सल भगवान अपने भक्तकी कैसे रक्षा करते हैं। वस्त्र हरण लीलाके द्वारा ही द्रौपदीने जगतमें पूर्वापेक्षा लाखों गुणा अधिक प्रसिद्धि लाभ की। और एक उदाहरण—ज्ञानीभक्त प्रह्लाद महाराजजीको हिरण्यकशिपु जैसे प्रचण्ड व्यक्ति नहीं मार सके और श्रीयुगल किशोरके नित्य परिकर जो प्रभुपादके रूपमें उस समय विराजमान थे, उनको कोई मार सकता था? तब ऐसी लीला क्यों? प्रभुपादने जगतके जीवोंको दिखाया कि उनका विनोद कैसे गुरुगतप्राण है, गुरु सेवाके लिए अपने प्राण विसर्जन करनेके लिए भी सर्वदा प्रस्तुत विनोद कैसे श्रीगुरु-गौराङ्ग-गान्धर्विका-गिरिधारीका विनोदन (आनन्द प्रदान) करता है। प्रभुपाद यदि इस प्रकारकी लीला न रचते तो जो लोग सोचते थे कि विनोद ब्रह्मचारी समयके अनुसार तिलक आह्निक आदि नहीं करते, उन लोगोंकी भ्रान्त धारण दूर नहीं होती।

(२) मदीय गुरुपादपद्मके जीवन चरितकी आलोचनाके प्रसंगमें श्रील महाराजजीने कहा—"भजन राज्यका मेरुदण्ड है—श्रीगुरुनिष्ठा। वर्तमान समयमें गुरुनिष्ठा सीखनेके लिए उनका आनुगत्य करना पड़ेगा। षड़यंत्रकारियोंके चक्रान्तसे मदीय गुरुपादपद्म नित्यलीला प्रविष्ट श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज एवं उनके गुरुभ्रातागणके जेलमें जाने पर मोकद्दमाकी पैरवीके लिए कोई नहीं था, श्रीविग्रहोंके अर्चन, रसोई बनाना, बर्तन माँजना, बाजार जाना, वैष्णवोंके लिए जेलमें प्रसाद ले जानेके लिए कोई था ही नहीं। उस समय पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराज, मैं या और कोई मठमें नहीं आया था। केवल मात्र श्रीसज्जन सेवक ब्रह्मचारी (पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज) थे। जेलमें रहते हुए श्रील गुरुदेवने उनको दीक्षा दी। श्रीसज्जन सेवक ब्रह्मचारी अकेले ही पूर्वोक्त सेवाओंको सुष्ठुरूपसे सम्पन्न करते। गुरुगत प्राण न होनेपर कोई भी ऐसी सेवा नहीं कर सकता। आपलोग प्रश्न कर सकते हैं कि श्रील गुरुपादपद्म जैसे शुद्ध भक्तको जेलमें क्यों जाना पड़ा? श्रीसज्जन सेवक ब्रह्मचारी (पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज) श्रीगुरु वैष्णवोंके कितने प्रिय थे एवं कैसे वे गुरुगत प्राण थे, जगतको यह दिखानेके लिए परमाराध्य श्रील गुरुपादपद्मने यह लीला की।"

(३) श्रील जीव गोस्वामीपादने सत्सिद्धान्तोंके द्वारा मायावादका खण्डन कर सम्प्रदायकी सेवा की। श्रीगुरुदेवकी मनोऽभीष्ट सेवा कैसे करना चाहिए यह जगद्वासियोंको दिखाया। श्रीजीव गोस्वामीकी सुसिद्धान्तपूर्ण युक्तिके सामने मायावादी अपनी प्रतिष्ठा नहीं रख सके। मायावादियोंका सिद्धान्त है—ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरं

अर्थात् ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है, जीव भी ब्रह्म ही है, ब्रह्म व्यतीत कुछ नहीं है। मायावादियोंको अगर पूछा जाय कि तुम्हारा ब्रह्म जगतके अन्दर अवस्थित है या जगत ब्रह्मके अन्दर। क्योंकि ब्रह्म अर्थात् बृंहति बृंहायति च, जो स्वयं बड़े हैं एवं दूसरोंको बड़ा बना सकते हैं। अतः ब्रह्म बृहद्वस्तु होनेके कारण ब्रह्मके अन्दर जगतका अवस्थान स्वाभाविक है। श्रील जीव गोस्वामीकी युक्ति—ब्रह्मके अन्दर अगर जगत हो तो सत्यरूप ब्रह्मके अन्दर जगतरूप मिथ्या वस्तुका अवस्थान कैसे सम्भव है? अगर ऐसा हो तो ब्रह्म भी मिथ्या वस्तुके संसर्गसे मिथ्या हो जाएगा। तत्क्षणात् मायावादी लोग उत्तर देंगे—नहीं, नहीं, जगतके अन्दर ब्रह्मका अवस्थान है। इस प्रकार कहने पर भी मायावादियोंका विचार अनायास ही खण्डित हो जाता है, क्योंकि उनके सिद्धान्तके अनुसार जगत तो मिथ्या वस्तुके अन्दर सत्य वस्तुका अवस्थान सम्भव नहीं है। तब तो ब्रह्म भी मिथ्या हो जाता है। इस प्रकारसे श्रील जीव गोस्वामी पादने मायावाद खण्डनके द्वारा सम्प्रदायकी सेवा की है।

१०/१/२००० से १९/२/२००० तक श्रील महाराजजी अस्ट्रेलियाके सिडनी, ब्रिस्बेन, केनबेरा, मुरविलुम्बा, उकी, सेसनॉक, कुरी–करी आदि स्थानोंमें तथा फीजीके नाडी, लौटोका एवं मलेशियाके क्वालालम्पुरमें सफल प्रचार कर २०/२/२००० को भारत वर्ष लौट आये। वहाँ पर प्रचारका प्रधान विषय था श्रीप्रह्लाद महाराजजीकी शिक्षा, श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी तथा श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामीका जीवन चरित्र, सनातन धर्म, निराकारवादका खण्डन इत्यादि।

श्रीरघुनाथ दास गोस्वामीके जीवनचरित्र आलोचना करते हुए श्रील महाराजजीने पूर्वपक्ष उत्थापन कर कहा—(क) श्रीदास गोस्वामीके पिता अत्यन्त उदार थे, वैष्णवोंकी सेवा करते थे, उनकी सभामें श्रीअद्वैत आचार्यके शिष्य श्रीयदुनन्दन आचार्य एवं नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जैसे स्वनामधन्य वैष्णव आते थे, फिर भी उनको वैष्णवप्राय क्यों कहा गया? उत्तर पक्षमें श्रील महाराजजीने बताया कि श्रीगोवर्धन मजुमदार अत्यन्त उदार वैष्णव थे। महाभागवत वैष्णवगण भी उनकी सभामें आते थे, फिर भी श्रील रूप गोस्वामी कथित अन्याभिलाषिताशून्य अनन्या भक्ति न रहनेके कारण उनको वैष्णवप्राय कहा गया। श्रील महाराजजीने एक और (ख) प्रश्न उठाया— श्रीदास गोस्वामी चतुर्विध प्रसाद क्यों नहीं लेते थे? उत्तर एक उदाहरण देकर समझाया—जैसे किसी माँका छोटा–सा बालक खो जाय और उसको अच्छा अच्छा भोजन दिया जाय तो क्या वह खाएगी? या केवल बच्चेको याद कर रोएगी? केवल रोएगी, ऐसे ही श्रीदास गोस्वामी विरहमें इतना आतुर रहते थे कि भोजनकी इच्छा ही नहीं होती थी।

(ग) तीसरा प्रश्न—श्रीदास गोस्वामी एक ब्राह्मण द्वारा बड़े दोनोंमें अधिक माठा दिये जानेपर पर बिगड़ कर मारनेको क्यों दौड़े? उत्तरमें बताया—श्रीदास गोस्वामी भजनमें तन्मय रहते थे। वे कभी अन्तर्दशामें तो कभी अर्न्तवाह्य दशामें रहते। ब्राह्मण जब माठा लेकर आया तो बड़ा दोना देखकर दास गोस्वामीने पूछा इतना बड़ा दोना कहाँसे मिला? ब्राह्मणने उत्तर दिया—सखीस्थलीसे। श्रीदास गोस्वामी उस समय अन्तर्बाह्य दशामें थे—सखीस्थली नाम सुनते ही चिढ़ गये एवं सोचे—अहो! यह सखीस्थलीसे आया है जरूर यह चन्द्रावली पक्षकी कोई सखी है राधाकुण्डसे श्रीकृष्णको ले जाना चाहती है। राधापक्षीय भावमें मग्न श्रीदास गोस्वामीकी यह भावमुद्रा ब्राह्मण कुछ भी नहीं समझ सका। ❑

पत्रोत्तर

गिरिधारी दास (Gautam Liu)
Knodelhuttenstrasse 13
1140 Vienna
Austria (Europe)

December 13, 1999

पूजनीय गुरुदेव,

आपके चरणकमलोंमें मेरा दैन्यमय दण्डवत प्रणाम।

मुझे बहुत हर्ष हुआ कि आपके प्रोत्साहनसे श्रीआचार्य केसरीकी विस्तृत जीवनी अब अँग्रेजी भाषामें उपलब्ध है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यह अतिमर्त्य जीवनवृत्तान्त हमारी गुरुनिष्ठाका अत्यधिक पोषण करेगा। साथ ही साथ वेणुगीतका चिरप्रतीक्षित अँग्रेजी संस्करण भी इन दिनों प्रकाशित हुआ है। आपकी कृपासे मैं वेणुगीतकी अनुवाद सेवामें कुछ योगदान दे सका। आपकी सुशिष्या विचित्रा देवी अब रागवर्त्म चन्द्रिकाका अनुवाद करनेवाली है। आपके आशीर्वादसे मैं उसकी इस सेवामें यथासाध्य सहायता करूँगा।

फिलहाल मुझे सरकारकी तरफसे शिक्षककी नौकरी मिली है। वेतन गृहस्थी चलानेके लिए पर्याप्त है। वैसे तो मैं अविवाहित हूँ, किन्तु माता-पिता बहू ढूँढ़नेमें लगे हैं। मेरा आश्रम जो भी हो, मैं गुरु-वैष्णवकी सेवा करता रहूँगा।

सम्भवतः मुझे डेढ वर्ष बाद स्थानीय विश्वविद्यालयमें हिन्दी अध्यापक का पद प्राप्त होगा। प्रशिक्षण लेने हेतु मैं कदाचित जुलाई-अगस्तमें भारत आऊँगा।

गुरुदेव! मुझे आपसे कतिपय दार्शनिक प्रश्न हैं, जिनके उत्तर आप ही दे सकते हैं।

(१) गीतामें लिखा है कि काम जीवका महानतम शत्रु है। बड़े बड़े ऋषि मुनि भी मन्मथके पुष्पवाणोंके शिकार हुए। जीवात्मा तो स्वभावतः भोग्य प्रकृति है जिसमें भोगी पुरुषभाव अनुपस्थित है। फिर भी सारा विश्व काम भोगके लिए तरस रहा है। मेरा कुतूहल यह है कि काम-वासनाका मूल स्रोत क्या है?

(२) रूपानुग संप्रदाय उन जीवोंको चुम्बककी तरह आकृष्ट करता है जिनके स्वरूप कृष्णकी मधुर लीलासे संबद्ध हैं; क्या इसी तर्कपर यह कहा जा सकता है कि जो स्वरूपतः भगवानकी ऐश्वर्ययुक्त लीलासे सम्बन्धित हैं, वे रूपानुग संप्रदायकी ओर प्रवृत्त नहीं होते?

(३) दीपावलीका दिन कृष्णभक्तिमें क्या महत्त्व रखता है? क्या इस तिथिपर कोई विशेष साधन-अर्चन की रीति है।

(४) कार्त्तिक मासमें हम प्रतिदिन दामोदराष्कटमका गान-पाठ करते हैं। एक मित्रने मुझसे पूछा कि रूपानुग सम्प्रदायमें तो मधुररस ही सर्वोच्च साध्य है, किन्तु दामोदराष्टक एक वात्सल्य-प्रधान स्तोत्र है—हम इनका सामंजस्य कैसे करें? मैंने यह उत्तर दिया कि श्रीब्रजेन्द्रनन्दनकी प्रत्येक लीला, चाहे वह सख्य, वात्सल्य या माधुर्यकी हो, सभी वर्गके भक्तोंके लिए स्तुत्य तथा आनन्दप्रद है।

मैं एक भक्तिविहीन विमूढ़ जीव हूँ एवं आपकी विशद व्याख्यापर निर्भर हूँ। आपकी यूरोप यात्राकी बेसब्रीसे प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

भवदीय
वैष्णवप्रसादलेशाकांक्षी
गिरिधारी दास

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
मथुरा।

श्रीश्रीवैष्णवचरणेदण्डवन्नतिपूर्विकेयम्।

प्रिय गिरिधारी! मेरा स्नेहशीष ग्रहण करना। तुम्हारा १३/१२/९९ का पत्र मिला। गुरुजीका जीवन चरित्र तथा वेणुगीत ये दोनों ग्रन्थ तुम्हें मिले हैं, जानकर प्रसन्न हुआ। तुम्हें सरकारी शिक्षककी नौकरी मिली, जानकर प्रसन्नता हुई।

प्रश्नोंका उत्तर—

(१) भगवद् विमुखता ही जीवोंके बद्ध होनेका मूल कारण है, माया प्रथम आवरणसे जीवके शुद्ध स्वरूपको ढ़ककर भोग कामना पैदा करती है और स्थूल शरीरसे पुरुष और स्त्री भाव पैदा कर उसके माध्यमसे जीवको त्रितापोंसे दग्ध कर रही है, अतः काम वासनाका मूल स्रोत भगवद्विमुखता है।

(२) बद्धावस्थामें जीवोंकी रुचि साधारणतः भोग वासनाकी और आकर्षित होती है। श्रीरूपानुग धारा बाह्यतः कामभोगकी भाँति दीखती है। साधारण जीव कामभोगके लिए ही उस ओर आकर्षित होता है किन्तु कुछ ही दिनोंमें पतित हो जाता है। उसी प्रकार वैधी भक्त भी ऐश्वर्य लीलाकी ओर आकर्षित होते हैं। इनलोगोंका शुद्ध भक्तिसे कोई भी सम्बन्ध नहीं है। पूर्व पूर्व जन्मोंकी राशि राशि सुकृति होनेपर सत्संगमें शुद्ध श्रवण आरम्भ होनेपर जिस समय अनर्थ निवृत्ति हो जाती है उस समय सौभाग्यवश गोपियों जैसी कृष्णसेवाके प्रति लोभ उत्पन्न होता है। उस समय ऐसा कहा जा सकता है कि उसका वह स्वरूप है। जिनका ऐसा नहीं है किन्तु साधारणी भक्तिमें जो प्रवृत्ति देखी जाती है उसे वैधी भक्तिका स्वरूप कह सकते हैं। तब यह बात ठीक है कि जिसके स्वरूपमें ही गोपीभाव नहीं है, बद्धदशामें चेष्टा करने पर भी वह फलीभूत नहीं होता।

(३) दीपावली एक सामाजिक उत्सव है। कृष्णभक्तिमें इसका कोई विशेष महत्व नहीं है, किन्तु ऐसा होनेपर भी गोप–गोपियाँ दीपावली, अन्नकूट आदि उत्सव मनाते हैं। दीपावलीके दूसरे दिन अन्नकूटके दिन गिरिराज, गोवर्धनधारी, गाय और ब्राह्मण भक्तकी पूजा आदिकी विशेष विधि है।

(४) दामोदराष्टकमें प्रथम दास्यभाव, तत्पश्चात् वात्सल्यभाव, सख्यभाव एवं अन्तमें माधुर्यभाव क्रमसे भरे पड़े हैं। सब प्रकारके साधक भाव अपने अपने भावोंके अनुसार अपने अपने भावोंकी प्राप्तिके लिए दामोदराष्टक–कल्पतरुका गान एवं पाठ करते हैं।

इति

तुम्हारा नित्यमंगलाकांक्षी

श्रीभक्तिवेदान्त नारायण

पूर्वी देशोंमें प्रचारमें श्रील प्रभुपादके कृपापात्र प्रपूज्यचरण श्रीभक्तिकुसुम सन्त महाराजजी द्वारा प्रेषित पत्र

कल्याणभाजनेषु,

स्नेहपात्र नारायण महाराज! आपका १०/०१/२००० तारीखका पत्र पाकर अत्यन्त आनन्दित हुआ। प्रचार विपुलरूपसे हो रहा है, यह जानकर और भी आनन्दित हुआ। इतनी व्यस्तताके बीचमें भी आपने मुझे स्मरण किया, इसलिए श्रीगुरु–गौरांगके निकट प्रार्थना करता हूँ कि आपमें हरिकथा प्रचारके लिए अधिक शक्ति संचारित हो। अच्छा कार्य करनेमें कुछ बाधाएँ आयेंगी पर उसके लिए चिन्ता न कर आप अपना प्रचार कार्य निर्भीकरूपसे कीजिए।

हम यदि श्रील प्रभुपादकी कथा आचारणपूर्वक सर्वतोभावेन प्रचार कर सकें, तभी हमारे इस जीवनकी सार्थकता है। अधिक क्या लिखूँ, आप मेरा आर्शीवाद ग्रहण करेंगे एवं सभीको मेरा आशीर्वाद देंगे।

इति

आशीर्वादक

श्रीभक्तिकुसुम सन्त

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

हरे
कृष्ण
हरे
कृष्ण
कृष्ण
कृष्ण
हरे
हरे

वैकुण्ठ–वार्त्तावह

बृहत्–मृदङ्ग

श्रीभागवत–पत्रिका

हरे
राम
हरे
राम
राम
राम
हरे
हरे

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना।।

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।।

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः ।।

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र।।
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश।।

वर्ष ४४ } श्रीगौराब्द ५१४
वि. सं. २०५७ चैत्र मास, सन् २०००, २० फरवरी — २० मार्च { संख्या २

श्रीकृष्णस्तुति

(जरासन्ध–कारारुद्ध–राजगण–भाषिता)

नमस्ते देवदेवेश प्रपन्नार्त्तिहराव्यय। प्रपन्नान् पाहि नः कृष्ण निर्विण्णान् घोरसंसृतेः।।१।।

हे देवदेवेश! हे शरणागतजनोंके दुःखको हरण करनेवाले! हे अव्ययस्वरूप! हम आपको प्रणाम कर रहे हैं। हे श्रीकृष्ण! हम अत्यन्त दुःखित अन्तःकरणसे आपकी शरणमें आये हैं, आप इस घोर संसार–बन्धनसे हमारी रक्षा कीजिए।।१।।

नैनं नाथानुसूयामो मागधं मधुसूदन। अनुग्रहो यद्भवतो राज्ञां राज्यच्युतिर्विभो।।२।।

हे प्रभो! हे मधुसूदन! हमलोग जरासन्धके प्रति कोई दोषारोप नहीं करते, क्योंकि राजाओंकी राज्य–च्युतिको आपकी कृपाका फल ही कहना होगा।।२।।

राज्यैश्वर्यमदोन्नद्धो न श्रेयो विन्दते नृपः। त्वन्मायामोहितोऽनित्या मन्यते सम्पदोऽचलाः।।३।।
मृगतृष्णां यथा वाला मन्यन्त उदकाशयम्। एवं वैकारिकीं मायामयुक्ता वस्तु चक्षते।।४।।
वयं पुरा श्रीमदनष्टदृष्टयो जिगिषयास्या इतरेतरस्पृधः।
घ्नन्तः प्रजाः स्वा अतिनिर्घृणाः प्रभो मृत्युं पुरस्त्वाविगणय्य दुर्मनाः।।५।।
त एव कृष्णाय गभाररंहसा दुरन्तवीर्येण विचालिताः श्रियः।
कालेन तन्वा भवतोऽनुकम्पया विनष्टदर्पाश्चरणौ स्मरामि ते।।६।।
अथो न राज्यं मृगतृष्णिरूपितं देहेन शश्वत् पतता रुजां भुवा।
उपासितव्य स्पृहयमहे विभो क्रियाफलं प्रेत्य च कर्णरोचनम्।।७।।
तं नः समादिशोपायं येन ते चरणाब्जयोः। स्मृतिर्यथा न विरमेदपि संसरतामिह।।८।।
कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने। प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः।।९।।

—श्रीमद्भागवत १० म स्कन्ध ७३ अध्यायसे

अनुवाद—

नृपतिगण राज्य और धन–सम्पत्ति आदि ऐश्वर्यके मदमें मत्त रहनेके कारण स्वेच्छाचारी होकर अपना कल्याण मार्ग पकड़ नहीं पाते तथा आपकी माया द्वारा मोहित होकर वे अनित्य ऐश्वर्योंको अचल मानते हैं।।३।।

मूर्ख व्यक्ति जिस प्रकार मरीचिकाको सरोवर समझते हैं, उसी प्रकार अविवेकीजन विकारयुक्ता मायाको ही सत्य वस्तुके रूपमें दर्शन करते हैं।।४।।

हे प्रभो! हमलोग पहले राजैश्वर्यके मदसे अन्ध तथा अहंकारसे मत्त हो रहे थे। इसलिए मृत्युरूपी आपको सामने देखकर भी हमने कुछ भी परवाह नहीं की और इस पृथ्वीको विजय करनेकी कामनासे परस्पर स्पर्धाकर अपनी–अपनी प्रजाओंका बड़ी निर्दयतासे विनाश किया। हे कृष्ण! वे ही हम नृपतिवर्ग अलक्ष्यगति और अलंघनीय प्रभाववाले कालके द्वारा राज्यभ्रष्ट और आपकी कृपासे हतगर्व होकर आपके चरणयुगलका स्मरण करत रहे हैं।।५–६।।

हे विभो! अब हम क्षण–क्षणमें क्षीण होनेवाले और रोगोंके घर इस शरीर द्वारा उपासनीय और मरिचिका जैसे राज–सुख अथवा केवल श्रवण–मधुर पारलौकिक स्वर्गादि सुख–भोगोंकी कामना नहीं रखते।।७।।

अतएव इस संसारमें नानाप्रकारकी योनियोंमें निरन्तर भ्रमण करते हुए भी हमारे हृदयसे जिस प्रकार आपके चरणयुगलकी स्मृति विलुप्त नहीं हो सके, ऐसा उपाय किजिये।।८।।

हे प्रभो! शरणागतजनोंके दुःखको हरण करनेवाले, गोविन्द, परमात्वस्वरूप, वासुदेव, श्रीहरि और श्रीकृष्ण—आपको हम प्रणाम कर रहे हैं।।९।। ❑

सन्त (सज्जन) के लक्षण

षड्गुण विजयी—१६

षड्गुण कहनेसे भूख, प्यास, लोभ, मोह, जरा और मृत्यु, इन छः विरोधी गुणोंका बोध होता है। कोई-कोई काम, क्रोध, लोभ, मोह और मात्सर्यको ही षड्गुण कहते हैं।

उपरोक्त छः गुण अनात्माके धर्म हैं। अनात्मा कहनेसे शरीर और मनका बोध होता है। जिस समय चेतनवृत्ति अथवा आत्मवृत्ति जड़ या अनात्म अनुशीलनमें व्यक्तिव्यस्त रहती है, उस समय वैसी चेतनाको 'मन'की संज्ञा दी जाती है। मन अहङ्कारकी सहायतासे जड़-पदार्थोंमें ममताका आरोप करता है। प्रकृतिके राज्यमें तीन प्रकारके गुणोंका प्रभुत्व दिखलाई पड़ता है। गुणोंसे ही समस्त प्रकारके अनित्य कर्मोंका उद्भव होता है। चेतन वृत्ति गुणोंसे आच्छादित होनेपर कर्मफलके अधीन रहता है, उस समय उसे षड्गुणके अधीन कहा जाता है। कर्मफलसे रहित होनेपर अथवा कर्मकाण्डका परित्याग करने पर वह साधु हो सकता है। त्रिगुणातीत महापुरुष छः गुणोंके अधीन नहीं होते।

संतजन और कर्मफल-भोगी मनुष्य—जड़दर्शन द्वारा एक ही जैसे दिखलाई पड़ते हैं। परन्तु दोनोंमें आकाश-पातालका भेद है। आत्मविद् संतजन भगवदाश्रयपूर्वक भोगोंसे सर्वथा निर्लिप्त रहते हैं, उनकी वृत्ति सर्वदा हरिसेवामयी होती है। परन्तु कर्मी और ज्ञानी दोनों प्रकारके मनुष्य छः गुणोंके अधीन रहनेके लिये बाध्य हैं। उनमें विषय-भोगकी वासना बड़ी प्रबल होती है। यह भोग-प्रवृत्ति-मनुष्यको हरि-सेवासे वंचित रखती है। कृष्णैकशरण होने पर भोग-प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है और उसके स्थान पर हरिसेवा-प्रवृत्ति विराजित हो पड़ती है। ऐसी दशामें कोई भी जड़ीय प्राकृत विकार उसे स्पर्श नहीं कर सकता।

अतएव श्रीमद्भागवत अर्थात् पारमहंस्य-संहितामें सज्जन पुरुषोंकी विजित-षड्गुण कहा गया है। विजित षड्गुण होनेपर बद्धजीव भी सज्जन अर्थात् संत हो जाते हैं।

मितभूक् अर्थात् मिताहारी—१७

भगवत्-प्रसाद भोजन करनेवाला ही यथार्थ मिताहारी है

आवश्यकतासे अधिक नहीं या आवश्यकतासे न्यून नहीं—ऐसी अवस्थाको 'परिमित' कहा जाता है। संत (सज्जन) परिमित आहार करते हैं। जो लोग परिमित भोजन नहीं करते, वे वैष्णव होनेमें असमर्थ हैं। सज्जन व्यक्ति अप्राकृत इन्द्रियोंसे अप्राकृतं बुद्धि द्वारा अप्राकृत वस्तुका भोजन करते हैं। वे कभी भी अमेध्य—अपवित्र पदार्थ भोजन नहीं करते। साथ ही मायावादियोंकी तरह वे फल्गुवैराग्य (देखावटी वैराग्य) भी नहीं करते एवं हठयोगीकी तरह महाप्रसादका तिरस्कार भी नहीं करते। वे परिमित रूपमें कृष्णप्रसाद भोजन करते हैं।

प्राकृत शुद्धाशुद्ध भोजन—मितभोजन नहीं है

भगवत्-प्रसाद सेवामें अमित भोजनका कोई प्रश्न ही नहीं है। सूक्ष्म शरीर अर्थात् मनसे जो भोजन किया जाता है, वह अनित्य होता है। शुद्धाशुद्धिका विचार कर शरीर द्वारा जो भोजन किया जाता है, वैसा भोजन वैष्णवोंके लिये निषिद्ध है। सज्जन पुरुषोंके नित्य स्वभावमें मितभोजनका एक विशिष्ट स्थान है।

किसी भी चीजकी अधिकता या न्यूनता परमार्थ पथमें बाधक है

श्रीमद्भागवतमें अत्यन्त आसक्त अपरिमित भोजनकारी एवं भोजनका परित्याग करनेवाले

विरक्त दोनों प्रकारके लोगोंको भक्तिके लिये अनुपयुक्त बतलाया है। भक्तिरसामृत सिन्धुमें भी लिखा है—'आधिक्ये न्यूनतायाञ्च च्यवने परमार्थतः।, कर्मी, ज्ञानी और शुष्क वैरागी, ये लोग मिताहारी नहीं हैं।—

अत्याहारः प्रयाशश्च प्रजल्पो नियमाग्रहः।
जनसंगश्च लौलयञ्च षड्भिर्भक्तिर्विनश्यति।।

अर्थात्, किसी वस्तुका अधिक संग्रह या संचय, प्राकृत विषयोंके लिये बूतेसे अधिक परिश्रम अथवा प्रयत्न, आवश्यकतासे अधिक नियमोंके प्रति आग्रह अथवा नियमोंका अपालन, कृष्ण-विमुख व्यक्तियोंका सङ्ग और चित्तकी चंचलता—इन छः दोषोंसे भक्ति नष्ट हो जाती है।

मांसाहारी और मादक द्रव्योंका सेवन करने वाले व्यक्ति सज्जन नहीं है

सज्जन पुरुषको जिह्वा और उदर वेगका दमन करना कर्त्तव्य है। जो लोग लोभके कारण अधिक आहार करते हैं अथवा प्रतिष्ठाके लिये कृष्ण-प्रसादका अनादर करते हैं, वे सज्जन नहीं हो सकते हैं। मांस-मछली, अण्डे आदि भोजनकारी मिताहारी नहीं कहे जा सकते हैं। मादक-द्रव्योंका सेवनकारी भी मिताहारी नहीं कहा जा सकता। गोस्वामी महात्मा पुरुष अफीम, गाँजा आदिका सेवन नहीं करते। इनका चरित्र और स्वभाव बड़ा ही निर्मल होता है। ❑

हिन्दू शब्द कैसे बना है?

—ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

बहुत दिनोंसे 'हिन्दू'—शब्द कैसे बना है? इस प्रश्नको लेकर पण्डित-मण्डलीमें तर्क-वितर्क चलता आ रहा है। इस विषयमें विभिन्न लोगोंकी भिन्न-भिन्न धारणाएँ हैं। किसीका कहना है, 'हिन्दु' शब्दकी उत्पत्ति 'इन्दु' शब्दसे हुई है। किसी-किसीका कहना है, मुसलमान लोग तन्त्रशास्त्रसे एक श्लोक उद्धृतकर हिन्दू-शब्दकी व्याख्या कहते हैं—'हीनान् धर्मान् परित्यज्य हिन्दूः परिकीर्त्तितः।' परन्तु फिर भी सन्देह दूर नहीं होता। सम्प्रति हम निम्नलिखित चार श्लोकोंमें हिन्दू शब्दका अर्थ देखकर बड़े सन्तुष्ट हुए हैं—

उत्तरे भारतस्यास्य हिमाद्रि दिव्यदर्शनः।
दक्षिणे वर्त्तते बिन्दुसरस्तीर्थो मनोहरः।।
एतयोर्मध्यभागे यो वसतिं कुरुते नरः।
आद्यन्तवर्ण संयोगात् हिन्दुनाम्ना महीयते।।
शुद्धार्यकुलसम्भूतः शुद्धाचारपरायणः।
भारते वर्त्तते हिन्दुवर्णाश्रम विभागशः।।
पूजनीयः सदा हिन्दुः सर्वेषां द्विपदामपि।
शिक्षकः सर्वजातिनां महीतल निवासिनाम्।।

अर्थ—भारतवर्षके उत्तरभागतमें हिमाद्रि (हिमालय) नामक बड़ा ही रम्य पर्वत है तथा दक्षिण भागमें बिन्दुसर नामक एक मनोहर तीर्थ है। जो व्यक्ति इन दोनोंके बीच भागमें निवास करते हैं, वे हिमालयके प्रथम अक्षर 'हि' और बिन्दुके अन्तिम अक्षर 'न्दु' इन दोनों अक्षरोंके संयोगसे बने 'हिन्दू' नामका माहात्म्य प्राप्त होते हैं, अर्थात् हिन्दू कहलाते है। शुद्ध आर्यकुलमें पैदा हुए शुद्ध आचरणसम्पन्न हिन्दु वर्णाश्रम धर्मको अंगीकार कर भारतवर्षमें निवास करते हैं। हिन्दू—मनुष्यमात्रके पूजनीय हैं और संसारकी समस्त जातियोंके शिक्षक हैं।

हिमालय पर्वतसे तो सभी परिचित हैं, परन्तु बिन्दुसर कहाँ है—इसका निर्णय होना आवश्यक है। श्रीमद्भागवत तृतीय स्कन्ध इक्कीसवें पर प्रकाश डाला गया है—

तद्वै बिन्दुसरो नाम सरस्वत्या परिप्लुतम्।
पुण्यं शिवामृतजलं महर्षिगण सेवितम्।।

इस श्लोकसे ऐसा प्रतीत होता है कि सरस्वती

नदीके निकट ही बिन्दुसरकी स्थिति है। हमारे विचारसे यह बिन्दुसर ही हिन्दुस्तानकी दक्षिणी सीमा है। इस सीमासे आर्यावर्त्त और ब्रह्मावर्त्त दोनों खण्ड ही हिन्दुस्तानके भीतर पड़ते हैं।

शास्त्रमें हिन्दु शब्दका उल्लेख न होनेका कारण यह है कि वेदोंकी रचना आर्योंके हिन्दुस्थानमें आनेसे पूर्व ही हो चुकी थी और जिस समय पुराण और धर्म शास्त्र लिखे गये, उस समय आर्योंके वंशधर आर्यावर्त्त और ब्रह्मावर्त्तको पार कर विभिन्न स्थानोंमें वास कर रहे थे। इसलिए उन-उन स्थानोंसे लिखे गये पुराणोंमें पूर्व निर्णीत 'हिन्दू' नामका उल्लेख करना उन लोगोंने उचित नहीं समझा। अतः हिन्दू नामका केवल मौखिक भाषामें ही प्रयोग हुआ करता था। ❑

श्रीरामानुजाचार्य

पाश्चात्य दार्शनिक पंडितोंका यह मत है कि कालकी गतिके अनुसार धर्मजगतमें मनुष्यकी मनोगत अनुभुतिका परिवर्तन और उनके व्यवहारका वैष्यम्य अवश्यम्भावी है। देवासुर-संग्राममें, ब्रह्मावर्तमें ऋषियोंके ईश्वर-अनुशीलन कालमें, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रादि वर्णसमूहके अपने-अपने वर्णाश्रम धर्म पालनके समयमें, वेण आदि अवैदिक राजाओंके कालमें, नाना प्रकारके दर्शन-शास्त्रोंके आविर्भावकालमें, गौतम बुद्धके समय, प्रच्छन्न मायावादके प्रचारके समयमें एवं भक्तिवादकी परमोपादेयता उपलब्धिके कालमें भारतीय धर्म जगतके विभिन्न प्रकारके अनुभव और व्यवहारगत पार्थक्यका उल्लेख हम इतिहास और पुराणमें देख पाते हैं।

जैसे एक ओर आधुनिक उन्नतवादी विचारकोंका युक्तिबल है, पक्षान्तमें वैसे ही शास्त्रकेप्रति सरल, परन्तु दृढ़ विश्वास रखनेवालोंकी अटल धारणा भी है। सृष्टिके प्रारम्भमें ऋषि, देवता और असुर तीनों अपनेको काश्यप जानकर यज्ञेश्वर विष्णुकी उपासना करते थे, उन्हींके वंशज ब्राह्मण कालके प्रभावके अनुसार सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओंके समय ईश्वर-उपासनाकी ओर अग्रसर हुए। धीरे-धीरे वह ईश्वरोपासना कहीं-कहीं लक्ष्यभ्रष्ट ज्ञानके रूपमें बदल गयी। लक्ष्यभ्रष्ट केवल ज्ञानानुशीलन धीरे-धीरे ईश्वरसे हटकर निरीश्वर ज्ञानकी ओर झुका और कपिल आदि मतोंकी सृष्टि हुई।

पहले यज्ञादि कर्मों द्वारा विष्णुकी सेवा होती थी। जब उद्दिष्ट विष्णुकी अपेक्षा यज्ञ आदि कर्मोंकी उपादेयता अधिक फलप्रद समझी गयी, तब ज्ञानने ऐसे विकमोंकी प्रधानताका खण्डन कर कर्मको दबाया। यद्यपि ज्ञानने कर्मको दबाकर अपनी प्रधानता स्थापित की, फिर भी वह ज्ञान उद्दिष्ट वस्तु परमेश्वरसे कुछ स्वतन्त्र होनेके कारण अज्ञानकी ही श्रेणीमें रहा। ऐसे अज्ञानके दबाना आवश्यक था। अतः इसके लिए उद्दिष्ट वस्तु भगवानमें प्रीतिके प्रचारकी आवश्यकता हुई।

अनादिकालसे ही जीवके हृदयमें प्रीति-मार्ग विद्यमान है वह प्रीति कभी कर्म या ज्ञान आश्रय कर उदित होती है, कभी स्वतन्त्र रूपसे भगवत् प्रार्थना आदि द्वारा प्रकाशित होती है। कर्म और ज्ञानकी भाँति भगवत् प्रीतिका कोई निश्चित् काल नहीं। वह तो जीवमात्रकी स्वाभाविक और सार्वकालिक वृत्ति है। फिर भी दुर्बल जीवोंके कल्याणके लिए त्रिगुणातीत होकर भी वह ज्ञान-कर्मकी भाँति एक मार्गकी दिखलायी पड़ती है। इस पर कालका कोई प्रभाव नहीं होता। अतः वह सीाी अवस्थाओंमें सभी कालोंमें, सर्वत्र अपरिवर्तित होती है। ज्ञान और कर्मकी तरह कालके प्रवाहमें उसका कोई परिवर्तन नहीं होता।

अनादि कालसे धर्म राज्यमें कर्म, ज्ञान और

भक्ति चली आ रही हैं परनतु कालके प्रभावेसे किसी समय, किसी देशमें इनमेंसे किसी एकका प्राबल्य दिखलायी पड़ता है। सूक्ष्म विचार करनेसे पता चलता है कि जिस समय भारतवर्षमें दर्शनशास्त्रका अनुशीलन अपनी चरमसीमाको स्पर्श कर रहा था, उस समय जिन लोगोंने केवल ज्ञानको उपाय बनाकर उपेय स्वरूप परमतत्त्वको प्राप्त करना चाहा था, उनमेंसे अधिकांश ही मार्गभ्रष्ट हुए हैं। एक ही ज्ञान द्वारा ब्रह्म दो भागोंमें उपलब्ध हुए हैं।

निष्कपट निर्विशेषवादीके ब्रह्मकी चरम सीमा कपिलके अव्यक्त तक ही सीमित है। इस अवस्थाका परिचय देनेके समय ही वे कपटताका आश्रय ग्रहण करनेके लिए बाध्य हुए हैं अर्थात् "निर्विशेष ब्रह्म'—शब्दका प्रयोग करने पर भी विशेषवादीका पदरेणुको अज्ञात रूपमें अपनी समत्तिके रूपमें ग्रहण किये है। केवल, निर्गुण, साक्षी और चेता आदि विशेषणों द्वारा तद्ववस्तुको अतत्से पृथक् करने जाकर कपटताका अवलम्बन किये हैं।

निर्विशेषवाद सांख्यके पौरुषभावका किंचित अंश प्रकृतिमें अलक्षित रूपमें आरोप कर खड़ा है। वास्तवमें उनके पुरुषका परिचय आधिकांश रूपमें अविद्या और माया आदि शब्दोंकी आड़में ही दिया गया है। यथार्थतः वेदानुग वेदान्तमत और कपट निर्विशषवादियोंका वेदान्तमत पृथक्-पृथक् हैं। विशेषवादी ब्रह्ममें सब प्रकारकी विशेषता स्वीकार करते हैं। ब्रह्मकी भाँति ब्रह्मवस्तुके विशेष भी नित्य हैं, वे काल्पनिक अथवा रूपक मात्र नहीं है। ब्रह्मवादी वस्तुतः सविशेषवादी हं, परन्तु उनमें से किसी-किसीने उच्छृंखल होकर अपनेको निर्विशेषवादी बतलाकर कपिलके शून्यवाद या बौद्धवादके साथ सामंजस्य करनेकी चेष्टा की है। सांख्यके पुरुष और प्रकृतिके मिलनसे जगत्की सृष्टि आदि माननेवाले कपिलके मतानुयायीगण निर्विशेष ब्रह्मवादीकी भाँति ब्रह्ममें दोषकी आशंका कर विशेषको भी मलयुक्त मानते हैं। उनके विचारसे विशेष धर्म ही मल द्वारा बना है। "कपिल मतके अंकुरसे ही वैदान्तिक निर्विशेषवादका जन्म हुआ है। ज्ञान और कर्मके अन्तरालमें पातंजल दर्शनकी उत्पत्ति हुई है। विपरित गतिसे कर्माश्रय करनेसे ज्ञानवादियोंका ऐसा ही भाव होता है।

वैशेषिक और न्यायके मतानुसार देही ओर ईश्वर स्वीकृत हैं। परन्तु वैशेषिकका देही निष्कपट निर्विशेषवादियोंके ब्रह्मके समान है। गौतमका ईश्वर और कपट निर्विशेषवादीके ब्रह्मके समान है। गौतमका ईश्वर और कपट निर्विशेषवादीका ब्रह्म जिस प्रकार चार भूषणोंसे भूषित हैं, उसी प्रकार वे दूसरे कुछ विशेषोंसे भी सम्पन्न हैं। जैमिनीका दर्शन ज्ञानानुशीलनके पूर्वसे ही वर्तमान है। वस्तुका फलदातृत्व ही प्रधान कार्यकारिता है। इसलिए सत्कर्म अनुशीलन ओर कार्यकारिता है। इसलिए सत्कर्म अनुशीलन और उसके भोगकी चेष्टा ही जैव जगतकी क्रिया है। जैमिनी-दर्शनके कर्मफलवादको दूसरे-दूसरे दार्शनिकोंने भी स्वीकार किया है, परन्तु इस फलप्राप्तिका भी विराम है, इसके लिए भी व्यवस्था है।

इस प्रकार ज्ञानकी सहायतासे विभिन्न प्रकारकी चिन्ताधाराएँ भारतमें एक ही समय प्रबल रूपमें प्रवाहित होनेके कारण मूल उद्देश्य दूर हट गया तथा केवल शुष्क पाण्डित्यका फल यह हुआ कि जीव ईश-विमुख होने लगे। इस दुर्दिनमें मायावादियोंने भारतमें कहीं-कहीं बौद्धवादके, कहीं-कहीं शांकरवादके, कहीं-कहीं योगानुशीलनके, कहीं कुमारिलके कर्मवादके, कहीं-कहीं पाशुपतोंकी विचित्र उपासनाके, कहीं पंचोपासनाके, कहीं उपासकके हितके लिए काल्पनिक मूर्तिकी पूजाके, अतिशय घृणित तन्त्रादिकी साधनाके और कहीं

भगवानकी लीलाको रूपके होनेके प्रचारका प्रयास किया। वास्तवमें उस समय भक्तिका माहात्म्य इतना संकीर्ण हो रहाथा कि ज्ञानरूप परिच्छेदसे आवृत माया भक्तिको निगलनेको मुख बाये खड़ी थी। भक्ति विरोधी सारे मतवाद न्यूनाधिक रूपमें मायावादी हैं। इन मूढ़ मायावादियोंको विपदसे उद्धार करनेके लिए परम मंगलमय भगवानने अपनी संकर्षण-शक्तिको मायावादाच्छन्न देशमें भेजा। भगवत्कृपा द्वारा भेजे गये उस संकर्षण-शक्तिरूप महात्मा का नाम ही "श्रीरामानुजाचार्य" है।

श्रीरामानुजाचार्यकी ईश्वरीय शक्तिके प्रभावसे ही आज भारतमें भगवानकी प्रधानता दिखलायी पड़ती है। मायाधीशको भी मायावादियोंने मायाधीन बतलानेकी धृष्टता की है। जिनकी असीम शक्तिके प्रभावसे मायावाद-दानख खण्डित-विखण्डित होकर मृतप्राया हो गया है, जिनकी अनिर्वचनीय शास्त्र-मीमांसाके प्रहारसे काल्पनिक मायावादका गजदन्त उखड़ गया और जिनके शक्ति और शक्तिमत्तत्त्वके विचारको सुनकर प्रधान-प्रधान मायावादी आचार्य भी अपना दुर्भाग्य मानते हैं, उन्हीं श्रीरामानुजाचार्यसे ही इस दुस्सहनीय कलिकालमें श्रीवैष्णवजन जो कितने उपकृत हुए हैं, वह लेखनीके वर्णनातीत है। भारत-गगनको मायावादरूपमी अन्धकारसे मुक्त करनेमें श्रीरामानुजके समान परमबन्धु वैष्णवजनोंका कोई दूसरा नहीं है—ऐसा कहा जा सकता है। "श्रीगौड़ीय सम्प्रदायाके आदि आचार्य श्रीमध्वमुनिने इन महात्माको 'शिष्टगणाग्रगण्य' भूषणसे अलंकृत किया है।" भगवानकी संकर्षण शक्तिको छोड़कर परब्रह्मको धारण करने और मूढ़ मायावादियोंको समझानेमें कौन समर्थ हो सकता था? श्रीरामानुजका आविर्भाव आज भारतमें जीवके पारमार्थिक धर्मके विकृत होनेके मार्गमें बाधक सिद्ध हुआ है। मायावादियोंके दौरात्म्यके कारण भगवद्जन या भक्ति जिस प्रकार शुष्कप्राय हो चली थी, उसमें रामानुज-मेघद्वारा शीतल वारिका सिंचन न होनेपर आज केवल कपटी मायावादियोंके मुखसे कपट भक्तिका माहात्म्य सुनकर श्रीवैष्णवजन कितने दुःखी होते, यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। वैष्णवाचार्य श्रीरामानुज स्वामीका चरित्र वैष्णवजनके लिए परम उपादेय और सर्वदा स्मरणीय है।

पुण्यभूमि भारतवर्ष विन्ध्यपर्वत श्रेणी द्वारा दो भागोंमें विभक्त है। उत्तर भाग आर्यावर्त और दक्षिण भाग दाक्षिणात्यके नामसे प्रख्यात हैं। बौद्ध विप्लवके कुछ समय पहले ही आर्यावर्त साधारणतः पंचगौड़के रूपमें पाँच भागोंमें विभक्त हो चुका था। उसी प्रकार दाक्षिणात्य भी पंचद्रविड़के रूपमें पाँच भागोंमें विभक्त हो चुका था। आर्यावर्तके पाँचों प्रदेशोंके ब्राह्मण अपने अपने प्रदेशके ब्राह्मणके साथ सामाजिक व्यवहारमें बँध गये थे। उसी प्रकार दक्षिणमें भी पाँच प्रकारके ब्राह्मण समाज बँध गये थे। वे समाज आज भी उसी रूपमें पाये जाते हैं। श्रीरामानुजाचार्यने दक्षिणमें जन्म ग्रहण किया था। जिस प्रकार आर्यावर्तके ब्राह्मण अपनेको गौड़ीय ब्राह्मण कहते हैं, उसी प्रकार दक्षिणके ब्राह्मण भी अपनेको द्राविड़ीय कहते हैं। श्रीरामानुजके पूर्वज द्राविड़ीय शाखाके अन्तर्गत ब्राह्मण हैं। गुर्जर, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आन्ध्र और तैलङ्ग या द्रविड़—ये पाँच प्रदेश पंच-द्रविड़ हैं। श्रीरामानुजका जन्म तैलंग प्रदेशमें हुआ था। तैलंग प्रदेशका दूसरा नाम ही मूल द्रविड़ है। मूल द्रविड़ अर्थात् तैलंग प्रदेशके दक्षिणमें आन्ध्रप्रदेश है। चोल और पाड्य वंशी राजाओंका वर्णन पुराणमें भविष्यद्भूपालोंके अन्तर्गत अन्धभृत्यके रूपमें पाया जाता है।

धर्मशास्त्रके रचयिता हारीतके वंशमें केशवाचार्य नामक एक द्राविड़ ब्राह्मण तौण्डीर मण्डलस्थ पूर्व समुद्रके २४ मील पश्चिममें भूतपूरी नामक एक ग्राम में १० शकाब्दके प्रारम्भमें निवास करते थे।

केशवकी पत्निका नाम कान्तिमति था। दोनों ही सदाचार सम्पन्न और नाना प्रकारके गुणोंसे विभूषित थे। परन्तु उनकी कोई सन्तान न थी। इसलिए पुत्रकी कामनासे वे प्रतिदिन नियमपूर्वक समुद्रस्नान कर भगवान पार्थसारथिकी उपासना करने लगे। भगवान पार्थसारथिने प्रसन्न होकर उनकी मनोभिलाषा पूर्ण की। "कान्तिमति गर्भवती हुई और समयानुसार उनके गर्भसे भूतपूरी ग्राममें ९३८ शकाब्दमें बृहस्पतिवारको चैत्रशुक्ला पंचमी तिथिमें आर्द्रा नक्षत्रमें दिनके दोपहरके समय श्रीरामानुजने जन्म लिया।" किसी–किसीके मतानुसार श्रीरामानुजका आविर्भाव मद्राससे २६ मील पश्चिम श्रीपरमवतुरनामक ग्राममें ईशाकी १२ वीं शताब्दीके मध्यमें हुआ था। श्रीरामानुजाके जन्मकालका वर्णन निम्नलिखित श्लोकमें पाया जाता है।

यस्मिन् क्षणे भूवि पदं व्यदधात् स वाल।
तस्मिन् क्षणे कलिवदः सहमाविक्तिल्ये।।
पापः पलायनपरः सइसा पृथिव्यी।
धर्मा वभूव भववान् स्वपदैश्चतुर्भिः।।

श्रीरामानुजके जन्मसे केशवाचार्यके आनन्दकी सीमा न रही। उन्होंने बालकके जातकर्म संस्कार महोत्सवमें अपने समस्त आत्मीय–स्वजनोंको बुलाया और उनको सन्तुष्ट किया। समयानुसार उन्होंने बालकको क्रमशः अन्न प्राशन, चौल और मौंजी बन्धन आदि और अन्तमें आठवें वर्षमें यज्ञसूत्र संस्कार किया। ब्रह्मणोचित क्रिया–कलाप शिक्षा और अध्ययन आदिमें रामानुजाचार्यके पिताने कोई शिथिलता न आने दी।

श्रीरामानुजने अपना बालकपन खेल–कूदमें और किशोरावस्था विद्या अध्ययनमें बिताया। किशोरावस्था बीतने पर माता–पिताने श्रीरामानुजका विवाह कर दिया। रामानुजके विवाहके कुछ दिनोंके बाद ही केशवाचार्यने अपना लौकिक शरीर परित्याग कर दिया। श्रीमान् रामानुजने पिताकी पारलौकिक वैदिक क्रियाओंको सम्पन्न किया। पिताके परलोक गमनके पश्चात् कुछ दिनोंतक रामानुज अपनी पत्निको साथ लेकर अपनी विधवा बहनके पास रहे। इन्हीं दिनों महात्मा श्रीरामानुजको शास्त्राध्ययनकी तीव्र इच्छा हुई। उस समय श्रीकांचीपुरमें श्रीयादवाचार्य वेदान्तशास्त्रके पारदर्शी एवं प्रख्यात अध्यापक रहते थे। यादवाचार्यकी प्रशंसा सुनकर श्रीरामानुजने श्रीकांचीपुरीमें उनके पास रहकर वेदान्त पाठ प्रारम्भ किया। भूतपूरी कांचीपुरीके निकट ही स्थित है। कांचीपुरी मोक्षदायिका सप्तपुरियोंमेंसे एक है। कांजीका वर्तमान कंजिभरम है। यह प्रसिद्ध नगर मद्राससे पश्चिमकी ओर २४ मीलके भीतर ही है। चोल राजाओंके राज्यमें कांजीपल्ली विद्याशिक्षाका केन्द्र, सरस्वती पूजाका पीठ और दाक्षिणात्यका एक प्रसिद्ध नगर था। उस समय आर्यावर्तसे भी ब्राह्मण छात्र विद्याध्ययनके लिए आते थे। आज भी कांजीवासी संस्कृत भाषा ओर आचार्यके आचारोंको बड़ी श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हैं।

श्रीरामानुजाने कांजीसे यादवाचार्यके पास रहकर विधिपूर्वक वेदान्तका अध्ययन किया। साथ ही गुरुकी सेवा–शुश्रूषा भी की इसी समय कांजी नरेशकी कन्याको ब्रह्म–राक्षसने पकड़ लिया। राजाने समस्त प्रकारकी चिकित्सा आदि किये, परन्तु कोई फल नहीं हुआ। ब्रह्म–राक्षसने राजकन्याको किसी प्रकार भी नहीं छोड़ा। अन्तमें राजाने प्रसिद्ध मन्त्र ज्ञाता यादवाचार्यको बुलाया। यादवाचार्य अपने शिष्योंको साथ लेकर राज भवनमें पहुँचे। रामानुज भी गुरुके साथ थे। यादवाचार्यने राजाकी प्रार्थनानुसार मन्त्र द्वारा राजकुमारीका भूत छोड़नेके लिये बड़े प्रयत्न किये, परन्तु ब्रह्म राक्षसका राजकुमारीको छोड़ना तो दूर रहे, वह यादवाचार्यका तिरस्कार करने लगा तथा भाँति–भाँतिके डर दिखलाने लगा। यादवाचार्य डर गये और मन्त्राच्चारण बन्द कर

दिये, तब ब्रह्मराक्षसने यादवाचार्यके पूर्वजन्मका वृत्तान्त कहना आरम्भ किया और अन्तमें अपनी अधोगतिका कारण बतला कर अपने उद्धारके लिये उनके शिष्य रामानुजके चरणोदकके लिये प्रार्थना की। ब्रह्मराक्षसकी प्रार्थनाके अनुसार श्रीरामानुजने राजकुमारीको आश्रय किय हुए नीच योनियोंमें पड़े हुए ब्रह्मराक्षसको अपना चरणामृत देकर उसे प्रेतयोनिसे उद्धार किया।

इस घटनासे श्रीरामानुजकी प्रतिष्ठा बढ़ गयी, साथ ही यादवाचार्यके हृदयमें अपने शिष्य रामानुजके प्रति विद्वेषका आग भड़क उठी। अब यादवाचार्य रामानुजको स्नेह करनेके बदले अपना प्रधान प्रतिद्वन्द्वि मानकर सब समय उनके अनिष्टकी चिन्ता करने लगे।

यादवाचार्यका विद्वेष तीव्रसे होता गया। रामानुजने बड़े धैर्यसे काम लिया, परन्तु वहाँ वासकर अहितकर सोच कर अपने घर लौट आये एवं अपने घर ही वेदान्तका गम्भीर अध्ययन करने लगे। कुछ ही दिनोंमें वे एक उच्चकोटिके वैदान्तिक माने जाने लगे। इतना, होनेपर भी रामानुज अपने गुरु यादवाचार्यके पास जाते रहते थे और वेदान्त आदि शास्त्रोंका श्रवण किया करते थे। मायावादी यादव रामानुजके अन्तःकरणको ठेस पहुँचानेके लिये श्रुतियोंका कदर्थ कर श्रवण कराते थे।

एक दिन सबेरे श्रीरामानुज गुरुदेव यादवाचार्यकी सेवा कर रहे थे। इसी समय यादवाचार्यके समीप एक विद्यार्थीने छान्दोग्योपनिषद्के 'तस्य व्यथा कष्यासं पुण्डरीकमेवमक्षक्षिणी' (प-६-७) मन्त्रके "कष्यासं"—शब्दका अर्थ पूछा। यादवाचार्यने अपने पूर्वाचार्य श्रीशङ्कर पदकी व्याख्याके अनुसार 'कष्यासं' पदका अर्थ—कपि (बन्दर) का आसन अर्थात् बन्दरकी पिछाड़ी (टट्टी आनेका स्थान) किया। 'कष्यासं' शब्दका यह अर्थ स्वीकार करनेसे उक्त श्रुतिमन्त्रका तात्पर्य यह होता है कि—'उस हिरण्यमय पुरुषके दोनों नेत्र बन्दरकी पिछाड़ीकी तरह लाल कमलके समान हैं।' इस अर्थको सुनकर रामानुज बड़े दुःखी हुए। उनकी आँखोंसे गरम-गरम आँसुओंकी धारा बहने लगी। यादवाचार्यने उनसे रोनेका कारण पूछा। रामानुजने कहा—आपने 'कष्यासं'—शब्दका जो अर्थ बताकर इस श्रुतिमन्त्रकी व्याख्या की है, उससे मेरे हृदयमें भयङ्कर चोट लगी है। पुण्डरीकाक्ष श्रीविष्णु भगवान्के नेत्रोंकी लालिमाकी तुलना बन्दरके निम्नभागसे देन चरम सीमाके अपराधका परिचायक है।

रामानुजकी बात सुनकर यादवाचार्यने बिगड़ कर कहा—'मूख! तुम आचार्य शङ्करकी व्याख्यामें दोष दिखला रहे हो? तुम्हारा इतना साहस? यदि तुममें सामर्थ्य हो, तो इससे अच्छी दूसरी व्याख्या करके दिखलाओं तो सही।' रामानुजने 'कष्यासं'-पदका अर्थ बन्दरका निम्नभाग न करके इस प्रकार लगाया—'कं जलं पिवति इति कपिः सूर्यः और असू धातुका अर्थ विकसित लगाया। इस प्रकार कष्यासंका अर्थ हुआ—'सूर्य विकसित'। अब श्रुतिके मत्रांशका अर्थ इस प्रकार हुआ—'श्रीविष्णुके नेत्र-युगल सूर्य द्वारा विकसित कमलके समान है।' इस प्रकार अर्थ सुनकर यादवाचार्य बड़े विस्मित हुए और मन-ही-मन विचार किया कि यह कोई असाधारण बालक प्रतीत होता है। यदि इसे अभी किसी प्रकार मार न डाला गया तो आगे चल कर यह हमारे सम्प्रदायका भीषण शत्रु निकलेगा तथा आचार्य शङ्करके मतको सम्पूर्ण रूपसे चूर्ण-विचूर्ण कर देगा। परन्तु ऊपर ऐसे बोले—'तुमने जो अर्थ किया है, वह मुख्यार्थ नहीं, गौणार्थ है।' और एक दिनकी बात है। यादवाचार्य अपनी शिष्य मण्डलीको आचार्य शङ्करके भाष्यके अनुसार तैत्तिरीयोपनिषद्के "सत्यं ज्ञान्मंन्तं ब्रह्म" (आनन्दबल्ली २) की व्याख्या सुना रहे थे। वे इस मन्त्र द्वारा भी निर्विशेष ब्रह्मकी स्थापना करनेका

प्रयास कर रहे थे। परन्तु श्रीरामानुजसे यह सहा नहीं गया; उन्होंने इस मन्त्र द्वारा निर्विशेष ब्रह्मका खण्डन कर सविशेष ब्रह्मकी स्थापना कर दी। इस प्रकार अपने शिष्यसे बार-बार अपमानित होकर तथा अपने सम्प्रदायका भावी शत्रु समझकर यादवाचार्यने अपने दूसरे शिष्योंसे मिलकर रामानुजका बध करनेके लिये एक षड्यन्त्र रचा। स्थिर हुआ कि रामानुजको अपने साथ प्रयागमें त्रिवेणीमें स्नानके लिये ले जाय और वहीं पर युतसलीला नदीके गर्भमें उनको डुबा दिया जाय। इस प्रकार वहाँ मरनेसे ब्रह्महत्याका पाप भी नहीं लगेगा तथा उनका कार्य सिद्ध हो जायेगा।

श्रीरामानुजके मामाका नाम शैलपूर्ण था। कान्तिमतिकी छोटी बहन द्यूतिमतीका एक बहिन पद्मलोचन भट्टसे हुआ था। रामानुजकी एक बहिन भी थी जिसकी नाम लक्ष्मी था। लक्ष्मीका विवाह अनन्त दीजितके साथ हुआ था। अनन्तदीक्षितके दो पत्नियाँ थीं। बड़ीका नाम 'महादेवी' था और छोटी श्रीरामानुजकी बहिन 'लक्ष्मी' थी। पद्मलोचनके पुत्रका नाम गोविन्द था। इस प्रकार गोविन्द रामानुजकी मौसीके पुत्र हुए अर्थात् मौसेरे भाई हुए। श्रीरामानुजका पाण्डित्य, उनकी प्रखर प्रतिभा एवं राजकुमारीको ब्रह्म-राक्षसके हाथसे मुक्त करना आदि उनके अलौकिक चरित्रको देखकर गोविन्द रामानुजको आन्तरिक श्रद्धा करते थे। वे अपनी मातासे आज्ञा लेकर कांजीमें रहकर श्रीरामानुजके साथ यादवाचार्यके निकट वेदान्तका अध्ययन करने लगे। यादवके यहाँ से रामानुजके चले जाने पर भी गोविन्द यादवके निकट ही वेदाध्ययन करते रहे। इसी समय रामानुजको बध करनेका षड्यन्त्र रचा गया। गोविन्दको किसी प्रकार इस षड्यन्त्रका पता लग गया। उन्होंने उपयुक्त समयपर इस षड्यन्त्रकी बात बतला देनेकी सोची।

एक दिन यादव अपना मतलब सिद्ध करनेके लिये रामानुजके घर पर उपस्थित होकर नम्रतापूर्वक बोले—'वत्स रामानुज! तुम आजकल मेरे पास क्यों नहीं पढ़नेके लिये आते? तुम्हारे समान बुद्धिमान एवं सच्चा शिष्य मेरा दूसरा नहीं है। तुम्हारी अनुपस्थितिसे मुझे बड़ा दुःख होता है। मैं दूसरे सभी छात्रोंसे बढ़कर तुम्हें प्यार करता हूँ। मेरी उपेक्षा करनी ही क्या मेरे प्यारका प्रतिदान है? यादवके स्नेहभरे वचनोंको सुनकर रामानुजने पहलेकी भाँति पुनः उनके निकट अध्ययन करना आरम्भ किया।

दुष्ट यादवने अपने षड्यन्त्रको सफल बनानेके लिये रामानुजके निकट त्रिवेणी स्नानके लिये प्रयाग चलनेका प्रस्ताव रक्खा। यादवके प्रस्तावके अनुसार श्रीरामानुज अपनी मातासे आज्ञा लेकर यादव और शिष्यमण्डलीके साथ प्रयागके लिये चल पड़े। रास्तेमें विंध्याचलके निकट उनके मौसेरे भाई गोविन्दने सुयोग देखकर रामानुजसे यादवाचार्यके षड्यन्त्रकी बात बतला दी तथा उनको मण्डलीका साथ छोड़ कर भाग जानेकी सलाह दी। रामानुज गोविन्दके परामर्शके अनुसार सीधे मार्गको छोड़कर पगडंडियों, खाई-खन्दकों आदिको पार कर भागे। कुछ दूर चलनेके पश्चात् थक कर एक पेड़के नीचे विश्राम करने लगे। उस समय मूसलाधार वर्षा हो रही थी। वर्षाकी अधिकतासे रास्ता दिखायी नहीं पड़ता था। यादव और उनके साथी बड़ी मुसीबतमें फँसे।

इधर गोविन्द अकेले गुरुके समीप लौटे। उनको अकेले देखकर यादवाचार्यने पूछा—'रामानुज कहाँ है?'

गोविन्दकी बात सुनकर यादवाचार्यने अपने शिष्योंको भेजकर रामानुजको इधर-उधर खूब ढूंढ़ा; परन्तु कहीं भी पता न चला अब यादवाचार्यको यह निश्चय हो गया कि रामानुजको जङ्गली जानवरोंने खा डाला है। ऐसा स्थिर करके वे

बिलकुल निश्चिंत हो गये।

इधर श्रीरामानुज पेड़के नीचे बैठे-बैठे भगवान्के शरणागत हुए। थोड़ी ही देर बाद उन्हें एक ब्याध और उसकी स्त्री दिखलायी पड़ी। वे दोनों गम्भीर वनमें जा रहे थे। उन दोनोंको साथ रामानुजकी बाते हुईं। रामानुज भी उन दोनोंके साथ बातचीत करते चल पड़े। कुछ दूर जाने पर शाम हो गयी। अब आगे चलना खतरनाक समझ कर वे तीनों एक पेड़के नीचे ठहर गये। कुछ देरके पश्चात् ब्याधपत्नीको बड़ी प्यास लगी। उसने अपने पतिसे कहींसे पानी लानेके लिये बार-बार अनुरोआ किया। उन लोगोंकी बात सुनकर श्रीरामानुज रातमें ही जल लानेको तैयार हो गये। परन्तु बहेलियेके कहनेसे रातको रुक गये और सबेरे पानी लानेके लिये प्रतिज्ञा की। प्रातःकाल होनेके साथ-साथ बहेलियेने रामानुजको निकट ही एक कुँआ दिखलाकर पानी लानेके लिये कहा। रामानुजने उस कुँएमें से अञ्जलिसे तीन बार पानी उठा कर उनको पिलाया। चौथी बार जब कुँएसे अञ्जलि भरकर पानी उठाया, तो वे दोनों कहीं भी दिखलायी न पड़े और घोर जंगलके बदले निकटमें ही एक वस्ती और लोगोंकी चहल-पहल दीख पड़ी। लोगोंसे पूछने पर उनको यह जानकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि वे अपनी मनोकामनाके अनुसार सत्यव्रत क्षेत्र (काञ्चीपुरी) में उपस्थित हैं। वे तुरन्त ही अपनी माताके चरणकमलोंमें उपस्थित हुए और उनको प्रणाम कर आदिसे अन्त तक सारी घटना बतलाये। बुद्धिमती जननीके परामर्शसे रामानुजने यह सारा वृत्तान्त कांचीपुर निवासी परम भक्त शूद्र शबर जातीय कांचीपूर्ण बतलाया। उन्होंने रामानुजका पूर्ण आत्म वृतान्त सुनकर कहा—'तुम बड़े सौभाग्यशाली हो। स्वयं लक्ष्मी और नारायणने ही व्याध द्वपतिके रूपमें तुम्हारी रक्षाकी है और तुम्हारा दिया हुआ तीन अञ्जलि जल पान करके तुम्हारी सेवा स्वीकार की है। तुम प्रतिदिन उसी वरदराजकी सेवा करना।' रामानुज कांचीपूर्णके उपदेशानुसार वरदराजकी सेवा करने लगे।

❑ (क्रमशः)

—विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर।

शरणागति

दैन्य-अपराधात्मक

[ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर]

सदा पापरत मेरा जीवन, नहीं पुण्यका लेश।

औरोंको उद्विग्न किया बहु, दिया जीवको क्लेश।।

निज-सुखको नहीं किया पापभय, निर्दय, स्वार्थ समाया।

पर-सुखमें दुःख, मिथ्याभाषी, पर-दुःखमें सुख पाया।।

बहु कामना हृदयमें मेरे, क्रोधी, दम्भ-परायण।

विषय विमोहित, मन्दोन्मत्त नित, हिंसा-गर्व-विभूषण।।

सुकृत-विरत, निद्रालसमें रत, मैं कुकार्य-उद्योगी।

शठता करूँ प्रतिष्ठा कारण, लोभी, कामी, भोगी।।

ऐसा दुर्जन, सज्जन-वर्जित, अपराधी अतिशय नित।

भजूँ अनर्थ, सुकार्य-शून्य हो, नाना दुःख-निपीड़ित।।

वृद्ध हुआ निरूपाय, आकिञ्चन, दीन, सदा अस्थिर मन।

भक्ति विनोद नाथ-चरणोंमें करता दुख निवेदन।।

श्रीगौराङ्ग-सुधा

—श्रीपरमेश्वरी ब्रह्मचारी

दो चारों पर कृपा

अब तो निमाईने चलना भी सीख लिया। इसलिए सारा दिन दूसरे बच्चोंके साथ यहाँ-वहाँ घूमते हुए शरारतें करते रहते हैं। किसीके घरमें घुसकर भात खा लेते हैं तो किसी घरमें रखा हुआ दूध दही चुराकर खा लेते हैं और यदि किसीके घरमें कुछ नहीं मिला तो गुस्सेमें घरमें रखे हुए मिट्टिके वर्तनोंको ही तोड़ डालते हैं। किसीके घरमें बच्चा सो रहा है तो उसे रूलाने लगते हैं, जब घरके लोग आ जाते हैं तो सभी बच्चे वहाँ से गायब हो जाते हैं। और यदि कभी किसीके पकड़में आ जाते तो बचनेका उपाय न देखकर बड़ी चतुरताके साथ उसके पैर पकड़ लेते तथा कहते-भैया आज मुझे छोड़ दो, मै तुम्हारी कसम खाता हूँ दोबारा तुम्हारे घरमें चोरी करने नहीं आऊँगा। उनकी ऐसी बुद्धिको देखकर सभी आश्चर्यमें पड़ जाते थे तथा गौरसुन्दरको अपनी गोदीमें लेकर लाड़-प्यार करने लगते थे।

एक दिनकी बात है। वे अकेले ही घूमते-घूमते अपने घरसे बहुत दूर चले गये। उसी समय दो चोरोंकी दृष्टि उन पर पड़ी तो उनके शरीरमें धारण कराये गये अलंकारोंको देखकर उनके मनमें लोभ जग गया तथा दोनों ही उन्हें हरण करनेकी योजना बनाने लगे। इसलिए दोनों ही श्रीगौरसुन्दरके पास गये।

चोर (बड़े प्यार से)—अरे बेटा! तुम अभी तक कहाँ थे, तुम्हें तुम्हारे घरके लोग कितनी देर से खोज रहे हैं, घरमें सभी लोग तुम्हारे लिए चिन्तित है। चलो हम तुम्हें तुम्हारे घरमें पहुँचा देते हैं।

गौरसुन्दर (मन ही मन मुस्कराते हुए)—बहुत अच्छा! मैं रास्ता भूल गया मुझे मेरे घर पहुँचा दो।

ऐसा कहकर उनके कन्धे पर बैठ गये। अब तो चोरोंकी प्रसन्नताकी सीमा ही नहीं रही क्योंकि उन्हें भय था कि यदि बच्चा रोया या चिल्लाया तो वे मुसीबतमें फँस जायेंगे, परन्तु गौरसुन्दर हँसते-हँसते जानेके लिए तैयार हो गये। इसलिए वे जल्दी-जल्दी गौरसुन्दरको कन्धेमें उठाकर जाने लगे। रास्तेमें उस समय बहुत लोग आ जा रहे थे, परन्तु किसीको भी उन पर शक नहीं हुआ। सभी लोग समझ रहे थे कि कोई अपने बच्चेको ले जा रहे हैं। बीच-बीचमें वे गौरसुन्दरको सन्देश भी दे रहे थे। वे दोनों चोर मन ही मन विचार करते अपने स्थानको जा रहे थे—मैं ताड़ व बाला लूँगा, मैं गलेका हार लूगाँ। इस प्रकार चलते-चलते वे बहुत दूर आ गये। उधर निमाईको घरमें तथा आस-पड़ोसमें न पाकर जगन्नाथमिश्र, शचीमाता तथा अन्यान्य लोग चारों ओर खोजने लगे। जलके बिना मछलीकी जो अवस्था होती है, ठीक वैसी ही अवस्था उनकी हो गयी। रोते-बिलखते हुए सभी लोगोंने भगवानकी शरण ली। उधर चोर तो आनन्दर्श्वक गौरसुन्दरको अपने घरकी ओर ले जा रहे थे, परन्तु भगवानकी मायासे मोहित होकर रास्ता भूल गये तथा जगन्नाथमिश्रके घरको अपना घर जानकर वहीं पर जा गये। अपना घर आया देखकर अब वे अलंकारोंको हरण करनेकी तैयारी करने लगे।

चोर—बेटा! नीचे उतरो घर आ गया है।

गौरसुन्दर-(हँसते हुए)—हाँ-हाँ मुझे नीचे उतारो। मेरा घर आ गया है।

ऐसा कहकर नीचे उतरे तथा दौड़कर जगन्नाथ मिश्रकी गोदीमें चड़ गये। अचानक निमाईको कुशलपूर्वक आया हुआ देखकर चारों ओर खुशीकी लहर छा गई तथा सबने उन्हें घेर लिया। इधर दोनों चोरों हक्के-बक्के रह गये। उन्हें कुछ भी सूझ नहीं रहा था, कि यह क्या हुआ। हम अपने घरका रास्ता भूलकर यहाँ कैसे आ गये। अब वे भयभीत हो गये कि हम पकड़े जायेंगे। इसलिए भागनेका अवसर देखने लगे। उन्होंने देखा सभी

लोग आनन्दमें डूबे हुए निमाईको घेरे हुए हैं, किसीका भी ध्यान उनकी ओर नहीं है, इसलिए उपयुक्त अवसर जानकर दोनों वहाँसे जान बचाकर भागे। भागते-भागते आपसमें कहने लगे—आज अवश्य ही हम पर किसीने जादू कर दिया। यह तो चण्डीदेवी है—जिनकी कृपासे जान बच गई। इस प्रकार वे महासौभाग्यवान चोर जिनके कन्धे पर स्वयं भगवान ने आरोहण किया, अपने को सुरक्षित देखते-देखते बहुत प्रसन्न हुए।

इधर कुछ देरबाद सभीने विचार किया जो निमाईको लेकर आया उसे पुरस्कार देना चाहिए। इसलिए सभी लोग इधर-उधर पूछने लगे परन्तु कोई भी "हाँ मैं लाया हूँ" नहीं बोला। इतनेमें एक व्यक्ति बोला—मैंने देखा कि दो लोग निमाईको अपने कन्धेपर यहाँ तक छोड़कर चले गये। तब सभी लोगोंने निमाईसे ही पूछा।

जगन्नाथमिश्र—बेटा निमाई! तु कहाँ चला गया था, तथा तुझे यहाँतक कौन छोड़ गया?

निमाई—मैं गंगा स्नान करनके लिए गया था, परन्तु लौटते समय रास्ता भटक गया तथा नगरमें यहाँ-वहाँ घूम रहा था। उसी समय मेरे पास दो आदमी आये। उन्होंने मुझसे बड़े प्यारसे कहा—हम तुझे तेरे घर पहुँचा देंगे, ऐसा कहकर मुझे अपने कन्धे पर बैठाकर घूमाते-फिराते हुए यहाँतक छोड़ गये। यह सुनकर वहाँपर उपस्थित सभी लोग कहने लगे कि शास्त्रोंमें सत्य ही कहा गया है कि शिशु वृद्ध एवं अनाथ लोगोंका भगवान स्वयं रक्षा करते हैं। इस प्रकार भगवानकी मायासे मोहित होनेके कारण कोई भी श्रीगौरसुन्दरको पहचान नहीं पा रहा था। सभी उन्हें एक साधारण बालक मान रहे थे। यही भगवानकी महिमा है उनकी इच्छाके कोई भी उन्हें नहीं जान सकता।

अलक्षित रूपमें अपनी भगवत्ता प्रकाशित

इस प्रकार जगन्नाथ मिश्रके घरमें श्रीगौरसुन्दरके अनेक प्रकार से अपनेको गुप्तरूपसे प्रकाशित करते थे, परन्तु फिर भी काई उन्हें पहचान नहीं पाता था। एक दिन श्रीजगन्नाथ मिश्रने निमाईको बुलाया तथा उनसे अपनी पुस्तक मंगबाई। पिताजीका आदेश पाकर दौड़ते हुए जब घरके भीतर गये तो नुपुरकी "रूणुझुनु-रूणुझुनु" आवाज सुनाई पड़ी। उस आवाजको सुनकर शचीमाता एवं जगन्नाथ मिश्र दोनों आश्चर्यचकित होकर चारों ओर देखने लगे तथा विचार करने लगे कि हमारे पुत्रके पैरोंमें नुपुर तो नहीं हैं, परन्तु आवाज कहाँसे आ रही है। अभी वे इसपर विचार ही कर रहे थे कि श्रीगौरसुन्दर पुस्तक लेकर आये तथा मिश्रको देकर खेलनेके लिए चले गये। कुछ देरके बाद जब वे दोनों घरके अन्दर गये तो उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा क्योंकि घरमें अत्यन्त सुन्दर चरण चिन्ह थे जिनपर ध्वज, बज्र, अंकुश एवं पताका आदि अंकित थे। उन अपूर्व चरण चिन्होंको देखकर दोनों बहुत आनन्दित हो गये, उनका शरीर पुलकित हो गया तथा आँखोंसे आनन्दाश्रु प्रवाहित होने लगे। चरण चिन्होंको प्रणाम करते हुए दोनों कहने लगे इन चरण चिन्होंका दर्शनकर हमारा जीवन सफल हो गया तथा अब हमारा पुनः जन्म नहीं होगा क्योंकि शास्त्रोंमें वर्णन है कि यदि कोई एकबार भी भगवानके श्रीचरणकमलोंका दर्शन करता है तो सहज ही उसकी मुक्ति हो जाती है—

तावद् भ्रमन्ति संसारे मनुष्या मन्दबुद्धयः।
यावद् रूपं न पश्यन्ति केशवस्य महात्मनः॥

(विष्णु धर्मोन्तर)

अर्थात् हे महात्मन्! मन्द बुद्धि मनुष्य तभी तक इस संसारमें भ्रमण करते रहते हैं, जब तक कि भगवानका दर्शन नहीं कर लेते। इसलिए श्रीजगन्नाथ मिश्र शचीमातासे बोले—ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे घरमें जो दामोदर शालग्राम है, वही साक्षात् रूपमें हमारे घरमें घूमते हैं और

इसीलिए हमें नुपुरकी ध्वनि भी सुनाई पड़ती है। अतः आज तुम अच्छी प्रकारसे घी डालकर परमान्न (खीर) बनाओ मैं आज उन्हें पञ्चामृत स्नान कराकर भोग लगाऊँगा। इस प्रकार दोनों आनन्दपूर्वक शालग्रामकी पूजा करने लगे तथा श्रीगौरसुन्दर यह सब देखकर मन ही मन हँसने लगे। इस प्रकार श्रीगौरसुन्दर नाना प्रकारकी लीलाएँ करते थे। ❑

दो नावमें पाँव

साधु लोगोंके मुखसे प्रायः यह सुना जाता हैं कि दो नावोंमें पाँव मत रखो, ऐसा करनेसे नदीमें अगाध जलमें डूब जाना पड़ेगा। जिस समय दो नाव नदीमें एक साथ चल रहे हों और उस समय यदि कोई अपना एक पाँव एक नावमें और दूसरा दूसरे नावमें रख दे, किन्तु नदीके प्रबल प्रवाहमें जब दोनों नावोंको अकस्मात् अलग-अलग जाएँगे, तब सम्भवतया उस व्यक्तिको अपने प्राण गँवाने पड़ सकते हैं। इधर और उधर दोनोंको सुरक्षित रखनेके फेरमें इधरसे भी हाथ धोना पड़ेगा और उधरसे भी। इतना ही नहीं अन्तमें भयानक विपत्तिमें पड़ जाना पड़ेगा।

बहुत-से लोग यह कहते हैं कि संसार भी करो और हरि भजन भी करो; हाथोंसे काम करो और मुखसे हरिनाम करो। किन्तु ये विचार दो नावोंमें पाँव रखनेके समान है। संसार भी करूँगा और भगवानका भजन भी करूँगा, यह असम्भव है। संसारमें रहकर हरिभजन हो सकता है, किन्तु वह कृष्णका संसार होगा, मायाका संसार नहीं। मायाके संसारमें रहकर हरिभजन नहीं होता है और कृष्णके संसारमें रहने पर मायाका भजन नहीं होता है। कृष्णके संसारमें सभी कार्य कृष्णके नाम-गुण कीर्तनके लिए होते हैं, कृष्णकी इन्द्रियतृप्तिके लिए होते हैं, अपने भोग या त्यागके लिए कभी नहीं होते। केवल बाह्यतः संन्यासी, गृहस्थ या वैरागीका वेश रच लेनेसे ही हरिभजन नहीं होता। जिस कार्यसे हरिको सुख प्रदान करना होता है, उससे ही हरिभजन होता है। जीवोंके प्रति दया, श्रीनामके प्रति रुचि और वैष्णवकी सेवाके लिए श्रीगुरु-वैष्णवके अनुगत होकर सभी अवस्थाओंमें समस्त इन्द्रियोंके द्वारा समस्त कार्य करनेपर ही कृष्णके संसार धर्मका पालन या हरिभजन होता है। जो लोग कुछ कार्य कृष्णके भोगके लिए और कुछ कार्य अपने लिए करनेकी चेष्टा करते हैं, उनकी यह चेष्टा दो नावोंमें पाँव रखनेके समान है। शुद्धभक्तगण समस्त कार्य श्रीहरिसेवाके लिए करते हैं। यहाँ तक कि उनके मलमूत्र-त्याग प्रभृति कार्य भी कार्य भी उनके भोगके लिए न होकर हरिसेवाके अनुकूल कार्यके रूपमें ही अनुष्ठित होते हैं। उनके भोजन, शयन, भ्रमण, अर्थोपार्जन आदि समस्त कार्योंका मूल उद्देश्य है—हरिसेवा। किन्तु यदि कोई कपटतापूर्वक अपने भोगके लिए इन सभी कार्योंको करता है और मुखसे अथवा मन-ही-मन यह कहता है कि हरिसेवाके लिए ही मैं ये सब कर रहा हूँ, तो हरिसेवा नहीं हैं। प्रकृत गुरु और वैष्णवगण इस प्रकारककी कपटताको जान लेते हैं। लोगोंकी आँखोंमें धूल झोकने से और आत्मवञ्चना करनेसे कुछ ही दिनोंमें उसे विपत्तिके गर्तमें गिर जाना पड़ेगा अर्थात् मायानदीमें डुबकर प्राणसे हाथ धोने पड़ेंगे। इसलिए एकमात्र उस नावपर चढ़कर दुस्तर भवसागरसे उत्तीर्ण होनेकी चेष्टा करना ही बुद्धिमानोंका कार्य है, जिसके कर्णधार साधु-गुरु हैं।

जगाइ बले, यदि एकनिष्ठ ना हइबे।
दुई नाचे नदी पारेर दुर्दशा लभिबे।।

❑

कलियुगमें श्रीकृष्णनाम जप साधना

—डा० सत्यपाल गोयल

गोपाल पूर्व तापनी श्रुतिमें उनके गोपवेश तथा लीलाओंका इस प्रकार वर्णन है—

गोपवेशेमभ्रामं तरुणं कल्प द्रुभाश्रितम्
तदिह श्लोकका भवन्ति
सत्यपुण्डरीक नयनं मेधामं वैद्युतम्बरम्
द्विभुजं ज्ञान मुद्राख्यं वनमाली श्वरम्
गोपगोपांगनांवीतं सुर द्रुमतलाश्रितम्
दिव्यालंकारणोपेतं रत्नपंकज मध्यगम्
कालिन्दी जल कल्लोल सङ्गिमारूत
स ं वितम्
चिन्तयंश्चेतसा कृष्ण मुक्तोवति संसृतेः

(१/२)

गोपाल पूर्व तापनीमें परमब्रह्म श्रीकृष्णके नराकृत्त स्वरूपका उक्तानुसार वर्णन मिलता है उन्हीं परमब्रह्म श्रीकृष्णको नरके समान लीला करते देखकर अज्ञानीजन उनको मनुष्य मात्र समझते हैं। यथा—

अवजानन्ति मां मूढ़ा मानुषीं तनुमाश्रितम्

(श्रीगीता ९/११)

भगवान कृष्णके अव्यक्त, निर्गुण और निराकार स्वरूपका तात्पर्य यह नहीं है कि उनका रूप ही नहीं है। उनका अव्यक्त रूप इसलिये है कि वे वाणी द्वारा व्यक्त नहीं किये जा सकते। केवल आत्माके द्वारा ही ज्ञेय है। उनका रूप सत्त्व, रज और तम से परे होने से वे निगुर्ण है, उनमें नाशवान तीनों गुणोंका तिल मात्र भी समावेश नहीं है। यदि ऐसा होता तो वे भी मरणधर्मा होते तथा परमब्रह्मकी शाश्वतता पर प्रश्न चिह्न लग जाता। उनका आकार पंच तत्त्वात्मकर (पृथ्वी जल अग्नि वायु तथा आकाश) न होने से वे निराकार है अथवा वे कोई भी आकार धारण करनेमें समर्थ होने से वे निराकार है—यही उनकी शक्तिमत्ता है। इसीलिये वे जन्म नहीं लेते हैं, अवतीर्ण होते हैं। उनकी मायाके प्रभाव से सामान्य लोगोंके मनुष्योंके जन्मकी भाँति दिखलायी पड़ता है। ब्रह्म सूत्रमें उन्हें—

अरूपवत एव हि तत्प्रधानत्वात्

(ब्रह्मसूत्र ३/२/४)

परम हंस परम पण्डितवर्य श्रीबल्देव विद्याभूषण जीने गोविन्द भाष्यमें इस सूत्रकी व्याख्या इस प्रकारकी गयी है—

ब्रह्म विग्रह विशिष्ट नहीं है। अतएव अरूपवत हे। 'रूप' अर्थात् आकार 'वत' अर्थात् 'समान'—रूपके समान नहीं है, यहाँ समानत्व न होकर वे रूप ही है क्योंकि उनके रूपकी तुलनाके लिये इस पांच-भौतिक जगतमें कोई रूप न होनेसे उनको अरूपवत कहा गया है। संसारमें जो रूप दिखायी पड़ता है, वह रूप ही नहीं है क्योंकि उसकी अपनी कोई सत्ता नहीं है। अतएव परम ब्रह्मका ऐसा रूप न होने से वह अरूपवत है।

अतएव उन अनादि रादि गोविन्द जिनमें की सभी कारणोंका अवसान हो जाता है। उनको भौतिक जगतके किसी उपमान से उपमानित नहीं किया जा सकता—

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः
अनादि रादि गोविन्दः सर्वकारण कारणम्

(श्रीब्रह्मसंहिता ५/१)

ऐसे परमब्रह्मकी प्राप्ति या दर्शनके सम्बन्धमें प्रमाण मिलता है कि—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमे वैषवृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणते तनूं स्वाम।।

(मुण्डक श्रुति ३/२/३)

अर्थात् वह परमब्रह्म श्रीकृष्ण न तो बहुत

उन्नत वक्ताको ही प्राप्त होता है और न ही अत्यन्त मेधा शक्ति सम्पन्नको ही प्राप्त होता है। वह शास्त्रोंको बहुत श्रवणकर्ताको भी प्राप्त नहीं होता है। वह जिसको स्वीकार करता है जिस पर कृपा करता है उसीको प्राप्त होता है।

वह गोपकुमार नन्दनन्दन, यशोदासुत राधाहृदय, गोपीजन बल्लभ तो सरल एवं निष्कपट हृदय युक्त किसी ऐसे ऐसे साधक प्रेमीको मिलता है जिसने निष्ठावान होकर उससे पुत्र, सखा अथवा प्रियतमका भावपूर्ण सम्बन्ध बनाया हो तथा समस्त प्रकारकी आसक्तिका त्यागकर नित्य निरन्तर उनके नाम रूप गुण लीला और धामका चिन्तन करता हो—यथा गोपिकानाम्।

राधाजी उनका हृदय है। वे श्याम सुन्दरका विशुद्ध प्रेम है। उनकी कृपाके बिना श्याम सुन्दरका प्रेम पाना असम्भव है। वे अनुरागमयी, कृपामयी जिसपर अपना कृपा हस्त रख दें वही श्यामके अनुरागमें मदमाता रहता है।

उक्त पंक्तियोंमें श्रीकृष्ण तत्वका संक्षिप्त वर्णन किया, गया है। अब श्रीमती राधाजीके विषयमें कुछ लिखनेका यह अधम लेखक प्रयास करेगा। राधाजी क्या हैं, इसकी अनुभूति कुछ कुछ भगवान श्रीकृष्णको ही है—वस्तुतः वे क्या हैं? ये वे ही जानती है। अनेकों साधकों ने, लेखकों ने अपनी लेखनी उठायी परन्तु पूर्ण रूपसे कोई उनके विषयमें नहीं लिख सका। श्रीरूप गोस्वामी पाद तथा जीव गोस्वामीपाद एवं रघुनाथदास गोस्वामी पाद जितना राधाजीके विषयमें जानेते थे, उतना आज तक कोई नहीं सका। उन्हींके ग्रन्थों से यथा सम्भव कुछ लिखनेकी घृष्टता करूँगा।

ब्रह्म संहिताके प्रमाण अनुसार ब्रजकी समस्त गोपियाँ श्रीकृष्णकी स्वरूप शक्तिका प्रकाश है।

आनन्द चिन्मय रस प्रतिभाविताभि
स्ताभिर्य एव निज रूपटया कलाभिः
गोलोक एवं निवसत्य खिलाटमभूता
गोविन्दमं आदि पुरुषं तमहं भजामि

(५/३५)

अर्थात् जो अपने प्रियजनोंके प्रिय हैं तथा समस्त गोलोकवासी उनके निजजन हैं। मधुर रस से ओत प्रोत परम प्रेम प्रसिद्ध अपनी स्वरूप शक्ति रूप व्रज गोपियोंके साथ नित्यधाम गोलोकमें रहते हैं, मैं उन्हीं आदि पुरुष गोविन्दका भजन करता हूँ।

श्रीजीव गोस्वामीजीने अपने श्रीकृष्ण सन्दर्भमें इसकी व्याख्या इस प्रकार की है यथा ताभि श्रीगोपिभिर्मन्त्रे तच्छब्द प्रयोगतः। कलाभिः शक्तिभिः निजरूप तया स्वस्वरूपतया शक्तित्वञ्च तासां पूर्वोक्तोत्कर्षेण परमपूर्ण प्रादुर्भावां सठर्वासामदि लक्ष्मी त्वमेव तदुक्तं तत्रैव"

अर्थात् 'ताभि' शब्द से तात्पर्य श्रीगोपीवृन्द से ही है क्योंकि मंत्रमें गोपी शब्दका उपयोग किया गया है। कलाका तात्पर्य शक्ति है और यहाँ पर निजरूपताको स्वरूप शक्तिके रूपमें ग्रहण किया गया है। उनमें भगवत्तामयी शक्ति है। श्रीव्रजगोपियोंमें लक्ष्मीत्व सिद्ध होता है।

गोपालतापनी श्रीमद्भागवतके (१/७/६) श्लोक की भावार्थ दीपिका टीकामें लिखा है कि सच्चिदानन्द भगवान श्रीकृष्ण हलादिनी सन्धिनी एवं सम्बित शक्तियों से युक्त हैं और जीव अविद्या से ग्रस्त हैं

हलादिन्या संविदाशिलष्टः सच्चिदानंद ईश्वर
स्वविद्यासंवृतो जीवः संक्लेशनिकराकरः

(भावार्थदीपिका १/७/६)

भगवानकी उक्त शक्तियोंके सम्बन्धमें श्रीविष्णु पुराणमें इस प्रकार उल्लेख है—

ह्लादिनी सन्धिनी सन्वितय्येका सर्वसंश्रये
ह्लादता कारी मिश्रात्वयि नो गुणवर्जिते।

(वि–पु. १/१२/६९)

हे कृष्ण आप सर्व सर्वस्य स्वरूप हैं तथा आपकी ही हलादिनी, सन्धिनी और संवित शक्तियाँ हैं किन्तु आपमें सत्व रज और तम नहीं है। इसीलिये आप त्रिगुणातीत हैं।

इन्हीं हलादिनी शक्तिके सम्बन्धमें वेदोंके आत्मस्वरूप उपनिषदोंमें 'राधा' के रूपमें व्याख्याकी गयी है।

'अत्र वृन्दावन नाथस्य कृष्णस्य वामाङ्ग स्थितिः—वामाङ्ग सहिता देवी राधा वृन्दावनेश्वरी'
(श्रीकृष्णोपनिषद्)

अर्थात् वृन्दावन नाथ श्रीकृष्णके वाम भागमें सदैव स्थित रहने से वे श्रीकृष्णकी पट्टमहिषी हैं। वाम अंगमें स्थित होनेसे ही राधाजी वृन्दावनेश्वरी हैं।

अथर्व वेदीय गोपालतापनी उपनिषदमें "अस्यागान्धर्विकामिधा या' सर्व मुख्यत्वमुक्तं अर्थात् वे समस्त गोपियोंमें प्रधान हैं तथा गान्धर्विका हैं। राधाजीका एक नाम गान्धर्विका भी है क्योंकि उनका श्रीकृष्णका एकान्तिक प्रेम है तथा उन्होंने स्वजनोंके प्रप्रत्यक्षमें श्रीश्याम सुन्दर से गन्धर्व विवाह किया है। अतएव वे गान्धर्विका है।

श्वेताश्वर उपनिषदमें भी उनकी तीनों शक्तियोंका इस प्रकार उल्लेख किया गया है—

न तस्य कार्यं करणञ्च विद्यते
न तत समश्याम्यधिकश्य हश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया य।।
(६/८)

उन परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णकी कोई भी क्रिया प्राकृत्त नहीं होती क्योंकि उनका कोई भी करण—हस्तपादादि इन्द्रियाँ प्राकृत्त नहीं होती। प्राकृत करणके बिना ही उनकी अप्राकृत लीलाका कार्य सम्पादित होता है। वे अप्राकृत शरीर से एक ही समय सब जगह विराजमान रहनेमें समर्थ है। भगवान श्रीकृष्णसे किसीके बड़े होनेकी बात तो दूर उनके समान भी कोई दिखायी नहीं पड़ता है। उन परमेश्वरकी तीन शक्तियाँ ज्ञान, बल तथा क्रिया शक्ति (जो संवित सन्धिनी तथा हलादिनी शक्ति) कही जाती है।

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी जीने स्व रचित चैतन्य चरितामृतमें उक्त तीनों शक्तिका तत्व विचार निम्न प्रकार देकर अत्यन्त सहज रूपमें मूढ़ तत्वको समझा दिया गया है।

अनन्त शक्ति मध्ये कृष्णेर तिन शक्ति प्रधान।
इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति ज्ञानशक्ति नाम।।
इच्छाशक्ति प्रधान कृष्णेर इच्छाय सर्वकर्त्ता
ज्ञानशक्ति प्रधान वासुदेव अधिष्ठाता
इच्छा ज्ञान क्रिया बिना ना हय सृजन
तिनेर तीन शक्ति मेलि प्रयञ्य रचन
क्रियाशक्ति प्रधान संकर्षण बलराम
प्राकृत अप्राकृत सृष्टि करेन निर्माण
अहंकारेर अधिष्ठाता कृष्णेर इच्छाय
गोलोक वैकुण्ठ सृजे इच्छाशक्ति द्वाराय
यद्यपि असृज्य नित्य इच्छाशक्ति विलास
तथापि संकर्षण इच्छाय ताहार प्रकाश
(चै.च.म.२०/२५२-५७)

संक्षेपमें भगवान श्रीकृष्णका समस्त लीला विलास इन शक्तिओंके द्वारा ही स्वयं चलता रहता है। इन्हीं तीन शक्तियोंमें तीन शक्तियाँ प्रधान है—चितशक्ति, जीवशक्ति तथा मायाशक्ति। संवित, संधिनी तथा हलादिनी शक्तिके ही तीन प्रकार चित् शक्तिके हैं। इन्हीं शक्तियोंको अन्तरंगा, वहिरंगा तथा तटस्था शक्ति कहा जाता है। अन्तरंगा शक्तिको ही स्वरूप शक्ति कहते हैं—यही भगवान श्रीकृष्णकी सर्व श्रेष्ठ शक्ति 'राधा' जी है। यथा—

राधा पूर्णशक्ति कृष्णपूर्ण शक्तिमान
दुई वस्तु भेद नाहि शास्त्र परमान
भृगमद तार गंध जैछे अविच्छेद

अग्निज्वालते जैछे कभु नाहि भेद
राधा कृष्ण ऐछे सदा एक इ स्वरूप
लीलारस अस्वादिते धरे दुईरूप
(चै.च.आ.४/९७-९८)

अर्थात् श्रीराधा पूर्ण शक्ति हैं तथा श्रीकृष्ण पूर्ण शक्तिमान हैं। शास्त्र प्रमाण अनुसार इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है अर्थात् जो राधा है वही कृष्ण हैं और जो कृष्ण है वही राधा हैं। जिस प्रकार कस्तूरी से उसकी सुगन्ध तथा अग्नि से उसकी दाहकताको एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता। उसी प्रकार राधा और कृष्णको एक दूसरे से न तो अलग किया जा सकता है और न अलग अलग देखा जा सकता है क्योंकि ये दोनों अभिन्न तत्व हैं। केवल अपने भक्त जनोंको आनन्द देनेके लिये उनपर कृपाकर लीला रसका आस्वादन करनके लिये दो रूप धारण किये हैं।

लक्ष्मीगण ताँर वैभव विलासांशरूप
महिषीगण प्राभव प्रकाश स्वरूप
आकार स्वरूप भेद ब्रजदेवीगण
काय व्यूह रूप ताँर रसेर कारण
(चै.च.अ. ४/७८-७९)

लक्ष्मीगण राधिकाके वैभव विलाशरूप हैं तथा महीषीयाँ उनकी प्राभव प्रकाश स्वरूप हैं। ब्रजदेवियाँ श्रीराधाजीकी काय व्यूह स्वरूपा हैं। श्रीकृष्णको रसास्वादन करानेके लिए वे भिन्न भिन्न आकारों और स्वरूपोंमें विभक्त हैं।

देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता
सर्वलक्ष्मी सर्वकान्तिः सम्मोहिनी परा
(वृहत् गौतमीय तन्त्र)

अर्थात् श्रीराधिका जी देवी हैं वे कृष्णमयी हैं, परम देवता है, सर्वलक्ष्मी सर्वकान्ति सम्मोहिनी तथा पराशक्ति (स्वरूप) हैं।

ककारः पुरुषः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः
ई कारः प्रकृत्ति राधा नित्यवृन्दावनेश्वरी
(गौतमीयतंत्र)

'क' ककार का अर्थ है सच्चिदानन्द विग्रह परम पुरुष श्रीकृष्ण तथा ई कार का अर्थ है परम प्रकृत्ति नित्य वृन्दावनेश्वरी राधाजी हैं।

ह्लादिनी सार प्रेम प्रेम सार भाव
भावेर पराकाष्ठा नाम महाभाव
महाभाव स्वरूप श्रीराधा ठाकुरानी
सर्वगुणखानि कृष्णकान्ता शिरोमणि
(चै.च.आदि ४/५९-६०)

भगवान श्रीकृष्णकी ह्लादिनी शक्तिका सार है 'प्रेम' तथा प्रेमका सार है 'भाव'। इस पर भी भावकी पराकाष्ठा है 'महाभाव' यह महाभाव केवल महाभाव स्वरूप श्रीमतीराधा ठकुरानीमें ही है वे सम्पूर्ण रूपसे प्रेम स्वरूप है। यथार्थ में राधाजी श्रीकृष्णके प्रेमका साक्षात स्वरूप है। इसीलिये वे श्रीकृष्णकी स्वरूप शक्ति है। कृष्णपूर्ण रूपसे राधाजीमें समाविष्ट हैं और राधाजी श्रीकृष्णमें समायी हुई है जो इनको अलग देखता है या कम आकता है, वह कोटि कोटि महा प्रलयोंकी अवधि तक महा रौरवादि नरकोंमें वास करता है।

राधाजीका 'महाभाव' परिपूर्ण है वह जागतिक वासना युक्त नहीं है। जगतका प्रेम काम अंध होकर शरीर संतुष्टीका साधन मात्र तथा पूर्णतः दैहिक इन्द्रियोंकी वासना पूर्ति तक सीमित है। जिस प्रेममें केवल अपनी इन्द्रियोंकी तुष्टि मात्रका ही उद्देश्य हो वह काम कहलाता है परन्तु जो परमब्रह्म श्रीकृष्णको ही आनन्द प्रदान करनेके लिये होता है वही शुद्ध प्रेम होता है। यह प्रेम ही ह्लादिनी शक्तिका सार है। परमब्रह्म श्रीकृष्ण सत +चित्+आनन्द स्वरूप है उनके इस स्वरूपकी ही तीन शक्तियाँ क्रमशः सत से सन्धिनी तथा चित् से संवित एवं आनन्द से ह्लादिनी शक्तिका परिचय मिलता है और यह ह्लादिनी शक्ति ही उनकी स्वरूप शक्ति राधा है जिनका उल्लेख सभी वेद पुराण

उपनिषद तथ संहिताओंमें मिलता है।

इन तीनों शक्तिका क्रमशः उत्कर्ष है अर्थात् संधिनी से संवितका उत्कर्ष है तथा संवित से ह्लादिनी श क्तिका परम उत्कर्ष है। इस ह्लादिनी शक्तिका प्रेम सार है यह सारत्व ही नित्य सिद्ध वस्तु है तथा भगवानके नित्य सिद्ध परिकरोंमें यह नित्यसिद्ध प्रेम, नित्यसिद्ध है। यह नित्यसिद्ध प्रेम क्रमशः स्नहे, मान, प्रणय, राग, अनुराग भाव तथा महाभावकी ओर बढ़ता है यह भी रूढ़ तथा अधिरूढ़ महाभावके शिखर पर पहुँचता है। यह रूढ़ भाव केवल ब्रज गोपियोंमें ही मिलता है यथा—

एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो
गोविन्द एवं निखिलात्मनि रूढ़भावाः।
वाञ्छन्ति यद्भवभियो मुनयो वयञ्च
किं ब्रह्म जन्मनिरनन्त कथा रसस्य।।

(श्रीमद्भागवत १०/४७/५८)

व्रजमें ब्रजगोपियोंका ही शरीर धारण करना धन्य है क्योंकि अखिल आत्मा श्रीकृष्णके प्रति उनके हृदयोंमें रूढ़ भावमय प्रेम नित्य हैं, ऐसा विशुद्ध प्रेम संसार से भयभीत बड़े बड़े मोक्ष कामियों तथा मुनियोंके लिये भीम सम्भवमें उदित हो इसकी हम वाञ्छा (कामना) रखते हैं। कृष्ण सुख तात्पर्य मय प्रेमकी कामना, लौकिक कामांधमय वासना से ऊपर होती है। यदि हमारे हृदयोंमें उनके विशुद्ध प्रेमका प्रकाश न हो तो महाकल्पों तक ब्रह्माके रूपमें अन्य धारण करना भी निरर्थक है।

श्रील रूप गोस्वामी पाद जीने श्रीकृष्णकी महाभाव रूपा, स्वरूप शक्ति राधाजीके विषयमें निम्न प्रकार लिखा है—

अथ वृन्दावनेश्वय्यी कीर्त्यन्ते प्रवरा गुणाः
मधुरे यं नव वयाश्चलापांगो ज्चल स्मिता।
चारू सौभाग्य रेखाढ्या गान्धो मादित माधवा
संगीत प्रवराभिज्ञा सभ्यवाक् नर्म पण्डिता।
विनीता करुणा पूर्णा विदग्धा पाटवान्विता
लज्जा शीला सुमर्यादा धैर्य गाम्भीर्य शालिनी।
सुविलासा महाभाव परमोत्कर्ष तर्षिणी
गोकुल प्रेमा वसतिर्जगत श्रेणी लसद् यशा।
गुर्वार्पित गुरुस्नेहा सखी प्रणपिता वशा
कृष्ण प्रिया वली मुख्या सन्तताश्रव केशवा।
बहुना किं गुणा स्तस्या संख्यातीता हरेरिव।

(उज्ज. नील. कृष्ण बल्लभा प्रकरण)

राधिकाजी सर्वदा नव नवाय परम मधुर यौवन से युक्त हैं तथा उनका स्वरूप प्रेममय है। उनके नयन अत्यन्त चंचल हैं तथा अपांग तथा कटीले हैं। उनकी हँसी से भी मधुरता टपकती है। उनके अंगों से इतनी मनमोहक गंध निकलती रहती है जो बलात् श्यामसुन्दरको अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। उनकी मुखकान सौभाग्य चिह्नोंसे युक्त है। राधाजी संगीत विशारद हैं। उनके समक्ष सरस्वतीका वीणा वादन भी तुच्छ हैं क्योंकि समस्त संगीतज्ञोंकी अग्रणी हैं। इनकी वाणी रम्या है। इनके वचनोंमें पाण्डित्य हैं वे विदग्धा हैं। विनयशील हैं। सभी पर कृपा करती हैं। वे अपने सभी कार्य दक्षता से पूर्ण करती हैं। अत्यन्त लज्जाशील हैं। इतनी लज्जावान है कि उनके आस पासकी कलियाँ भी लज्जा से धरामुखी हो जाती हैं। सुमर्यादित हैं। परम धैर्यशालिनी तथा गम्भीर स्वभाव है उनका। सुविलासित हैं। उनमें महाभावका परम उत्कर्ष हैं, प्रेमके उन्नत शिखरको स्पर्श करती हैं। उस गोकुल में वास करती हैं जहाँ चारों ओर प्रेम ही प्रेम व्याप्त है सभीके हृदय प्रेमसे परिपूर्ण हैं। उनका पश अनन्त कोटि ब्राह्माण्डोंमें व्याप्त हैं। वे अपने गुरुजनोंकी सेवा उनके अनुकूल होकर करती है। इसीलिये सभी गुरुजन उनको स्नेह करते हैं। जितनी व्रजगोपियाँ श्रीकृष्णको प्रेम कराती है उनकी ये प्रधाना हैं। ये अपनी सखियोंके प्रेमके वशीभूत हैं। ये अपने प्राण प्रियतम श्रीश्यामसुन्दरके गुण श्रवणकी ही इच्छा रखती हैं अर्थात् श्यामसुन्दरके

अतिरिक्त किसी और में उनका चित्त नहीं है। जिस प्रकार श्रीकृष्ण अनन्त कोटि गुणोंकी खान हैं, राधाजी भी उसी प्रकार अनन्त गुण शालिनी हैं—उनके गुणोंका वर्णन कहाँ तक किया जाये।

श्रीराधारूप लावण्य गुणादीन्वुक्तुमक्षमः
त द्रुपादि माहात्म्यं य लज्जेऽहमपि नारद।
त्रैलौक्येतु समर्थो हि न मांतु वस्तु र्महति
तद्देह रूप माधुर्य जगन्मोहन मोहनम्।
य धनन्त मूखोऽपिस्यांतद्वस्तु नास्ति मे गतिः
लक्षशः कमला दास्यो यस्यासा लाक्षकी मता
एव शत सहस्त्राणामीश्वरी राधिका परा।

(पद्मपुराण /६२ अध्याय)

आशुतोष शिवजी नारदजी कह रहे हैं कि हे नारद! श्रीकृष्ण प्रिया राधाजीके रूप यौवन एवं उनकी सुन्दरता एवं गुणोंका वर्णन करनेमें नितान्त असमर्थ हूँ। मैं उनके रूप से सम्बन्धित विविध महात्मयों से लज्जित हूँ। तीनों लोकोंमें माताके विषयमें कोई कुछ भी कहनेमें समर्थ नहीं है। राधाजी इतनी रूपवती हैं कि तीनों लोकोंको मोहित करनेवाले प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण स्वयं उनके रूप पर मोहित हैं। यदि मेरे करोड़ों मुख भी हो जायें तो भी मैं राधाजीके गुणोंका वर्णन नहीं कर सकता। करोड़ों ब्रह्मा और शंकर आदि ने वर्णन किया है कि लाखों-लाखों लक्ष्मी उनकी दासी हैं तथ हजारों ईश्वरोंकी ये पराशक्ति हैं।

(क्रमशः)

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ-जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

वैकुण्ठ-वार्त्तावह

बृहत्-मृदङ्ग

श्रीभागवत-पत्रिका

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना।।

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।।

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः।।

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र।।
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश।।

वर्ष ४४ } श्रीगौराब्द ५१४
वि. सं. २०५७ चैत्र मास, सन् २०००, १९ अप्रैल— १८ मई { संख्या ३

अनुराग-वल्ली

[श्रील-विश्वनाथ-चक्रवर्त्ति-ठाकुर-विरचिता]

देहार्वुदानि भगवन्! युगपत् प्रयच्छ वक्त्रार्वुदानि च पुनः प्रतिदेहमेव।
जिह्वार्वुदानि कृपया प्रतिवक्त्रमेव नृत्यन्तु तेषु तव नाथ! गुणार्वुदानि।।१।।

हे भगवान्! आप कृपाकर मुझे एक साथ अरबों शरीर दीजिये और उनमेंसे प्रत्येक शरीरमें अरबों मुख और प्रत्येक मुखमें एक-एक अरब रसनाएँ प्रदान कीजिये। हे प्रभो! दूसरी प्रार्थना यह है कि मेरी उन अरब रसनाओं पर आपकी अरबों गुणावलियाँ सदा-सर्वदा नृत्य करती रहें।।१।।

किमात्मना यत्र न देहकोट्यो देहेन किं यत्र न वक्त्रकोट्यः। वक्त्रेण किं यत्र न कोटि जिह्वाः किं जिह्वया यत्र न नामकोट्याः।।२।।
आत्माऽस्तु नित्यं शतदेहवर्त्ती देहस्तु नाथास्तु सहस्त्रवक्त्रम्। वक्त्रं सदा राजतु लक्षजिह्वं गृह्णातु जिह्वा तव नामकोटिम्।।३।।
यदा यदा माधव! यत्र यत्र गायन्ति ये ये तव नामलीलाः। तत्रैव कर्णायुतधार्यमाणास्तास्ते सुधा नित्यमहं धयानि।।४।।
कर्णायुतस्यैव भवन्तु लक्षकोट्यो रसज्ञा भगवंस्तदैव। येनैव लीलाः श्रृणवानि नित्यं तेनैव गायानि ततः सुखं मे।।५।।
कर्णायुतस्येक्षणकोटिरस्या हृत्कोटिरस्या रसनार्वुदं स्यात्। श्रुत्वैव दृष्ट्वा तव रूपसिन्धु–मालिंग्य माधुर्यमहो! धयानि।।६।।
नेत्रार्वुदस्यैव भवन्तु कर्णनासारसज्ञा हृदयार्वुदं वा। सौन्दर्य–सौस्वर्य–सुगन्धपर माधुर्य–संश्लेष–रसानुभूत्यै।।७।।
त्वत्पार्श्वगत्यै पदकोटिरस्तु सेवां विधातुं मम हस्तकोटिः। तां शिक्षितुं स्तादपि बुद्धिकोटि–रेतान् वरान्मे भगवन्! प्रयच्छ।।८।।
अनुवाद—

हे प्रभो! जिस शरीरमें करोड़ों–करोड़ों शरीर नहीं हैं, वैसे शरीरकी क्या आवश्यकता है? जिस शरीरमें करोड़ों मुख नहीं हैं, वैसे शरीरकी क्या जरूरत है? जिस मुखमें करोड़ों रसनाएँ नहीं हैं, वैसे मुखसे क्या लाभ है? एवं जिस रसनाके ऊपर तुम्हारे 'हरे कृष्ण' आदि करोड़ों नाम विराजमान नहीं रहते, वैसी रसना किस काम की? अतएव आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरे करोड़ों शरीरमें करोड़ों मुख हों और उन करोड़ों मुखोंमें करोड़ों रसनाएँ हों और उन करोड़ों रसनाओं पर सर्वदा आपके करोड़ों नाम नृत्य किया करें।।२।।

हे नाथ! दूसरी प्रार्थना यह है कि मेरी आत्मा सैकड़ों शरीरमें व्याप्त होकर विद्यमान रहे, प्रत्येक शरीरमें हजार–हजार मुख हो जायँ तथा मेरे शरीरमें लाखों रसनाँए सर्वदा विराजमान हों, जो निरन्तर आपके नाम–समूहका कीर्त्तन करती रहें।।३।।

हे राधानाथ! मेरी प्रार्थना यह है कि आपके जो–जो भक्तजन जिस–जिस समय आपके श्रीविग्रहके निकट अथवा जहाँ कहीं भी आपके नाम और आपकी लीला–कथाओंका कीर्त्तन करें, मैं उन सभी स्थानोंमें उपस्थित होकर करोड़ों कर्णोंसे उस लीला–सुधाका निरन्तर पान कर सकूँ।।४।।

जिस समय करोड़ों कर्णोंसे आपके नाम और लीला–सुधाका पान करूँ, उस समय मेरे करोड़ों कर्णोंमें लाख–करोड़ रसनाएँ हो जायँ, जिससे करोड़ों कर्णों द्वारा आपकी मधुर लीला–कथाओंका श्रवण करते–करते और लाख–करोड़ रसनाओं द्वारा आपकी लीला–कथाओंका कीर्त्तन करते–करते परमानन्दमें विभोर हो जाऊँ।।५।।

उन करोड़ों कानोंके करोड़ों नेत्र, करोड़ों नेत्रोंके करोड़ों हृदय, करोड़ों हृदयोंकी करोड़ों रसनाएँ हों। हे प्रभो! उन करोड़ों कर्णोंसे आपके रूप–सागरकी महिमाका श्रवण करूँ, करोड़ों नेत्रोंसे उस रूपका दर्शन करूँ, करोड़ों हृदयोंमें उस रूपका आलिंगन करूँ और अर्बुद रसनाओंसे उसका माधुर्य पान करूँ।।६।।

हे प्रभो! आपकी रूपमाधुरीका पान करनेके लिये मेरे करोड़ों नेत्र हों, आपकी सुमधुर कण्ठ–ध्वनि श्रवण करनेके लिये मेरे अरबों कर्ण हों, आपके श्रीविग्रहके सौरभ–समूहको ग्रहण करनेके लिये करोड़ों नासिकाएँ, माधुर्य–रसानुभूतिके लिये करोड़ों रसनाएँ तथा आपके आलिंगन–रसको अनुभव करनेके लिये मेरे करोड़ों हृदय हों ।।७।।

हे भगवान्! मुझे यह वरदान दीजिये कि आपके समीप गमन करनेके लिये मेरे करोड़ों पैर हों, आपकी आराधना करनेके लिये मेरे करोड़ों हाथ हों और आपकी सेवाकी शिक्षा ग्रहण करनेके लिये मेरी करोड़ों बुद्धियाँ हों।।८।। ❑

मात्सर्य

—ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

'मात्सर्य' शब्दका अर्थ व निर्मत्सर प्रेम धर्मका अधिकार निर्णय

मात्सर्य शब्दका प्रयोग विभिन्न स्थलोंमें विभिन्न अर्थोंमें होता है। परहितमें द्वेष, परश्रीवृद्धिमें कातरता, असूया (पराये गुणमें दोष लगाना) और ईर्ष्या आदि नाना प्रकारके अर्थ होते हैं। वैष्णव शास्त्रमें जहाँ कहीं भी मात्सर्य शब्दका प्रयोग हुआ है, उन सभी स्थानोंमे ऐसा दिखाई पड़ता है कि वह प्रेममे विरुद्ध भावका द्योतक है। "धर्मः प्रेमज्झित-कैतवोऽत्र परमोनिर्मत्सराणां सतां" —श्रीमद्भागवतके इस श्लोकमें परम धर्मके अधिकारीका स्वरूप बतलाया गया है। प्रेम-रस ही इस शास्त्रका निर्दिष्ट परम धर्म है। जो निर्मत्सर हैं, वे ही इस प्रेम-रसरूप परम धर्मके अधिकारी हैं। मात्सर्यका अभाव ही निर्मत्सरता है। यद्यपि टीकाकारोंने दूसरोंके सुखमें दुःखी और दूसरोंके दुःखमें सुखी होनेको मत्सरता कहा है, तथापि इस शब्दका अर्थ विस्तारपूर्वक बतलाना आवश्यक है, अन्यथा वह सबके लिये बोधगम्य नहीं है।

काम-क्रोध आदि षड्-रिपु और उनकी उत्पत्तिका कारण

अविद्यामें पड़े हुए जीव षड्रिपुके दुर्भेद्य बंधनमें जकड़े हुए हैं।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य इन छहोंको एक साथ षड्रिपु या षड्वर्ग कहते हैं। ये अविद्या, अस्मिता, (मैं मेराका अभिमान), आसक्ति (अभिनिवेश), राग और द्वेषरूप पंचक्लेशके रूपान्तर हैं। जड़वस्तुमें आसक्तिसे काम उत्पन्न होता है। कामके सम्बन्धमें श्रीमद्भगवद् गीतामें कहा गया है—

सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधऽभिजायते।।
क्रोधद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धि नाशात्प्रणश्यति।।

(गीता २/६२-६३)

विषयोंमे आसक्तिसे काम उत्पन्न होता है, फिर कामसे क्रोधकी उत्पत्ति होती है, क्रोधसे सम्मोह अर्थात् अन्याय रूपमें विषय लोभ, विषय लोभसे स्मृति-भ्रम अर्थात् मोह, मोहसे बुद्धिनाश अर्थात् हिताहित विवेक शून्यतारूप मद, मदसे विनाश अर्थात् जीवकी स्वरूप-विकृतिरूप मात्सर्य होता है।

रिपुओंको दमन करनेका उपाय

गीतामें इस षड़रिपुको दमन करनेका उपाय बतलाया गया है—

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबहो कामरूपं दुरासदम्।।

(गीता ३/४३)

बुद्धिसे भी अतीत (परे) जो चिद्घन जीव है, उसकी उपलब्धि करके निश्चयात्मिका सिद्धान्त द्वारा मनको वशीभूत करके दुर्विजेय कामरूप शत्रुको जय करो।

दूसरे सभी रिपु मात्सर्यके ही अन्तर्गत हैं

श्रीगीताके इस उपदेशसे यह स्पष्ट है कि स्व-स्वरूपके भ्रमसे कामरूप अंकुर पैदा होता है, फिर वही अंकुर क्रमशः मात्सर्यरूप वृक्षका रूप धारण कर कृष्ण-प्रेमरूप जीवके नित्यधर्मको चारों ओरसे ढक लेता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद—ये पाँचों मात्सर्यके अन्तर्भूत हैं। क्रोधमें काम है। लोभमें क्रोध और काम है। मोहमें लोभ, क्रोध और काम है। मदमें मोह, लोभ, क्रोध और काम है। मद शब्दसे धनमद, रूपमद, जातिमद विद्यामद

आदि छः प्रकारके मदोंको ही समझना चाहिये।

मात्सर्य ही सब प्रकारके क्लेशोंकी जड़ है

जीवके समस्त प्रकारके क्लेश, अविद्या, पाप-वासना और पाप तथा पुण्यवासना और पुण्य—ये सबके सब मात्सर्यके अन्तर्गत हैं। जीवके प्रति दया, 'नाममें रुचि', एवं वैष्णव-सेवा—यह वैष्णवधर्म एक तरफ है एवं मात्सर्य दूसरी तरफ है। जो दूसरोंके सुखमें दुःखी होते हैं, वे जीवों पर दया नहीं कर सकते।

भगवानके प्रति भी उनकी दृष्टि नहीं जाती। वैष्णवोंके प्रति उसकी स्वाभाविक अज्ञानताजनित घृणा या द्वेषका भाव रहता है।

मत्सरतासे रहित व्यक्ति ही तृणादपि श्लोकका तात्पर्य ग्रहणमें समर्थ होते हैं

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः।।

(शिक्षाष्टक-३)

मात्सर्यरहित व्यक्तिके अन्दर धनमद, रूपमद, जातिमद, विद्यामद और जड़ीय बलमद— इनमें से एक भी अहंकार नहीं होता, अतएव वे अपनेको तिनकेसे भी तुच्छ मानते हैं। उनमें क्रोध, जल्दीबाजी और पर-हिंसा नहीं होती। यही कारण है कि वे वृक्षसे भी अधिक सहिष्णु अर्थात् परम दयालु होते हैं। जाति-विद्या आदि मदोंसे रहित निर्मत्सर पुरुष सर्वगुण-सम्पन्न होने पर भी प्रतिष्ठाकी आशासे शून्य होते हैं, अतएव वे अमानी कहलाते हैं। निर्मत्सर पुरुष दूसरोंके सुखमें सुखी और दूसरोंके दुःखमें दुःखी होते हैं, इसलिये सब जीवोंको वे यथोचित सम्मान देते हैं। साधारणतः दयाके द्वारा सब जीवोंका सम्मान करते हैं। ब्राह्मण और वैष्णवप्राय सभ्य जीवोंकी सम्मानपूर्वक अभ्यर्थना करते हैं तथा शुद्ध वैष्णवजनोंके चरणोंकी पूजा आदि द्वारा उनकी सेवा करते हैं।

निर्मत्सर पुरुषके १० लक्षण

१. निर्मत्सर पुरुष स्वाभाविक रूपसे ही सन्तोंकी निन्दा नहीं करते।

२. कृष्णमें उनकी अनन्य उपास्य निष्ठा होती है। वे कृष्णको ही सर्वेश्वरेश्वर मानते हैं, दूसरे देवताओंकों कृष्णके दास-दासी मानते हैं, उन्हें स्वतन्त्र देवता नहीं मानते, परन्तु ऐसी मान्यता रखने पर भी वे उन देवताओंकी कभी अवज्ञा नहीं करते।

३. गुरुजनोंके प्रति यथोचित श्रद्धाका भाव रखते हैं।

४. श्रुति आदि भक्ति-शास्त्रोंका सम्मान करते हैं।

५. व्यर्थके तर्कोंसे दूर रहकर नाम और नामीके एकत्वमें विश्वास रखते हैं और एकमात्र श्रीनामको ही परमार्थ-तत्त्व स्वीकार करते हैं।

६. नामके बल पर पापकी प्रवृत्तिको दूर रखते हैं।

७. धर्म, व्रत, त्याग आदि शुभ कर्मोंको नामके समान शुभ नहीं समझते। अर्थात् दोनोंको एक ही श्रेणीमें नहीं मानते।

९. अश्रद्धालु व्यक्तिके हृदयमें श्रद्धा उत्पन्न करनेकी चेष्टा करते हैं, किन्तु जब तक उनमें श्रद्धा उत्पन्न नहीं हो जाती, उनको नामका उपदेश नहीं करते।

९. श्रीनामका माहात्म्य जो शास्त्रोंमें लिखा है, उस पर सम्पूर्ण रूपमें विश्वास करते ह।

१०. जड़ शरीरमें "मैं और मेरा" रूप अहंकार का त्याग करते हैं।

श्रद्धालु पाठको! निर्मत्सरता ही जीवकी मुक्ति है और मत्सरता ही जीवका बन्धन है। ऐसा जानकर मत्सरताको दूरकर सब प्रकारसे निर्मत्सर होनेकी चेष्टा करनी चाहिए। ऐसा हुए बिना हरिभजन संभव नहीं है। ❑

संत (सज्जन) के लक्षण

—ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर

अप्रमत्त—१८

किसी विषयमें अत्यन्त अधिक मत्त हुए विषयीको 'प्रमत्त' कहते हैं। कृष्णेतर विषयोंके प्रति आकृष्ट होकर बद्धजीव प्रायः प्रमत्त बन जाया करते हैं। निर्विषयी किसी भी जड़ विषयमें प्रमत्त नहीं होते। अतएव जड़-विषयोंके प्रति उदासीन एवं श्रीकृष्णके प्रति उन्मुख व्यक्ति ही अप्रमत्त कहलाते है। संतजन ही एक मात्र अप्रमत्त हैं। विषयी मनुष्योंकी इन्द्रियाँ सर्वदा जड़ीय रूप-रस आदि विषयोंके पीछे-पीछे दौड़ती रहती हैं। इसलिये वे भोगोंको भोगनेमें ही प्रमत्त हो पड़ते हैं। धीरे-धीरे काम, क्रोध, लोभ, मोह और मद उस विषयी मनुष्यका सर्वनाश कर डालते हैं। परन्तु कृष्णैकशरण भगवद्भक्तजन कृष्णसेवामें निरन्तर प्रमत्त रहनेके कारण बाह्य जड़ीय विषयोंके प्रति सर्वथा अप्रमत्त होते हैं।

जीव कृष्णको भूल कर कभी निर्भेद ब्रह्मका अनुसंधान करता है, तो कभी भोगोंको भोगनेके लिये चौदहों लोकोंके भिन्न-भिन्न भोगमय राज्योंमें भटकता फिरता है। इस प्रकार जबतक कृष्ण दया कर उसे अपने प्रति आकर्षण नहीं कर लेते, तब तक बह कृष्णेतर विषयोंमें ही प्रमत्त रहता है।

कभी-कभी जीव नाना-प्रकारके मादक-द्रव्योंका सेवन कर हरि-विमुख जीवन व्यतीत करता है। अफीम, गाँजा, भाँग, नस्य, तम्बाकू, पान, बीड़ी-सिगरेट, चाय और मद्य आदिका सेवन करनेसे सज्जन होनेका पथ बन्द हो जाता है। ऐसे लोग भगवान या भगवत्-प्रसादसे इन नशीली वस्तुओंका अधिक आदर करते हैं। कृष्णके सेवाके अतिरिक्त किसी भी दूसरे विषयमें मत्त होना प्रमत्तका लक्षण है।

मूल तात्पर्य यह है कि संत (सज्जन) व्यक्ति किसी भी कृष्णेतर विषयमें अनुरक्त नहीं होते। वे नित्यकाल अप्रमत्त रहकर हरिसेवा करते हैं।❑

शरणागति

दैन्य—अपराधात्मक

[ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर]

सदा पापरत मेरा जीवन, नहीं पुण्यका लेश।
औरोंको उद्विग्न किया बहु, दिया जीवको क्लेश।
निज-सुखको नहीं किया पापभय, निर्दय, स्वार्थ समाया।
पर-सुखमें दुःख, मिथ्याभाषी, पर-दुःखमें सुख पाया।।
बहुकामना हृदयमें मेरे, क्रोधी, दम्भ-परायण।
विषय विमोहित, मदोन्मत्त नित, हिंसा-गर्व-विभूषण।।
सुकृत-विरत, निद्रालसमें रत, मैं कुकार्य-उद्योगी।
सठता करूँ प्रतिष्ठा कारण, लोभी, कामी, भोगी।।
ऐसा दुर्जन, सज्जन-वर्जित, अपराधी अतिशय नित।
भजूँ अनर्थ, सुकार्य-शून्य हो, नाना दुःख-निपीड़ित।।
वृद्ध हुआ निरूपाय, आकिञ्चन, दीन, सदा अस्थिर मन।
भक्ति विनाद नाथ-चरणोंमें करता दुःख निवेदन।। ❑

सनातन धर्म

[श्रीश्रील आचार्यदेवके भाषणके अवलम्बन पर लिखित]

जीवके नित्य धर्मको सनातन धर्म कहते हैं। 'सदा+तन इति सनातन; 'तन्' का शब्दार्थ 'विस्तार' होता है। जो धर्म सदा-सर्वदा अर्थात् नित्य काल वर्तमान है, वही सनातन धर्म या वैष्णव धर्म है। भगवान् नित्य वस्तु हैं। जीव भी नित्य है, उसका धर्म भी नित्य अर्थात् सनातन होता है। इन तीन तत्वोंका नित्यत्व जिसमें स्वीकृत है, उसे सनातन धर्म कहते हैं।

सनातन धर्मके ऊपर बौद्ध, जैन, इस्लाम, मायावाद और ईसाई आदि अधर्मोंके नाना प्रकारके अत्याचार और उपद्रव हुए हैं। वेद, वेदान्त, भारत, उपनिषद् और श्रीमद्भागवत पुराणादि सनातन धर्मके प्राण-स्वरूप हैं। नास्तिक्यवाद पोषणकारी व्यक्तियोंने इन शास्त्रोंको अस्वीकार करके अनेक प्रकारके अधर्मोंकी सृष्टि की है और जनसाधारणको ईश्वर विश्वासहीन करके पशु-धर्म (आहार, निद्रा, भय, मैथुन) की ओर चालित करनेसे बाज नहीं आये हैं। पाञ्चभौतिक शरीरकी दुःख-निवृत्ति होने पर मनुष्य कैसे निर्वाण लाभ कर सकता है, सुख-दुःख बोधराहित्य अवस्था किस प्रकार लाभ कर सकता है—मायावादियोंने इसकी चेष्टा की है, परन्तु इस प्रयासमें वे वास्तविक रूपमें सफल नहीं हो सके हैं। इसका कारण यह है कि जीव जब तक भगवत् पादपद्म लाभ न कर ले, तब तक वह त्रितापज्वालासे उद्धार नहीं पा सकता। केवल मात्र भगवानकी सेवाके निमित्त सनातन धर्म या वैष्णव धर्म ग्रहण कर श्रीकृष्णकी सेवामें मनको लगा लेनेसे ही संसारके सब प्रकारके अनित्य सुखों और नाना प्रकारके दुःखोंसे छुटकारा पाया जा सकता है। गीतामें कहते हैं—'यान्तिमद्याजिनोऽपि माम्' अर्थात् मरे भक्त ही मुझे प्राप्त होते हैं।

कर्म, ज्ञान, योगादिमें उपास्य, उपासना और उपासकका नित्यत्व स्वीकार नहीं किया गया है। उनका कहना है—"जीव अपने कर्मानुसार सुख-दुःख भोग करता है और अच्छे-बुरे कर्मोंके फल-स्वरूप सुख-दुःख भोगनेके लिये जन्म ग्रहण करता है। यदि वह किसी प्रकार निर्वाण लाभ कर सके, तो उसे पुनर्जन्मके प्रवाहमें नहीं आना पड़ेगा। जन्म ही जब नहीं होगा, फिर उन्हें जागतिक दुःख-सुखसे छुटकारा पानेके लिए साधनकी भी आवश्यकता नहीं रहेगी। फिर भी उस समयके भारत-सम्राट अशोक तथा कन्नौजके अधिपति हर्षवर्धन एवं दूसरे नृपतियोंने भारत व भारतके बाहर बौद्ध धर्मका प्रचार किया था। मध्ययुगमें देखा गया—इस्लाम धर्मावलम्बियोंने इस्लाम धर्म प्रचारके लिये तलवार पकड़ी और उसके बल पर सनातनियोंको बलपूर्वक मुसलमान बनाया।

इसके अतिरक्त उस समयके इस्लामी राजाओंने सनातन धर्म माननेवाले अनेक लोगोंको राज्यकी ओरसे नाना प्रकारकी सुख सुविधाका लोभ दिखाकर भी धर्मान्तरित कर लिया। फिर अंग्रेज भारतके राजा हुए; उन्होंने भी राज्यकी ओरसे अनेक प्रकारके सुयोग-सुविधाओंका प्रलोभन दिखाकर बहुतसे कोमल हृदयके लोगोंको अपने धर्ममें लाया। ये सब धर्म भौतिक धर्म हैं। सभी भौतिक धर्म ध्वंशशील हैं। वे जीवके नित्य धर्म नहीं है। सनातन धर्मकी उत्पत्ति नहीं है, इसलिये यह अज व नित्य धर्म है। इस धर्मका जन्म-काल कोई निरूपण (निश्चय) नहीं कर सका है, यह अनादि है। इस कारण इसका विनाश नहीं है।

आचार्य श्रीशंकरने जिस अद्वैतावादका प्रचार किया है, वह मायावाद नामसे परिचित है। उन्होंने वेदको नाममात्रके लिये स्वीकार किया है, क्योंकि उन्होंने वेदके एक-देशीय विचारको ही ग्रहण किया है। इसलिये कहा जा सकता है कि जिस ब्रह्मवादका उन्होंने प्रचार किया है, उसमें ब्रह्मको निराकार,

निर्विकार, निःशक्तिक, निर्गुण, निर्विशेष माना गया है और उसे नेति-नेति रूपमें वर्णन किया गया है। हम ब्रह्मवादको सनातन धर्मके अनुकूल नहीं मानते, क्योंकि ब्रह्मके निराकारत्व, निर्गुणत्व इत्यादि नेति-नेतिवादको शुद्ध वेदान्तिक सनातन धर्मका अंग स्वीकार नहीं करते हैं। आचार्य श्रीशंकरने वेदके स्वाभाविक अर्थको छोड़कर विपरीत अर्थका प्रचार किया है और बहुतोंको अपने कपोलकल्पित पथ पर लाया है। सनातन धर्म ईश्वरके रूप, गुण व लीलाको स्वीकार करता है। भगवानके प्रति सेवाधर्म ही सनातन धर्म या वैष्णव धर्म है। जो भगवानके रूप, गुण, लीलाको स्वीकार नहीं करते और भगवान को निराकार, निर्विकार, निःशक्तिक और निर्गुण प्रचार करते हैं, उन्हें सनातन धर्मावलम्बी सच्चे हिन्दूधर्मी नहीं मानते। मुसलमान और इसाई विग्रह-विराधी हैं। वे हमारे लिये अस्पृश्य हैं। श्रीमन्महाप्रभु कहते हैं—

काशीते पढ़ाय बेटा प्रकाशानन्द।
सेई बेटा करे मोर अंग खण्ड खण्ड।।

(चै. च.)

काशीमें एकदंडी संन्यासियोंके गुरु प्रकाशानन्द थे। वे अद्वैत मतके अनुसार वेदान्त पढ़ाते थे। श्रीमन्महाप्रभु कहते हैं—वह बेटा हमारे अंगको खण्ड-खण्ड करता है। कहनेका अर्थ यह है—मायावाद विचारधाराको ग्रहण करनेवाले जितने भी धर्म प्रचलित हैं, सभी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपमें सनातनधर्मके घातक हैं।

उपरोक्त वेद-विरोधी, शास्त्र-विरोधी धर्मोंके प्रबल अत्याचारके बावजूद आज भी सनातन धर्म अपने स्थान पर अपनी अक्षुण्ण अवस्थामें उसी गौरवके साथ वर्तमान है और आगे भी वर्तमान रहेगा।

भगवान निराकार हैं—यह चिन्ता-श्रोत अनेक अपधर्मोंके अन्दर प्रवेश कर गया है। किन्तु उनके धर्म ग्रन्थोमें भगवानके साकार होनेका सुस्पष्ट उल्लेख देखा जाता है। मुसलमानोंके धर्म-ग्रन्थ कुरानमें एक आयतमें ऐसा लिखा है—"इन्ना लाहा खलाका मेन्सुरात हि।" खुदातालाने अपने रूपके समान मनुष्यकी सृष्टि की है। ईसाईयोंके धर्म ग्रन्थ Bible में लिखा है—"God created men out of his own image.** अतएव देखा जाता है कि प्रत्येक धर्ममें भगवानकी नराकृतिको स्वयंरूप परतत्त्व स्वीकार करते हैं।

भगवानके रूप, गुण, लीलाको अस्वीकार करनेका अर्थ ही है—भगवानको अस्वीकार करना। जिस धर्ममें भगवानके रूप, गुण, लीलाको नहीं माना गया है, उसे सनातन धर्म या भागवत धर्म नहीं कह सकते।

आचार्य शंकरके मायावाद मतमें मुक्तिके सम्बन्धमें जो कुछ कहा है, वह वास्तवमें मुक्ति नहीं है। उनका कहना है—जीव ही ब्रह्म है। अविद्याके कारण मायाग्रस्त होनेसे जीवकी पृथक् प्रतीति होती है। जीव फिर से जब ज्ञान साधन करके सिद्धिको प्राप्त कर लेगा, तब जीवसत्ता ध्वंस होकर ब्रह्ममें लीन हो जायेगी। यह अवस्था एक प्रकारसे आत्म-हत्या है। जीवकी पृथक् कोई स्थिति नहीं है—मुक्तिकी ऐसी अवस्था यदि स्वीकार कर ली जाये, तो जीवकी कोई सार्थकता ही नहीं रह जाती। कारण देखा जाता है, चीनी सभी आस्वादन करना चाहते हैं, चीनी हो जाना कोई नहीं चाहता। चीनीके खानेमें ही आनन्द है, चीनी हो जानेमें कोई आनन्द नहीं है। वास्तवमें भगवानकी सेवा करनेमें ही आनन्द है। निर्विशेष ब्रह्ममें अपनी सत्ता लोप हो जाने पर पत्थरके समान हो जाना पड़ता है, कोई सेवानन्द लाभ नहीं होता, केवल मात्र जीवकी आत्महत्या हो जाती है। निर्विशेषत्व प्राप्त होने पर जीवकी अनुभव-शक्ति लोप हो जाती है। अतः शून्य जड़ जैसी उसकी स्थिति हो गई, चेतन-धर्म लुप्त हो गया। जगतमें देखा जाता है, यदि कोई आत्म-हत्याकी चेष्टा करता है, पुलिस अगर किसी प्रकार खबर पा लेती है, तो वह उसे कारागारमें डाल देती है। कारण वह आत्म विरोधी, समाजद्रोही, पापी है। इसी प्रकार जो भगवानकी सेवा छोड़ कर भगवानमें अपनी सत्ताको लोपकर अनुभव-रहित

पत्थरके समान हो जाना चाहते हैं, वे धर्मजगतमें अपराधी होनेके कारण जन्म-जन्मान्तरों तक भीषण नरक-यंत्रणा भोग करते हैं। इससे प्रमाणित होता है, मायावादी ईश्वरके अपराधी हैं। आचार्य शंकर वास्तवमें सनातन धर्मके प्रचारक थे—ऐसा नहीं कहा जा सकता। उन्होंने मुखसे वेदको स्वीकार किया तो है, परन्तु वास्तवमें वे वेद-विराधी प्रच्छन्न बौद्ध हैं। किन्तु आपात दृष्टिमें ऐसा प्रतीत होता हे कि वे वेद विरोधी-बौद्ध दूर करनेके लिए आविर्भूत हुए थे।

मायावादियोंकी तरह दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रवर्त्तित आर्य समाज भी नाम मात्रको वेद स्वीकार करता है और नाना प्रकारके अशास्त्रीय-वेद-विरोधी कार्यमें लिप्त है। इनकी प्रचार धारा ठीक आचार्य शंकर जैसी प्रतीत होती है, परन्तु वास्तवमें इनमें पर्याप्त रूपमें भेद है। इन अलग-अलग अपधर्मो कुधर्मोंकी उत्पत्ति होने पर भी सनातन वैष्णव धर्म अब भी अपनी विजय पताकाको बड़े शानसे उन्नत किये हुए है।

श्रीश्रीराधाकृष्णकी युगल उपासना ही सनातन धर्म या वैष्णव धर्म है। इस धर्मके उपास्य, उपासना, उपासक नित्य वस्तु हैं। श्रीश्री राधाकृष्णके रूप, गुण, लीलादिका वर्णन और उनके प्रति सेवा-प्रीति करना ही सनातन धर्म या वैष्णव धर्मका मूल प्रतिपाद्य वस्तु है। जिस धर्ममें वस्तु (भगवान) के सेवा-धर्मका नित्यत्व स्वीकार नहीं किया गया है, वह कुधर्म है। वेद, वेदान्त, उपनिषद्, महाभारत और इतिहास, पुराणादिका प्रतिपाद्य तत्त्वही सनातन धर्मका प्रतिपाद्य तत्त्व है। केवल मात्र सनातन धर्म ही हम लोगोंके लिये ग्रहणीय और पालनीय है। जो धर्म जिस मात्रामें सनातन धर्मके अनुगत है, वह धर्म उसी मात्रामें हमारे ग्रहण करने योग्य हो सकता है—यही महाजनों (गुरुजनों) का उपदेश है। स्वयं अवतारी पुरुष श्रीचैतन्यमहाप्रभुने श्रीधाम मायापुरमें आविर्भूत होकर जिस प्रेम-धर्मका प्रचार किया है, उसमें सनातन धर्मका प्रतिपाद्य तत्त्व पूर्णरूपेण निहित है। श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रचारित विमल प्रेम धर्म ही सनातन धर्म है। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुर कहते हैं—

"आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं
रम्या काचिदुपासना ब्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः।।

अर्थात्—स्वयं भगवान नन्दनन्दन श्रीकृष्ण एवं उनका लीला-स्थल वृन्दावन ही हमारे आराध्य हैं, ब्रजकी गोपीयोंने जिस प्रकारसे श्रीश्रीराधाकृष्णकी उपासना की थीं, वही हमारे लिये अभिधेय और ग्रहणीय है। यही श्रीचैतन्य महाप्रभुका मत है और यही केवल आदरणीय है।

श्रीचैतन्यमहाप्रभुके विमल प्रेमकी प्रबल बाढ़में लाखों करोड़ों लोग निमग्न हो गये थे। किन्तु धीरे-धीरे लोग अपने इस पूर्व गौरवको भूलकर पाश्चात्य शिक्षासे प्रभावित होकर विदेशी विचार-धारामें बहते जा रहे हैं तथा नाना प्रकारके कुसंगोमें पड़कर भीषण ईश्वर-विराधी मतवादकी ओर प्रवल वेगसे धावित हो रहे हैं। किन्तु भारतवर्ष धर्म-भूमि है। फिरसे ईश्वर-विश्वासी इश्वरोन्मुखता प्राप्त कर भगवानकी सेवामें नियुक्त होनेसे परम मंगलकी प्राप्ति हो सकती है। धर्म-विश्वास परित्याग करनेसे भारतवर्षका ध्वंस होना अनिवार्य है।

अंग्रेजी व्याकरणमें हम साधारण भूल या Common Erros देखते हैं। जिस प्रकार हम लोगोंके देशमें आकाश-कुसुम एक शब्द है। लेकिन वास्तवमें आकाश-कुसुम कहनेका कोई अर्थ ही नहीं होता है। अथच भाषामें इसका प्रचलन है। धर्म जगतमें इसी प्रकार कुछ Common Erros हैं। इस प्रकार बहुतसे कर्म हैं जो धर्म जैसे प्रतीत तो होते हैं, पर वास्तवमें वे धर्म नहीं हैं। जैसे दान करना, वृक्षादि लगाना, तालाब खोदना, दुखियोंकी सेवा इत्यादिको लोग धर्म कहते हैं, लेकिन शास्त्र कहते हैं—इन सब कर्मोको करनेसे पुण्य अवश्य होता है; भगवत् सेवाकी प्राप्ति या मोक्ष नहीं होता। जैसे श्रीमद्गीतामें कहते हैं—

ते तं भुक्त्वा स्वर्ग लोकं विशालं

क्षीणे पुण्ये मर्त्य लोकं विशन्ति।

अर्थात् मनुष्य वेदोक्त पुण्यादि कर्मोंके फलोंसे विशाल स्वर्ग सुख लाभ करता है, परन्तु धीरे-धीरे पुण्य क्षय होने पर पुनः मृत्यु लोकमें प्रवेश करता है, जन्म-मृत्युसे छुटकारा नहीं पाता है। इसलिये देखा जाता है—दान-पुण्यादि कर्मों द्वारा मनुष्योंको चिर शान्ति या परा शान्तिकी प्राप्ति नहीं होती है। यद्यपि संसारमें इन कर्मोंकी आवश्यकता अनेक स्थलोंमें प्रतीत होती हैं। शास्त्र कहते हैं—परम पुरुषका भजन करनेसे ही पराशान्ति लाभ होती है। गीताका वचन है—

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

धर्म-अधर्म सब कुछ छोड़ कर श्रीकृष्णकी शरण ग्रहण कर लेनेसे सर्व प्रकारसे सनातन धर्मका पालन करना हो जायगा और अन्तमें पराशान्ति भी लाभ हो जायगी। किस धर्मको हमें ग्रहण करना चाहिये—इस सम्बन्धमें सर्व-शास्त्र चूड़ामणि श्रीमद्भागवतका कथन है—

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति।।
धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्।।

इस श्लोकको बङ्गला भाषामें श्रगुरु पादपद्म लिखते हैं—

"सेई धर्म श्रेष्ठ याते आत्म परसन्न।
अधोक्षजे अहैतुकी भक्ति विध्न शून्य।।
अन्य धर्म सुष्ठु रूपे पाले जेई जन।
हरि कथाय रति नैले पंड सेई श्रम।।"

जिस धर्मके पालनसे अधोक्षज हरि अर्थात् अतीन्द्रिय वस्तु श्रीभगवानके प्रति अनन्य भक्ति लाभ होती है, वह कैतवशून्य (कपटताशून्य) वास्तव धर्म ही सनातन धर्म या भागवत धर्म है। उसी धर्मका पालन करना कर्तत्व है। इस धर्मका पालन करनेसे ही हम भगवानको लाभ कर सकते हैं। किन्तु सांसारिक धर्मोंके द्वारा कृष्णभक्ति लाभ नहीं होती है और परा शान्तिकी भी प्राप्ति नहीं होती; संसारमें जितने प्रकारके धर्म हैं, उनका यदि ठीक-ठीक पालन किया भी जाय तो वह—रेतीको पीस कर तेल बाहर करने जैसा व्यर्थ परिश्रम ही हो जाता है। श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थमें श्रीलरूप गोस्वामी लिखते हैं—

अन्याभिलाषिता-शून्यं ज्ञान-कर्माद्यनावृतं।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।।

अभेद ब्रह्मानुसन्धानरूप ज्ञान और स्मार्त क्रिया-कर्मादिको छोड़कर एकमात्र भक्तिके अनुकूल क्रियाओंको ग्रहण कर कृष्णानुशीलन द्वारा ही भक्ति लाभ होती है। केवल भक्ति द्वारा ही भगवानको पाया जाता है। श्रुति प्रमाण—

भक्तिरेवैनं नयति भक्तिरेवैनं दर्शयति।
भक्तिवशः पुरुषो भक्तिरेव भूयसीति।।

अर्थात् भक्ति ही भक्तको भगवानके धाममें ले जाकर भगवानका दर्शन कराती है और भक्ति द्वारा ही भगवत-प्रीति लाभ होती है। साधारणतः यह कहा जा सकता है कि भगवानकी प्रीतिके लिये जो भी किया जाये, उसे भक्ति कहते हैं। इस भगवत् सेवामय सनातन धर्म या वैष्णव धर्मका पालन करनेसे परमानन्द लाभ होता है।

कुछ लोग ऐसा भी कह सकते हैं कि भगवत् सेवामें भी कुछ आनन्द है या नहीं, हम कुछ नहीं जानते। इसका उत्तर यह है कि भगवानकी सेवा करनेसे जिस अप्राकृत आनन्दकी उपलब्धि होती है, वह आनन्द कैसा होता है, उसे वही जानते हैं, जो भगवानकी सेवा करते हैं; उसे स्वयं उपलब्धि द्वारा ही जाना जा सकता है, भाषा द्वारा दूसरोंको समझाया नहीं जा सकता। जैसे बालककी सेवा शुश्रुषामें माताको क्या आनन्द मिलता है—माता ही जानती है; जिस स्त्रीको सन्तान नहीं है, वह उस सुखको भला कैसे अनुभव कर सकती है? अतएव पहले विश्वास और धैर्यके साथ भगवानकी सेवा करनी उचित है, धीरे-धीरे सेवा करते-करते भगवत्-सेवामें क्या अतुलनीय आनन्द छिपा है, उपलब्धि हो जाती है—शास्त्र यही बतलाते हैं।

अस्तु, धर्म पालनसे क्या होगा? ऐसा कुतर्क करनेसे कोई लाभ नहीं; स्वयं आचरण करके देखना

उचित है, तभी सनातन वैष्णव धर्म भला है या बुरा, इसका निर्णय हो सकेगा। मैं 'जलमें पैर नहीं दूँगा, मुझे तैरना सिखा दो' ऐसे कथनका जैसे कोई अर्थ नहीं है; ठीक यही मूल्य है इन सब कुतर्कोंका। हम स्वयं भगवान श्रीकृष्णके नित्यदास हैं, इसलिये उनकी सेवा करना ही हमारा नित्य धर्म या सनातन धर्म है। इस धर्ममें ही उपास्य, उपासना और उपासकका नित्यत्व सब प्रकारसे स्वीकृत है। सनातन धर्मको छोड़कर दूसरे-दूसरे धर्मोंने उपास्य, उपासना और उपासकका नित्यत्व स्वीकार नहीं किया है। इसलिये सनातन धर्म छोड़कर और कोई भी धर्म जीवका नित्य धर्म नहीं कहा जा सकता है।

पृथिवी ते यत कथा धर्म नामे चले।
भागवत कहे ताहा परिपूर्ण छले।।

(चै.च.)

और यही श्रीमद्भागवत कहते हैं—सब प्रकारके कैतवसे शून्य (कपटतासे रहित) भागवत धर्म या सनातन धर्म ही धर्म है और जितने भी धर्म धर्मके नामसे जगतमें प्रचलित हैं, वे सब नैमित्तिक धर्म, छल धर्म कपट धर्म हैं। इनसे जीवका नित्य कल्याण कदापि नहीं हो सकता। ❑

(श्रीगौड़ीय पत्रिकासे अनुदित)

श्रीचैतन्यदेव और हरिनाम

—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त त्रिविक्रम महाराज

श्रीहरिनाम सब युगोंके लिये श्रेष्ठ साधन विवेचित होने पर भी दूसरे-दूसरे युगोमें ध्यान, यज्ञ एवं अर्चन-विधियोंका अधिक प्रचलन था। जिस मृतसंजीवनी औषधके विषयमें अनभिज्ञ चिकित्सक रोग दूर करनेके लिए त्रिकुट, निम्बादि नाना प्रकारकी क्लेशकर और कष्ट-साध्य औषधियोंकी व्यवस्था करते हैं, इसी प्रकार सत्य, त्रेता और द्वापर युगमें ध्यान, यज्ञ और अर्चनादिकी व्यवस्था समझनी चाहिए। जिस प्रकार सुचतुर और मृत-संजीवनी औषधिके विषयमें अनुभवी चिकित्सक केवल सर्वश्रेष्ठ औषध मृत-संजीवनीकी व्यवस्था देकर रोगीको बिना दुःख व क्लेशके ही निरोग कर देता है, ठीक उसी प्रकार सत्य, त्रेता और द्वापर युगोंमें अजामिल, रत्नाकर आदि एकमात्र हरिनामका ही आश्रय कर सबसे अधिक पापोंसे सहज ही मुक्त हो गए और बड़े सुखसे श्रीहरिके चरण कमलोंको प्राप्त कर लिये-ऐसा देखा गया है।

सत्ययुगमें हजारों-हजारों वर्षों तकवायु भक्षण करके और सिरके बल खड़े रहकर कठोर तपस्या और ध्यानादिके द्वारा बहुत कष्टसे साधक जो लाभ करते थे, अजामिलने बिना कष्ट उठाये, बड़े सुखसे ही श्रीनाम कीर्त्तन द्वारा उससे श्रेष्ठ गति प्राप्त की थी। त्रेता युगमें रत्नाकरके समान महापापी भी जिसके संग व स्पर्शकी बात तो दूर रही, केवलमात्र दर्शनसे ही तालाब और कुएँका जल सूख गया था, श्रीहरिनाम कीर्त्तन द्वारा समस्त पापोंसे छुटकारा प्राप्त कर अति श्रेष्ठ मुनियोंकी पदवीको प्राप्त कर लिया था। अस्तु दूसरे-दूसरे युगोंमें श्रीहरिनामका माहात्म्य अन्य युगोंके (यज्ञ, ध्यान, तपस्यादि) साधनोंसे न्यून है ऐसी बात नहीं है। परन्तु प्रत्येकका अधिकार समान न होनेके कारण श्रीहरि-नाम जैसे श्रेष्ठ साधानमें सबकी रूची नहीं थी। इसलिये अन्य युगोंमें आड़म्बरपूर्ण साधनोंमें ही सर्वसाधारणकी रूची थी।

कुछ लोग ऐसा सोचते हैं कि केवल कलियुगमें ही हरिनामका महत्त्व अधिक है, दूसरे युगोंमें इसका इतना अधिक महत्त्व नहीं था अथवा कलिमें जीव अन्यान्य कठिन साधनों के लिये सर्वथा अयोग्य होनेके कारण उनके लिये इस सरल और सबसे हेय हरिनामकी व्यवस्था दी गई है। परन्तु वास्तवमें ऐसी बात नहीं है। सत्य, त्रेता और द्वापरके अनाधिकारी व्यक्तियोंके समान कलिकालके अनेकों मनुष्य इसी कारण श्रीनाम ग्रहणके प्रति उदासीन हो उसका अनादर करते हैं और अन्यान्य साधनोंमें

रूचि-पूर्वक लगे हुए देखे जाते हैं। अब विचारणीय बात यह है कि अन्य युगोंमें जीवों में अधिक सामर्थ्य थी, उनके लिये श्रीहरिनामके अलावा दूसरे साधनोंकी भी व्यवस्था थी अर्थात् उस समय जीवोंका हृदय कलियुगी जीवोंके समान पापोंसे आच्छादित नहीं था। इसलिये दूसरे-दूसरे साधन मार्ग भी भक्तिके अधीन अनुष्ठित होते थे। परन्तु कलियुगी जीव उस शक्ति सामर्थसे वंचित रहनेके कारण कलिकालमें अन्यान्य साधन निषिद्ध है और एकमात्र श्रीहरिनामकी ही विधि है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

कलिसन्तरण उपनिषद् और पद्मपुराणादि शास्त्रोंने एक स्वरसे कलियुगी जीवोंको श्रीहरिनाम ग्रहण करने तथा दूसरे साधनोंको परित्याग करने का उपदेश दिया है। 'हरेर्नाम' पदका प्रयोग एकबार न होकर तीन बार किया गया है। इसका क्या प्रयोजन है? इसकी छान-बीन करना जरूरी है। तीनबार उल्लेखसे त्रिसत्य प्रतिज्ञा सूचित होती है। शास्त्र इस प्रकार कहते हैं-"हरिनाम ही कलिकालका एकमात्र साधन है।" परन्तु पापमलीन चित्तके मनुष्योंको तब भी विश्वास नहीं होता।इसी कारणसे 'हरेर्नाम' पदके साथ हर बार 'एव' पदका प्रयोग हुआ है। 'एव'काअर्थ है-निश्चय। अतएव 'एव' पदके द्वारा दृढ़ता एवं निश्चयता का भाव प्रकाशितहुआ है।

तथापि दुर्भागा मानव विचार करता है कि साधारण हरिनाम द्वारा क्या कभी कर्म-ज्ञान-योगादि साधनों द्वारा प्राप्तकी जानेवाली वस्तु प्राप्त की जा सकती है? इतने धूम-धामसे सम्पन्न होनेवाले याग,यज्ञ, पूजा और योग द्वारा पाये जानेवाले फल क्या केवल हरिनाम करनेसे पाये जासकते हैं? उनके इस सन्देह को दूरकरने के लिये शास्त्रोंने 'केवलम्' पदका प्रयोग किया है अर्थात् केवल हरिनाम हीकर्त्तव्य है, इसके साथ कर्म, ज्ञान और योगादिका सम्बन्ध न होनेसे पूर्ण फल लाभ न होगा-इस विचारका खण्डन करते हैं। इसे और भी स्पष्ट करनेके लिये साक्षात रूपमें निषेध वाक्य द्वारा जोर-जोरसे कहते हैं-'नास्ति', 'नास्ति', 'नास्ति' तीन बार उच्चारण द्वारा त्रिसत्य प्रतिज्ञाका स्मरण करा रहे हैं। एवं अधिक दृढ़ता दिखाने के लिये तीनों पदोंके साथ ही'एव' पद व्यवहृत है। अर्थात् हरिनामके अतिरिक्त अन्य मार्ग या साधन कलिकालमें सम्पूर्ण रूपसे वर्जित है-यह दिखाते हैं। जो लोग शास्त्रकी आज्ञा नहीं मानते हरिनामको छोड़कर अन्यान्य मार्गों-साधनोंकी ओर दौड़ते हैं-वे शास्त्र या भगवत चरणोंमें अपराधी हैं तथा इस अपराधके कारण केवल अधोगतिको प्राप्त होते हैं—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। कलियुगी जीवोंकी दुर्दशाको देखकर करुणावरुणालय श्रीचैतन्य महाप्रभुजी इस धराधाम पर अवतीर्ण हुए थे, शास्त्रोंमें छिपी हुई उक्त वाणीको जीवोंके सामने प्रकाश किये। इससे पूर्व यह मन्त्र सबकी दृष्टिसे ओझल ही होता आया है। श्रीहरिनाम श्रीमन्महाप्रभुके द्वारा ही आत्म प्रकाश करेंगे, इसीलिये इतने समय तक वे तब तक अपनेको छिपाकर गुप्त रूपसे विद्यमान थे।

श्रीमन्महाप्रभु इस श्लोकके आविष्कारक ही नहीं हैं, अधिकिन्तु, इस श्लोकके साक्षात् मूर्त्ति भी हैं। वे इस श्लोकके 'केवलम्'के पदके मूर्त्तिमान आदर्श थे एवं इसके द्वारा 'केवल'के शुद्ध स्वरूपको प्रत्यक्ष दिखाकर जगतको शिक्षा दिये थे।

इसीलिये उन्होंने अपनी लीलामें सर्वत्र ही कर्म, ज्ञान और योगादि मार्गोंकी हेयता प्रदर्शितकी है तथा नामात्मक भक्ति योगको दूसरे मतोंके साथ कहीं भी समान अधिकार या एक समान नहीं बतलाया है। उन्होंने श्रीहरिनामको असमोर्द्ध तत्त्व (जिससे बड़ा अथवा जिसके समान कोई नहीं है) कहा है। श्रीहरिनाम और श्रीहरि अभिन्न हैं—यह भी उन्होंने शास्त्रकी बाणियोंके बल पर प्रमाणित कर दिया है—

नाम चिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्य-रस विग्रहः।
पूर्णः शुद्धो नित्य मुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनामिनः।।

(पद्मपुराण)

पद्म पुराण द्वारा उन्होंने यह भी दिखलाया है कि "धर्म-व्रत-त्याग-होमादि शुभ क्रियाएँ केवल

प्रमाद मात्र है। अतएव श्रीहरिनामके साथ अन्याय शुभ क्रियाओंको समान समझनेसे नाम भजन नहीं हो सकता। बल्कि इससे श्रीनामके चरणोंमें अपराध संग्रह होगा—यही श्रीमन्महाप्रभु और समस्त शास्त्रोंकी शिक्षा है।

श्रीनाम भजन ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है—यही सर्व शास्त्रोंका अभिमत है। सर्वशास्त्र शिरोमणि श्रीमद्भागवत कहते हैं—

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्मः परस्मृतः।
भक्तियोगो भगवति तन्नाम-ग्रहणादिभिः।।

अर्थात् जीवोंकी अनेकानेक धर्मोंमें रूची होनेपर भी सब धर्म एक स्तरके नहीं हैं। निरपेक्ष भावसे विचार करनेसे देखा जाता है कि सर्वेश्वर भगवान विष्णुके श्रीनाम ग्रहण द्वारा अनुष्ठित भक्तियोग ही परमधर्म है।

शास्त्रोंने बहुतसे स्थानोंमें इसी प्रकार परधर्म क्या है, बतलाकर यह निर्णय किया है कि समस्त मतोंके अनुसार पृथक-पृथक साधन होनेपर उनके जो फल होते हैं, वे एक समान नहीं होते। बल्कि उन फलोंमें तारतम्य होता है। शास्त्रने सब मतोंको एक नहीं कहा है। सब पर तुलनामूलक विचार किया है, तथा भक्तिपथको ही सदा-सर्वदा श्रेष्ठतम् स्थापन किया है। गीता शास्त्रकी सम्यक रूपसे आलोचना करनेसे देखा जाता है कि गुह्य, गुह्यतर, गुह्यतम व सर्वगुह्यतम प्रभृति (इत्यादि) तारतम्यमूलक शब्दोंके प्रयोग द्वारा 'सब मत एक हैं या समान हैं—इसका निषेध किया गया है, तथा अन्तमें शरणागति मूलक भक्ति धर्मकी ही प्रतिष्ठाकी गई हैं। इसलिए अन्य सब धर्मोंके त्यागकी विधि भी शास्त्रोंने दी है। जैसे—

''सर्व धर्म्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।''

सब धर्मोंको परित्याग करके विष्णुभक्तिको आश्रय करनेका उपदेश ही सब जगह देखा जाता है, किन्तु कहीं भी विष्णुको त्यागकर अन्य उपासनाकी विधि नहीं देखी जाती है; किसी मोहके कारण या दुर्भाग्यवशतः कोई यदि इस प्रकार कर ले तो शास्त्रोंमें उसकी बहुत निन्दाकी गई है। जैसे—

वासुदेवं परित्यज्य यो अन्यदेवमुपासते।
तक्त्वामृतं स मूढ़ात्मा भुंक्ते हलाहलं विषम।।

(स्कन्दपुराण)

अर्थात् जो व्यक्ति वासुदेवको छोड़कर दूसरे-दूसरे देवताओंकी उपसना करता है, वह मूढ़ात्मा अमृत छोड़कर हलाहल पान करता है।

सर्वशास्त्र शिरोमणि श्रीमद्भागवतमें दूसरे-दूसरे मतों या धर्मोंसे भक्तिको स्पष्ट रूपमें श्रेष्ठ कहा गया है—

न साधयति मां योगो न साख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायिस्तपत्यागो यथा भक्तिर्म्ममोर्ज्जिता।।

(भा. ११/१४/२०)

अर्थात् मेरे प्रति ऐकान्तिकी भक्ति जिस प्रकार मुझे अधीन या वशीभूत कर लेती है, सांख्यज्ञान या योगादि साधन वैसा नहीं कर सकते। उपनिषद्में भी भक्तिकी महिमा प्रदर्शित हुई है। जैसे—

भक्तिरेवैनं नयति भक्तिरेवैनं दर्शयति।
भक्तिवशः पुरुषो भक्तिरेव भूयसी।।

युक्तिकी दृष्टिसे देखने पर भी यही सिद्ध होता है, कि यह जगत परजगतका प्रतिबिम्ब (छाया) है। मूल बिम्बमें जो कुछ होता है, इस जगतमें उसीका हेय प्रतिफल परिलक्षित होता है। इस जगतमें ऐसी कोई भी दो वस्तुएँ नहीं हैं जो सब प्रकारसे समान हों, दोनोंमें कुछ न कुछ भेद अवश्य ही रहता है। एक ही माता-पिताकी दो सन्ताने सब प्रकार समान नहीं होती। यदि प्रतिविम्बमें इस प्रकार देखा जाता है तब मूलबिम्बमें वैसा ही नित्य-भेद अवश्य ही स्वीकार्य है। विशेषराहित्य ब्रह्मका धर्म नहीं है, परन्तु विशेषता (विचित्रता) ही ब्रह्मका स्वभाव है। बलपूर्वक ब्रह्मको निर्विषेश कह "देनेसे ही वह निर्विषेश नहीं हो सकता है। शास्त्रोंमें ब्रह्मको निर्विषेश कहनेका अर्थ ही है—जड़ीय वैशिष्ट्यको निषेध करके चिद् वैशिष्ट्य स्थापना करना। वर्तमान युगमें सब समान हैं—यह विचार हास्यास्पद है। धनी, दरिद्र, पण्डित-मूर्ख, शिक्षित, अशिक्षित, साधु व ठग सत् व असत्—ये विशेषताएँ या विचित्रताएँ कभी भी मिटाई नहीं जा सकतीं। सब समान हैं, यह शोर-गुल सब समय मौखिकमात्र रहा है और रहेगा। कार्य रूपमें कारण

यह है कि मूल वस्तु ही वैशिष्ट्यमय है। अतएव धर्मक्षेत्रमें भी वैशिष्ट्य है। इसीलिये सब मतोंका कभी भी एक फल नहीं हो सकता।

वर्तमान स्वेच्छाचारी युगमें—सब समानके युगमें, सर्वधर्म समन्वयके युगमें, सभी विभागोंमें उच्छृंखलता-निरंकुशताका नङ्ग नाच हो रहा है। उच्छृंखलताको ही उदारता कहा जा रहा है। 'सब समान' मन्त्रके कुफलका समाजपर ऐसा प्रभाव पड़ा है कि बालक बूढ़ोंका सम्मान नहीं करते, छोटे गुरुजनोंकी भक्ति नहीं करते और मूर्ख पण्डितोंके प्रति श्रद्धा नहीं करते। इस प्रकार 'सब समान'—मन्त्रके कुफलका क्या धार्मिक, क्या सामाजिक, क्या राजनैतिक, क्या आर्थिक-औद्योगिक सभी क्षेत्रों पर बड़ा ही बुरा प्रभाव पड़ा है। आजका उच्छृंखल विश्व ध्वंसके कगारसे छलांग मारनेके लिये झाँक रहा है। ऐसी दशामें सामाजिक जीवन अपनी रक्षाके लिये व्याकुल हो पड़ा है। परन्तु उसकी दृष्टि जड़वादके चाकचिक्यपूर्ण ध्वंसकारी सभ्यतासे ऊपर उठ नहीं पाती। उसके सीमित भौतिक साधनोंसे उसकी रक्षा होना कठिन ही नहीं सम्पूर्ण असम्भव है। आजके उदार और शिक्षित लोग नानात्व और विशेषताओंको ही आसन्न विपदकी जड़ मानते हैं। इसलिये सभी एक हैं अथवा सभी समान हैं का आपात मधुर नारा बुलन्द कर सर्व धर्म-समन्वय द्वारा विश्व शान्ति प्राप्त करनेको प्रयत्नशील है। परन्तु फल विपरीत होता है।

आजके भौतिक जड़वादके युगमें सर्वधर्म समन्वयका अर्थ किया जाता है—सब समान हैं। यह अर्थ ही हमारे पतनका मूल है, इसे हम ऊपर दिखला चुके हैं। वास्तवमें समन्वय शब्दाका अर्थ है—यथा-योग्य। जैसे, किसी पद्यांशके कर्त्ता, कर्म और क्रिया आदिको यथा योग्य स्थानपर प्रतिष्ठा करना ही उसका अन्वय है, ठीक उसी प्रकार कर्म, ज्ञान, योग और भक्ति आदि विभिन्न मतोंमें से भक्तिको सर्वश्रेष्ठ आसन प्रदान कर दूसरे मतोंको यथायोग्य मर्यादा प्रदान करना ही समन्वयका यथार्थ अर्थ है। परन्तु आज इस उद्देश्यके विपरीत कार्य हो रहा है। इसलिये आजका उच्छृंखल और दाम्भिक समाज अत्यन्त दीन-हीन होनेपर भी अपनेको दीन-हीन माननेके लिये तैय्यार नहीं। उसके आहार-विहार, आचार-विचार और धर्म-चिन्तनमें तामसिक भाव प्रवेश करने पर भी वह सत्वगुणसम्पन्न सदाचारी सद्धर्मावलम्बी सन्तोंके सहित समान मर्यादा दावी करनेमें भी लज्जा बोध नहीं करता। इसलिये सम्प्रदायकी सीमा तोड़कर तमोगुणकी प्रतिष्ठाके लिये सत्सम्प्रदायोंके विरुद्ध जेहादकी घोषणाकर आसुरिक स्वभावका परिचय देता है—यही कलिकालकी वृत्ति है। परन्तु इससे संत समाज तनिक भी भयभीत या विस्मित नहीं। वे यह जानते हैं कि असत्यकी कभी भी प्रतिष्ठा नहीं है। तामसिक कालके अनुकूल रूपमें कुछ दिनों तक प्रबल रहने पर भी शीघ्र ही वह दैवी शक्ति द्वार ध्वंश हो जायेगा। ❑ (क्रमशः)

श्रीतुलसी देवी

—सुबलचन्द्र भक्तिशास्त्री

(काव्य-व्याकरण पुराण-वेदान्ततीर्थ)

श्रीतुलसी देवी श्रीकृष्णकी परम प्रिया हैं। ये तदीय वस्तु और महाभागवत हैं। ये जगतके कल्याणके लिए वृक्ष कुलमें आविर्भूत होनेपर भी वृक्ष नहीं हैं। जिस प्रकार स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मनुष्य कुलमें आविर्भूत होनेपर भी मनुष्य नहीं हैं, भगवान मत्स्य कुलमें, श्रीकूर्मदेव कूर्म कुलमें और श्रीवराह भगवान शूकर वंशमें अवतीर्ण होनेपर भी जिस प्रकार ये मछली, कछुआ और शूकर नहीं हैं—साक्षात् भगवान हैं; जिस प्रकार रामभक्त हनुमानजी वानर वंशमें, गरुड़जी पक्षी कुलमें और भक्त प्रह्लाद दैत्यवंशमें आनेपर भी वे पशु, पक्षी और दैत्य नहीं हैं—भगवानके पार्षद भक्त हैं; जिस

प्रकार श्रीशालग्राम या श्रीविग्रह शिला (पत्थर) वंशमें आविर्भूत होनेपर भी शिला नहीं साक्षात् परब्रह्म हैं; ठीक उसी प्रकार श्रीकृष्णप्रिया श्रीतुलसी देवी श्रीनारायणकी सेवा करनेके लिये वृक्ष वंशमें अवतीर्ण होनेपर भी वृक्ष नहीं—भगवान कृष्णकी परम प्रिया हैं। इसलिए जगद्‌गुरु श्रीश्रीप्रभुपादने श्रीतुलसी देवीको "वार्क्षार्चावतार" कहा है। वार्क्षार्चावतारका अर्थ है—वृक्षरूपमें अर्चावतार श्रीतुलसी देवी। वृक्ष + ष्ण = वार्क्ष + अर्चा + अवतार = वार्क्षार्चावतार। इसीलिए शास्त्रमें ऐसा कहा गया है—

भागवत, तुलसी, गङ्गाय भक्तजने।
चतुर्द्धा विग्रह, कृष्ण एइ चारिजने।।
तदीय तुलसी-वैष्णव-मथुरा-भागवत।
एइ चारिर सेवा हय कृष्णेर अभिमत।।

(चै. च. म. २२/१२)

श्रीनारायण पृथ्वीपर श्रीशालग्रामके रूपमें आविर्भूत हैं। श्रीनारायणकी सेवा करनेके लिए उनकी शक्ति श्रीतुलसी देवी भी वृक्षके रूपमें प्रकाशित हैं। इसलिए श्रीतुलसी बिना श्रीनारायणकी सेवा नहीं होती। शास्त्रमें तुलसीदेवीको लक्ष्मीसे अभिन्न बतलाया गया है—

नावज्ञा जातु कार्या सा वृक्षभावान्मनीषिभिः।
यथा हि वासुदेवस्य वैकुण्ठे भोगविग्रहः।।
शालग्राम-शिलारूपं स्थावरं भुवि दृश्यते।
यथा लक्ष्मैकमापन्ना तुलसी भोगविग्रहा।।
अपरं स्थावरं रूपं भुवि लोकहिताय वै।
स्पृष्टा दृष्टा रक्षिता च महापातकनाशिनी।।

(पद्मपुराण)

तुलसीको वृक्ष मानकर अवज्ञा नहीं करनी चाहिए। जिस प्रकार लोगोंके कल्याणके लिए श्रीनारायण पृथ्वीपर शालग्रामरूपमें प्रकटित हैं, उसी प्रकार नारायण शक्ति भी लोगोंके कल्याणके लिए पृथ्वीपर तुलसीके रूपमें विराजमान हैं। इसीलिए तुलसीका स्पर्शन या उनकी सेवा करनेसे महापातक भी दूर हो जाते हैं।

अगस्त्य संहितामें देखा जाता है—

विष्णोस्त्रैलोक्यनाथस्य रामस्य जनकात्मजा।
प्रिया तथैव तुलसी सर्वलोकैक पावनी।।

जनकनन्दिनी श्रीसीतादेवी जिस प्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी प्रिया हैं, उसी प्रकार निखिल लोकोंको पवित्र करनेवाली श्रीतुलसी देवी भी श्रीहरिकी प्रिया हैं।

श्रीकृष्ण विषय-विग्रह हैं और श्रीतुलसी आश्रय-विग्रह हैं। श्रीकृष्ण शक्तिमान हैं और श्रीतुलसी स्वरूपशक्ति हैं। इसीलिए तुलसीको वृक्ष समझकर अवज्ञा नहीं करनी चाहिए। उनकी अवज्ञा करनेवाला महाअपराधी होता है तथा नरकका भोग प्राप्त करता है। वे साक्षात् वृन्दादेवी हैं—श्रीकृष्णकी लीलाशक्ति हैं।

वैकुण्ठेश्वरी श्रीतुलसी अप्राकृत वस्तु हैं। ये प्राकृत धन-सम्पत्तिकी अधिष्ठात्री देवी श्रीलक्ष्मीदेवीके अवतार नहीं हैं। लक्ष्मी दो हैं—(१) वैकुण्ठेश्वरी महालक्ष्मी और (२) प्राकृत गुणमयी लक्ष्मी। प्राकृत गुणमयी लक्ष्मी और महालक्ष्मी एक नहीं हैं। गुणमयी लक्ष्मी प्राकृत लक्ष्मी प्राकृत अर्थ सम्पत्तिकी अधिष्ठात्री देवी हैं और महालक्ष्मी चिन्मयी सम्पदारूपा और प्रेमवती हैं। आजकल जिस लक्ष्मीजीकी पूजा होती है, वह प्राकृत सत्त्वगुणमयी देवी हैं अर्थात् एक आधिकारिक देवता विशेष हैं। इसीलिए लक्ष्मीपूजा देव-देवी पूजाके अन्तर्गत हैं। देव-देवियाँ सभी जीव श्रेणीके अन्तर्गत हैं। उनमें कोई ईश्वर नहीं हैं। परन्तु महालक्ष्मीस्वरूप शक्ति गुरुतत्त्व हैं, वे जीवतत्त्व नहीं हैं। तुलसीजी नारायणकी कान्ता और ब्रह्मा-शिव आदि देवताओंकी भी पूजनीया या उपास्या हैं। इनकी पूजा या सेवा साक्षात् भगवानकी ही सेवा है। इनकी कृपासे भक्ति और सम्पद दोनों की ही प्राप्ति होती है। अतएव भक्तिकी अभिलाषा रखनेवाले सबके लिए ही तुलसी आदरणीय, पूजनीय और सेवनीय हैं, इसमें सन्देह ही क्या है?

जगद् गुरु श्रीजीवगोस्वामीने प्रीति-सन्दर्भमें इस प्रकार लिखा है—

"साधारण लक्ष्मी प्राकृत-सम्पत्ति (सांसारिक

अर्थ) की अधिष्ठात्री देवी हैं। इस लक्ष्मीका पति वही व्यक्ति होता है, जो अपने पूर्व पुण्य-कर्मोंके फलस्वरूप उस सम्पतिको भोग करनेका अधिकारी होता है।" श्रीगौड़ीय वैष्णवाचार्य श्रीसनातन गोस्वामीने भी बृहद्भागवतामृत नामक स्वरचित ग्रन्थमें ऐसा लिखा है—

"महालक्ष्मीकी अनेक मूर्तियोंमेंसे जो मूर्त्ति सम्पत्ति दान करती हैं, लोकपाल आदिकी विभूतियों की अधीश्वरी और अणिमा आदि महासिद्धियोंको देनेवाली हैं, उन धन-ऐश्वर्य आदि प्रदान करनेवाली लक्ष्मी देवीका मुमुक्षु, मुक्त और भक्तजन, ये लोग परित्याग कर देते हैं। इसका कारण यह है कि ये लक्ष्मीदेवी प्रसन्न होने पर विभूति और वैराग्य ही प्रदान करती हैं, परन्तु इस प्रकारकी विषय-भोगरूप विभूति मुक्तिके मार्गमें बाधक है।

धनदात्री लक्ष्मी बड़ी चंचला होती हैं। दुर्वासामुनिके अभिशापके कारण ये लक्ष्मीजी एक स्थान पर स्थिर नहीं रहती, बल्कि इधर-उधर अपना स्थान बदलती रहती हैं तथा अपने आश्रितका भी अकस्मात् परित्याग कर देती हैं। इस चंचला लक्ष्मीकी अपेक्षा भी नवीन भक्तजन श्रीभगवानको अधिक प्रिय होते हैं। यह चंचला लक्ष्मी वैकुण्ठ स्थित श्रीनारायणकी प्रियतमा महालक्ष्मीकी विभूति या अंश होनेके कारण तत्सादृश्यहेतु भगवानकी परिगृहीता हैं। इसीलिये समुद्र मन्थनके समय भगवानने उनको अपने वक्षःस्थल पर धारण किया था ऐसा सुना जाता है। परन्तु भगवत्प्रियतमा महालक्ष्मीदेवी नित्यकाल भगवानके समीप रहती हैं तथा भगवानकी भाँति भक्तजन द्वारा सेवित या आराधित होती हैं। वे कभी भी भक्तों द्वारा उपेक्षित नहीं हो सकती। भक्तजन इनकी विभूतिस्वरूपा प्राकृत अर्थसम्पत्तिकी देवी साधारण और चंचला लक्ष्मीका ही परित्याग करते हैं। दूसरी तरफ महालक्ष्मी भगवानके वक्षःस्थल पर स्थिररूपसे विराजमान रहती हैं। ये चंचला नहीं हैं।

समस्त देवताओंसे ब्रह्माजी श्रेष्ठ हैं। ब्रह्मासे शिव श्रेष्ठ हैं। शिवसे श्रीदेवी श्रेष्ठ हैं, उनसे भी मुनिजन श्रेष्ठ हैं, मुनिलोगोंसे भी भक्तजन श्रेष्ठ हैं। यहाँ पर 'श्रीशब्देन विभूति-अधिष्ठात्री श्रीमहालक्ष्मी अंशभूतैव लक्ष्मीरभिधीयते, न तु महालक्ष्मीः। अर्थात् 'श्री' शब्दसे यहाँपर विभूतियोंकी अधिष्ठात्री महालक्ष्मीकी अंशभूता लक्ष्मीकी ही बात कहीं गयी है, महालक्ष्मीसे यहाँ सम्बन्ध नहीं हैं। क्योंकि भगवानकी प्रियतमा महालक्ष्मी तो भगवद्भक्तोंकी भी परमपूज्या हैं। अतएव वे भक्तोंसे अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। इसलिये यहाँ पर भगवती न कहकर 'देवी' कहा गया है।

भक्तसेवा परित्याग करनेसे भगवानकी सेवा नहीं होती। जो लोग भक्तसेवा छोड़कर केवल भगवानकी ही सेवा करनेकी छलना करते हैं, वे दांभिक हैं। भगवान ऐसे दांभिक लोगोंकी सेवा ग्रहण नहीं करते। अतः भक्तजन बड़े ही आदर और प्रीतिके साथ जगद्गुरू श्रीतुलसीजीकी सेवा किया करते हैं। श्रीतुलसीसेवा द्वारा भगवान बड़े प्रसन्न होते हैं। श्रीतुलसीजी भक्तिकी जननी और प्रेमको देनेवाली हैं। नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर, श्रीनारदजी और स्वयं भगवान् श्रीचैतन्यदेवने श्रीतुलसीकी सेवा करने के लिये उपदेश प्रदान किया है; साथ ही स्वयं इसका आचरण कर आदर्श भी स्थापन किया है।

श्री हरिदास ठाकुरने वेश्याको उपदेश दिया था-

निरन्तर नाम कर तुलसी सेवन।
अचिरात् पावे तबे कृष्णेर चरण।।

(चै. च. अ. ३/३६)

श्रीनामाचार्य हरिदास ठाकुरका उपदेश—

तुलसी सेवन करे, चर्बन, उपवास।
इन्द्रिय दमन हैल प्रेमेर प्रकाश।।

(चै. च. अ. ३१४०)

देवर्षि नारदके उपदेश—

'तुलसीजीकी परिक्रमा और तुलसीकी सेवा करो और साथ-साथ निरन्तर कृष्णनामका कीर्तन करो।'

(चै. च. म. २४/२५५ से अनुदित)

श्रीचैतन्य भागवतसे ऐसा पता चलता है कि स्वयं भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभुजी प्रतिदिन सबेरे स्नान करके विधिपूर्वक श्रीविष्णुका पूजन करते

थे और तदनन्तर तुलसीमें जल दान करके भोजन करते थे। वे तुलसीमें जल प्रदान करके श्रीतुलसी परिक्रमा भी करते थे। वे एक छोटेसे मिट्टीके गमलेमें श्रीतुलसीका पौधा लगा कर रखते थे; प्रतिदिन स्नानके पश्चात् उसमें जल देते थे और उसकी परिक्रमा करते थे। वे कहा करते थे कि मैं तुलसीके दर्शन किये बिना क्षण भर भी नहीं रह सकता, ठीक उसी प्रकार जैसे मछली जलके बिना नहीं रह सकती है। जब भगवान श्रीचैतन्यदेव संख्यानाम करते हुए चलते थे, तब एक आदमी तुलसी देवीको लेकर आगे-आगे चलता था; महाप्रभुजी उसके पीछे पीछे तुलसीका दर्शन करते हुए चलते थे; उनकी आँखोंसे निरन्तर आँसुओंकी धारा निकलती रहती थी। यहि वे कहीं बैठकर संख्यानाम करते, तो वहीं सामने ही श्रीतुलसीजीको रख लेते और तुलसीजीका दर्शन करते हुए संख्यानाम जपते जाते थे। संख्यानाम समाप्त हो चुकनेपर वे पुनः तुलसजीको साथ लेकर उठते और नियत स्थान पर रखते थे। यह कितना महान आदर्श है तुलसी सेवाका!

महाविष्णुके अवतार श्रीअद्वैताचार्यके आदर्शमें ऐसा ही देखा जाता है—

तुलसीदलमात्रेण जलस्य चुलकेन वा।
विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः।।

—श्रीअद्वैताचार्यजी इस श्लोका अर्थ इस प्रकार लगाते थे—जो व्यक्ति श्रीकृष्णको तुलसी पत्र और जल प्रदान करता है, श्रीकृष्ण उस व्यक्तिका ऋण नहीं चुका पाते हैं। तब वे ऐसा बिचार करते हैं कि मैं कैसे भक्तका ऋण चुकाऊँ? मेरे पास तुलसी-पत्र और जलके बदलेमें देनेके लिये तो कुछ भी नहीं है, फिर वे उस भक्तके निकट स्वयं बिक जाते हैं और इस प्रकार उस ऋणको चुकाते हैं—इस प्रकार सोच कर श्रीअद्वैताचार्यजी श्रीकृष्णके चरण कमलोंमें प्रतिदिन गंगाजल और तुलसी मंजरी समर्पण करते थे।

श्रीतुलसी-सेवाके माहात्म्यके सम्बन्धमें शास्त्रोंमें ऐसा कहा गया है कि तुलसी भगवत्-प्रीतिको बढ़ानेवाली, सर्वसौभाग्यवर्द्धिनी और सर्वआधिव्याधि-हारिणी हैं।

श्रीतुलसीजीका दर्शन करनेसे सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, उनमें जल देनेसे नरकका भय दूर हो जाता है, तुलसी रोपण करनेसे भगवत् प्राप्ति होती है, उनका स्पर्श करनेसे शरीर पवित्र हो जाता है, प्रणाम करनेसे सारे रोग दूर हो जाते हैं और श्रीहरिके चरण-कमलोंमें तुलसी अर्पण करनेसे प्रेम-भक्ति लाभ होती है।

जिसके घरमें प्रतिदिन तुलसीकी पूजा होती है, उसका सब प्रकारसे मङ्गल होता है; यमदूत उस गृहके समीप कभी नहीं फटकते। तुलसीके रोपण, सेवन, दर्शन और स्पर्शनसे चित्त निर्मल और पवित्र हो जाता है तथा आदरपूर्वक उनकी आराधना करनेसे सब प्रकारकी मनोभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं। प्रतिदिन चार बार प्रदक्षिणा करके तुलसीको प्रणाम करनेसे सारे पाप दूर हो जाते हैं। प्रतिदिन तुलसीका दर्शन, स्पर्शन, चिन्तन कीर्तन, प्रणाम, गुण-श्रवण और सेवन करनेसे महामंगलकी प्राप्ति होती है। जो लोग प्रतिदिन इस प्रकारसे तुलसीजीकी सेवा करते हैं, वे नित्यकाल आनन्दमय धाम—श्रीवैकुंठमें निवास करते हैं। श्रीयमराजने अपने दूतोंको ऐसी आज्ञा दे रखी है कि 'दूतो! जिसके गलेमें तुलसीकी माला हो, जो तुलसीका नाम कीर्तन करते हैं, तुलसीकी सेवा करते हैं, उनके निकट भूलकर भी कभी नहीं जाना।

नर्मदा-दर्शन, गंगास्नान और तुलसी-पत्रका स्पर्शन—इन तीनोंका एक समान पुण्य होता है। जन्माष्टमी के दिन उपवास करनेका जो फल होता है, तुलसीकी सेवा करनेसे वही फल लाभ होता है। स्त्री या पुरुष जो कोई भी तुलसीकी पूजा करते हैं, उनको अपना मनोवांछित फल प्राप्त होता है। तुलसी सेवामें सबको अधिकार है।

शास्त्रोंमें और भी कहा गया है कि तुलसी पत्र, तुलसी-पुष्प, तुलसी-काष्ठ, तुलसीकी डाल, तुलसीकी जड़ और तुलसीके मूलकी मिट्टी—ये सभी महापवित्र और मङ्गलदायक हैं। जिस प्रकार गङ्गाका

नाम-कीर्तन करनेसे सारे पाप दूर हो जाते हैं, उसी प्रकार तुलसीके नामकीर्तनसे तथा हरिगुण-गान करनेवालेके प्रति भक्ति करनेसे सारे पाप दूर हो जाते हैं। जहाँ श्रीतुलसीदेवीका वास होता है और जहाँ श्रीमद्‌भागवतका पाठ होता है, वहाँ श्रीहरिका निवास होता है। तीनों संध्याओंमें श्रीतुलसीका नाम उच्चारण करनेसे हजारों गोदानका फल होता है। तुलसी-सेवा द्वारा दरिद्रता दूर हो जाती है तथा धनकी प्राप्ति होती है। प्रयागमें स्नान करनेका जो फल होता है, काशीमें शरीर-त्याग करनेका जो पुण्य होता है, तुलसी सेवासे भी वही फल मिलता है। तुलसीमें जल-सिंचन करनेसे उस जलके द्वारा त्रिभुवन तृप्त होता है।

जहाँ तुलसी नहीं होती, वह स्थान श्मसानके समान अपवित्र होता है। तुलसजीके समीप मृत्यु होनेसे नरकको यन्त्रणा भोग नहीं करनी पड़ती, बल्कि परमपदकी प्राप्ति होती है। जो सबेरे उठकर सबसे पहले श्रीतुलसीका दर्शन करते हैं, वे परम पवित्र हो जाते हैं, उनको कोई पाप स्पर्श नहीं करता। बड़े सौभाग्यसे श्रीतुलसीकी सेवामें रुचि होती है।

तुलसीदेवी माधवकी प्रियतमा हैं। इसलिये तुलसी द्वारा माधव कृष्णकी ही सेवा करनी चाहिए। केवल भगवानकी सेवाके लिये ही तुलसी पत्रका चयन करना चाहिए—यही शास्त्रकी विधि है। भगवानकी सेवाके अतिरिक्त अपने लिये अर्थात् ज्वर, सर्दी-जुकाम आदि रोगोंको दूर करनेके लिये औषधिके रूपमें व्यवहार करनेसे श्रीतुलसीके चरणोंमें अपराध होता है तथा अमङ्गल होता है। शास्त्रमें प्रसादी तुलसी भक्षणका प्रचुर माहात्म्य देखा जाता है। भगवदर्पित तुलसीके सिवाय अनर्पित तुलसी भक्षण नहीं करना चाहिए। भगवत् सेवाके अतिरिक्त दूसरे कामके लिये तुलसीका चयन नहीं करना चाहिए। ऐसा करनेसे अपराध होगा।

अब प्रश्न हो सकता है कि तुलसी द्वारा विष्णु पूजाके अतिरक्त अन्यान्य देव-देवियोंकी पूजा करनी चाहिए या नहीं? इसका उत्तर यह है कि—कदापि नहीं। श्रीमहालक्ष्मीजी ब्रह्मा और शिव आदि देवताओंकी पूजनीया और उपास्य हैं। वे महालक्ष्मीजी ही जब भूलोकमे अवतीर्ण हैं, तब उनके द्वारा देवदेवियोंकी पूजा तो महाअमङ्गलजनक और नरकप्रापक है, यह कहना ही अधिक है। इसीलिये शास्त्र ऐसा कहते हैं—

तुलसी-दलमादाय योऽन्यं देवं प्रपूजयेत्।
ब्रह्महा स हि गोधनश्च स एव गुरुतल्पगः।।

(वायुपुराण)

जो व्यक्ति तुलसी पत्रसे अन्यान्य देव-देवियोंकी पूजा करता है, वह निश्चय ही ब्रह्महत्या, गोहत्या और गुरुपत्नी-गमनके पापका भागी होता है।

एक और प्रश्न है—श्रीराधारानीके चरणोंमें अथवा श्रीगुरुदेवके चरणोंमें तुलसी दी जा सकती है या नहीं?

उत्तर—नहीं। श्रराधिकाजी या श्रीगुरुदेवके चरणोंमें तुलसी देनेसे अपराध होता है। जिस प्रकार कृष्ण विष्णुतत्त्वोंके अंशी हैं, उसी प्रकार श्रीमती राधिकाजी भी लक्ष्मीयोंकी अंशिनी हैं। उनकी सखियाँ उनसे अभिन्न—उनकी कायव्यूहस्वरूपा हैं। श्रीतुलसी देवी श्रीमतीके आनुगत्यमें कृष्ण-सेवा करती हैं—

पूर्णशक्तिरभिन्ना च श्रीमती वार्षभानवी।
वैभवरूपिणी तस्या वृन्दादेवी प्रकीर्त्तिता।।
नित्यं श्रीतुलसीदेवी सेवते वार्षभानवीम्।
अन्योऽन्यमेष विश्रंभभावस्तयोरवस्थितः।।
अन्येषान्तु ततस्तस्मिन्नधिकारः कदाचन।
मोहात् प्रवतेमानस्तु भतेत्तत्रापराधवान्।।
दद्यात् श्रीतुलसीं तस्मात् श्रीदेव्याः करपल्लवे।
शुद्धो वैष्णवो हि नित्यं पादयोर्न कथञ्चन।।

(अनन्तसंहिता)

अंशिनी शक्ति श्रीराधारानीकी वैभवरूपा श्रीतुलसी देवी विश्रंभ भावसे श्रीराधाकी सेवा करती हैं। परन्तु इसलिये कोई शुद्ध वैष्णव श्रीतुलसी देवी को (एक कृष्णशक्तिको) दूसरी कृष्णशक्ति (श्रीमती राधादेवी) के चरण-प्रान्तमें अर्पण नहीं कर सकता। यदि कोई व्यक्ति अज्ञानतासे अथवा मोहवश ऐसा

करे, तो वह अपराधका भागी होता है। इसीलिये शुद्धभक्तजन श्रीमतीजीके कर-पल्लवोंमें ही तुलसी अर्पण करते हैं।

श्रीगुरुदेव भी कृष्णकी शक्ति हें। अतएव उनके चरणोंमें भी तुलसी अर्पण करनेसे महाअपराध होता है। श्रीतुलसीदेवी स्वयं आश्रय-जातीया गोविन्द-प्रिया माधव-तोषिणी हैं। उनके द्वारा विषय-विग्रह श्रीहरिका ही अर्चन-पूजन किया जा किता है। उनसे आश्रय-जातीय तत्त्व श्रीगुरुदेवकी सेवा या अर्चन नहीं किया जा सकता है। अतएव आश्रय-विग्रह या स्वरूप-शक्तितत्त्व श्रीगुरुदेव, सीतादेवी या श्रीमती राधिकाजीके चरणोंमें तुलसी देना अपराध है। स्वयं भगवान श्रीकृष्णचन्द्र, श्रीनारायण, श्रीरामचन्द्र, श्रीनृसिंहदेव, श्रीवामन देव, श्रीगौरांग देव आदि विष्णुतत्त्व या विषय-विग्रहोंके चरणोंमें तुलसी देना चाहिए। शक्ति तत्त्व या आश्रय तत्त्व (गुरुदेव आदि) के चरणोंमें श्रीतुलसी देना अपराधजनक और नरकप्रापक है—

तुलस्या विषयं तत्त्वं विष्णुमेव समर्चयेत्।
सा देवी कृष्णशक्तिर्हि श्रीकृष्णवल्लभा मता।।
अतसतां वैष्णवीं देवीं नान्यपदे समर्पयेत्।
अर्पणो तत्त्वज्ञस्तु पाषण्डो गुरुब्रुवस्य पादयोः।
अर्पयन् तुलसीं देवीमर्ज्जयेन्नरकं पदम्।।

(अनन्तसंहिता)

श्रीतुलसी सेवाके नियम

—सदा स्नान करनेके पश्चात् ही तुलसी पत्र चयन करें।

—अपवित्र अवस्थामें जब मन एवं शरीर दूषित हो तुलसी चयन करना निषिद्ध है।

—रजस्वला स्त्रियोंके लिए तुलसी चयन करना निषिद्ध है।

तुलसी-प्रणाम-मन्त्र

वृन्दायै तुलसीदेव्यै प्रियायै केशवस्य च।
कृष्णभक्तिप्रदे देवी सत्यवत्यै नमो नमः।।

वृन्दा एवं सत्यवतीके नामोंसे भी जाने जानेवाली, कृष्णकी अतिप्रिय तथा कृष्णभक्तिाको प्रदान करनेवाली तुलसी देवीको मैं पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ।

तुलसी-स्नान-मन्त्र

ॐ गोविन्दवल्लभां देवीं भक्तचैतन्यकारिणीम्।
स्नापयामि जगद्धात्रीं कृष्णभक्ति-प्रदायिनीम्।।

हे देवी! आप गोविन्दकी अतिप्रिया हैं तथा भक्तोंकी प्राणस्वरूपा हैं। हे कृष्णभक्ति प्रदान कर जगतका पालन करनेवाी माता! मैं आपको स्नान करता हूँ।

तुलसी-चयन-मन्त्र

ॐ तुलस्यामृतजन्मासि सदा त्वं केशवप्रिया।
केशवार्थे चिनोमि त्वा वरदा भव शोभने।।

हे तुलसी! आप अमृतसे उत्पन्न हुई है तथा केशवकी अति प्रिया हैं। केशवकी सेवाके लिए मैं आपके पत्र चयन कर रहा हूँ। हे वर प्रदान करनेवाली कृपाकर आप मुझपर प्रसन्न हो।

अपराध क्षमा-प्रार्थना-मन्त्र

चयनोद्भवदुःखञ्च यद् हृदि तव वर्त्तते।
तत् क्षमस्व जगन्मातः वृन्दादेवि नमोऽस्तुते।।

हे जगन्माता! आपके पत्र चयन करते समय यदि मैंने आपको पीड़ा दी हो तो कृपया मुझे क्षमा करें। हे वृन्दादेवी मैं आपको प्रणाम करता हूँ। ❑

कलियुगमें श्रीकृष्णनाम जप साधना

—डा० सत्यपाल गोयल

गोपाल पूर्व तापनी श्रुतिमें कृष्णके गोपवेश तथा लीलाओंका इस प्रकार वर्णन है—

गोपशेवमभ्रामं तरुणं कल्पद्रुमाश्रितम्
तदिह श्लोका भवन्ति

सत्यपुण्डरीक नयनं मेघाभं वैद्युताम्बरम्।
द्विभुजं ज्ञानमुद्राढ्यं वनमालीनमीश्वरम्।।
गोपगोपाङ्गनावीतं सुरद्रुमतलावश्रयम्।
दिव्यालंकरणोपेतं रत्नपंकजमध्यगम्।।

कालिन्दीजलकल्लोल सङ्गिमारुतसेवितम्
चिन्तयंश्चेति तं कृष्णं मुक्तो भवति संसृतेः
(१/२)

गोपालपूर्व तापनीमें परमब्रह्म श्रीकृष्णके नराकृत स्वरूपका उक्तानुसार वर्णन मिलता है। उन्हीं परमब्रह्म श्रीकृष्णको नरके समान लीला करते देखकर अज्ञानीजन उनको मनुष्यमात्र समझते हैं। यथा—

अवजानन्ति मां मूढ़ा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
(श्रीगीता ९/११)

भगवान कृष्णके अव्यक्त, निर्गुण और निराकार स्वरूपका तात्पर्य यह नहीं है कि उनका रूप ही नहीं है। उनका अव्यक्त रूप इसलिये है कि वे वाणी द्वारा व्यक्त नहीं किये जा सकते। केवल आत्माके द्वारा ही ज्ञेय है। उनका रूप सत्त्व, रज और तमसे परे होनेसे वे निर्गुण हैं, उनमें नाशवान तीनों गुणोंका तिल मात्र भी समावेश नहीं है। यदि ऐसा होता तो वे भी मरणधर्मा होते तथा परमब्रह्मकी शाश्वतता पर प्रश्न चिह्न लग जाता। उनका आकार पंचतत्त्वात्मक (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश) न होनेसे वे निराकार हैं अथवा कोई भी आकार धारण करनेमें समर्थ होनेसे वे निराकार हैं—यही उनकी शक्तिमत्ता है। इसीलिये वे जन्म नहीं लेते हैं, अवतीर्ण होते हैं। उनकी मायाके प्रभाव से सामान्य मनुष्योंके जन्मकी भाँति उनका जन्म दिखलायी पड़ता है।

ब्रह्मसूत्रमें कहा गया है—

अरूपवत् एव हि तत्प्रधानत्वात्
(ब्रह्मसूत्र ३/२/४)

परमहंस पण्डितवर्य श्रीबल्देव विद्याभूषण जीने गोविन्द भाष्यमें इस सूत्रकी व्याख्या इस प्रकार की है—

ब्रह्म विग्रह विशिष्ट नहीं है, अतएव अरूपवत हे। 'रूप' अर्थात् आकार 'वत' अर्थात् 'समान'—रूपके समान नहीं है, यहाँ समानत्व न होकर वे रूप ही हैं, क्योंकि उनके रूपकी तुलनाके लिये इस पांचभौतिक जगतमें कोई रूप न होनेसे उनको अरूपवत कहा गया है। संसारमें जो रूप दिखायी पड़ता है, वह रूप ही नहीं है क्योंकि उसकी अपनी कोई सत्ता नहीं है। अतएव परम ब्रह्मका ऐसा रूप न होने से वे अरूपवत् हैं।

अतएव अनादिरादि गोविन्द जिनमें कि सभी कारणोंका अवसान हो जाता है, उनको भौतिक जगतके किसी उपमानसे उपमानित नहीं किया जा सकता—

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः।
अनादिरादिः गोविन्दः सर्वकारणकारणम्।।
(श्रीब्रह्मसंहिता ५/१)

ऐसे परमब्रह्मकी प्राप्ति या दर्शनके सम्बन्धमें प्रमाण मिलता है कि—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणते तनूं स्वाम्।।
(मुण्डक श्रुति ३/२/३)

अर्थात् वह परमब्रह्म श्रीकृष्ण न तो बहुत उन्नत वक्ताको ही प्राप्त होता है और न ही अत्यन्त मेधा शक्ति-सम्पन्नको ही प्राप्त होता है। वह शास्त्रोंका बहुत श्रवण करने वालेको भी प्राप्त नहीं होता है। वह जिसको स्वीकार करता है जिस पर कृपा करता है, उसीको प्राप्त होता है।

वह गोपकुमार नन्दनन्दन, यशोदासुत, राधा-हृदय, गोपीजनवल्लभ तो सरल एवं निष्कपट हृदय युक्त किसी ऐसे साधक प्रेमीको मिलता है, जिसने निष्ठावान होकर उससे पुत्र, सखा अथवा प्रियतमका भावपूर्ण सम्बन्ध बनाया हो तथा समस्त प्रकारकी आसक्तिका त्यागकर नित्य निरन्तर उनके नाम, रूप, गुण, लीला और धामका चिन्तन करता हो।

उक्त पंक्तियोंमें श्रीकृष्ण तत्त्वका संक्षिप्त वर्णन किया गया है। अब श्रीमती राधाजीके विषयमें कुछ लिखनेका यह अधम लेखक प्रयास करेगा। राधाजी क्या हैं, इसकी अनुभूति कुछ कुछ भगवान श्रीकृष्णको ही है। वस्तुतः वे क्या है? ये वे ही जानती हैं।

ब्रह्म संहिताके प्रमाणके अनुसार ब्रजकी समस्त गोपियाँ श्रीकृष्णकी स्वरूपशक्तिका प्रकाश हैं।

आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभि
स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः।
गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो
गोविन्दं आदिपुरुषं तमहं भजामि।।
(५/३५)

मधुर रससे ओत-प्रोत अपनी स्वरूप शक्ति-रूप व्रज गोपियोंके साथ नित्यधाम गोलोकमें रहते हैं, मैं उन्हीं आदि पुरुष गोविन्दका भजन करता हूँ।

श्रीजीव गोस्वामीजीने अपने श्रीकृष्ण सन्दर्भमें इसकी व्याख्या इस प्रकार की है—'यथा ताभिः श्रीगोपिभिर्मन्त्रे तच्छब्दप्रयोगात्ः। कलाभिः शक्तिभिः निजरूपतया स्वस्वरूपतया शक्तितत्वञ्च तासां पूर्वोक्तोत्कर्षेण परमपूर्ण प्रादुर्भावां सर्वाषामपि लक्ष्मीत्वमेव तदुक्तं तत्रैव"

अर्थात् 'ताभिः' शब्द से तात्पर्य श्रीगोपीवृन्दसे ही है क्योंकि मंत्रमें गोपी शब्दका उपयोग किया गया है। कलाका तात्पर्य शक्ति है और यहाँ पर निजरूपताको स्वरूपशक्तिके रूपमें ग्रहण किया गया है। उनमें भगवत्तामयी शक्ति है। श्रीव्रजगोपियोंमें लक्ष्मीत्व सिद्ध होता है।

गोपालतापनी उपनिषद्में भी गोपियोंके प्रति कहा गया है—गोपीजनाविद्याकला प्रेरकः (गो.ता.पू.८) अर्थात् जो गोपियाँ हैं, वे प्रेमविद्याकी प्रेरणास्त्रोत हैं। श्रीधर स्वामीने श्रीमद्भागवतके (१/७/६) श्लोक की भावार्थ दीपिका टीकामें लिखा है कि सच्चिदानन्द भगवान श्रीकृष्ण ह्लादिनी, सन्धिनी एवं सम्वित् शक्तियोंसे युक्त हैं और जीव अविद्यासे ग्रस्त हैं।

ह्लादिन्या संविदाशिलष्टः सच्चिदानंद ईश्वरः।
स्वविद्यासंवृतो जीवः संक्लेशनिकराकरः।।

भगवानकी उक्त शक्तियोंके सम्बन्धमें श्रीविष्णु पुराणमें इस प्रकार उल्लेख है—

ह्लादिनी सन्धिनी सन्वित्त्वय्येका सर्वसंश्रये।
ह्लादतापकरीमिश्रा त्वयि नो गुणवर्जिते।।
(वि-पु. १/१२/६९)

हे कृष्ण आप सर्वसंश्रयस्वरूप हैं तथा आपकी ही ह्लादिनी, सन्धिनी और संवित् शक्तियाँ हैं। किन्तु आपमें सत्व, रज और तम नहीं है। इसीलिये आप त्रिगुणातीत हैं।

इन्हीं ह्लादिनी शक्तिके सम्बन्धमें वेदोंके आत्मस्वरूप उपनिषदोंमें 'राधा' के रूपमें व्याख्याकी गयी है।

'अत्र वृन्दावननाथस्य कृष्णस्य वामाङ्ग स्थित्याः श्रीराधायास्तत्पट्टमहिषीत्वं सूच्यते तत्र स्थितिः—वामाङ्गसहिता देवी राधा वृन्दावनेश्वरी'
(श्रीकृष्णोपनिषद्)

अर्थात् वृन्दावननाथ श्रीकृष्णके वाम भागमें सदैव स्थित रहनेसे वे श्रीकृष्णकी पट्टमहिषी हैं। वाम अंगमें स्थित होनेसे ही राधाजी वृन्दावनेश्वरी हैं।

अथर्व वेदीय गोपालतापनी उपनिषदमें "अस्यगान्धर्विकामिधा या सर्व मुख्यत्वमुक्तं अर्थात् वे समस्त गोपियोंमें प्रधान हैं तथा गान्धर्विका हैं। राधाजीका एक नाम गान्धर्विका भी है क्योंकि उनका श्रीकृष्णका ऐकान्तिक प्रेम है तथा उन्होंने स्वजनोंके प्रत्यक्षमें श्रीश्यामसुन्दरसे गन्धर्व विवाह किया है। अतएव वे गान्धर्विका है।

श्वेताश्वर उपनिषदमें भी उनकी तीनों शक्तियोंका इस प्रकार उल्लेख किया गया है—

न तस्य कार्यं करणञ्च विद्यते
न तत् समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च।।
(श्वे. उ. ६/८)

उन परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णकी कोई भी क्रिया प्राकृत नहीं होती, क्योंकि उनकी कोई भी करण—हस्त-पादादि इन्द्रियाँ प्राकृत नहीं होती। प्राकृत करणके बिना ही उनकी अप्राकृत लीलाका कार्य सम्पादित होता है। वे अप्राकृत शरीरसे एक ही समय सब जगह विराजमान रहनेमें समर्थ है। भगवान श्रीकृष्णसे किसीके बड़े होनेकी बात तो दूर उनके समान भी कोई दिखायी नहीं पड़ता है। उन परमेश्वरकी तीन शक्तियाँ हैं—ज्ञान, बल तथा क्रिया शक्ति (जो संवित, सन्धिनी तथा ह्लादिनी

शक्ति) कही जाती हैं।

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी जीने स्वरचित चैतन्यचरितामृतमें उक्त तीनों शक्तिका तत्त्व विचार निम्न प्रकार देकर अत्यन्त सहज रूपमें गूढ़ तत्त्वको समझा दिया है।

अनन्त शक्ति मध्ये कृष्णेर तिन शक्ति प्रधान।
इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति ज्ञानशक्ति नाम।।
इच्छाशक्ति प्रधान कृष्णेर इच्छाय सर्वकर्त्ता।
ज्ञानशक्ति प्रधान वासुदेव अधिष्ठाता।।
इच्छा ज्ञान क्रिया बिना ना हय सृजन।
तिनेर तीन शक्ति मेलि प्रपञ्च रचन।।
क्रियाशक्ति प्रधान संकर्षण बलराम।
प्राकृत अप्राकृत सृष्टि करेन निर्माण।।
अहंकारेर अधिष्ठाता कृष्णेर इच्छाय।
गोलोक वैकुण्ठ सृजे इच्छाशक्ति द्वाराय।।
यद्यपि असृज्य नित्य इच्छाशक्ति विलास।
तथापि संकर्षण इच्छाय ताहार प्रकाश।।

(चै.च.म.२०/२५२-५७)

संक्षेपमें, भगवान श्रीकृष्णका समस्त लीला विलास इन शक्तिओंके द्वारा ही स्वयं चलता रहता है। इन्हीं शक्तियोंमें तीन शक्तियाँ प्रधान हैं—चित्‌शक्ति, जीवशक्ति तथा मायाशक्ति। इन्हीं शक्तियोंको अन्तरंगा, वहिरंगा तथा तटस्था शक्ति कहा जाता है। अन्तरंगा शक्तिको ही स्वरूप शक्ति कहते हैं—यही भगवान श्रीकृष्णकी सर्वश्रेष्ठ शक्ति 'राधा' जी है। यथा—

राधा पूर्णशक्ति कृष्णपूर्ण शक्तिमान।
दुई वस्तु भेद नाहि शास्त्र परमान।।
मृगमद तार गंध जैछे अविच्छेद।
अग्नि ज्वालाते जैछे कभु नाहि भेद।।
राधा कृष्ण ऐछे सदा एकइ स्वरूप।
लीलारस अस्वादिते धरे दुई रूप।।

(चै.च.आ.४/९७-९९)

अर्थात् श्रीराधा पूर्ण शक्ति हैं तथा श्रीकृष्ण पूर्ण शक्तिमान हैं। शास्त्र प्रमाण अनुसार इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है अर्थात् जो राधा है वही कृष्ण हैं और जो कृष्ण है वही राधा हैं। जिस प्रकार कस्तूरीसे उसकी सुगन्ध तथा अग्निसे उसकी दाहकताको एक दूसरेसे पृथक् नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार राधा और कृष्णको एक दूसरे से न तो अलग किया जा सकता है और न अलग अलग देखा जा सकता है, क्योंकि ये दोनों अभिन्न तत्त्व हैं। केवल अपने भक्त जनोंको आनन्द देनेके लिये उनपर कृपाकर लीला रसका आस्वादन करनके लिये दो रूप धारण किये हैं।

लक्ष्मीगण ताँर वैभव विलासांशरूप।
महिषीगण प्राभव प्रकाश स्वरूप।।
आकार स्वरूप भेद ब्रजदेवीगण।
कायव्यूह रूप ताँर रसेर कारण।।

(चै.च.अ. ४/७८-७९)

लक्ष्मीगण राधिकाके वैभवविलासांशरूपा हैं तथा महीषियाँ उनकी प्राभवप्रकाश स्वरूपा हैं। ब्रजदेवियाँ श्रीराधाजीकी कायव्यूहस्वरूपा हैं। श्रीकृष्णको रसास्वादन करानेके लिए वे भिन्न भिन्न आकारों और स्वरूपोंमें विभक्त हैं।

देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता।
सर्वलक्ष्मीमयी सर्वकान्तिः सर्वसम्मोहिनी परा।।

(वृहद् गौतमीय तन्त्र)

अर्थात् श्रीराधिका जी देवी हैं, वे कृष्णमयी हैं, परम देवता हैं, सर्वलक्ष्मीमयी हैं, सर्वकान्ति हैं, सम्मोहिनी तथा पराशक्ति (स्वरूपा) हैं।

ककारः पुरुषः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
ईकारः प्रकृति राधा नित्यवृन्दावनेश्वरी।।

(गौतमीयतंत्र)

क-कारका अर्थ है—सच्चिदानन्द विग्रह परम पुरुष श्रीकृष्ण तथा ई-कारका अर्थ है—परम प्रकृति नित्य वृन्दावनेश्वरी राधाजी है।

ह्लादिनी सार प्रेम प्रेम सार भाव।
भावेर पराकाष्ठा नाम महाभाव।।
महाभाव स्वरूपा श्रीराधा ठाकुरानी।
सर्वगुणखानि कृष्णकान्ता शिरोमणि।।

(चै.च.आ. ४/५९-६०)

भगवान श्रीकृष्णकी ह्लादिनी शक्तिका सार है 'प्रेम' तथा प्रेमका सार है 'भाव'। इस पर भी भावकी

पराकाष्ठा है 'महाभाव'—यह महाभाव केवल महाभाव स्वरूपा श्रीमती राधा ठकुरानीमें ही है। वे सम्पूर्ण रूपसे प्रेमस्वरूप हैं। यथार्थमें राधाजी श्रीकृष्णके प्रेमका साक्षात् स्वरूप हैं। इसीलिये वे श्रीकृष्णकी स्वरूप शक्ति हैं। कृष्ण पूर्ण रूपसे राधाजीमें समाविष्ट हैं और राधाजी श्रीकृष्णमें समायी हुई हैं। जो इनको अलग देखता है या कम आकता है, वह कोटि कोटि महाप्रलयोंकी अवधि तक महारौरवादि नरकोंमें वास करता है।

राधाजीका 'महाभाव' परिपूर्ण है वह जागतिक वासना युक्त नहीं है। जगतका प्रेम कामांध होकर शरीर संतुष्टिका साधनमात्र तथा पूर्णतः दैहिक इन्द्रियोंकी वासनापूर्ति तक सीमित है। जिस प्रेममें केवल अपनी इन्द्रियोंकी तुष्टिमात्र ही उद्देश्य हो वह काम कहलाता है। परन्तु जो परमब्रह्म श्रीकृष्णको ही आनन्द प्रदान करनेके लिये होता है, वही शुद्ध प्रेम होता है। यह प्रेम ही ह्लादिनी शक्तिका सार है। परमब्रह्म श्रीकृष्ण सत्+चित्+आनन्द स्वरूप हैं। उनके इस स्वरूपकी ही तीन शक्तियाँ क्रमशः 'सत्' से सन्धिनी तथा 'चित्' से संवित् एवं 'आनन्द' से ह्लादिनी शक्तिका परिचय मिलता है और यह ह्लादिनी शक्ति ही उनकी स्वरूपशक्ति राधा हैं, जिनका उल्लेख सभी वेद, पुराण उपनिषद् तथा संहिताओंमें मिलता है।

श्रील रूप गोस्वामीपादजीने श्रीकृष्णकी महाभावरूपा, स्वरूपशक्ति राधाजीके विषयमें निम्न प्रकार लिखा है—

अथ वृन्दावनेश्वर्याः कीर्त्यन्ते प्रवरा गुणाः।
मधुरेयं नववयाश्चलापांगोज्वलस्मिता॥
चारु सौभाग्यरेखाढ्या गन्धोन्मादितमाधवा।
संगीतप्रसराभिज्ञा रम्यवाक्नर्मपण्डिता॥
विनीता करुणापूर्णा विदग्धा पाटवान्विता ।
लज्जाशीला सुमर्यादा धैर्यगाम्भीर्यशालिनी॥
सुविलासा महाभावपरमोत्कर्षतर्षिणी।
गोकुल प्रेमवसतिर्जगतश्रेणी लसद्यशाः॥
गुर्वर्पितगुरुस्नेहा सखीप्रणयितावशा।
कृष्णप्रियावलीमुख्या सन्तताश्रवकेशवा॥
बहुना किं गुणास्तस्याः संख्यातीता हरेरिव।

(उज्ज्वलनीलमणि, राधाप्रकरण)

राधिकाजी सर्वदा नव नवाय परम मधुर यौवनसे युक्त हैं तथा उनका स्वरूप प्रेममय है। उनके नयन अत्यन्त चंचल हैं। उनकी हँसीसे भी मधुरता टपकती है। उनके अंगोंसे इतनी मनमोहक गंध निकलती रहती है जो बलात् श्यामसुन्दरको अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। उनकी मुस्कान सौभाग्य चिह्नोंसे युक्त है। राधाजी संगीत-विशारद हैं। उनकी वाणी रम्या है। इनके वचनोंमें पाण्डित्य हैं। ये विदग्धा हैं। विनयशीला हैं। सभी पर कृपा करती हैं। वे अपने सभी कार्य दक्षतासे पूर्ण करती हैं। सुमर्यादित हैं। परम धैर्यशालिनी तथा गम्भीर स्वभाव है उनका। सुविलासित हैं। उनमें महाभावका परम उत्कर्ष है, प्रेमके उन्नत शिखरको स्पर्श करती हैं। उस गोकुलमें वास करती हैं, जहाँ चारों ओर प्रेम-ही-प्रेम व्याप्त है। उनका यश अनन्त कोटि ब्राह्माण्डोंमें व्याप्त है। वे अपने गुरुजनोंकी सेवा उनके अनुकूल होकर करती हैं। इसीलिये सभी गुरुजन उनको स्नेह करते हैं। जितनी व्रजगोपियाँ श्रीकृष्णको प्रेम करती हैं, उनकी ये प्रधाना हैं। ये अपनी सखियोंके प्रेमके वशीभूत हैं। ये अपने प्राणप्रियतम श्रीश्यामसुन्दरके गुण श्रवणकी ही इच्छा रखती हैं अर्थात् श्यामसुन्दरके अतिरिक्त किसी और में उनका चित्त नहीं है। जिस प्रकार श्रीकृष्ण अनन्त कोटि गुणोंकी खान हैं, राधाजी भी उसी प्रकार अनन्त गुणशालिनी हैं—उनके गुणोंका वर्णन कहाँ तक किया जाये।

श्रीराधारूप लावण्य गुणादीन्वक्तुमक्षमः।
तद्रुपादि माहात्म्यं लज्जेऽहमपि नारद॥
त्रैलोक्ये तु समर्थो हि न मातुं वक्तुमर्हति ।
तद्देह रूप माधुर्य जगन्मोहनमोहनम्॥
यद्यनन्त मुखोऽपि स्यात्तद्वक्तु नास्ति मे गतिः।
लक्षशः कमला दास्यो यस्यासा लाक्षकी मता॥
एवं शत सहस्त्राणामीश्वरी राधिका परा।

(पद्मपुराण १६२ अध्याय)

आशुतोष शिवजी नारदजीसे कह रहे हैं कि

हे नारद! श्रीकृष्ण प्रिया राधाजीके रूप, यौवन एवं उनकी सुन्दरता एवं गुणोंका वर्णन करनेमें नितान्त असमर्थ हूँ। मैं उनके रूपसे सम्बन्धित विविध माहात्मयोंसे लज्जित हूँ। तीनों लोकोंमें माताके विषयमें कोई कुछ भी कहनेमें समर्थ नहीं है। राधाजी इतनी रूपवती हैं कि तीनों लोकोको मोहित करने वाले प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण स्वयं उनके रूप पर मोहित हैं। यदि मेरे करोड़ों मुख भी हो जायँ, तो भी मैं राधाजीके गुणोंका वर्णन नहीं कर सकता। लाखों-लाखों लक्ष्मी उनकी दासी हैं तथा हजारों ईश्वरोंकी ये परा शक्ति हैं।

❑

तैर्थिक ब्राह्मण पर कृपा

—श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

एक दिन एक ब्राह्मण तीर्थोंका भ्रमण करते हुए नवद्वीपमें उपस्थित हुआ। वह गोपालमंत्रके द्वारा कृष्णकी उपासना करता था। उसने अपने गलेमें बालगोपाल एवं शालग्रामको धारण किया था। उसके शरीरसे अद्‌भुत तेज निकल रहा था तथा सब समय अपने मुखसे कृष्ण-कृष्ण उच्चारण कर रहा था। वह महाभाग्यवान ब्राह्मण नवद्वीपमें घुमते-घुमते श्रीजगन्नाथ मिश्रके घरमें उपस्थित हुआ तो जगन्नाथ मिश्रने जब उसके अद्‌भुत तेजको देखा तो झट उठकर खड़े हो गये तथा उसको प्रणाम किया। तत्पश्चात् उसके हाथ-पैर प्रक्षालन कराकर बैठनेके लिए सुन्दर आसन प्रदान किया। जब वह ब्राह्मण आरामसे बैठ गया, तब श्रीजगन्नाथ मिश्रने पूछा—

"हे ब्राह्मण! आपका निवास स्थान कहाँ है?"

विप्र—"मैं एक विरक्त देशान्तरी (अपने देशको छोड़कर अन्य स्थानोंमें घूमनेवाला) हूँ तथा चित्त विक्षिप्त होनेके कारण भ्रमण करता रहता हूँ।"

मिश्र (ब्राह्मणको प्रणाम करते हुए)—"यह तो आपकी दीनता है। आप जैसे महात्माओंका चित्त विक्षिप्त नहीं होता बल्कि आप जैसे महापुरुष तो जगतके जीवोंके कल्याणके लिए ही भ्रमण करते हैं। विशेषरूपसे आज तो मेरा ही परम सौभाग्य है कि आज आप मेरे घरपर पधारे। अतः आप मुझे आदेश प्रदान करें कि मैं आपके लिए रसोईकी व्यवस्था करूँ।"

विप्र—"मिश्र! जैसी आपलोंगोकी इच्छा हो वैसा ही कीजिए।"

विप्रकी अनुमति प्राप्त होनेपर जगन्नाथ मिश्र एवं घरके अन्य लोंगोको बहुत प्रसन्नता हुई। शीघ्र ही रसोई घरको साफ कर दिया गया तथा रसोईका सारा समान वहाँ पर रख दिया गया।

तैर्थिक विप्रने प्रसन्नतापूर्वक रसोई बनाई तथा जब वह श्रीकृष्णको भोग लगानेके लिए बैठा तो अन्तर्यामी श्रीशचीनन्दन गौरहरिकी विप्रको दर्शन देनेकी इच्छा हुई। इसलिए जब वह विप्र अपनी आँखें बन्दकर कृष्णका ध्यान कर रहा था, ठीक उसी समय श्रीगौरसुन्दर उसके सामने आ गए। उस समय उनका शरीर धूलसे धूसरित हो रहा था। उन्होंने हँसते हुए भोग लगाये गये अन्नमेंसे एक मुठ्ठी अन्न लेकर खा लिया। आहट सुनकर जब विप्रने आँखें खोली तो नंग-धड़ंग अवस्थामें एक बालकको भोग जूठा करते हुए देखकर वह चिल्लाने लगा। "हाय! हाय! इस शरारती बच्चेने भगवानका भोग जूठा कर दिया।"

उसकी चिल्लाहट सुनकर जगन्नाथ मिश्र दौड़े-दौड़े वहाँ पर आये तो देखा कि निमाई भोग खा रहा है तथा हँस रहा है। यह देखकर जगन्नाथ मिश्र बहुत क्रोधित होकर गौरसुन्दरको पीटनेके लिए दौड़े। परन्तु उस विप्रने उन्हें रोक दिया तथा नम्रतापूर्वक बोला—"हे मिश्र! यह तो एक अज्ञ बालक है, इसे अच्छे बुरेका क्या ज्ञान? आप तो एक समझदार व्यक्ति हैं, अतः थोड़ा विचार तो किजिए, क्या मारनेसे बालकको ज्ञान होगा? दण्ड उसे दिया जाता है, जिसे कुछ ज्ञान हो। इसलिए आपको मेरी शपथ जो आपने इसको मारा।

यह सुनकर मिश्र दुःखपूर्वक अपने सिरपर हाथ

रखकर तथा सिर नीचाकर बैठ गये। तैर्थिक विप्रसे क्या कहें, वे कुछ समझ नहीं पा रहे थे। उन्हें इस प्रकार शोकमग्न देखकर विप्र स्वयं ही बोला—"हे जगन्नाथ मिश्रजी! आप दुःखी न होइए। क्योंकि किस दिन क्या होगा, इसे एकमात्र भगवान ही जानते हैं। अतः जो हुआ उसे भगवानकी इच्छा जानकर प्रसन्न हो जाइए तथा आपके घरमें यदि कुछ फल-मूल हो तो ले आइए, मैं आज वही ठाकुरजीको निवेदन करूँगा।

जगन्नाथ मिश्र (दीनतापूर्वक)—"हे विप्रवर! यदि आपकी मेरे तथा मेरे परिवारके प्रति कृपादृष्टि है तथा आप हमें अपना सेवक मानते हैं, तो हम सबकी प्रसन्नताके लिए आप एक बार पुनः रसोई बनाकर अपने गोपालजीको भोग लगायें तथा उनका प्रसाद ग्रहण करें।"

विप्र—"यदि आपलोगोंकी इसीमें प्रसन्नता है तो मैं आप लोगोंकी प्रसन्नताके लिए अवश्य ही पुनः रसोई बनाऊँगा।"

यह सुनकर सभी लोगोंका मुख प्रसन्नतासे खिल गया तथा सबने जल्दी-जल्दी रसोईकी तैयारी कर दी। जब ब्राह्मणने पुनः रसोई बनाना आरम्भ किया तो सभी लोग कहने लगे—"यह निमाई बहुत चंचल है। कहीं यह दोबारा भगवानका भोग नष्ट न कर दे, इसलिए जब तक विप्र भगवानको भोग लगाकर प्रसाद नहीं पा लेता है, तब तक इसे दूसरेके घरमें रखना चाहिए।" यह सुनकर शचीमाता गौरसुन्दरको गोदमें लेकर दूसरेके घर चली गई। वहाँ पर सभी स्त्रियाँ मिलकर श्रीगौरसुन्दरको चिढ़ाने लगीं।

स्त्रियाँ—"अरे निमाई! क्या इस प्रकार ब्राह्मणका अन्न खाया जाता है?"

गौरसुन्दर (हँसते हुए)—"इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। ब्राह्मणने मुझे स्वयं बुलाया तो मैं चला गया।"

स्त्रियाँ—"अरे निमाई चोर! न जाने वह ब्राह्मण किस कुलका है तथा कहाँ का है। परन्तु तूने आज उसके हाथका पकाया हुआ अन्न खा लिया है। इस लिए तेरी जाति नष्ट हो गई है, अब तू क्या करेगा?

श्रीगौरसुन्दर (हँसते हुए)—"आप लोग कैसी बातें कर रही हैं? मैं तो गोपजातिका एक ग्वाला हूँ तथा सदा-सर्वदा ब्राह्मणके हाथका ही खाता हूँ। अतः कुछ विचार तो करें, क्या ब्राह्मणके हाथका खानेसे कहीं ग्वालेकी जाति नष्ट होती है।"

इस प्रकार श्रीगौरसुन्दर छलपूर्वक स्वयं अपना परिचय देते थे, परन्तु भगवानकी मायासे मोहित होनेके कारण कोई भी उनकी बातें समझ नहीं पाते। उनकी ऐसी अनोखी बातें सुनकर सभी हँसने लगे।

उधर ब्राह्मणने पुनः रसोई बनाई तथा गोपालको निवेदन करनेके लिए बैठ गया। जब वह गोपालजीका ध्यानकर रहा था, तो अन्तर्यामी श्रीगौरसुन्दर जान गये। अतः सभी लोगोंको मोहित कर हँसते-हँसते विप्रके निकट पहुँच गये तथा

भोगमेंसे एक मुट्ठी अन्न लेकर खा लिया। आहट सुनकर ब्राह्मणने आँखें खोलीं तो पुनः उसी बालकको भोग जूठा करते देखकर चिल्लाने लगा—"हाय! हाय! इस चंचल बालकने फिरसे भोग नष्ट कर दिया।"

उसकी हाय! हाय! सुनकर जैसे ही जगन्नाथ मिश्र वहाँ पर पहुँचे, वैसे ही गौरसुन्दर वहाँसे भाग खड़े हुए। मिश्र उन्हें पीटनेके लिए दौड़े।

मिश्र (क्रोधित होकर)—"अरे दुष्ट बालक! तेरी दुष्टता बहुत बढ़ गयी है। अतः आज मैं तुझे पीटकर तेरी बुद्धिको ठीक करता हूँ।" ऐसा कहते हुए जब वे गौरसुन्दरके पीछे दौड़े, तो उस समय विप्र तथा अन्य लोगोंने उन्हें रोक लिया। परन्तु मिश्रका क्रोध शान्त नहीं हुआ।

मिश्र—"तुमलोग मुझे छोड़ दो, आज मैं उसे अच्छी तरह सबक सिखाकर ही रहूँगा।"

लोग—"हे मिश्र! यह आप क्या करने जा रहे हैं? आप तो परम दयालु हैं। यदि आप ऐसे निर्बोध बच्चेको पीटेंगे, तो आपकी दयालुता एवं समझदारी कहाँ रही। क्योंकि जो ऐसे अच्छे-बुरेके ज्ञानसे रहित एक अबोध बालकको पीटता है; वह भी तो एक अबोध ही हुआ। वह तो बच्चा है। अतः चञ्चलता तो उसका स्वभाव ही है। ❑

(क्रमशः)

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

वैकुण्ठ–वार्त्तावह

बृहत्–मृदङ्ग

श्रीभागवत–पत्रिका

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना।।

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।।

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः।।

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र।।
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश।।

वर्ष ४४ } *श्रीगौराब्द ५१४* { **संख्या ४**
वि. सं. २०५७ आषाढ़ मास, सन् २०००, १७ जून—१६ जुलाई

श्रीहरिकुसुम–स्तवकम्

[श्रीमद् रूप–गोस्वामि–विरचितम्]

श्रीहरये नमः

गति–गञ्जित–मत्ततर–द्विरदं रद–निन्दित–सुन्दर–कुन्द–मदम्।
मदनार्वुद–रूप–मदघ्न–रुचिं रुचिर–स्मित–मञ्जरि–म ञ्जु–मुखम्।।१।।

जिनकी गति मदमत्त गजराजकी गतिसे भी अधिक सुन्दर है, जिनकी दशन–पंक्ति कुन्दपुष्पकी श्रेणीसे भी अधिक मनोहर है, जिनके अङ्गोंका सौन्दर्य करोड़ों कामदेवसे भी अधिक है एवं जिनका मुख–मण्डल मन्द–मन्द हास्ययुक्त है, उन श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ।।१।।

मुखरीकृत–वेणु–हृत–प्रमदं मद–वल्गित–लोचन–ताम–रसम्।
रसपूर–विकाशक–केलिपरं परमार्थ–परायण–लोक–गतिम्।।२।।
गतिमण्डित–यामुन–तीर–भुवं भुवनेश्वर–वन्दित–चारु–पदम्।
पदकोज्ज्वल–कोमल–कण्ठ–रुचं रुचकात्त–विशेषक–वल्गुतरम्।।३।।
तरल–प्रचलाक–परीत–शिखं शिखरीन्द्र–धृति–प्रतिपन्न–भुजम्।
भुजगेन्द्र–फणाङ्गण–रङ्गधरं धर–कन्दर–खेलन–लुब्ध–हृदम्।।४।।
हृदयालु–सुहृद्गण–दत्त–महं महनीय–कथा–कुल–धून–कलिम्।
कलिताखिल–दुर्जयवाहुबलं बल–बल्लव–शावक–सन्निहितम्।।५।।
हित–साधु–समीहित–कल्पतरुं तरुणीगण–नूतन–पुष्पशरम्।
शरणागत–रक्षण–दक्षतमं तमसाधु–कुलोत्पल–चण्डकरम्।।६।।
करपद्म–मिलत कुसुमस्तवकं वक–दानव–मत्त–करीन्द्र–हरिम्।
हरिणीगण–हारक–वेणुकलं कल–कण्ठरवोज्ज्वल–कण्ठरणम्।।७।।
रण–खण्डित–दुर्जन–पुण्यजनं जन–मङ्गल–कीर्त्तिलता–प्रभवम्।
भव–सागर–कुम्भज–नाम–गुणं गुण–संग–विवर्जित–भक्तगणम्।।८।।
गणनातिगदिव्य–गुणोल्लसितं सितरश्मि–सहोदर–वक्त्रवरम्।
वरदृप्त–वृषासुर–दावघनं घनविभ्रम–वेश–विहारमयम्।।९।।
मय–पुत्र–तमःक्षय–पूर्णविधुं विधुरीकृत–दानव–राजकुलम्।
कुल–नन्दनमत्र नमामि हरिम्।।१०।।
उरसि परिस्फुरदिन्दिरमिन्दिन्दिर–मन्दिर–स्रजोल्लसितम्।
हरि–मङ्गनाति–मङ्गल–सच्चन्दनं वन्दे।।११।।

जो वंशी–ध्वनिसे नवयुवतियोंका आकर्षण किया करते हैं, यौवन–मदके कारण जिनके नयन–कमल लाल हैं, जिनकी लीलारस–प्रवाहको प्रकाश करती है एवं जो परमार्थ–अनुशीलनमें तत्पर भक्तोंके एकमात्र गति हैं, उन श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ।।२।।

जिनके ध्वजा, बज्र, अंकुशादि चरण–चिह्नोंसे यमुनाकी तटभूमि भूषित है, ब्रह्मा और रुद्र आदि देवगण द्वारा जिनके मनोहर पदकमल वन्दित हो रहे हैं, जिनका कोमल कण्ठ–प्रदेश उज्ज्वल पदक भूषणसे सुशोभित है एवं गोरोचना द्वारा चर्चित तिलक धारण करनेसे जिनका ललाट अतिशय मनोहर दिखलाई पड़ता है, उन श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ।।३।।

जिनका चूड़ा मयूरपुच्छोंसे सुशोभित है, जो अपने बायें हाथसे गोवर्धन धारण किये हैं, जो कालिय नागके मस्तक पर नृत्य करते हैं, गिरि–कन्दराओंमें क्रीड़ा करनेके लिये जिनका चित्त सर्वदा उत्सुक रहता है, उन श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ।।४।।

जो अपने प्रिय बन्धु–बान्धवोंको सर्वदा प्रसन्न रखते हैं, जिनकी लीला–कथाओंका श्रवण करनेसे कलियुगका गर्व चूर्ण हो जाता है, जिनका बाहुवल सबके लिये दुर्ज्ञेय है, जो बलराम और ब्रजके बालकोंके समीप सर्वदा विराजमान रहते हैं, उन श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ।।५।।

जो शरणागत भक्तजनोंकी मनोकामना पूर्ण करनेमें कल्पतरु हैं, जो युवतियोंके लिये नित्य नवीन कामदेवस्वरूप हैं, जो शरणागतजनोंकी सर्वदा रक्षा करते हैं एवं जो दैत्यवृन्दरूप कुमुद पुष्पोंको म्लान करनेमें सूर्य–स्वरूप हैं, उन श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ।।६।।

फूलके गुच्छोंसें जिनके कर-कमल सुशोभित हैं, जो वकासुररूप मत्त गजराजके लिये सिंह-स्वरूप हैं, जो सुमधुर वंशीनादसे हरिणियोंको आकर्षित करते हैं एवं कोकिलके कलरवसे भी जिनकी कंठध्वनि अधिक मीठी है, उन श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ।।७।।

जिन्होंने युद्धमें राक्षसोंको पराजित किया है, जिनके कीर्तिकलाप जगत्के लिये कल्याण-प्रद हैं, जिनके नाम, गुण और लीला भव-सागरको सुखा डालनेके लिये अगस्त मुनिस्वरूप हैं, जिनके भक्तजन प्रकृतिके संगसे रहित होते हैं, उन श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ।।८।।

जो दया-दाक्षिण्य आदि असंख्य दिव्य गुणावलियोंसे विभूषित हैं, जिनका मुख-मण्डल चन्द्रमाकी भाँति शोभित होता है; जो अतिशय गर्वित वृषासुर रूप दावानलको बुझा देनेमें मेघ-स्वरूप हैं, जो अत्यन्त विलासी एवं विलासके उपयुक्त सुन्दर शृंगार कर निकुञ्जमें विहार करनेमें तत्पर हैं, उन श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ।।९।।

जो मयदानवके पुत्र व्योमासुर रूप अन्धकारको नष्ट करनेके लिये पूर्णचन्द्र स्वरूप हैं, जिसके द्वारा दानव राजवंश पीड़ित हुआ है, उन स्ववंशको आनन्द-प्रदान करनेवाले श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ।।१०।।

जिनके वक्षःस्थल पर श्रीमती राधा विराजमान हैं, भ्रमर-समूहसे पूर्ण वैजयन्ती माला द्वारा जो सुशोभित हैं, जो युवतियोंके अतिशय कल्याणकारी हैं, मलय-चन्दन आदि अनुलेपनोंसे जिनका श्रीअङ्ग चर्चित हैं, उन श्रीहरिको मैं वन्दना करता हूँ।।११।।

आधुनिकवाद

—ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

साम्प्रदायिक संकीर्ण पथमें भ्रमण करने वाले एक पथिकने अपने संकीर्ण ज्ञानके अहङ्कारमें मत्त होकर पूरी योग्यता प्राप्त करनेके पहले ही धर्मके सम्बन्धमें नवीन उपादेय ग्रहणकी व्यवस्था देनेका राग अलापनेका अभिनय किया है। खेदका विषय है कि लेखक महोदयने आचार्य-ग्रहणका अभिनय किया है तथा दर्शनशास्त्र व वेदान्तकी आलोचना भी की है। फिर भी धर्म-आलोचनाके स्थानपर उनकी आत्मप्रशंसा ही प्रकाशित हुई है। इस प्रकार ज्ञानालोचनाकी आड़में आत्मप्रशंसाकी पुष्टि न करना ही श्रेयस्कार था।

लेखकके इन विचारोंको साधरण जनता ग्रहण करनेमें असमर्थ है। इसका कारण यह है कि अनन्त ज्ञानके समुद्र पतितपावन श्रीमद्गौरचन्द्रने ऐसे अहंकारका अनुमोदन नहीं किया है। उनकी आज्ञा है—

"तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः॥"

अस्तु, मैं ऐसी गन्दी एवं घृणित बातोंको लिखकर सज्जन-तोषणीका पवित्र कलेवर अपवित्र नहीं करना चाहता था, परन्तु भ्रान्त आधुनिकवादी विचारोंका, जिससे वैष्णवोंके हृदयमें अकारण ही क्लेश पहुँचता है तथा जिससे शुद्ध भक्ति धारा बाधित होती है, खण्डन करना अत्यन्त आवश्यक समझकर ऐसा करनेके लिये बाध्य हुआ हूँ।

विरोधी लेखककी वैष्णव धर्मके प्रति आक्रमणसूचक उक्ति

लेखककी कतिपय पंक्तियाँ नीचे उद्धृत की जा रही हैं—

"ज्ञान आलोचनाके बिना धर्मभाव न तो कभी पुष्ट हो सकता है और न कुसंस्कारोंसे अपनी रक्षा ही कर सकता है। प्रेमकी प्रबल बाढ़में जब शन्तिपुर डूबा जा रहा था, उस समय धर्मके क्षेत्रमें पुनः ज्ञानकी कोई आवश्यकता है या नहीं, उसे न समझने पर भी उस क्षेत्रमें जो नेता थे वे यदि

आज लौटकर देख पाते कि ज्ञानके अभावमें उनके प्रचारित प्रेमकी दुर्गति किस सीमातक पहुँच रही है, तो वे स्वंय ही ऐसा कहते कि ज्ञानकी उपेक्षा करना हमारी बड़ी भूल थी।"

प्रतिवादी लेखकको तरह ज्ञानीका स्वभाव

लेखक ज्ञान-मार्गका दास है। ज्ञानकी चर्चाके अतिरिक्त उसे कोई भी दूसरी चर्चा सुहाती नहीं। विशुद्ध प्रेममें भी ज्ञानरूपी कंकड़को मिलाये बिना उसकी तृप्ति नहीं होती। रुचि एक ऐसी ही वस्तु है कि परम ज्ञानके द्वारा प्राप्त होनेवाली प्राप्तिको भी उन्होंने ज्ञानके साथ एक समान बतलानेकी धृष्टता की है। जैसा भी हो यहाँ पर थोड़े ही शब्दोंमें परन्तु स्पष्ट रूपसे उन्हें यह बतलाना उचित है कि ज्ञान किसे कहते हैं, भक्ति किसे कहते है, और दोनोंका परस्पर क्या सम्बन्ध है?

भक्ति और ज्ञानका सम्बन्ध एवं पार्थक्य

शक्तिमान और शक्तिके परस्पर सम्बन्ध-ज्ञानको ही ज्ञान कहा गया है; इसे छोड़कर दूसरे प्रकारके ज्ञानको अवर ज्ञान कहा गया है। दूसरे शब्दोंमें भगवत्-तत्त्व और जीव-तत्त्वके सिवा और कोई गति नहीं है, यहीं पर ज्ञानकी शेष सीमा है। ज्ञानवादी इससे अधिक दूर जानेके अधिकारी नहीं है। जो ज्ञानवादी परमेश्वरकी अनन्त शक्तिका एक कण लेकर अहंकाररूप पर्वतके सर्वोच्च श्रृंगपर आरोहण करते हैं तथा वे उस परमोच्च बिन्दूको प्राप्त करके तृणसम क्षुद्र उपलब्धिरूप आत्मानुभूतिके आनन्दमें विभोर हो जाते हैं, ऐसे आत्मज्ञानियोंको भी प्रेमका एक कण प्राप्त करनेके लिए उन्मत्त होते देखा जाता है। इतने पर भी यदि ज्ञानवादी अपनेको प्रेमी भक्तोंके समान मानते हैं तथा दूसरोंको ज्ञानपथका अवलम्बन करनेका परामर्श देते हैं, तो उन्हें दुर्भागा ही समझना चाहिए। ज्ञानवादी केवल सम्बन्ध ज्ञानमें ही आबद्ध होते हैं। उनका लक्ष्य प्रयोजन-सिद्धि नहीं है। ज्ञानकी सुदृढ़ श्रृंखलासे जो मुक्त हो जाते हैं, वे ही प्रेमधर्ममें प्रवेश पानेके अधिकारी हैं।

ज्ञानका चरमफल कर्मक्षय और सम्बन्धज्ञान

मानव जब तक कर्मके गड्ढेमें पड़ा रहता है, तब तक उसकी भोगवासना प्रबल रहती है। जिस समय कर्मसे छुटकारा पा लेना ही उसे श्रेयस्कर प्रतीत होता है, उस समय वह आत्मानुशीलनकी ओर धावित होता है। कर्मके आवरणसे उन्मुक्त होनेपर ज्ञानी जीव ज्ञानके चक्करमें पड़ जाता है। ज्ञानानुशीलनके अतिरिक्त दुर्गम कर्म-चक्रसे मुक्ति पानेका कोई उपाय नहीं है। ज्ञानका चरम फल कर्मका विनाश है। कर्म-राहित्य ज्ञानका गौण लभ्य विषय है। ज्ञानानुशीलन अन्तमें सम्बन्ध ज्ञान दिलाकर शान्त हो जाता है। इससे और आगे बढ़नेमें वह असमर्थ होता है।

ज्ञान केवल उपाय है, उपेय नहीं; किन्तु प्रेमभक्ति उपाय या उपेय दोनों है यहाँ तककी—

ज्ञान प्रेमके अन्तर्गत है

ज्ञान स्वयं कोई प्राप्य वस्तु नहीं है; बल्कि इसकी सहायतासे अभीष्टकी प्राप्ति होती है। ज्ञान केवल उपाय है, उपेय नहीं। ज्ञान प्राप्त हुआ है—इससे यह नहीं समझना चाहिये कि अभीष्टकी सिद्धि हो गई है; बल्कि इससे यह समझना चाहिये कि अभीष्ट-सिद्धिका केवल मार्ग ठीक हुआ है। जीवका स्वरूप ज्ञानमय है, इसलिये ज्ञानको एक मुख्य पदार्थ माना गया है। किन्तु ज्ञान मुख्य पदार्थ होनेपर भी अभिप्रेत वस्तु नहीं है। ज्ञान उद्देश्य नहीं है, वह तो कोई और वस्तु है; वह है—भक्ति या प्रेम। भक्ति या प्रेम उपाय होनेपर भी वही उपेय भी है। ज्ञानी उपायरूप ज्ञानकी सहायतासे उपेय वस्तुको प्राप्त कर लेने पर ज्ञानी जीव कभी भी और ज्ञानालोचना नहीं करेगा, क्योंकि ज्ञानालोचना उसका प्रयोजन नहीं है। जैसे हमारे पास लाख रूपये हैं, यह कहनेसे हमारे पास 'एक कौड़ी है' या 'दौ कौड़ी' है'—यह कहनेकी आवश्यकता नहीं होती। ज्ञान वादियोंकी सम्पत्ति केवल एक कौड़ी है; इससे अधिक गणना करना उन्होंने सीखा ही

नहीं। अस्तु लखपतिकी सम्पत्तिके सम्बन्धमें सोचनेमें असमर्थ होनेसे अबोध शिशुके समान कभी-कभी कुवाक्योंका प्रयोग भी करते रहते हैं।

ज्ञानालोचनारूप ज्ञानकी अपेक्षा भक्तिरूप भोजनके द्वारा क्षुधानिवृत्ति कर लेना अधिक श्रेष्ठ है

ज्ञानानुशीलन परिपक्व होनेसे अभिज्ञता प्राप्त होती है। ज्ञानीकी अभिज्ञता ही प्रेमानुशीलन है। शिशु ज्ञानवादी अपने काँच सदृश ज्ञानको प्रेम-चिन्तामणिके समान बतलानेमें कुण्ठित नहीं होते। अभिज्ञ भक्तगण यह जानते हैं कि क्षुधाकी निवृत्तिके लिए यदि ज्ञानवादी कहें कि आहारकी आलोचना द्वारा ही कार्य सम्पन्न हो जायेगा तो यह नितान्त भ्रम है। जिस समय तक आलोचनाकी अपेक्षा भोजनकी प्रवृत्ति कम होती है, उस समय तक "ब्रह्मज्ञान" इत्यादि चर्चामें समय नष्ट करना अच्छा लगता है। ज्ञान अनुशीलन या आलोचना ही यदि केवल धर्म है तथा आलोचना करनेसे ही उनकी इच्छाकी पूर्ति हो सके, तब तो ज्ञानियों और भक्तोंका उद्देश्य सम्पूर्णतः स्वतन्त्र है। कारीगरका उद्देश्य राज प्रसाद निर्माण करना होता है और राजाका उद्देश्य उसमें निवास करना होता है। हलवाईका उद्देश्य मिठाई तैयार करना होता है और क्षुधार्त व्यक्तिका उद्देश्य उन्हें भोजन करना होता है। ज्ञानवादी और भक्तोंका उद्देश्य यदि भिन्न-भिन्न हो तो ज्ञानवादियोंसे हमारा अनुरोध है वे अपनेको भक्तोंके समान समझनेका विचार अवश्यमेव परित्याग कर दें।

सकाम भक्त सम्बन्धज्ञान प्राप्त करें किन्तु मायावादी, कर्मी, ज्ञानी और योगियोंकी विषैली शिक्षाएँ ग्रहण न करें

बुभुक्षु भक्त जैसे भी क्यों न हों, उन्होंने अपने अभीष्ट खाद्यके सम्बन्धमें आवश्यक ज्ञान अवश्य ही संग्रह किया है और भोजनके समय मिठाई-वालेके पूर्व पुरुष कौन थे, उसकी जाति क्या थी, उसने कबसे यह व्यवसाय आरम्भ किया है, यह उसका जातिगत व्यवसाय है या नहीं—इन व्यर्थकी बातोंमें वे नहीं पड़ते और न इसे भोजनका अंग ही मानते हैं। क्षुधा-निवारण ही उनका मुख्य उद्देश्य होता है। वे निःसंशय होकर आहार करते हैं। कारण पूर्व पूर्व महाजनोंसे उन्होंने आश्वासन प्राप्त किया है, उनके पूर्व पुरुषोंने (महाजनगणोंने) यह खाद्य ग्रहण किया है और उससे उनकी भूख मिटी है। उन्होंने मायावाद-विषभक्षण कर आत्म-विनाश नहीं किया है। केवल ब्रह्मज्ञान, निर्विशेषज्ञान, कपिलका प्रकृतिवाद आदि उनके ग्रहणीय विषय नहीं थे। आत्मज्ञान, आत्मानुभूति, शक्ति मानत्त्व एवं शक्ति आदिका सम्बन्ध ज्ञान प्राप्त करनेमें उनकी रुचि होती है। अमृतमय और विषमय खाद्यके सम्बन्धमें उन्हें विलक्षण जानकारी होती है। फिर भी यदि कोई यह कहे कि भक्तोंको यह जानकारी नहीं है कि अमुक मिठाईमें कितनी चीनी है, कितनी क्या चीजें हैं, किस प्रकारसे किसके द्वारा बनी हैं; तो ऐसा कहना एकमात्र मूर्ख ज्ञानवादियोंको ही शोभा दे सकता है।

गौड़ीय वैष्णवजन सर्वशास्त्र पारदर्शी होनेपर भी शुष्क ज्ञानकी शिक्षा क्यों नहीं देते?

श्रीगौड़ीय सम्प्रदायमें सर्वशास्त्र पारदर्शी अनेक सुपण्डित हैं जो ज्ञानवादियोंको विषतुल्य ब्रह्मैक्यवाद आत्मविनाशकारी उपदेश देनेमें सब प्रकार समर्थ हैं। किन्तु वे ज्ञानवादीसे अधिक ज्ञानी होनेपर भी अहंकार नहीं करते। ज्ञानवादियोंके उपकारके लिए आचार्यवर श्रीमद् रूपगोस्वामीने अपने भक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थमें भक्तिके सम्बन्धमें लिखा है; उसे पढ़कर ग्रहण करना ही ज्ञानीके लिये मंगलकर है। क्षुधा निवृत्ति ही ज्ञानीकी ज्ञान चेष्टा है, यदि उसकी पूर्ति ही न हुई तो धर्मका फल ही फिर क्या हुआ?

भुक्ति-मुक्ति-स्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्त्तते।
तावद् भक्तिसुखस्यात्र कथमभ्युदयो भवेत्।।
अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।।

जिन्होंने भक्तिको उपादेय समझकर स्वीकार किया है। उन्होंने ही परम ज्ञानके पूर्ण फलको प्राप्त किया है। किसी भी प्रकार ज्ञानमय जीवका उपेय-भक्तिको प्राप्त कर लेना ही कर्तव्य है। उपेय निर्द्दिष्ट हो जानेपर फिरसे उपेय निश्चित करनेकी चेष्टा विकृत मस्तिष्कवाले लोग ही करते हैं। भक्तिका अनुष्ठान होनेपर भी यदि ज्ञानकी सहायताकी आवश्यकता दीखती है, तो यह समझना चाहिए कि अभी तक भक्तिका उदय नहीं हुआ है।

भक्तिके साथ ब्रह्मज्ञानकी तुलना करनेसे ब्रह्मज्ञानकी ही प्रशंसा होती है; किन्तु भक्ति ज्ञानकी अपेक्षा अनन्तगुण श्रेष्ठ है

ब्रह्मज्ञान प्राप्त होनेपर जो प्राप्ति होती है, वह इतनी क्षुद्र होती है कि उसे यदि भक्तिकण या प्रेमकण संज्ञा दी जाय, तो इससे उसकी ही महिमा बढ़ती है। श्रीपाद अपने ग्रन्थमें लिखते हैं—

ब्रह्मानन्दो भवेदेष चेत् परार्द्धगुणीकृतः।
नैति भक्तिसुखाम्भाधेः परमाणुतुलामपि।।

व्यर्थमें ज्ञानचर्चाकी आवश्यकता ही क्या है? इस प्रकारकी बालचपलता तो अपनी शैशवास्थामें ज्ञानपिपासाके समय अनेकों बार की है। परन्तु उसे तो अकर्मण्यता समझकर छोड़ दिया। अब बालकोंके दलमें पुनः प्रवेश करनेके लिये इतना आग्रह क्यों?

ज्ञानवादी, हाक्सले, चार्वाक, डार्विन प्रभृति ज्ञानकर्मी परस्पर निन्दाकारी व कुसंस्काराच्छन्न हैं।

ज्ञानी व्यक्ति संस्कार, कुसंस्कार आदि अवस्थाओंके दास हैं। ज्ञानप्राप्तिके पश्चात् वे जब कुसंस्कार एवं सुसंस्कारके हाथोंसे छुटकारा पा लेते हैं, तब फिरसे उन्हें ज्ञानानुशीलनकी आवश्यकता नहीं होती, यह निश्चित हुआ। यदि ज्ञानवादियोंके मनोगत भावोंकी तालिका संग्रहकी जाय तब हम सहज ही जान सकेंगे कि वे लोग ही परस्पर एक दूसरेको कुसंस्कारमें फँसे हुए बतलाते हैं। हाक्सले, चार्वाक, डार्विन जैसे ज्ञानवादि आधुनिक वैदान्तिक ज्ञानवादियोंको कुसंस्कार सम्पन्न घृणित समझेंगे। और अनेक दोषोंसे युक्त समझेंगे। संकीर्ण साम्प्रदायिक उन्नतिशील ज्ञानवादियों तुम अपने दोषोंको ज्ञानातीत भक्तोंके पवित्र कलेवरमें दोषारोपण करनेका प्रयास क्यों करते हो? यह समझमें नहीं आता। क्योंकि तुमको ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है।

नकली सन्तोंको सच्चा मानकर सन्तोंकी निन्दा करना युक्तिसङ्गत नहीं है

यदि ज्ञानके द्वारा भक्ति या प्रेमकी प्राप्ति स्वीकृत है, तब उसे किसलिए मलिन करनेकी चेष्टा की जाती है? ढोंगी वैष्णवोंको विशुद्ध वैष्णव समझना कहाँ तक ज्ञानका परिचय है—इसे तो ज्ञानवादी ही कह सकते हैं? किसी ढोंगी ज्ञानवादी या ब्रह्मवादी को देखकर यदि कोई अज्ञानवादी समझकर ज्ञानवादीकी निन्दा करे, तो यह ठीक नहीं हैं। उसी प्रकार जो दुर्नैतिक और स्वार्थी व्यक्ति परम पवित्र धर्मके अन्तरालमें बगुलेकी तरह घुसे हुए हैं, उनको धार्मिक या ज्ञानी महापुरुष मानना ही पड़ेगा—ऐसी बात नहीं है अथवा उनकी दुर्नैतिकता आदिके कारण भक्तिमार्ग ही हेय और दूषित समझा जायेगा, ऐसा भी नहीं है। इसी प्रकार महाजन भी इस श्रेणीके कपटी और दुर्नैतिक भक्त वेशधारी व्यक्तियोंके आचरणके लिये उत्तरदायी नहीं हैं। प्रेमधर्ममें ज्ञानका मल लगनेसे ही नाना प्रकारके उपधर्मकी उत्पत्ति हुई है और उसीसे ढोंगी भक्तोंकी सृष्टि हुई है। फलस्वरूप मायावादरूप विषके कीटाणु समस्त विश्वमें इनके द्वारा फैलानेके प्रयास किये जाते हैं। इन ज्ञानवादियोंने यह चेष्टा भी की है। परन्तु इसका परिणाम क्या होगा—इस पर इन्होंने सूक्ष्म विचार नहीं किया है। इसका फल यह हुआ कि बाउल, कर्ताभजा आदि भक्ति विरोधी कुधर्मसमूह ही पवित्र धर्मके नामसे आधुनिक

जगतमें पूजे जा रहे हैं। इन असत् सम्प्रदायोंके अतिरिक्त आजकल और भी अनेक सम्प्रदाय पैदा हुए हैं। हिताहित विवेकशून्य मूर्ख लोग उसी श्रोतमें बहे जा रहे हैं। आजकल ऐसे असत् सम्प्रदायोंकी ही प्रधानता लक्षित हो रही है।

भक्तिरूप दूधमें ज्ञानरूप कंकड़का अभाव रहनेसे वह सड़ जायेगा, ऐसी बात नहीं। दूधमें कंकड़ मिलाना बुद्धिमानीका परिचय नहीं, कंकड़ मिलानेसे दूध गन्दा हो जाता है। उसी प्रकार ज्ञानमिश्रणसे भक्ति दूषित हो पड़ती है। अतः जैसे शुद्ध दुग्ध पान स्वास्थ्यवर्द्धक होता है, उसी प्रकार शुद्ध भक्ति भी जीवनके लिए हितकारी होती है। उसमें ज्ञानरूप कंकड़ मिलाना, उसे विकृत करना है। ऐसा करनेसे ही बाउल, कर्त्ताभजा, नवगोरा, नवयुगीय ब्राह्म, तान्त्रिक, वैदिक नामधारी सुविधावादी आदि अनेक असत् सम्प्रदायोंकी सृष्टि हुई है और आगे भी होगी तथा भक्तिका लोप होगा।

मायावाद और ज्ञानवाद ही सब प्रकारके दोषोंका मूल है

इसलिए कलियुग पावनावतारी करुणावरुणालय स्वयं भगवान श्रीचैतन्यचन्द्रने मायावादियोंका संगत्याग ही भक्तिकी वृद्धिका उपाय बतलाया है। इन ज्ञानीयोंके दलमें मायावादविश कहीं सुप्त रूपमें है और कहीं जाग्रतरूपमें है। अभक्त मायावादी विभिन्न स्तरोंमें विभक्त होनेपर भी ब्रह्मविरोधी हैं—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। प्रेम पवित्र सूर्यके समान है, उसे साधारण तृण-तुल्य ब्रह्मज्ञानके सामने अधिक रूपमें प्रकाशित करनेका प्रयास कुकर्म है। कुकर्म अपरिणामदर्शी अतएव निरर्थक है, ज्ञानवादी उसीका प्रचार करते हैं। उनके सम्प्रदायके लोगोंकी कृपा कम होनेसे ही साधारण जनता भक्तिदेवीकी विशुद्धताकी अधिक उपलब्धि करेंगे। ज्ञानकी प्रधानता देकर भक्त सजनेसे ही इस प्रकारका क अवश्यंभावी है। ज्ञानवादी मलसे मल धोना चाहते हैं। ज्ञानकी जो कुछ भी महत्ता देखी जाती है वह भक्तिके संस्पर्शसे है। भक्तिके साथ ज्ञान मिलनेसे निर्मल भक्ति कुरूप हो गई है; ज्ञानवादियोंने ज्ञानके दोषको काटनेके लिए ही उपायके रूपमें भक्तिको स्वीकार किया है। भक्तिके साथ ज्ञानकी अधिक प्रबलता रहनेसे ज्ञानवादके अन्दरसे ज्ञानका दोष दूर हो जायेगा। यह विचार इस प्रकारका है जैसे किसीके शरीरका अंग तेजावसे जल गया तथा दाग हो गया। अब उसके लिए कहा जाय कि यदि सारा अंग तेजावसे जला दिया जाय तो पहलेका जला हुआ दाग नहीं दीख पड़ेगा। हे ज्ञानवादियों! तुम्हारी जो दुर्दशा हो रही है, उसका कारण ज्ञानशून्य शुद्धभक्ति नहीं है, बल्कि शुद्ध भक्तिका अभाव ही उसका कारण है। भगवानमें तुम्हारी भक्ति रहनेसे या भक्तिकी आवश्यकताकी पलब्धि होनेसे तुम्हारी गणना अभक्तोंमें नहीं की जाती।

मायावादरूप ज्ञान ही भक्तिको दूषित करता है

भक्तिको स्वीकार न करना ही प्रधान अज्ञान है। इस अज्ञानको ही तुम ज्ञान कहते हो। भक्तिकी उपयोगिता अनुभूत होनेपर विशुद्ध ज्ञान प्राप्त होगा और अज्ञान दूर हो जायेगा। शुष्क ज्ञान प्राप्त करनेकी चेष्टा ही अज्ञान है, क्योंकि तुम्हें जब शुद्ध भक्ति प्राप्त हो जायेगी तब तुम शुष्क ज्ञानानुशीलनरूप अज्ञानको ज्ञान नहीं कहोगे। अनुशीलनरहित न होनेसे भक्ति या प्रेमका उदय नहीं हो सकता। तुम ज्ञानकी दुहाई देकर जो भक्तिविनाशक ज्ञान-कंकड़को भक्तिके साथ मिश्रण करनेका प्रबल प्रयत्न कर रहे हो, उससे उपधर्म या भक्तिरहित धर्मोंका जगतमें प्राबल्य हो जायेगा। अब स्वयं ही स्थिर होकर विचार करो—जगतका जंजाल कौन है? अपने ज्ञानसे स्वयं अनुभव कर सकते हो। ❑

संत (सज्जन) के लक्षण

—ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर

अमानी—२०

सज्जन सभीको मान प्रदान करते हैं, अतएव स्वयं अमानी होते हैं

वैष्णव सबको मान देते हैं, परन्तु स्वयं अमानी होते हैं। साधारणतः संसारी जीव प्रतिष्ठा-लोलुप और नाना-प्रकारके अभावोंसे जर्जरित होते हैं। दूसरोंसे दान लिये बिना उनकी पिपासा नहीं मिटती। वैष्णव नहीं होनेसे वैष्णवोंसे सम्मान लाभकर बदलेमें उन्हें मान प्रदानका कार्य असम्भव है। परन्तु वैष्णव जिस प्रकार दूसरोंको मान देते हैं, उसी प्रकार वे स्वयं मान पानेकी आशाका भी सर्वतोभावेन परित्याग करते हैं।

वैष्णव निरभिमानी होते हैं

अनित्य संसारमें बद्धजीव नाना-प्रकारके अभिमानोंमें बँधा हुआ है। वह अपने स्थूल और सूक्ष्म शरीरोंमें आत्मबुद्धि रखता है। परन्तु वैष्णव इन दोनों मायिक शरीरोंको आत्मासे पृथक् मानकर कृष्णोन्मुख होते हैं। इसलिये वे इन दोनों शरीरोंके अभिमानोंसे अर्थात् उच्च वंश, रूप और पाण्डित्य आदि प्राकृत अभिमानोंसे दूर रहते हैं। स्थूल और सूक्ष्म दोनों जगत मायिक राज्यके अन्तर्गत हैं। यहाँ पर केवल अभिमानरूप अन्धकार ही अन्धकार है।

वैष्णवोंमें कृष्णदासका अभिमान होता है

अप्राकृत वैकुण्ठ जगतमें मायिक अभिमान नहीं होता। जहाँ हरिभक्ति विराजमान होती है, वहाँ कृष्णसान्मुख्य होता है और जहाँ हरिभक्ति नहीं होती, वहाँ कृष्ण-विमुखताका साम्राज्य होता है और वहीं जड़ अभिमान जीवको बाँधनेमें समर्थ होता है। इसलिए हरिभक्तिपरायण वैष्णवजन मायिक स्थूल और सूक्ष्म अभिमानोंसे सर्वथा परे होते हैं। सज्जन पुरुषोंके निकट मान अतीव तुच्छ वस्तु है।

गंभीर—२१

'गंभीर' का विपरीत शब्द 'चंचल' है। मायिक जगत नश्वर और अनित्य अर्थात् चंचल-धर्मयुक्त होता है। देह और मनकी समस्त क्रियाएँ अनित्य होती हैं। परन्तु वैष्णवजन देह और मनकी क्रियाओंसे बँधे हुए नहीं होनेके कारण अर्थात् आत्म-धर्ममें प्रतिष्ठित रहनेके कारण गंभीर होते हैं। आत्मामें विचित्रता होती है, परन्तु वह विचित्रता नित्य होती है, स्थूल जो शरीर और सूक्ष्म मनके द्वारा विकार प्राप्त नहीं होती।

मायामें फँसे हुए जीव पूजा-प्रतिष्ठा और काञ्चन-कामिनीके लिये, स्वर्ग-सुख एवं मुक्तिके लिये दिन-रात परिश्रम करते हैं—परन्तु ये सभी चीजें अस्थिर हैं। इसलिये इनकी कामनावाले कर्मी, योगी और ज्ञानी सभी अस्थिर होते हैं। भगवद्भक्तजन यह सब कुछ भी नहीं चाहते, अतएव स्थिर अर्थात् गंभीर होते हैं—

भक्तिस्त्वयि स्थिरतरा भगवन् यदि स्याद्
दैवेन नः फलति दिव्यकिशोरमूर्त्तिः।।
मुक्तिः स्वयं मुकुलिताञ्जलि सेवतेऽस्मान्
धर्मार्थकामगतयः समयप्रतीक्षाः।।

अर्थात् हे भगवन्! यदि आपके चरणोंमें मेरी अचला सेवा-प्रवृत्ति प्रबल रहे, तो सौभाग्यसे आपकी अप्राकृत किशोर मूर्त्ति मेरे हृदयमें उपास्य तत्त्वके रूपमें उदित होगी। ऐसी दशामें स्वयं मुक्ति भी हाथ जोड़कर हमारी आज्ञाकी प्रतीक्षा किया करेगी।

वैष्णव द्वेषी रामचन्द्र खाँकी भेजी हुई वेश्या परमभक्त हरिदास ठाकुरकी गंभीरता नष्ट नहीं कर सकी। सार्वभौम भट्टाचार्य अनेक दिनों तक महाप्रभुको मायावादकी व्याख्या सुनाकर भी उनकी गंभीरता नष्ट करनेमें सफल न हो सके। अतएव वैष्णवगण सदा गंभीर होते हैं। ❑

श्रीचैतन्यदेव और हरिनाम

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त त्रिविक्रम महाराज

(गताङ्कसे आगे)

कलियुगमें तामसिक मत था। असत् संम्प्रदाय उत्पन्न होंगे—यह जानकर ही कलियुगी जीवोंकी रक्षाके लिये त्रिकालदर्शी श्रीव्यासदेवने सत्–सम्प्रदायोंका नाम पद्मपुराणमें लिख दिया है। यथा—

सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते विफला मताः।
अतः कलौ भविष्यन्ति चत्वारः सम्प्रदायिनः।।
श्री–ब्रह्म–रुद्र–सनका वैष्णवाः क्षितिपावनाः।
चत्वारस्ते कलौ भाव्या ह्युत्कले पुरुषोत्तमात्।।

अर्थात् वे सब मन्त्र और मत जो सत् संम्प्रदायके अनुगत नहीं हैं, उनके द्वारा कभी भी सफलता नहीं मिल सकती, उनके द्वारा जीवका एकमात्र प्रयोजन भगवत्–सेवाकी प्राप्ति कभी भी नहीं हो सकती। आजकल कितने ही भूईं–फोड़ भगवान (?) भारतकी उर्बरा भूमिमें निरन्तर उग रहे हैं तथा श्रुति–स्मृति विरोधी मनोकल्पित पद्य एवं मंत्रादिका प्रचारकर जगत्का अहित कर रहे हैं। कितने ही अशुद्ध अद्भुत मत–मतान्तरोंका धर्मके नामपर प्रचार कर रहे हैं। त्रिकालदर्शी श्रीव्यासदेवने कलियुगकी भावी दशाको भली प्रकार समझ कर ही श्री, ब्रह्म, रुद्र और सनक—इन चार जगत् पवित्रकारी सम्प्रदायोंका उल्लेख कर रखा है। साक्षात् भगवान होकर भी श्रीमन्महाप्रभुने शास्त्रकी मर्यादा रखी है तथा इन चारों संम्प्रदायोंको माना है। ये चारों सम्प्रदाय वैष्णव सम्प्रदाय हैं। इन सबका मत है—श्रीविष्णु ही परात्पर तत्त्व हैं, उनकी सेवा ही जीवका नित्य धर्म है। प्रत्येक मत ही एक पथ है और स्मार्त–समाजकी पंचोपासनाकी विष्णुभक्ति शुद्ध भक्ति है—इन चारों सत् सम्प्रदायोंके वैष्णवजन निर्विशेष मार्गके इस विचारको नहीं मानते हैं। श्रीमन्महाप्रभुने निर्विशेषवादी और पंचोपासकोंके विचारोंका खण्डन कर शुद्ध भक्ति और शुद्ध नामका ही प्रचार किया है। उन्होंने धर्मध्वजी, जगतवंचक और उच्छृंखल समाजकी मनःतुष्टि करके अपस्वार्थकी सिद्धिके लिये कहीं भी शास्त्र–मर्यादाका उल्लंघन नहीं किया है। वरं उन्होंने समस्त दार्शनिक जगत्को दिखलाया है कि निर्विशेषवाद ही नाम–भजनमें सर्वप्रधान बाधा है और यह निर्विशेषवाद शास्त्रानुकूल नहीं है। असुर स्वभाववाले व्यक्तियोंको मोहित करनेके लिये असत् शास्त्रके रूपमें आचार्य शङ्कर द्वारा निर्विशेषवादका प्रचार हुआ है—

स्वागमैः कल्पितैस्त्वं च जनान् मद्विमुखान् कुरु।
माञ्च गोपय येन स्यात् सृष्टिरेषोत्तरोत्तरा।।
मायावादं असच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते।
मयैव विहितं देवि कलौ ब्राह्मण मूर्तिणा।।

अतएव निर्विशेषवादको अंचलमें बाँधकर जो हरिनामकी साधना (?) करते हैं, उनके हरिनाममें और श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रचारित हरिनाममें रात और दिनका अन्तर समझना चाहिये। श्रीमद्भागवतने 'एतावानेव' श्लोकमें नाम ग्रहणको ही भक्तियोग कहा है। परन्तु निर्विशेषवादियोंका नाम कदापि भक्तियोग नहीं है। कारण, निर्विशेषवादमें त्रिपुटी अर्थात् सेव्य,

सेवक और सेवाको नित्य नहीं माना गया है। इसलिये निर्विशेष या कैवल्य मुक्तिकी कामनासे ॐ-कार तत्त्वकी ओर जिनका चित्त आकृष्ट है, वे श्रीनामको केवल साधनके रूपमें ग्रहण करते हैं। ऐसे व्यक्ति कभी भी भक्त नहीं हो सकते, केवल मात्र भक्तिदेवीके चरणोंमें अपराध ही संग्रह करते हैं। उनके ऐसे नामको शास्त्रमें नामापराध कहा गया है। श्रीचैतन्यमहाप्रभु इस प्रकारके नामापराधके प्रचारक नहीं थे। उन्होंने बतलाया है—

भुक्ति-मुक्ति-स्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्त्तते।
तावद्भक्तिसुखस्यात्र कथमभ्युदयो भवेत्।।

ऐसी भुक्ति और मुक्तिकी कामनाको उन्होंने पिशाची बतलाया। इसलिये पिशाची द्वारा मोहित जीवोंकी शुद्धनाममें रुचि नहीं होती है।

श्रीमन्महाप्रभुका नाम-प्रचार शुद्धभक्ति है; वह कर्म या ज्ञानका अङ्ग नहीं है। जो निर्विशेषवादी हैं, या 'सब समान' मतके पोषणकारी हैं उनके मुखसे निकला हुआ हरिनाम कभी भी भक्तियोग नहीं है, वह कर्म या ज्ञानके अन्तर्गत नामापराध है। कर्मी, ज्ञानी, योगी सब अपने-अपने साधनोंको दुःखप्रद समझकर और उन-उन साधनों द्वारा पूर्णफल प्राप्त नहीं हो सकता—यह भली प्रकार जानकर श्रीनामप्रभुका आश्रय लेते हैं और नामसे सहज ही सिद्धि प्राप्त करनेकी चेष्टा करते हैं। श्रीनामप्रभु कृपापूर्वक अपना कलङ्क स्वीकार करके भी उन कर्मी, ज्ञानी और योगियोंकी अभिलाषा पूर्ण करते हैं। परन्तु श्रीनामका मुख्य और यथार्थ फल जो प्रेम भक्ति है, उसे कभी भी प्रदान नहीं करते।

नाम, नामाभास व नामापराध एक नहीं हैं। कर्मियोंकी भुक्ति अर्थात् लोक और परलोक (स्वर्गादि) के भोग-सुख नामापराधके द्वारा सहज ही प्राप्त होते हैं। इसीलिये कर्मीगण नामग्रहणका बड़ा आदर करते हैं। वे माता-पिताके श्राद्ध व यज्ञकर्मके दोषोंको दूर करनेके लिये और सफलता प्राप्त करनेके लिये साधन-अङ्गके रूपमें नामसंकीर्त्तन करते हैं। नामकी कृपासे पितृगण (पूर्वज) स्वर्गादि प्राप्तकर सकेंगे—ऐसा समझकर श्राद्धादिके समय नामकीर्तन करना नामभजन या नामसेवा नहीं है—यह तो श्रीनाम प्रभुके द्वारा अपनी सेवा करवा लेनेकी चेष्टा मात्र है। शुद्धभक्त ऐसे नामसंकीर्त्तनको देखकर अत्यन्त दुःखी होते हैं। जो नाम सेव्य तत्त्व हैं, उन्हें लोगोंको अपने भोगमें लगाते देखकर उनका हृदय बहुत ही व्यथित होता है। ऐसे नामसंकीर्त्तनकी गणना नामापराधमें की गई है। इसीलिये शुद्धनाम ग्रहण करनेवाले भक्तजन ऐसे नामसंकीर्त्तनसे दूर रहते हैं। कर्मियोंके समान ज्ञानी व योगीजन कठोर साधन करके जब अपने उद्देश्यकी प्राप्तिमें असमर्थ हो जाते हैं तब नामसंकीर्त्तनका सहारा लेते हैं। निर्विशेष मार्ग क्लेशपूर्ण है, इस विषयमें श्रीगीता (१२/५) का विचार स्पष्ट है—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते।।

अर्थात् जिनका चित्त अव्यक्त-स्वरूपमें लगा हुआ है उनको अधिकतर क्लेश ही प्राप्त होता है, उनको कठिनाईयोंका सामना अधिक करना पड़ता है, क्योंकि देहधारियोंके लिये अव्यक्तकी प्राप्ति, अव्यक्त उपासनोक्त सिद्धि बड़ी कठिन होती है, यह काम सुगम नहीं है। अएतव केवल ज्ञान द्वारा मुक्ति प्राप्त करना कष्ट-साध्य जानकर ज्ञानी और योगी नामसंकीर्त्तनका सहारा लेते हैं। लेकिन उनका उद्देश्य नामकी सेवा नहीं—नामप्रभुसे निर्विशेष या अव्यक्त ब्रह्मकी प्राप्ति है। इसलिये शुद्ध भक्त इसकी भी नामापराधमें गणना करते हैं, और ऐसे नाम संकीर्त्तन करनेवालोंसे सर्वदा दूर रहते हैं। भक्तगण ज्ञानी व योगियोंके अभिलषित निर्विशेष मुक्ति या कैवल्यको अत्यन्त घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। त्रिदण्डिपाद श्रीलप्रबोधानन्द सरस्वती लिखते हैं—

कैवल्यं नरकायते त्रिदशपूराकाशपुष्पायते।
दुर्द्दान्तेन्द्रियकालसर्पपटली प्रोत्खातदंष्ट्रायते।।
विश्वं पूर्णसुखायते विधि–महेन्द्रादिश्च कीरायते।
यत् कारुण्यकटाक्षवैभवतां तं गौरमेव स्तुमः।।

अर्थात् भक्तजन योगियों और ज्ञानियोंके आदरणीय कैवल्य मुक्तिको नरकके समान भयङ्कर और घृणित मानते हैं। जिन्होंने श्रीमन्महाप्रभुका कृपाकटाक्ष प्राप्त कर लिया है तथा जिन्होंने शुद्ध भक्ति रसका किंचित् परिमाणमें आस्वादन कर लिया है, वे प्रेमसुखके सामने कैवल्य मुक्तिको नरक जैसा घृणित जानते हैं। उन्हें कर्मकाण्ड द्वारा लभ्य इन्द्रपदवी या ब्रह्मपदवी अतितुच्छ जान पड़ती है। वे स्वर्ग सुखको भी आकाशकुसुम जैसा असत् समझते हैं। इसलिये भक्तजन भुक्ति–मुक्तिकी अभिलाषा रखनेवालोंके नाम संकीर्त्तनको नामापराध मानते हैं।

शुद्ध ज्ञानी या भक्तकी जड़–मुक्ति तो श्रीनामके आभाससे ही हो जाती है। ऐसी मुक्ति कैवल्य मुक्तिसे सर्वथा विलक्षण होती है। भक्तजन बिना परिश्रमके ही सहज ही नामाभाससे इसे पा लेते हैं। अजामिल इसी प्रकार नामाभास द्वारा मुक्त हो गए थे। यह नामाभास जीवके नामापराध रहते सम्भव नहीं है। नामापराधरहित शुद्धभक्त स्वाभाविक रूपसे ही इसे प्राप्तकर लेते हैं—

भक्तिस्त्वयि स्थिरतरा भगवन् यदि स्याद्
दैवेन नः फलति दिव्यकिशोरमूर्तिः।।
मुक्तिः स्वयं मुकुलितांजलि सेवतेऽस्मान्
धर्मार्थकामगतयः समयप्रतीक्षाः।।

(कृष्णकर्णामृत)

अर्थात् दिव्य किशोरमूर्ति श्रीभगवानके चरणोंमें जब अनन्य भक्ति उदय होती है, तब मुक्ति हाथ जोड़कर शुद्ध भक्तकी सेवाके लिये खड़ी रहती है और धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये द्वारपालकी तरह भक्तकी आज्ञाकी प्रतीक्षामें दूर खड़े रहते हैं। श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रचारित हरिनाम इस प्रकार शुद्धा भक्ति है; यह कर्मी, ज्ञानी या योगियोंका नामापराध नहीं। यह उन कर्मी, ज्ञानी या योगियोंके अधिकारसे बाहर है। किसी प्रकारका अन्याभिलाष रहनेसे हरिनामका कीर्तन नहीं हो सकता। मायावादी कृष्णके प्रति अपराधी हैं, वे भगवानके नित्य सच्चिदानन्द रूपादिको स्वीकार नहीं करते। इसीलिए वे प्रेमदाता हरिनामके कीर्तनमें अयोग्य होते हैं और प्रेमधनसे सदा वंचित रहते हैं। पंचोपासक स्मार्तगण जितना भी हरिनाम क्यों न करें, वे "विष्णौ सर्वेश्वरेश्वरे तदितरसमधीर्यस्य वा नारकी सः" वचनानुसार सर्वेश्वरेश्वर श्रीविष्णुको उनकी विभूति स्वरूप देवताओंके सहित एक समान समझनेके कारण अपराधी हैं, वे कभी भी कृष्ण प्रेम नहीं पा सकते।

अधिकांश लोग इस रहस्यसे अनभिज्ञ हैं। उनकी श्रीनामके प्रति स्वाभाविक श्रद्धाका सुयोग लेकर कुछ निर्विशेषवादी और स्मार्त व्यक्ति अपने–अपने अपस्वार्थको सिद्ध कर रहे हैं तथा सरल धर्म–विश्वासी मानवको प्रेमधनसे वंचित कर रहे हैं; यहाँ तक कि, श्रीमन्महाप्रभुसे भी अधिक परिमाणमें हम नाम प्रचार कर रहे हैं, ऐसा कहनेमें उन्हें लज्जा नहीं आती। अतएव साधु सावधान! ऐसे नामापराधको श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रचारित शुद्ध हरिनाम मानकर धोखेमें न रहें। बल्कि शुद्ध हरिनामका अनुशीलन कर मानव जीवनको सफल करें। ❑

कलियुगमें श्रीकृष्ण नामजप साधना

—डॉ० सत्यपाल गोयल

ब्रह्मवैवर्त पुराणमें राधाजीके महत्त्वको कुछ इस प्रकार दर्शाया गया है—

जगन्माता या प्रकृतिः पुरुषश्च जगत्पिता ।
गरीयसी त्रिजगतां माता शतगुणैः पितुः ।।
राधाकृष्णेति गौरीशेत्येवं शब्दः श्रुतौश्रुतः ।
कृष्णराधेशगौरीति लोके न च कदा श्रुतः ।।
आदौ पुरुषमुच्चार्य पश्चात्प्रकृतिमुच्चरेत् ।
स भवेन्मातृगामीय वेदातिक्रमणे मुने ।।

(ब्रह्मवैवर्त पुराण, अध्याय ५२)

राधा एवं सीताका महत्त्व अधिक है, इसीलिये उनका नाम पहले जोड़ा जाता है। प्रकृति जगत् माता है। पितासे एक सौ गुणा अधिक महत्त्व माताका होता है। यद्यपि राधाजी श्रीकृष्णकी स्वरूप शक्ति तथा परम प्रेयसी हैं तथापि शक्ति होनेसे एक अंशसे जगत माता प्रकृतिके रूपमें पूज्य हैं। अतएव शास्त्रोंमें परा शक्ति होनेसे राधाकृष्ण गौरीशंकर इस क्रमसे स्थान दिया गया है, न कि कृष्णराधा अथवा शंकरगौरीके रूपमें।

शास्त्रोंमें ऐसा कहा गया है कि जो शक्तिके आदिमें पुरुषवाचक नाम जोड़ेंगे, उन्हें माताके साथ गमन करनेका अपराध लगेगा। यहाँ पर शक्तिके रूपमें राधाजीका अपना वैशिष्ट्य है, इसी उद्देश्यको सिद्ध किया गया है।

इस तथ्यकी पुष्टि निम्न उद्धरणसे भी होती है।

राधेत्येवं च संसिद्धा राकारो दानवाचकः।
स्वयं निर्वाणधात्री या सा राधा परिकीर्त्तिता ।।
'रा' च रासे च भावनाद्धा एव धारणादहो ।
हरेरालिङ्ग वाधा रात्तेन राधा प्रकीर्त्तिता ।।

(ब्रह्मवैवर्त पुराण, अध्याय १७, कृष्णखण्ड)

राधा नाम स्वयं सिद्ध है। इसमें 'रा' से तात्पर्य दानसे है अर्थात् जो अपने प्रेमका श्रीकृष्णको दान करती हैं। वे मोक्षकी धाम होनेसे राधा कहलाती हैं। यद्यपि राधाजीके प्रसंगमें मोक्ष जैसे शब्द अत्यन्त हेय हैं। कृष्ण प्रेमीजन कभी मोक्षकी कामना नहीं रखते। मोक्ष तो राधाजीके महलके द्वारपर स्वयं रजमें लोट-पोट होते रहते हैं। यहाँ दानसे तात्पर्य केवल यह है कि राधाजी नित्यसिद्ध तथा साधनसिद्धोंको भगवानके प्रेमका दान करती हैं। कौन सी राधा दान करती हैं कृष्ण प्रेमको, रासमें श्रीकृष्ण जिस राधाको धारण करते हैं, वे ही राधा स्वयं कृष्ण प्रिया होकर कृष्णप्रेमसेवाको उनके प्रेमी भक्तोंको दान करती हैं।

श्रीमुक्ताचरित ग्रन्थमें श्रीरघुनाथदास गोस्वामी जीने राधाजीके महाभाव और उनकी दिव्य प्रेम लीलाका एक वर्णन इस प्रकार किया है—

महाभावस्वरूपेयं नित्यदा वार्षभानवी ।
सखीप्रणयसद्गन्धवरोद्वर्तनसुप्रभा ।।
कारुण्यामृतवीचिभिस्तारुण्यामृतधारया ।
लावण्यामृतवन्याभिः स्नापिता ग्लापितेन्दिरा ।।
ह्रीपट्टवस्त्रगुप्तांगीसौन्दर्यघुसणाञ्चिता ।
श्यामलोज्ज्वलकस्तूरीविचित्रितकलेवरा ।।
कम्पाश्रुपुलकस्तम्भस्वेदगद्गदरक्ततः ।
उन्मादो जाड्यमित्येते रत्नैर्नवभिरुत्तमैः ।।
क्लृप्ताऽलंकृतिसंश्लिष्टा गुणाली पुष्पमालिनी।
धीराधीरात्वसद्वासः पएवासैः परिष्कृता।।
प्रच्छन्नमानधम्मिल्ला सौभाग्यतिलकोज्वला।
कृष्णनामयशःश्रीविश्रवनोल्लासिकर्णिका ।।
रागताम्बूलरक्तोष्ठी प्रेयकौटिल्य कज्जला।
प्रणयक्रोधसच्चोली बन्धगुप्तीकृतस्तनी।।
नर्मभावितनिष्यन्दस्मितकर्पूरवासिता ।
सौरमन्तगृहे गर्वपर्यङ्को पटिलीलया।।

निविष्टा प्रेमवैचित्र्य वियलत्तर लाञ्चिता।
मध्यतात्मसखीस्कन्धलीलादत्तकराम्बुजा ।।
श्यामा श्यामस्मरामोदधूली परिपोषिका।
(श्रीमुक्ताचरितम्)

अर्थात् राधाजी, जो कि श्रीवृषभानुजीकी पुत्री होनेसे वार्षभानवी कहलाती है, सदैव महाभावस्वरूपा हैं । उनकी प्रिय सखियों द्वारा उनके श्रीअंगोंपर जो उबटन लगाया गया है, उसकी सुगन्ध चारों ओर फैल रही है। उनके श्रीअंगोंकी सौम्य प्रभा झिलमिला रही है। वे स्वयं करुणामयी होनेसे उनके अंदर करुणामृतकी तरगें तंरगायित हो रही है। वे अत्यन्त तरुणा हैं, किशोर वयस्का हैं, ऐसे भासती हैं, जैसे सौन्दर्यामृत तरुण होकर प्रणय सरितामें अवगाहन कर रहा है। उनके रूपलावण्यसे अभिभूत होकर इन्द्रिय लजायमान हो रही है। राधाजी इतनी सलज्ज है कि उनका समस्त सौन्दर्य उस लज्जासे आवरित है। उनकी पीतवसना लज्जासे देदीप्यपान सौन्दर्य चन्दन जैसा भास रहा है। उनके श्रीअंगों पर जो चित्रकारी की गयी है, वह ऐसी लगती है जैसे श्यामसुन्दरकी अंग कान्तिको उससे लिपटा दिया गया है। श्रीराधाजीमें सभी सात्विक भाव प्रस्फुटित हो रहे हैं। उनके अंगोंपर फूल सर्वगुण सम्पन्नताके रूपमें शोभावान हो रहे हैं। वस्त्रोंमें प्रमुख लंहगा एवं ओढ़नी उनके धीरा और अधीरा भावके रूपमें नित्य धारित हैं। उनकी वेणी छिपे हुए मान जैसी है। माथे पर तिलक सौभाग्यका प्रतीक है। उनके कानोंमें कृष्ण नामका गुणगान करते हुए कुण्डल झिलमिला रहे हैं। उनके अधरों पर ताम्बूलका रस रचा हुआ है, जो उनके हृदयके प्रेमको तरंगायित कर रहा है। प्रेमका रंग लाल होता है। उनके अधरोंकी ताम्बूली आभा उनके हृदयमें बसे हुए कृष्णप्रेमको प्रकट कर रही है। काजलसे आँखोंकी चंचलता और कुटिलतामें वृद्धि हो जाती है। राधाजीके नेत्रोंमें जो श्यामल कजरा लगा हुआ है, वह श्रीकृष्णके प्रति उनकी प्रणयी कुटिल भंगिमाको दर्शा रही है। कंचुकी क्रोधका प्रतीक है, क्योंकि प्रेमीको वहाँ तक पहुँचनेमें अवरोधक है। अतएव राधाजीने प्रणय मिश्रित क्रोधरूपी कंचुकी धारण कर रखा है। सुचरित्रवान स्वस्थ्य अंगोंवाली नासिकाओंकी श्वाँसोंसे अत्यन्त सुगन्धित गंध निकलती है। राधाजीका मंद हास्य उनके चारों और सुगन्ध विस्तारित कर रहा है। पर्यंक पर बैठना कुछ गर्वको प्रकट करता है। राधाजी भी मान (गर्व) रूपी पलंग पर बैठी हुई हैं। सखियाँ प्रेम वैचित्य (भावकी उत्कर्ष अवस्था) रूपी पंखोंसे हवा कर रही हैं। वे अपनी समवयस्का किसी सखीके कंधे पर अपना कर-कमल रखे हुए हैं। श्रीराधाजी श्यामा हैं, क्योंकि श्यामसुन्दरकी अंगकान्ति जब उनके गौरवर्णी अंगों पर पड़ती है, तो वे श्याम हो जाती हैं। उन्हें प्रकृतिका कोई अंश स्पर्श नहीं कर सकता अर्थात् ऊपर जो सौन्दर्य वर्णन किया गया है, वह अप्राकृत है, उसमें जड़ीय अंश नहीं है। यानि कि किसी भूलोकके सौन्दर्यका वर्णन नहीं है। वे कृष्ण-प्रेममें डूबी हुई हैं तथा कृष्ण-प्रेम प्रदान करनेमें एकमात्र वे ही समर्थ हैं।

पुरा वृन्दावने रम्ये लोके रासमण्डले ।
रत्नसिंहासने रम्ये तस्यौ तत्र जगत्पतिः ।।
स्वेच्छामयश्च भगवान् बभूवै रमणोत्सुकः।
रमणीं कर्तु मिच्छाच तद्बभूव सुरेश्वरि ।।
एतस्मिन्नन्तरे दुर्गे द्विधा रूपो वभूव सः ।
दक्षिणाङ्गश्च श्रीकृष्णो वामांग सा चराधिका ।।
तस्याश्चांशांश कलया वभूवदैव योषितः ।
वभूव गोपी संघाश्च राधाया रोम कूपतः ।।
राधा वामांश भागेन महालक्ष्मीर्वभूव सा ।
स्वयं राधा कृष्णपत्नी कृष्ण वक्षः स्थलस्थिता।
प्राणाधिष्ठातृ देवी च तस्यैव परमात्मनः।।
(ब्रह्मवैवर्त पुराण प्र. खण्ड अध्याय ४८)

अर्थात् एक समय श्रीकृष्ण भगवान एकाकी

वृन्दावनमें रत्नसिंहासन पर विराजमान थे। उनके हृदयमें खेल खेलनेकी इच्छा उदित हुई। रसानुभूतिके लिये एक प्रिया उनके वामांगसे प्रकट हुईं। दक्षिणांग कृष्ण तथा वामांग उनकी प्रिया श्रीराधा हैं। इन्हीं राधाजीके अंशसे अंशकी कला आदिके रूपमें देव कन्याएँ प्रकट हुईं एवं राधाजीके रोमकूपसे अनन्त कोटि व्रज गोपियाँ प्रकट हुईं। राधाजीके वाम अंगसे विष्णुप्रिया 'लक्ष्मी' जी प्रकट हुईं। स्वयं राधा कृष्णके वक्षःस्थलपर रहनेवाली और उन परमात्माकी प्राणाधिष्ठातृ देवी हैं।

राधा नाम कल्पनाप्रसूत नहीं

अनेक भगवत्-विद्वेषियोंने अपना सारा श्रम इसीमें नष्ट कर दिया कि राधाजीका नाम श्रीमद्भागवतमें नहीं है, इसलिये राधा नाम कल्पनाप्रसूत है तथा इस स्वरूप व नामकी उपज मात्र चन्द वर्ष पूर्व की है। यदि उन्होंने ऐकान्तिक भजन कर श्रीराधा और श्यामके दिव्य स्वरूपको जाननेकी साधना की होती तो उन्हें इसका प्रत्यक्षीकरण अवश्य हो जाता। परन्तु बेचारे द्वेषभाव तथा पूर्वाग्रहसे ग्रस्त होनेके कारण श्रीमद्भागवतमें कृष्ण-प्रिया राधाजीका नाम नहीं खोज पाये।

श्रीनारदजीके उद्बोधन पर श्रीव्यासदेव जीने श्रीमद्भागवतकी रचना की। अन्य ग्रन्थों तथा वेद, उपनिषद, पुराणोंका उन्होंने संकलन किया। किन्तु श्रीशुकदेवजी द्वारा इसका प्रथम वाचन किया गया। श्रीराधाजी उनकी इष्ट-देवी थीं। अपने इष्टको गोपन रखना पड़ता है। दूसरे राधाजीका नाम जिह्वा पर आते ही उनको समाधि लग जाती थी। अतएव भागवतका वाचन सात दिवसमें सम्भव नहीं होता। इसलिये भी भागवतमें राधा नामका उल्लेख नहीं हुआ है। जबकि अन्य सभी पुराणोंमें कहीं न कहीं उनका नाम आता है। यही नहीं वेद और उपनिषद, जिनका रचनाकाल, वर्तमान द्वापरसे कई लाख वर्ष पूर्व माना जाता है, उनमें भी राधाजीका नाम आता है, जिसका कि वर्णन आगामी पंक्तियोंमें यथा स्थान किया जायेगा, जो इस तथ्यका द्योतक है कि राधानाम मात्र चन्द वर्ष पूर्वकी उपज नहीं है।

श्रीमद्भागवतमें माता यशोदाको छोड़कर अन्य किसी भी व्रजगोपीका नाम नहीं मिलता है। जबकि राधाजीका नाम तो अनेक प्रकारसे संकेतोंमें मिलता है। श्रीराधासहस्त्रनाममें जितने नाम राधाजीके दिये हैं प्रायः वे सभी नाम किसी-न-किसी रूपमें भागवतमें मिलते हैं, जिनमें से कुछ नामोंको श्लोकके उद्धरण सहित यहाँ दर्शाया जायेगा। जो लोग पूर्वाग्रह, दुराग्रहोंसे ग्रस्त हैं, उनके लिये कोई औषधि नहीं है, जो उनके उन्माद, विशेषकर भक्ति-विरोधी उन्मादको दूर कर सके।

श्रीजीव गोस्वामी पादने 'क्रमसन्दर्भ' में श्रीमद्भागवतके श्लोक (१०/२१/७) की टीका इस प्रकार की है—परमासक्त्या गोपीनामुक्तिः अक्षण्वतामितिश्लोके वक्त्रं व्रजेशसुतयोरिति—व्रजेशसुता च व्रजेशसुतौ तयोः राधाकृष्णयोरित्यर्थः। अनुवेणुजुष्टं 'वक्त्रं' येन निपीतं तेनैवाक्षण्वतां फलं प्राप्तमिति। व्रजेशो नन्दः व्रजेशो वृषभानुः व्रजेशश्च व्रजेशावित्येकशेषः पुनः सुतश्च सुता च सुतौ षष्ठी तत्पुरुषः यथासंख्यतया व्रजेशसुतयोरिति कृष्णराधयो वक्त्रमिति।

अर्थात् व्रजेश श्रीवृषभानुजीकी सुता (पुत्री) राधा तथा व्रजेश श्रीनन्द महाराजजीके सुत (पुत्र) श्रीकृष्णका दर्शन जिन्होंने किया है, यथार्थमें नेत्रोंका सुख उन्हींको मिला है, उन्होंने ही अपने नेत्रोंका फल प्राप्त किया है। षष्ठी तत्पुरुष समाससे यहाँ श्रीराधाकृष्णके श्रीमुखसे ही गोपीजनोंका तात्पर्य है।

'गूढ़ार्थदीपिका' टीकाकारने श्रीमद्भागवतके १०/३०/३६ श्लोककी टीकामें इस प्रकार लिखा है—

इत्येवं श्लोके यां गोपीमनयत्कृष्णेति—यां गोपीम् श्रीराधामिति। या कृष्णस्य गोरिन्द्रियाणि 'याति' रक्षतीति 'गोपी' ताभित्यर्थ (तनु तस्याः (राधायाः) तासां (गोपीनां) च को विशेष गोपीरिति गोपो भूपेत्यमरः ततश्च तासां सर्वासां इयं राज्ञी स्वामिनीत्यर्थः। इति विशुद्ध रस दीपिकायां। (अण वृषभानु नन्दिन्याः विप्रलम्भांशां वर्णीयतुं पीठिका रचयति यामितिं।

गूढार्थदीपिका टीकाकारने उक्त श्लोकमें 'गोपी' शब्दको राधाजीके लिये संकेत माना है। रासलीलाके

समय श्रीकृष्ण जिस गोपीको साथ लेकर निकुँजमें प्रवेश कर जाते हैं—उस गोपीकी विशेषताको बतला रहे हैं—वे श्रीकृष्णकी समस्त इन्द्रियोंकी रक्षिका हैं। इसलिये उनको गोपी कहा गया है। 'गोपी' शब्द भूप अर्थात् स्त्री सन्दर्भमें 'रानी' शब्दका बोधक है। चूँकि राधाजी समस्त गोपियोंमें प्रधान हैं, अतएव राधाजीको गोपीके नामसे दर्शाया गया है। भागवतके श्लोक १०/१९/१६ तथा १०/४७/६४ में भी राधाजीको गोपी शब्दसे ही संबोधित किया गया है। अन्य श्लोक १०/१४/२, १०/१४/११, १०/३२/२ में भी गोपी शब्दसे ही दरशाया है। युगल मंत्रमें श्रीकृष्णको गोपीजनबल्लभ कहा गया है। गोपीजनबल्लभ अर्थात् जो राधाजीके प्रिय हैं। शेष व्रजवधुएँ तो नित्य सिद्धा या साधन सिद्धा हैं। गोपी तो राधाजी ही हैं। क्योंकि ये सभी व्रजवधुएँ राधाजीकी प्रिय हैं, अतएव सामान्यजन उनको भी गोपी (अर्थात् राधाजीकी सखियाँ) ही मानते हैं। श्रीशुकदेवजीने जहाँ भी गोपी कहा, वह राधाजीके लिये ही संबोधन है। राधा नामसे उनको भाव समाधि लग जाती थी, इसलिये उन्होंने उनके हजार नामोंमेंसे 'राधा' के अतिरिक्त अन्य नामोंका विविध स्थलों पर उपयोग किया है।

'सखी' शब्द भी राधाजीका एक नाम है जिसका भागवतके श्लोक १०/३०/४० तथा १०/२१/१० में उल्लेख किया गया है, यथा—

मोहितां दुःखितां सखीमिति (१०/३०/४०)

श्रीकृष्णको ढूंढ़ते हुए गोपियोंने अपनी 'सखी' राधाको दु:खित मन देखा। इसीका तथ्य क्रमसन्दर्भमें श्रीजीव गोस्वामीने लिखा है—गोप्यः कृष्णं अन्विच्छन्त्यः। सखीं श्रीराधामित्यर्थः ददृशुरिति।

वृन्दावनं सखीति (१०/२१/१०) हे सखी राधे—श्रीकृष्णने ब्रजकी कुँजीके संरक्षरणका दायित्व आपको सौंपा है, इसलिये आप अति धन्य हैं। यह राधाजीको सांत्वना दी जा रही है—श्रीगोपियों द्वारा। यह उदगार तोषणी टीकाकारके ही नहीं अपितु भागवतका स्पष्ट तात्पर्य भी यही है।

श्रीमद्भागवतमें 'राधा' नामका भी उल्लेख प्रछन्न रूपमें हुआ है, यथा—

अनयाऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद् रहः॥

(१०/३०/२८)

श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीपादने उक्त श्लोककी टीकामें लिखा है—"(राधित पदेन) राधेति नामकरणं य दर्शितं। इति तोषिण्याम्—ततश्च राधायतीति राधेति नाम व्यक्ती बभूवेति। मुनी प्रचलेन तदीय नामाप्य घात् परं किन्तु तदास्य चन्द्रात् स्वयं निस्तरेति स्म कृपानृ तस्याः सौभाग्यभेर्ष्या इव वादनार्थमिति"

श्रीमद्भागवतके तोषणी टीकाकारके अनुसार राधित पदसे 'राधा' का नाम रखा गया है। श्रीकृष्णकी आराधना करनेके कारण उनकी प्रियाका एक नाम राधा भी है जो श्रीशुकदेवजीके मुखसे प्रछन्न रूपमें निकल गया। चन्द्रमाके प्रकट होनेपर क्या उसकी प्रभा छिप सकती है?

श्रीमद्भागवतमें देवासुर संग्राम कथा प्रसंगमें राधानाम स्पष्टतः प्रकाशित हुआ है यथा—

कबन्धास्तत्र योत्येतुः पतितस्व शिरोक्षभिः।
उद्यता युथ दोर्दण्डै राधावन्तो भटान्मृथे॥

(श्रीमद्भा. ८/१०/४०)

अर्थात् जो कृष्णप्रिया राधाजीके नामका जप करते हैं, उनको श्रीकृष्णकी प्रेमाभक्ति प्राप्त होती है। वे इस संसारके काम, क्रोध, लोभ आदि पर विजय प्राप्तकर श्रीकृष्णको प्राप्त करते हैं। इस प्रकार अष्टम स्कन्धमें उनके नामके महत्त्वको प्रकट किया गया है। यद्यपि राधा नामका स्पष्ट उल्लेख दशम स्कन्धमें नहीं मिलता है तथापि प्रछन्न रूपमें १०/३०/२८ श्लोकमें 'राधित पद' का प्रयोग कर दर्शाया गया है।

'प्रिया' शब्द संकेतसे श्रीशुकदेवजीने राधाका ही वर्णन श्लोक १०/३०/३ में किया है यथा "प्रिया प्रियस्येति"। इसी प्रकार १०/३०/११ में "गतः प्रिय येहेति" द्वारा प्रिया शब्दसे राधाको सम्बोधित किया गया है। श्लोक १०/३०/१२ में भी "बाहुप्रियांस सुपधायेति" में भी प्रिया राधाका ही नाम है। समस्त

गोपियोंमें जो अधिक प्रिया हैं, वे प्रधान गोपी श्रीराधा ही हैं। श्लोक १०/३०/३७ में भी 'एवमुक्तः प्रिया माहेति' में भी उन्हीं प्रिया राधाजीका ही नाम है क्योंकि श्रीकृष्ण अपने कंधों पर अपनी सर्वाधिक प्रियाको ही आरोहण करनेके लिये आग्रह करेंगे।

'रमा' शब्द भी राधाजीका एक नाम है अर्थात् श्रीकृष्ण जिनके साथ ऐकान्तिक भावसे रमण करते हैं अथवा रमण करनेके लिये जिस प्रधान गोपीका संग चाहते हैं, वे श्रीराधा ही हैं। इस प्रकारका 'रमा' संकेत १०/२९/१, १०/२९/३, १०/२९/४३, १०/३०/२, १०/३०/४, १०/२९/३६, १०/३०/४२, १०/४७/५२, १०/१५/१९, १०/३३/१७, १०/३२/२२, १०/११/३६, १०/३२/२१, १०/३२/२१ आदि श्लोकोंमें प्राप्त होता है। इन श्लोकोंकी टीकाओंमें तोषणीकार, वृहत्तोषणीकार, रसदीपिकाकार आदि ने 'रमा' शब्दकी राधाके नामके रूपमें ही व्याख्या की है।

राधासहस्रनाममें एक नाम 'लक्ष्मी' भी है। इस नामका भी श्रीशुकदेवजीने वर्णन किया है, यथा—यद् देवकी सुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मीति (१०/२१/१०) इस श्लोकको टीकामें श्रीधरस्वामी द्वारा लक्ष्मी शब्दको राधाजीके लिये प्रयुक्त माना गया है। गोपियाँ कहती हैं कि देवकीनन्दन (यशोदाजीका एक नाम देवकी भी है) के चरणोंको प्राप्त करनेकी इच्छा रखने वाली हम सब गोपियाँ लक्ष्मीरूपा 'राधा' को गोविन्द सहित पाकर धन्य हो गईं।

श्लोक १०/२१/१३ में पद्मा शब्द द्वारा राधाका संकेत मिलता है। श्रीकृष्णका ही एक रूप विष्णु है। विष्णुप्रिया लक्ष्मीका जन्म पद्मसे होनेसे उनको पद्मजा कहा जाता है। लक्ष्मीजी श्रीराधाजीके अंशसे प्रकट हुई हैं। श्लोक १०/२१/१३ में 'पद्मजा' राधाका ही एक नाम है।

'कान्ता' उस स्त्रीको कहते हैं जो कान्तकी अत्यन्त प्रिया हो। श्रीमद्भागवतके श्लोक १०/३०/११ एवं १०/३०/३३ में 'कान्ता' राधाके लिये ही है। १०/३०/११ में गोपियाँ उस प्रियतमा राधाके लिये कहती हैं कि 'कान्ताङ्गसंग' के कारण कुमकुमकी गन्धवाली मालाकी सुगन्ध आ रही है। दूसरे श्लोक (१०/३०/३३) में वे अपनी 'कान्ता' का चूड़ाबन्धन (वेणी गुंथन) कर रहे हैं। गोपियों (सखियों) में निज काम गंधका एकदम अभाव है तथा उनका सब कुछ प्रिया-प्रियतमको सुख पहुँचानेके लिये ही है, उनका प्राण धारण भी कान्ता (राधा) तथा कांताप्रिय (कृष्ण) के लिये ही है। अतएव कान्ता, लक्ष्मी, रमा, पद्मा आदि उक्त सभी नाम राधाजीके लिये ही संबोधित है। जिनके हजार नाम हैं उनको किसी भी नाम या संबोधन से पुकारा जा सकता है, केवल 'राधा' नामसे ही नहीं।

वृषभानुजीकी राजधानी वृषभानुपुर (बरसाना) थी। बरसानेमें राधाजीको आज भी 'श्रीजी' के नामसे ही पुकारा जाता है। श्रीभागवतमें अनेक स्थलों पर श्रीशुकदेवजी द्वारा उन्हें 'श्री' शब्दसे संबोधित किया है यथा—श्रियैकरमण (१०/२९/३९)

अन्यत्र श्लोक १०/३१/७ में गोपियाँ श्रीकृष्णको 'श्रीनिकेतनम्" कहकर बताती हैं कि राधाजी विरहव्यथामें आपके चरणकमलोंको अपने वक्षपर धारणकर व्यथाका शमन करती हैं; इसलिये आपके चरण श्रीनिकेतन हैं। १०/२९/३७ में "श्रीर्यत्पदाम्बुजरजश्च कमेति" कहकर अपना मन्तव्य व्यक्त किया है।

१०/४३/४२ में सोलह सहस्र रानियोंने "कामयाहम एतच्च श्रीमत्पादरजश्रियः" कहकर श्रीकृष्णकी प्रिया 'श्रीजी' की चरणरज प्राप्त करनेकी इच्छा व्यक्त की है। इसी प्रकार श्लोक १२/११/२५, १०/१४/४०, १०/३३/१५, १०/८/१९, १०/१६/३६, १०/२१/१७, १०/१८/७, १०/१०/३९, १०/३०/२४ तथा १०/१०/२८ में भी श्री शब्द द्वारा राधाजीका ही नाम पर्यायवाची रूपमें लिया गया है।

'एका' (१०/३/२६), 'काचित' (१०/३४/२०), आत्मा (१०/३३/२०), तत् (१०/३३/२) 'सा' (१०/३०/३७) चकार पद (१०/८२/४०) एवं वधु शब्द (१०/३०/३९) द्वारा भी राधाजीको ही संबोधित किया गया है। ❑

(क्रमशः)

तैर्थिक ब्राह्मण पर कृपा

—श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

(गताङ्कसे आगे)

उनकी बातें सुनकर भी आज जगन्नाथ मिश्रका क्रोध शान्त नहीं हुआ तो जल्दीसे उस विप्रने वहाँ पर आकर जगन्नाथ मिश्रका हाथ पकड़ लिया तथा अत्यन्त नम्र एवं मधुर वचनोंसे बोला—

विप्र—"हे जगन्नाथ मिश्र! इस बालकका कोई दोष नहीं है। आप व्यर्थ ही उसपर क्रोध कर रहे हैं। वास्तवमें आज मेरे भाग्यमें भगवानने अन्न नहीं लिखा है। इसका प्रमाण यह है कि मैंने दो बार रसोई बनाई, परन्तु इस बच्चेने दोनों बार उसे जूठा कर दिया।"

यह सुनकर श्रीजगन्नाथ मिश्रका क्रोध शान्त तो हुआ, परन्तु दुःखी एवं लज्जित होकर जब वे सिर नीचाकर कुछ विचार कर रहे थे, उसी समय उनके बड़े पुत्र विश्वरूप वहाँ पर आ पहुँचे। उस समय उनके शरीरसे दिव्य तेज निकल रहा था, समस्त अंगोंसे लावण्य झलक रहा था तथा उनके गलेमें यज्ञसूत्र (उपवीत) सुशोभित हो रहा था। उस अपूर्वरूपका दर्शनकर तैर्थिक विप्र मोहित हो गया तथा एकटक उन्हें निहारने लगा। कुछ समय इसी प्रकार निहारनेके पश्चात् विप्रने पूछा—

विप्र—"यह किसका पुत्र है?"

लोग—"यह श्रीजगन्नाथ मिश्रका पुत्र है।"

यह सुनकर उस विप्रने विश्वरूपको अपने वक्षःस्थलसे लगाकर कहने लगा—

विप्र—"वे माता-पिता धन्य हैं, जिनका ऐसा गुणवान एवं रूपवान पुत्र है।"

विश्वरूप भी तैर्थिक विप्रको प्रणामकर बोले—

विश्वरूप—"अहो! आज हमारा परमसौभाग्य है कि आज आप हमारे घरमें अतिथिके रूपमें पधारे हैं। क्योंकि आप जैसा अतिथि तो बहुत जन्मोंके सौभाग्यसे प्राप्त होता है। वास्तवमें आप जैसे महात्माओंका भ्रमण तो जगत-कल्याणके लिए ही होता है। आप जैसे महात्मा अपने स्वार्थके लिए विषयभोगके उद्देश्यसे भ्रमण नहीं करते, बल्कि विषयभोगोंमें आसक्त संसारी लोगोंको कृष्णसेवामें उन्मुख करनेके लिए ही उनका भ्रमण होता है। परन्तु विषय-भोगोंमें आसक्त दुर्भागे लोग आप जैसे महात्माओंको भी अपने जैसा ही भोगी मानकर आप लोगोंका अनादर करते हैं तथा इस प्रकार अपने लिए नरकका द्वार खोल लेते हैं। आज हमारा परम सौभाग्य है कि आप हमारे अतिथि हुए, परन्तु उससे अधिक हमारा दुर्भाग्य है कि आप जैसे अतिथि हमारे घरमें अभी तक भूखे हैं। आप जैसे अतिथि जिसके घरमें भूखे रह जायँ, क्या कभी उस घरका मंगल हो सकता है? आपका दर्शन पाकर मैं धन्य हो गया, परन्तु अपने छोटे भाईकी करतूत सुनकर बहुत दुःखी हूँ।"

विप्र—"विश्वरूप! इसके लिए तुम दुःख मत करो। तुम्हारे घरमें कुछ फल-मूल हो तो ले आओ, आज मैं वही खाकर अपना निर्वाह कर लूँगा। फिर मैं तो एक वनवासी हूँ। अतः प्रायः फल-मूल खाकर ही रहता हूँ। इसलिए तुम चिन्ता मत करो। वैसे भी तुम्हारे दर्शनसे ही तो मेरा मन प्रसन्न हो गया। तुम्हारा दर्शनकर तो ऐसा लगता है, जैसे मैंने करोड़ों बार भोजन कर लिया है। अतः जाओ घरसे कुछ फल-मूल ले आओ, आज मैं गोपालको वही निवेदन कर खा लेता हूँ।"

विश्वरूप (सकुचाते हुए)—"हे विप्रवर! मुझे कहते हुए भी भय लग रहा है, परन्तु आप तो

दयाके सागर हैं। आप जैसे साधुओंका स्वभाव ही है कि वे दूसरोंका दुःख देखकर दुःखी हो जाते हैं। इसलिए यदि कृपाकर आप एकबार पुनः रसोई बनाकर गोपालको अर्पणकर प्रसाद ग्रहण करें तो, मेरा एवं मेरे सारे परिवारका दुःख दूर हो जाएगा तथा सभीको परम आनन्द होगा।"

विप्र—"देखो, मैंने दो बार रसोई बनाई, परन्तु कृष्णने दोनों बार मुझे खाने नहीं दिया। इसलिए मुझे लगता है कि आज कृष्णकी इच्छा नहीं है कि मैं अन्न खाऊँ। इसलिए प्रयत्न करना व्यर्थ है, क्योंकि घरमें खाने-पीने एवं भोगकी समस्त वस्तुएँ उपलब्ध होनेपर भी यदि कृष्णकी इच्छा नहीं हो, तो लाख बार प्रयास करनेपर भी कोई लेशमात्र भी भोग नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त बहुत देर भी हो गयी है, इसलिए इस समय क्या रसोई करना उचित है?"

विश्वरूप (विप्रके चरण पकड़कर)—"हे विप्रवर! इसमें कोई दोष नहीं है, यदि आपने रसोई बनाई तो हम सभीको आनन्द होगा।"

विश्वरूपके ऐसे नम्र व्यवहारसे मोहित होकर विप्र पुनः रसोई बनानेके लिए तैयार हो गया। सभी लोगोंने जब रसोई घरको लीपकर रसोईका सारा सामान प्रस्तुत कर दिया, तो ब्राह्मणने फिरसे रसोई बनाना आरम्भ किया। अब घरके सभी लोग गौरसुन्दरके विषयमें विचार करने लगे कि कहीं वह इस बार फिरसे भोग नष्ट न कर दे। सबने देखा कि इस समय निमाई एक कमरेमें छिपा है, तो कमरेका द्वार बन्दकर दिया गया तथा जगन्नाथ मिश्र स्वयं दरवाजेके बाहर बैठकर पहरा देने लगे। घरकी स्त्रियाँ कहने लगीं कि अब चिन्ताकी कोई बात नहीं है, क्योंकि निमाई घरमें सो गया है तथा बाहरसे दरवाजा भी बन्द है। इस प्रकार सभी लोग निश्चिन्त हो गये।"

इधर कुछ समय पश्चात् विप्रने रसोई बनाई तथा वह गोपालजीको भोग लगाने लगाा। अन्तर्यामी श्रीशचीनन्दन जान गये। उनकी इच्छा विप्रको दर्शन देने की तो थी ही। अतः उनकी इच्छासे निद्रादेवीने वहाँ पर उपस्थित सभी लोगोंको मोहित कर दिया, जिससे सभी लोग गंभीर निद्रामें सो गये। अब श्रीगौरसुन्दर पुनः उस विप्रके सामने आ गये, जहाँ पर वह गोपालजीको भोग निवेदन कर रहा था। जैसे ही उस विप्रकी दृष्टि उनपर पड़ी तो वहा घबराकर चिल्लाने लगा—

विप्र—"हाय! हाय! यह चंचल बालक फिर आ गया।"

परन्तु वहाँ तो सभी लोग भगवानकी इच्छासे सो रहे थे, अतः उसकी चीख-पुकार सुननेवाला कौन था? उसे इस प्रकार चिल्लाते हुए देखकर प्रभु श्रीगौरसुन्दर बोले—"अरे विप्र! तू बड़ा भोला-भाला है। पहले तो तुम मेरा मंत्र जपकर मुझे आह्वान करते (बुलाता) हो, जिससे मैं तुम्हारे पास आकर तुम्हारे द्वारा प्रेम पूर्वक अर्पण किये गये भोगको ग्रहण किये बिना रह नहीं पाता, परन्तु जब मैं भोग ग्रहण करता हूँ तो तुम हाय! हाय! करते हो। इसका कारण यह है कि तुम मुझे पहचान नहीं पाये। सदा-सर्वदा तुम्हारे हृदयमें मेरे दर्शनकी अभिलाषा रहती है, इसीलिए तुम्हारी उत्कण्ठा देखकर मैं तुम्हें दर्शन देनेके लिए आया हूँ। इसलिए तुम मेरे स्वरूपका दर्शन करो।"

उसी क्षण उस विप्रने भगवानके अपूर्व अष्टभुज रूपका दर्शन किया। उन्होंने चार हाथोंमें शंख, चक्र गदा एवं पद्म धारण कर रखा था। उनके एक हाथमें मक्खन था, जिसे वे दूसरे हाथसे खा रहे थे। इसके अतिरिक्त वे दो हाथोंसे मुरली बजा रहे थे। उनके वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणि झिलमिला रही थी, समस्त अंगोंमें रत्नजड़ित अंलकार एवं सिरपर मोरपंख सुशोभित हो रहा था। उनके गलेमें वैजयन्ती माला, कानोंमें मकराकृत कुण्डल तथा श्रीचरणकमलोंमें

रत्नजड़ित नूपुर सुशोभित हो रहे थे। विप्रने देखा कि वे एक कदम्बवृक्षके नीचे खड़े होकर मधुर वंशी बजा रहे हैं तथा चारों ओरसे गोप, गोपियाँ तथा गायें उनको घेरकर प्रेमसे अपलक नेत्रोंसे निहार रहे हैं। इसके अतिरिक्त वह विप्र जैसा ध्यान करता, वैसा ही साक्षात् दर्शन करने लगा। उस अपूर्व ऐश्वर्यका दर्शनकर वह सुकृतिशाली ब्राह्मण आनन्दसे मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर गया।

करुणाके सागर श्रीगौरसुन्दरने जब अपने कोमल श्रीहस्तकमलसे उस विप्रको स्पर्श किया तो, उसकी मूर्च्छा दूर हो गयी। परन्तु आनन्दसे जड़वत् हो जानेके कारण उसके मुखसे एक शब्द न निकला। उसके शरीरमें अष्टसात्त्विक भाव प्रकट हो गये, आनन्दसे उसका शरीर कांपने लगा, सारे शरीरसे पसीना बहने लगा तथा आँखोंसे गंगा-यमुनाकी भाँति अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। अगले ही क्षण वह सौभाग्यवान विप्र प्रभुके श्रीचरणकमलोंसे लिपटकर जोर-जोरसे रोने लगा। उसकी ऐसी व्याकुलता देखकर प्रभु श्रीगौरसुन्दर हँसते-हँसते बोले—"अरे विप्र! तुम मेरा अनेक जन्मोंका दास हो। द्वापरयुगमें भी मैंने तुझे नन्दगृहमें इसी प्रकार दर्शन दिया, परन्तु यह तुझे याद नहीं है। जब मैं गोकुलमें नन्दगृहमें अवतरित हुआ, तो उस समय भी सौभाग्यवश भ्रमण करते-करते तुम नन्दमहाराजके घरमें उपस्थित हुआ तथा इसी प्रकार रसोई बनाकर मुझे भोग अर्पण किया तथा मैंने इसी प्रकार तुझे दर्शन दिया था। तुम मेरा जन्म-जन्मोंका दास है। इसीलिए मैंने तुझे दर्शन दिया, क्योंकि मेरे दासके अतिरिक्त कोई भी मेरा दर्शन नहीं कर सकता। अब तुम सावधानीपूर्वक सुनो—जब तक मैं इस धरा-धामपर लीलाएँ करूँगा, तब तक किसीसे भी इन सब बातोंको मत कहना, नहीं तो मैं तुम्हारा सर्वनाश कर दूगाँ।"

"युगधर्म हरिनाम संकीर्त्तनका प्रचार करनेके लिए मैं इस धरा-धामपर अवतरित हुआ हूँ। इसके माध्यमसे मैं लोगोंके घर-घरमें जाकर उन्हें वह अमूल्य वस्तु प्रदान करूँगा जो कि शिव ब्रह्म एवं देवताओंके लिए भी दुर्लभ है। तुम इन समस्त लीलाओंका स्वयं दर्शन करोगे। परन्तु सावधान! जब तक मैं इस धरा-धामपर लीलाएँ करूँगा, तब तक यह रहस्य किसीसे मत कहना। यदि तुमने इन सब बातोंको किसीके सामने प्रकट किया तो मैं तुम्हारा बध कर दूँगा।"

इस प्रकार उस ब्राह्मण पर कृपा श्रीगौरसुन्दर पुनः अपने कमरेमें जाकर सो गये तथा ब्राह्मण प्रेममें आविष्ट होकर रोते-रोते प्रसाद पाने लगा। अब निद्रादेवी ने सभी लोगोंको अपने प्रभावसे मुक्त कर दिया। सबने देखा कि ब्राह्मण निर्विघ्न रूपसे प्रसाद पा लिया है तथा निमाई भी पहलेकी भाँति सो रहा है तो सबको बहुत आनन्द हुआ। ब्राह्मणने विचार किया कि मैं इन लोगोंको बताऊँ कि तुम्हारा निमाई कोई साधारण बालक नहीं है। निमाईके रूपमें तुम्हारे घरपर स्वयं कृष्ण ही आविर्भूत हुए हैं। अतः उसे अपना बच्चा समझकर शासन मत करना, सभी लोग अच्छी तरहसे उनकी सेवाकर अपने जीवनको सार्थक करो। परन्तु प्रभुकी आज्ञाका उल्लंघन होनेके भयसे वह चुप रह गया। अब वहाँसे विदा होकर वह कहीं अन्यत्र न जाकर गुप्तरूपसे नवद्वीपमें ही निवास करने लगा। कभी-कभी प्रभुके दर्शनके लिए मधुकरीके बहाने प्रभुके घर आ जाता था। इस प्रकार वह आनन्दपूर्वक भगवानकी लीलाओंका दर्शन करते हुए अपना जीवन व्यतीत करने लगा। ❑

प्राच्य एवं पाश्चात्य देशोंमें प्रचार

प्रेषक—त्रिदण्डिस्वामी श्रीभक्तिवेदान्त माधव महाराज

(हवाईसे ई-मेल द्वारा प्राप्त संवाद)

विश्वव्यापी श्रीमन्महाप्रभुजीकी वाणीके प्रचारक एवं श्रीगौड़ीय मठके प्रतिष्ठाता नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रभुपादके अन्तरङ्ग परिकर नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामीके अनुगृहीत मदीय शिक्षागुरुदेव श्रीलभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजने अपनी नवीं विदेश यात्राकी पूर्व सन्ध्या पर भारतकी राजधानी दिल्लीमें २४ अप्रेलसे २६ अप्रेल तक धूमधामके साथ प्रचार किया। प्रचारका प्रधान वैशिष्ट्य था—श्रीगौड़ीय गुरुवर्गकी भाँति साध्य तत्त्वका निर्णय कर साध्यतत्त्वको पानेके उपायस्वरूप साधनकी व्याख्या। दिल्लीमें प्रचारके समय श्रीपाद तीर्थ महाराज, श्रीपाद माधव महाराज, श्रीपाद कृष्णदास ब्रह्मचारी, श्रीपाद द्विजकृष्ण ब्रह्मचारी, श्रीपाद पुण्डरीक ब्रह्मचारी, श्रीपाद अरण्य महाराज, श्रीदामसखा ब्रह्मचारी, ब्रजनाथ दासाधिकारी श्रीलमहाराजजीके साथ रहकर उनके कृपाभाजन हुए।

श्रीलमहाराजजीके प्रवचनका सारांश

द्वारकेश श्रीकृष्णके पिता श्रीवसुदेव महाराज यज्ञ कर रहे थे। यज्ञके साधारण नियमके अनुसार पूर्णाहूति नहीं होने तक यज्ञ बन्द नहीं करना चाहिए। किन्तु, श्रीवसुदेव महाराजने बीचमें यज्ञ बन्द करवाकर वेदविहित नियमके विपरीत कार्य किया। लेकिन ऐसा क्यों किया? क्या वे अज्ञ थे? क्या वे यज्ञका नियम नहीं जानते थे? क्या वे नहीं जानते थे कि मैं आज जो करूँगा, परवर्ती कालमें आनेवाली पीढ़ियाँ उसीको नियमके रूपमें पालन करेंगी? शास्त्रमें भी यही देखा जाता है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवोत्तरोजनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते।।

श्रेष्ठ पुरुष जिस प्रकार आचरण करते हैं, अन्यलोग भी वैसा ही आचरण करते हैं। वे जो कुछ भी प्रमाणित करते हैं, अन्य लोग भी उसका अनुगमन करते हैं।

श्रीकृष्णके पिता कभी भी अज्ञ नहीं हो सकते। वे तो हम जैसे बद्धजीव नहीं हैं। वे द्वारकाधीश श्रीकृष्णके नित्य पिता हैं। अज्ञता कभी भी उनको स्वप्नमें भी स्पर्श नहीं कर सकती। उनके अभिधानमें अज्ञ शब्द नहीं है। कोई भी विधि-निषेध उनको अज्ञात नहीं है, सभी उनको ज्ञात हैं। उनके समस्त कार्यकलाप वेद-समर्थित हैं। उनके कार्यकलापका समर्थन करने पर ही विधिका विधत्व है, नहीं करने पर विधिका विधत्व नहीं रह सकता। फिर भी बाह्य दृष्टिसे लग रहा है कि वसुदेव महाराज अविधिपूर्वक कार्य कर रहे हैं। अब देखना है कि वसुदेव महाराजने किसी दूसरेके लिए बीचमें यज्ञ बन्द नहीं करवाया। किसके लिए यज्ञ बन्द करवाया—जगद्गुरु देवर्षि नारदको देख कर उनके लिए। अब हमें जानना चाहिए कि यज्ञका तात्पर्य क्या है? शास्त्रमें कहा कहा गया है—'यज्ञो वै विष्णु' और नारद ऋषि कौन हैं? विष्णुके अत्यन्त प्रिय पार्षद। इसलिए तो भागवतमें बतलाया—

दुर्लभो मानुषो जन्मो देहीनां क्षणभंगुरः।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम्।।

इस जगत्में जितने प्रकारके जीव हैं, उनमें सबसे दुर्लभ मनुष्य जन्म है। यह मनुष्य जन्म क्षणभंगुर है। कब किसीकी मृत्यु आ जाए, कह नहीं सकते। इस मनुष्य जन्ममें भी वैकुण्ठके जो

प्रिय हैं, उनका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है।

इसलिए वैकुण्ठके प्रिय नारद ऋषिको देखकर वसुदेव महाराजजीने यज्ञ बन्द करवाया और बोले—यज्ञका फल ही जब उपस्थित हो गया है तब यज्ञ करनेकी कोई जरूरत नहीं है। श्रीवसुदेव महाराजने यज्ञ बन्द कराकर श्रीदेवर्षि नारदका स्वागत किया। वैदिक रीतिके अनुसार उनकी पूजा की, अर्चन किया, आदरके सहित उनका चरणामृत ग्रहण किया। ऐसा करके जगतको शिक्षा दी कि कैसे गुरु-वैष्णवोंकी सेवा करनी चाहिए। नारद ऋषि जैसे वैष्णव और उनकी परंपरामें आनेवाले शुद्ध गुरु-वैष्णव आने पर ऐसे ही सेवा करनी चाहिए। वैदिक रीतिके अनुसार श्रीविष्णुका अर्चन करते समय असमाप्त अवस्थामें परित्याग करके किसी अन्य कार्यमें जाना अनुचित है, नहीं जाना चाहिए। किन्तु, कोई उत्तम वैष्णव विशेष करके परमाराध्यतम श्रीगुरुदेवका आगमन हो तब अर्चनको छोड़ करके उनका प्रीतिविधान कर उनकी अनुमति लेकर पुनः अर्चनमें जाना चाहिए। इसमें कोई अपराध नहीं होता है। बल्कि ऐसा नहीं करने पर अपराध होता है। वैष्णवसेवाके गूढ़ रहस्यकी समस्त जगतको शिक्षा देनेके लिए ही श्रीवसुदेव महाराजने यह आचरण करके दिखलाया। क्योंकि स्वयं जब तक आचरण नहीं करेंगे, जगतको धर्म नहीं सिखाया जा सकता। स्वयं आचरण करके यह शिक्षा नहीं देने पर जगतके जीव वैष्णवसेवाकी परिपाटी कभी भी नहीं सीख सकते।

वसुदेव महाराज विष्णुके उद्देश्यसे यज्ञ कर रहे थे अथवा करवा रहे थे। भगवान विष्णुने स्वयं कहा है—

प्रथमन्तु गुरुं पूज्यं ततश्चैव ममार्च्चनम्।
कुर्वन् सिद्धिमवाप्नोति ह्यन्यथा निष्फलं भवेत्।।

यदि कोई साधक या साधिका भगवानकी पूजा करना चाहते हैं तो भगवानने कहा है कि पहले तुम अपने गुरुकी पूजा करो, तदन्तर मेरी पूजा करो। इस पद्धतिको अपनाने पर तुम सहज ही सिद्धि लाभ कर सकोगे। इसके विपरीत करने पर तुम्हारा किया हुआ सब कुछ निष्फल हो जाएगा।

देवर्षि नारद—ये तो जगद्गुरु हैं। उनकी पूजा तो सबसे पहले करनी ही पड़ेगी। बीचमें यज्ञ बन्द कराकर वसुदेव महाराजने भगवद् आज्ञाका ही पालन किया, किसी प्रकारसे वेदविरुद्ध कार्य नहीं किया। निमि-नवयोगेन्द्र संवादके प्रसङ्गमें भागवत धर्मका स्वरूप, भागवत-धर्मकी प्रयोजनीयता, भागवत्-धर्मका अपर नाम ही प्रेम-धर्म है। जैव-धर्म, आत्म-धर्म, नित्य-धर्म, सनातन-धर्म है—इसकी श्रील महाराजजीने व्याख्या की। इसको छोड़कर पृथ्वीमें जितने प्रकारके धर्मोंका प्रचलन दीखता है, उनमेंसे कोई अनित्य-धर्म तो कोई छल-धर्म, कोई नैमित्तिक तो कोई मनोधर्म, समाज-धर्म अथवा शरीर-धर्म है। नित्य धर्मको छोड़कर अनित्य धर्मके प्रति आसक्त होनेके कारण ही जीवकी यह दुर्दशा या संसार-दशा उपस्थित हुई है। इस विषयको श्रील महाराजजीने 'भयं द्वितियाभिनिवेशतः स्यात्' श्लोककी व्याख्या करके समझाया एवं इस अवस्थासे उद्धार लाभ करनेके सम्बन्धमें उक्त श्लोककी ही व्याख्या करते हुए बताया कि श्रीगुरुदेवको भगवत्-अभिन्न प्रभु एवं परम प्रेष्ठ मानकर अनन्य भावसे भजन करना चाहिए, तभी इस अवस्थासे उद्धार हो सकता है।

मलेशियामें प्रचारके समय श्रीहृषीकेश महाराजजीने पूछा—महाराजजी गौड़ीय विचारधारामें उन्नत भजनके लिए सर्वत्र ही लोभकी बात देखी जाती है। इस लोभको हम कैसे cultivate कर सकते हैं? श्रील महाराजजीने उत्तर दिया—लोभको cultivate नहीं किया जा सकता। किसी वस्तुके सम्बन्धमें उसे देखकर वा सुनकर लोभ होता है या लोभ स्वभाविक है। फिर हृषीकेश महाराजजीने

प्रश्न पूछा—कृपया महाराजजी उदाहरणके द्वारा समझा देने पर समझनेमें सुविधा होती। महाराजजीने उत्तर दिया—देखो! एक सुन्दरी युवतीको देख करके एक सुन्दर युवक उसके प्रति आसक्त हो गया। उसको पानेके लिए उसको लोभ हो गया। इस लोभको कष्ट करके युवकको कल्टीवेट करना नहीं पड़ा। यह स्वभाविक ही है। फिर माधव महाराजजीने पूछा—महाराजजी यह तो जड़ीय उदाहरण है। भगवद् विषयमें ऐसा कोई उदाहरण है क्या? महाराजजीने उत्तर दिया—हाँ हाँ प्रचुर हैं। माधव महाराज—कृपापूर्वक उदाहरण देने पर विषय और बोधगम्य हो सकता है, सहज-सरल हो सकता है। श्रीलमहाराजजीने बतलाया—देखो! देवर्षि नारदसे भगवान श्रीकृष्णके रूप, गुण आदि श्रवण करके छोटी-सी किशोरी रुक्मिणी कृष्णको न देखने पर भी उनके प्रति लुब्ध हो गई। मन ही मन स्थिर कर लिया कि श्रीकृष्णके सिवाय मैं किसीके साथ व्याह नहीं करूँगी। ऐसे ही ब्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरके प्रति ब्रजवासियोंकी भाव-चेष्टा श्रवण करके या श्रीद्भागवतसे दशम स्कन्ध सम्बन्धीय लीला चरित्र श्रवण करके किसी सौभाग्यवान साधक-साधिकाको लोभ होता है, ऐसा देखा जाता है।

दिल्लीके प्रचारमें सहायता करके श्रीरामचन्द्र दासाधिकारी, श्रीवृन्दावनचन्द्र दासाधिकारी (श्रीखुरानाजी), श्रीप्राणवल्लभ दासाधिकारी समितिके कृपाभाजन हुए हैं। मलयेशियामें प्रचारमें सहायता करके श्रीहृषीकेश महाराज एवं सपरिवार श्रीबालकिशन दासाधिकारी समितिके कृपापात्र हुए हैं।

मलयेशियामें प्रचार समाप्त करके श्रीलमहाराजजी अपने पूरे ग्रुपके साथ सिडनी पहुँचे। सिडनी स्थित ऑडिटोरियममें चार दिनों तक धर्मसभामें शुद्धभक्तिके प्रसङ्गमें श्रीलमहाराजजीने मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रका उदाहरण देकर व्याख्या की और अत्यन्त सरल-सहज रूपमें समझाया कि शुद्धभक्ति किसे कहते हैं। श्रीरामचन्द्रजीके वन जाने पर भरत जब उनको लौटानेके लिए गए, तो चित्रकूटमें वशिष्ठजीकी अध्यक्षतामें बहुत बड़ी सभा बैठी। उसमें वशिष्ठजीने विचारका दायित्व जनक महाराजजीके ऊपर दिया। जनक महाराजने अपने गुरु शंकरजीको प्रणाम करके कहा—भरतजीके प्रेमकी कोई तुलना नहीं है। अतः जीत भरतकी हुई है। समस्त सभाका हृदय खिल उठा। सबके मुखपर मन्द मुस्कान खिल गयी। जनक महाराजने फिर बतालाया—किन्तु, भरतको यह देखना चाहिए कि यद्यपि प्रेमका कोई नियम नहीं है फिर भी प्रेमका एक नियम है।

प्रेम करनेवालेको देखना चाहिए हमारे इष्ट किसमें प्रसन्न हैं। इसलिए भरतको यह देखना पड़ेगा कि रामचन्द्रजीकी प्रसन्नता किसमें है। यह सुनते ही भरतकी आँखें खुल गईं। पहले भरतजी सोच रहे थे कि मैं रामचन्द्रजीको अयोध्या लौटाकर ले जाऊँगा। यद्यपि रामचन्द्र, भरत बद्धजीव नहीं हैं। ये सभी भगवत्-तत्त्व हैं। फिर भी जगतको शिक्षा देनेके लिए इस तरहकी लीला दिखाई जाती है। भरतजीने नतजानु हो श्रीरामचन्द्रजीसे पूछा—भैया! आप किसमें प्रसन्न होंगे? रामचन्द्रजीने उत्तर दिया—जनक महाराजजी तो यह निर्णय दे चुके हैं कि तुम्हारी जीत हो चुकी है इसलिए अब मैं अयोध्याका राजा हो गया हूँ। मैं अयोध्याका राजत्व तुमसे ले रहा हूँ। लेकिन मेरा एक अनुरोध है—पिताका आदेश पालन करनेके लिए मैं इस समय जंगलमें आया हूँ। इसलिए तुम मेरे राज्यको चौदह साल तक अपने पास थाती रखो। जबतक मैं वापस नहीं आ जाता, तबतक तुम मेरा प्रतिनिधि बनकर राज्यका परिचालन करना, अपनेको राजा कभी मत समझना। इसीमें मेरी प्रसन्नता है। यह सुनकर भरतजी रोने लगे और बहुत खुश भी हुए।

फिर रामचन्द्रजीकी खड़ाऊँ ले जाकर अयोध्याके पास नन्दीग्राममें अपनी राजधानी बसाई और खड़ाऊँकी प्रतिदिन पूजाकर और रामचन्द्रकी भाँति जटाजूट पहनकर राजकार्यकी परिचालना करते रहे। रामचन्द्रजी जैसे जंगलमें समय बिताते थे, ऐसे ही वे भी बिताते थे। ऐसे दिखाया कि प्रेम करनेवाले को यह देखना चाहिए कि प्रेमीकी प्रसन्नता किसमें है। दूसरी सभामें विभिन्न प्रकारके अधिकारियोंके लिए भगवत्-चरणोंमें प्रार्थना विभिन्न प्रकारी होती है, इसकी भी व्याख्या श्रीमहाराजने की। कनिष्ठ अधिकारीकी प्रार्थना—

कालः कलिर्वलिन इन्द्रियवैरिवर्गाः
श्रीभक्तिमार्ग इह कण्टककोटिरुद्धः।
हा हा क्व यामि विकलः किमहं करोमि
चैतन्यचन्द्र यदि नाद्य कृपां करोति।।

(श्रीचैतन्यचन्द्रामृत ४९)

वर्तमान काल कलि अर्थात् विवादका युग है। इस युगमें इन्द्रियरूपी शत्रुवर्ग अत्यन्त प्रबल हैं। इसलिए परम उज्ज्वल भक्तिमार्ग कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड, फल्गु (निरर्थक) वैराग्य, कुतर्कादि वाक्-वितण्डा जैसे कोटि-कोटि कण्टकोंसे अवरुद्ध है। हे चैतन्यचन्द्र! आप यदि आज कृपा न करें, तो हाय! मैं इन सबके द्वारा दुःखी होकर कहाँ जाऊँगा और क्या करूँगा?।।

दूसरी प्रार्थना—

संसारदुःखजलधौ पतितस्य काम-
क्रोधादिनक्रमकरैः कवलीकृतस्य।
दुर्वासनानिगडितस्य निराश्रयस्य
चैतन्यचन्द्र मम देहि पदावलम्बम्।।

मध्यम अधिकारीकी प्रार्थना—

मत्तुल्यो नास्ति पापात्मा नापराधी च कश्चन्।
परिहारेऽपि लज्जा मे किं ब्रुवे पुरुषोत्तमः।।

भक्त्याविहीना अपराधलक्षैः
क्षिप्ताश्च कामादितरङ्गमध्ये।
कृपामयि त्वां शरणं प्रपन्ना
वृन्दे नुमस्ते चरणारविन्दं।।

उतम अधिकारीकी प्रार्थना—

हा देवि! काकुभरगद्गदयाद्यवाचा
याचे निपत्य भुवि दण्डवदुद्भटार्तिः।
अस्य प्रसादमबुधस्य जनस्य कृत्वाऽ
गान्धर्विके निजगणे गणनां विधेहि।।

फिर एक सभामें श्रीलमहाराजजीने पूर्व पक्ष उत्थापन करके कहा—भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृज्याम्यहम्।।

दूसरी ओर दीखता है कि पाण्डवोंको, विशेष करके अर्जुनको महाभारत युद्धमें प्रेरणा देकर अठारह अक्षौहिणी सेनाका संहार करवाया। कृष्णके द्वारा यह कैसा धर्म संस्थापन है? केवल अठारह अक्षौहिणी सैनिक ही नहीं मारे गये और क्या हुआ? कितनी माताएँ विधवा हुईं, कितने बच्चे अनाथ हुए, इसका कोई हिसाब नहीं है। बाह्य दृष्टिसे कृष्णकी करनी और कथनीमें जमीन-आसमानका पार्थक्य दीख रहा है। कृष्ण तब क्या झूठ बोले? यह तो सम्भव नहीं, अगर कृष्ण ही झूठ बोलेंगे तो जगतमें सच बोलनेवाला और है ही कौन? जब कृष्ण गर्भमें थे तब देवताओंकी स्तुतिमें देखा जाता है—

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं
सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यामृत सत्यनेत्रं
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्ना।

श्रीकृष्ण सत्यव्रत हैं, वे सत्यपर हैं। भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालोंमें वे सत्य हैं।

कृष्ण ही समस्त सत्योंके उद्‌गमस्थल हैं। यहाँ तक कि समस्त सत्य कृष्णमें ही प्रविष्ट होते हैं। अब हम विचार कर देखते हैं कि कृष्ण किस धर्म संस्थापनके लिए युग-युगमें अवतीर्ण होते हैं। पहले-पहले युगमें जो असुरगण मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र आदि भगवत् अवतारोंके द्वारा मारे गए थे, वे लोग ही परवर्ती कालमें द्वापरयुगमें बड़े-बड़े राजा तथा उनके अनुचरके रूपमें पृथ्वीमें आकर पृथ्वीका भार बने हुए थे, जैसे—दुर्योधन, शकुनि साक्षात् कलिके अवतार थे। इन समस्त राजन्यवर्गके दौरात्म्यके कारण भागवत कथाका प्रचार प्रायः बन्द हो गया था। विदुर महाराज (जो धर्मके साक्षात् अवतार थे) का दुर्योधनकी सभामें कोई विशेष आदर या सम्मान नहीं था, यह कोई अतिशयोक्ति नहीं है। महाभारत युद्धके उपरान्त फिर साधु-संत लोग स्वच्छन्द विचरण करने लगे और भागवत कथा प्रचार करने लगे। उस समय कोई बाधा नहीं रही। फिर केवल सैन्य लोग मरे थे, माताएँ तो मरी नहीं थीं। क्यों? जो माताएँ थीं वे लोग स्वभाविक रूपमें स्नेहशीला हैं। वे साधु-संतोंका आदर करनेवाली हैं। जैसे रावण बहुत बड़ा असुर था और उसकी पत्नी मन्दोदरी भक्तिमती थीं। बाली उन लोगोंका साथ देनेवाला था, किन्तु उसकी पत्नी तारा भक्तिमती थीं। ऐसे ही अधिकांश माताएँ भक्तिमती थीं। इसलिए माताएँ रहने पर साधु संतोंका आदर होगा और प्रचारमें भी बाधा नहीं रहेगी। इसलिए केवलमात्र जो प्रचारमें बाधा देनेवाले थे, हरिकथामें बाधा देनेवाले थे, कृष्णने उनका ही संहार किया एवं करवाया। जरासन्धने सत्रह बार मथुरापर आक्रमण किया। भगवान् कृष्ण क्या करते थे? जरासन्धको छोड़कर और सबको मार देते थे। इस प्रकार कृष्णने पृथ्वीका भार हल्का किया।

महाभारतमें श्रीकृष्णने गीतारूपी प्लेटफार्म तैयार किया। उसी सुदृढ़ नींवके ऊपर शुकदेव गोस्वामीने श्रीमद्भागवतरूप राजमहल तैयार किया एवं सात दिनों तक भागवत कथाका प्रचार किया। परवर्ती कालमें ज्ञान और वैराग्यके वृद्ध होने पर भक्तिदेवी चिन्तित हुई एवं भक्तिदेवीके अनुरोधसे नारद ऋषिके उद्योगसे चारकुमारोंने सात दिनों तक हरिद्वारके आनन्दघाट पर भागवत कथा सुनाई थी। संत प्रधान गोकर्णने भी अपने दुष्ट भाई धुन्धुकारीकी प्रेतात्माके लिए सात दिनों तक भागवत कथा सुनाई थी। अब पृथ्वीमें सर्वत्र ही भागवत सप्ताह चल रहा है। किन्तु गौड़ीय वैष्णवगण नित्यकाल भागवत श्रवण एवं कीर्तनके पक्षपाती हैं। केवल सप्ताहव्यापी कथाके अधिक पक्षपाती नहीं हैं। इस श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्णकी अपेक्षा ब्रजवासियोंकी महिमा अधिक देखी जाती है। ब्रजवासियोंमें भी गौड़ीय वैष्णवोंकी आराध्या श्रीमती राधा ठाकुरानीकी महिमा ही अधिक दीखती है, जिसका प्रमाण उद्धवकी प्रार्थनामें मिलता है—

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यज्यं आर्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्नां।।
वन्दे नन्दव्रजेशस्त्रीनां पादरेणुं अभीक्ष्णषां।
यासां हरिकथोद्‌गीतं पुनाति भुवनत्रयं।।

ऑस्ट्रेलियामें प्रचार समाप्त कर श्रील महाराजजी अमेरिका स्थित हवाई द्वीपसमूहमें प्रचारमें व्यस्त हैं और धीरे-धीरे महाराजजी हवाईके विभिन्न द्वीपोंमें प्रचार करके अमेरिकाके बड़े-बड़े महानगरोंमें जाएँगे। फिर ईंग्लैण्ड, हॉलैण्ड होकर १३ जुलाईको भारत आएँगे। ❑

हरे कृष्ण!

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ-जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

वैकुण्ठ-वार्त्तावह

बृहत्-मृदङ्ग

श्रीभागवत-पत्रिका

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना।।

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।।

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः।।

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र।।
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश।।

वर्ष ४४ } *श्रीगौराब्द ५१४* *वि. सं. २०५७ श्रावण मास, सन् २०००, १७ जुलाई से — १५ अगस्त* { **संख्या ५**

श्रीकृष्ण-स्तोत्रम्

वन्दे नवघनश्यामं पीत-कौषेय-वाससम्।
सानन्दं सुन्दरं शुद्धं श्रीकृष्णं प्रकृतेः परम्।।१।।
राधेशं राधिका-प्राण-वल्लभं वल्लवीसुतम्।
राधासेवितपादाब्जं राधावक्षःस्थलस्थितम्।।२।।

उपवर्हण गन्धर्व (श्रीनारदजी) ने कहा—नवघनश्याम, पीत-कौषेय (पीले रंगके रेशमी) वसन धारी, आनन्दमय, परम सुन्दर, परम पवित्र, जड़ा प्रकृतिसे परे श्रीकृष्णको मैं प्रणाम करता हूँ।।१।।

जो श्रीमती राधिकाके प्रियकान्त हैं, राधिकाके प्राण-वल्लभ हैं, जो वल्लवी अर्थात् यशोदा नामक गोपीके पुत्र हैं, जिनके श्रीचरणकमल श्रीमती राधा द्वारा पूजे गये हैं तथा वक्षःस्थल पर धारण किये गये हैं।।२।।

राधानुगं राधिकेष्टं राधापहृत-मानसम्। राधाधारं भवाधारं सर्वाधारं नमामि तम्।।३।।
राधाहृत्पद्ममध्ये च वसन्तं सन्ततं शुभम्। राधासहचरं शश्वद् राधाज्ञा-परिपालकम्।।४।।
ध्यायन्ते योगिनो योगात्सिद्धाः सिद्धेश्वराश्चयम्। तं ध्यायेत् सततं शुद्धं भगवन्तं सनातनम्
सेवन्ते सततं सन्तो ब्रह्मेश-शेष-संज्ञकाः। सेवन्ते निर्गुणं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम्।।६।।
निर्लिप्तञ्च निरीहञ्च परमात्मानमीश्वरम्। नित्यं सत्यञ्च परमं भगवन्तं सनातनम्।।७।।
यं सृष्टेरादिभूतञ्च सर्वबीजं परात्परम्। बीजं नानावताराणां सर्वकारण-कारणम्।।८।।
वेदवेद्यं वेदबीजं वेद-कारण-कारणम्। योगिनस्तं प्रपद्यन्ते भगवन्तं सनातनम्।।९।।
इति तेन कृतं स्तोत्रं य पठेत् प्रयतः शुचिः। इहैव जीवन्मुक्तश्च परे याति परां गतिम्।।
हरिभक्तिं हरेर्दास्यं गोलोके च निरामयः। पार्षद-प्रवरत्वञ्च लभते नात्र संशयः।।११।।

(श्रीनारदपंचरात्रे प्रथमैकरात्रे द्वादशोऽध्याये श्लोक ६७ से ७८ तक)

अनुवाद—

जो राधाके पीछे-पीछे चलनेवाले हैं, जो राधाका ध्यान करते हैं, जिनका चित्त श्रीमती द्वारा चुरा लिया गया है, जो श्रीमती राधाके आधार हैं, विश्वके आधार हैं और सबके आधार हैं, उन श्रीकृष्णको मैं प्रणाम करता हूँ।।२।।

जो श्रीमती राधिकाजीके हृदय-कमलमें नित्य विराजित हैं, जो सबका कल्याण करते हैं, जो राधिकाके चिर-सहचर हैं और उनकी आज्ञा-पालनकारी हैं, सिद्ध, सिद्धेश्वर और योगीजन समाधिमें जिनका निरन्तर ध्यान करते हैं, उन विशुद्ध सत्त्वमय सनातन भगवान्को मैं प्रणाम करता हूँ।।४-५।।

ब्रह्मा, शिव और अनन्तदेव जिनकी सदा सेवा करते हैं, साधुजन जिनके अप्राकृत (निर्गुण) परब्रह्मरूप भगवत्-स्वरूपकी सेवा करते हैं, जो निर्लेप, निरीह परमात्मा हैं और जो नित्य, सत्य परमेश्वर हैं, उन सनातन भगवान्की मैं वन्दना करता हूँ।।६-७।।

जो सृष्टिके आदि कारण हैं, जो सम्पूर्ण बीजोंके भी बीज-कारण हैं, जो परात्पर-तत्त्व हैं, जो निखिल अवतारोंके भी बीज-स्वरूप हैं, सब कारणोंके भी कारण हैं, निखिल देवताओंके लिए भी अगोचर हैं, योगीजन (भक्त) उन्हीं सनातन भगवानका भजन किया करते हैं।।८-९।।

जो गन्धर्व (श्रीनारद) कृत इस स्तोत्रका पवित्र होकर संयत चित्तसे नियमितरूपमें पाठ करते हैं, वे इस लोकमें जीवन्मुक्त हैं तथा शरीर त्यागनेके पश्चात् नित्य गोलोकमें उत्तम गति—हरिभक्ति, हरिके दासत्व और पार्षदत्वको प्राप्त होते हैं—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।।१०-११।।

श्रीगुरुभक्ति

—ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

सुविस्तृत मायाजालमें आबद्ध, मायाके मोहमें अन्धे हुए जीव सुखकी आशामें इतस्ततः भ्रमण करते हैं; विद्या, बुद्धि, धन, मान—सबमें सुख अन्वेषण करते हैं, परन्तु कहीं भी सुख नहीं पाते। इस प्रकार सुखकी खोजमें जीवोंके अनेक जन्म बीत जाते हैं। अनेक जन्मोंमें अर्जित सुकृति-पुंजके फलस्वरूप जब जीवके हृदयमें भगवत्-सम्बन्धी श्रद्धाका संचार होता है, तभी यह सूचित होता है कि अब उसे वास्तविक सुखकी प्राप्ति हो सकती है। श्रीकृष्ण स्वयं-भगवान् हैं, जीव उनके नित्य किङ्कर हैं। श्रीकृष्णकी भक्ति करनेसे जीवके सारे क्लेशोंके अन्त होने पर कृष्ण दास्यकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार सुदृढ़ विश्वासका नाम ही 'श्रद्धा' है। श्रद्धावान् जीव अल्प समयमें ही सद्गुरुका चरणाश्रय करता है; श्रीगुरु-कृपाके बलसे ही उसको सर्वसिद्धि प्राप्त हो जाती है।

वैष्णव अपार करुणामय होते हैं। वे जगतके परम बन्धु होते हैं। जीवोंको कृष्ण-विमुख जानकर वे जगतमें निरन्तर भक्तितत्त्वका प्रचार करते हैं। पुनः जब जीव-समूह भक्ति-तत्त्वके प्रति श्रद्धावान् होकर वैष्णवचरणाश्रय करते हैं, उस समय वैष्णवगण श्रीगुरुके रूपमें उनको भगवद्भजनका उपदेश करते हैं। भजनविज्ञ अनन्यचेता उपयुक्त शिष्यके ऊपर कृपा कर—उनको श्रीकृष्णके अप्राकृत भण्डार दर्शन करनेकी शक्ति प्रदान करते हैं। इस प्रकार वैष्णवकृपाकी सीमा नहीं है। अगणित अनर्थोंसे भरपूर, नाना प्रकारसे मायाके आपात् सुखकर विषय-भोगोंमें फँसे हुए, संसार-सागरमें निमज्जित अति क्षुद्र, अधम जीवोंको जो श्रीगुरुके रूपमें अपने चरणोंमें स्थान देते हैं, जो उनके भजन-विहीन जीवनका भार स्वयं अपने कंधों पर ले लेते हैं एवं जो अपने विशुद्ध चरित्र और सुदृढ़ आदर्शों द्वारा उनको मुग्ध कर उसके द्वारा शक्ति संचार कर उनको भजन मार्ग पर क्रमशः अग्रसर करते हैं, उन वैष्णवोंकी अपार कृपाकी वास्तवमें कोई सीमा नहीं है, वह अनन्त और अद्भुत है। इसीलिये श्रीनरोत्तम ठाकुरने लिखा है—

श्रीगुरु करुणासिन्धु अधम-जनार बन्धु,
'लोकनाथ' लोकेर जीवन।
हा हा प्रभु कर दया, देह मोरे पदछाया,
एवे यश घुषुक त्रिभुवने।।
चक्षुदान दिला येइ, जन्मे जन्मे प्रभु सेई,
दिव्यज्ञान हृदे प्रकाशित।
प्रेम भक्ति याँहा हैते, अविद्या विनाश याते,
वेदे गाय याँहार चरित।।

गुरु दो प्रकारके होते हैं—दीक्षा-गुरु और शिक्षा-गुरु। जिनसे मंत्र लिया जाता है, वे दीक्षागुरु हैं; जिनसे भजन सम्बन्धी शिक्षा पायी जाती है, वे शिक्षागुरु हैं। इन दोनोंको ही शिष्य एक समान सम्मान प्रदान करेंगे; दोनोंको ही कृष्णशक्तिका प्रकाश समझेंगे। उनमें किसी

प्रकारका भेद-भाव रखनेसे शिष्य अपराधी हो पड़ेंगे। श्रीचैतन्यचरितामृतमें कहा गया है—

यद्यपि आमार गुरु चैतन्येर दास।
तथापि जानिये आमि ताँहार प्रकाश।।
गुरु कृष्णरूप हन शास्त्रेर प्रमाणे।
गुरुरूपे कृष्ण कृपा करेन भक्तगणे।।
शिक्षागुरुके त जानि कृष्णेर स्वरूप।
अन्तर्यामी, भक्तश्रेष्ठ—एइ दुइ रूप।।

गुरुदेवको साक्षात् भगवान् मानना भयंकर अपराध है, क्योंकि यह जीव और ईश्वरको समान समझनेरूप मायावाद मत हो जाता है अर्थात् इसके द्वारा जीव ही ईश्वर है—ऐसी भावना हृदयमें उत्पन्न हो जाती है, जो भक्तिके सर्वथा विरुद्ध और कपोल-कल्पित मत है। हाँ, श्रीगुरुदेवको श्रीभगवानका प्रकाश-विशेष या भगवानकी शक्ति मानकर उनकी भक्ति करनमें कोई दोष नहीं है। प्रेममय भगवान् ही श्रीगुरुदेवमें प्रकटित होकर दीक्षा दे रहे हैं—शिष्यके मनमें ऐसी भावना रहनेसे उसका कल्याण होगा; श्रीगुरुदेवके वचनोंमें दृढ़ विश्वास होगा और उनके प्रति अचला भक्ति होगी।

श्रद्धालु जीव अनेक यत्नपूर्वक सद्गुरुका चरणाश्रय करेंगे। वैष्णवाचार्य श्रीसनातन गोस्वामीने विभिन्न शास्त्रोंसे लेकर श्रीगुरु तथा शिष्यके लक्षण 'हरिभक्तिविलास' ग्रन्थमें संग्रह किया है। उन सब शास्त्रोंका तात्पर्य है—दृढ़ चरित्र, विशुद्ध भक्त भागवतोत्तम ही जीवोंके गुरु हैं; और निष्पाप शुद्ध-श्रद्धालु, विनीत शिष्य ही शिक्षाके लिये उपयुक्त हैं। इसके विपरीत होनेसे ही अनर्थ उपस्थित होता है। इस विषयमें श्रीमन्महाप्रभुने स्वयं कहा है—"येइ कृष्णतत्त्ववेत्ता सेई गुरु हय" तथा "गुरु यथा भक्तिशून्य तथा शिष्यगण।" महाप्रभुके श्रीमुखकी वाणी सदा-सर्वदा सत्य हुआ करती है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

शास्त्रमें ऐसा कहा गया है कि गुरु बहुत दिनों तक शिष्यकी परीक्षा करेंगे और शिष्य भी श्रीगुरुके चरित्रको भलीभांति परखेंगे। इस प्रकार दोनों परस्परकी शुद्धता जान लेनेपर सम्बन्ध स्थापन करेंगे। गुरु और शिष्यका सम्बन्ध दो-चार दिनोंके लिये नहीं होता, यह सम्बन्ध जीवनके बाद भी वर्त्तमान रहता है। शिष्यको सावधानीके साथ अन्वेषण कर भलीभाँति देखभाल करनेके पश्चात् ही सद्गुरुका आश्रय लेना चाहिए। यदि ऐसा नहीं हुआ, तो वह नाना कारणोंसे गुरुदेवके प्रति अचला भक्ति नहीं रख सकता एवं गुरुके प्रति अवज्ञा करनेके कारण परमार्थसे गिर जाता है। यदि गुरु अयोग्य हैं, तो शिष्य उनको त्यागकर दूसरे सद्गुरुकी शरण लेंगे। शिष्य भी यदि पतित हो जाय और श्रीगुरुदेव उसका संशोधन करनेमें असमर्थ हों, तो ऐसे शिष्यका वे परित्याग करेंगे।

श्रीगुरुदेव शिष्यको जो भी आज्ञा दें, शिष्यको दृढ़ श्रद्धाके साथ उसका पालन करना चाहिए। ऐसा न कर बहुतोंके पास नाना प्रकारके उपदेशोंके श्रवणसे लौल्य (चाञ्चल्य) दोषके कारण उसका भजन नहीं हो सकेगा। परन्तु देखना होगा कि श्रीगुरुदेव जो आज्ञा देते हैं, वह शास्त्र-संगत है या नहीं। यदि वह आज्ञा शास्त्र-विरुद्ध लगे, तो सरलतापूर्वक अपने संशयको श्रीगुरु-चरणोंमें निवेदन कर शास्त्रवाक्योंके साथ समन्वय कर लेंगे अर्थात् श्रीगुरुदेव द्वारा प्रदत्त आज्ञाकी वैधता शास्त्रीय प्रमाणोंके आधार पर प्रमाणिक करनेके बाद संशय-रहित होकर

उसका पालन करेंगे। गुरुदेव जैसी आज्ञा दें, उसका विशेष यत्न और दृढ़ताके साथ पालन न करनेसे किसी प्रकार भी गुरुकी कृपा नहीं पायी जा सकती है।

भागवतोत्तम गुरुदेव इच्छा करनेसे ही शिष्यके अन्दर शक्तिका संचार कर उसे परम भागवत बना सकते हैं। परन्तु अयोग्य शिष्यके प्रति वैसा करनेके लिये श्रीगुरुदेवकी स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं होती। जीव यत्नपूर्वक श्रीगुरुके वचनोंका पालन कर अल्पकालमें ही गुरुकृपारूपी धनका अधिकारी हो सकते हैं। श्रीगुरु-कृपा क्या चीज है, उनको इसका बोध हो जाता है। जब तक भजनमें अनर्थ रहे, तब तक यत्नके साथ शास्त्रीय विधि-निषेधोंका पालन करते हुए श्रीगुरुके बतलाये हुए भजन-पथ पर अग्रसर होते रहना चाहिए। श्रीगुरुदेवकी कृपासे जिस समय शिष्य अनर्थ-सागरको पार होकर निष्ठा और तत्पश्चात् रुचिके राज्यमें उपस्थित होता है, उसी समय श्रीगुरुदेवकी कृपा प्रबलरूपसे प्रवाहित होने लगती है। उस समय श्रीगुरुदेव वैसे शिष्यके जीवन-धन हुआ करते हैं। उनके प्रति शिष्यकी ममता उत्पन्न होती है और क्रमशः भजन-सुखकी वृद्धि होनेके साथ-साथ यह ममता परिपक्व होनेपर वह श्रीगुरुदेवके चरणोंमें अत्यन्त यत्नके साथ अपना आत्मसमर्पण कर देता है।

जब तक स्वाभाविकी प्रीतिका उदय नहीं होता, तब तक श्रीगुरुकृपा प्राप्त करनेके लिये उनकी सेवा करना शिष्यके लिये नितान्त आवश्यक है। यत्नपूर्वक श्रीगुरुके वचनोंका पालन करना ही उनकी प्रधान सेवा है। अनेक शिष्य ऐसे देखे जाते हैं, जो श्रीगुरुदेवके वचनोंका पालन या आचरण करनेमें उतना उत्साह या यत्न नहीं प्रकाश करते, परन्तु किसी प्रकारसे श्रीगुरुदेवके पाद-सेवन या पंखा झलने आदिके लिये बड़े व्यस्त दीखते हैं। यदि यह कार्य साहजिक प्रीतिके साथ हो, तो अत्युत्तम बात है; परन्तु यदि अन्तरमें कपटता रहे या ऐसी सेवासे गुरुदेवका प्रिय हो जाऊँगा—ऐसी आशा रहे, तो यह उतनी अच्छी बात नहीं। इससे गुरुदेवका प्रिय नहीं हुआ जाता। उनकी (गुरुदेवकी) आज्ञाका पालन करनेसे वे बड़े संतुष्ट होते हैं। उपरोक्त सेवन कार्य बुरे नहीं हैं; उनसे श्रीगुरुवाक्यको पालन करनेकी शक्ति मिलती है और उसीसे श्रीगुरु-प्रसादकी प्राप्ति होती है। साहजिक प्रीति-जनित सेवाके फल-स्वरूप आत्म-प्रसाद लाभ होता है।

संत [सज्जन] के लक्षण

—ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर

करुणा—२२

दूसरोंके दुःखको दूर करनेकी इच्छाको करुणा कहते हैं। करुणायुक्त मनुष्य करुण हैं। वैष्णवोंके छब्बीस गुणोंमेंसे करुणा एक है। वैष्णव-सज्जनोंके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं दृष्टिगोचर होनेपर भी वहाँ करुणाका पूर्ण और नित्य प्रकाश असंभव है। वैष्णव संतोंमें यह गुण नित्य और पूर्णरूपमें अवस्थित होता है।

सज्जन (संत) सदा नित्यानन्दमें स्थित हैं,

अतएव उनके दुःखकी सम्भावना नहीं। भगवत्-विमुख असज्जन व्यक्ति ही दुःखी होते हैं। अतएव सज्जन पुरुषका हृदय असज्जनोंका दुःख देखकर करुणासे भर जाता है। असज्जन व्यक्ति अपने दुःखके विनाशके लिये स्वर्ग और मर्त्यलोकमें सब जगह भटकते फिरते हैं; परन्तु कहीं भी चैन नहीं पाते हैं। वैष्णवजन ही उनका दुःख दूर करनेमें एकमात्र समर्थ हैं।

असज्जन कहनेसे मनोधर्मी, निर्भेद ब्रह्मानुसंधानमें निरत मायावादी और विषय-सुखमें आसक्त जड़चिन्तामें प्रमत्त कर्मीका बोध होता है। ये दोनों अनित्य अनुष्ठानोंमें ही व्यस्त रहते हैं, अतएव व नित्य या सत्य शब्दवाच्य नहीं हैं। कर्म या ज्ञानका पर्दा हट जानेसे विष्णुभक्ति हो जायेगी—ऐसी बात नहीं है। अन्याभिलाषी या ढोंगी भक्त अपनेको विष्णुभक्त कहलवानेके लिये बड़े उत्कंठित रहते हैं, परन्तु वे यह नहीं जानते कि वैष्णव पदवी बड़ी दुर्लभ है। हमारे दुःखोंका मूल कारण है—विष्णुभक्तिसे विमुख होना। इसी मूल कारणसे जीव मायाके बन्धनमें पड़कर दुःखसमुद्रमें डूब जाता है। इस दुःखसे उद्धार पानेके लिये वह कभी अनित्य सकाम कर्मोंका, कभी अभेद ज्ञानका और कभी स्वेच्छाचारका आश्रय लेता है। परन्तु इनसे उसे नित्य सुखकी प्राप्ति नहीं होती। सौभाग्यवश जब वह चारों तरफसे असहाय होकर वैष्णव सज्जनोंके चरणोंमें शरणागत होता है, तब वैष्णवजन उस पर करुणा करते हैं—उसे भगवानके नाम, रूप, गुण और लीला-कथाओंका श्रवण कराकर माया बन्धनसे छुड़ा देते हैं और नित्य भगवत्सेवारूप परमानन्दमें प्रतिष्ठित कर देते हैं। संसारमें इस करुणाकी कोई तुलना नहीं है।

अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—इस चतुर्वर्गकी कामना ही दुःखका कारण है। जब तक देहात्मबुद्धि दूर नहीं होती, जब तक सूक्ष्म शरीरका अहंकार नष्ट नहीं हो जाता, तब तक चतुर्वर्ग ही हमारा साध्य होता है। परन्तु सज्जनोंकी कृपासे जब हम इनकी निस्सारताकी उपलब्धि करते हैं, तब हम उन्हींकी कृपासे उनसे विरक्त होकर विष्णु-सेवामें नियुक्त होते हैं। संसार दुःखसे उद्धार पानेका यही एक मार्ग है। वैष्णव सर्वदा दुःखी जीवोंको संसार-दुःखसे उबारकर भगवत्-सेवामें नियुक्त करनेके लिये व्यस्त होते हैं। यही उनकी करुणाका परिचय है। हरि-सेवामें नियुक्त करना ही करुणाका पूर्ण विकाश है।

श्रीगौराङ्ग-सुधा

—श्रीमान् परमेश्वरीदास ब्रह्मचारी

विद्याध्ययन

अब श्रीजगन्नाथमिश्रने देखा कि निमाई कुछ समझदार हो गया है। उन्होंने विचार किया कि निमाईका कर्णभेद एवं चूड़ाकरण संस्कार करवाकर उसका विद्या-अध्ययन आरम्भ करवा देना चाहिए। इसलिए शुभ दिन देखकर सभी परिजन एवं आस-पड़ोसके लोग जगन्नाथमिश्रके घरमें उपस्थित हुए तथा बड़े समारोहके साथ श्रीगौरसुन्दरका कर्णभेद एवं चूड़ाकरण किया

गया अर्थात् वैदिक रीतिके अनुसार जब बालकका मस्तक मुंडनकर शिखा (चुटिया) रखी जाती है तथा उसका कर्णभेद किया जाता है, तभी उसे विद्या-अध्ययनका अधिकार प्राप्त होता है। इस प्रकार अब श्रीमिश्रने उनके हाथमें खड़ि पकड़ा दी तथा उन्हें लिखना सिखाने लगे। श्रीगौरसुन्दर किसी भी अक्षरको एकबार देखने मात्रसे ही लिखना आरम्भ कर देते, जिससे सभी लोगोंको बहुत आश्चर्य होता। इस प्रकार मात्र दो-तीन दिनोंमें ही उन्होंने वर्णमाला लिखना सीख लिया। वे सदा-सर्वदा राम, कृष्ण, मुरारी, मुकुन्द, वनमाली इत्यादि कृष्णके ही नामोंको लिखते। जब वे अमृतके समान मधुर स्वरसे क, ख, ग, घ इत्यादि वर्णोंका उच्चारण करते तो सभी लोग मुग्ध हो जाते थे।

जगदीश और हिरण्य पण्डितका नैवेद्य ग्रहण

निमाई ऐसे जिद्दी थे कि उन्हें जब जो चीज चाहिए, वह उन्हें कहीं से भी लाकर देनी पड़ेगी, नहीं तो रोते-रोते सबको परेशान कर देगें। कभी-कभी आकाशमें उड़ते हुए पक्षियोंको देखते, तो उनकी ही माँग करने लगते। कभी रातके समय आकाशमें चन्द्रमाको देखते, तो उसीको लेनेकी जिद्द करने लगते तथा न मिलनेपर रोने लगते। सभी लोग उन्हें गोदमें उठाकर प्यारसे समझाते, परन्तु उनका रोना बढ़ता ही जाता। जब किसी प्रकारसे उनका रोना बन्द नहीं होता, तो सभी लोग हाथोंसे तालियाँ बजाते हुए हरिनामकीर्त्तन करने लगते, तब श्रीगौरसुन्दर रोना छोड़कर खिलखिलाकर हँसने लगते। परन्तु एक दिन उन्होंने रोना आरम्भ किया तो चुप होनेका नाम ही नहीं लिया। अन्य दिन हरिनाम सुनकर चुप हो जाते थे, परन्तु आज तो हरिनामके द्वारा भी चुप नहीं हो रहे थे तथा जमीन पर रोते-रोते लोट-पोट खा रहे थे। जब उन्हें किसी प्रकारसे भी शान्त नहीं कराया जा सका, तो सभी लोगोंने पूछा—"बेटा निमाई! तू क्यों रो रहा है? बोल तुझे क्या चाहिए? हम कहीं से भी वह वस्तु तुझे लाकर देंगे।"

गौरसुन्दर—"आज एकादशी है, अतः हिरण्य एवं जगदीश पण्डितने भगवानके लिए अनेक प्रकारके स्वादिष्ट व्यंजन तैयार किये हैं, यदि तुमलोग मुझे जिन्दा देखना चाहते हो, तो जल्दीसे उन सभी वस्तुओंको लाओ, मैं उन्हें खाऊँगा। नहीं तो रोते-रोते मैं प्राण त्याग दूँगा।"

उनकी ऐसी बातें सुनकर शचीमाता कुछ दुःखी हो गईं। वे विचार करने लगीं कि वे लोग भगवानके लिए पकाये गये व्यंजन हमें क्यों देंगे? परन्तु जगन्नाथ मिश्र श्रीगौरसुन्दरको पुचकारते हुए बोले—"अच्छा बेटा! मैं स्वयं उनके पास जाकर उनसे तेरे लिए उन सभी वस्तुओंको माँगकर ले आऊँगा। इसलिए अब तू चुप हो जा।"

ऐसा कहकर जगन्नाथ मिश्र जगदीश एवं हिरण्य पण्डितके घर गये। वे दोनों परम वैष्णव थे तथा श्रीजगन्नाथ मिश्रके परम घनिष्ठ मित्र थे। उन्होंने जब सम्पूर्ण घटना सुनी तो उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। वे विचार करने लगे कि यह तो बहुत आश्चर्यका विषय है कि वह छोटा-सा बालक यह कैसे जान गया कि आज एकादशी है तथा हमने भगवानके लिए नाना प्रकारके व्यञ्जन बनाये हैं। क्योंकि एक तो वह अज्ञ बालक है, उसे एकादशीका

ज्ञान कैसे हुआ? दूसरे जगन्नाथमिश्रके घरसे हमारा घर बहुत दूर है, फिर उसे हमारे द्वारा पकाये हुए पकवानोंके विषयमें कैसे पता चला? कुछ विचार करनेके बाद वे श्रीजगन्नाथमिश्रसे बोले—"मिश्रजी! यह तो बहुत आश्चर्यकी बात है। हमने अपने जीवनमें आज तक किसी अज्ञ बालककी ऐसी बुद्धि न देखी और न सुनी है। ऐसा प्रतीत होता है कि बालकके शरीरमें श्रीगोपालजीका अधिष्ठान है। क्योंकि वह बालक देखनेमें परमसुन्दर है, इसलिए उसके हृदयमें बैठकर गोपालजी ही ऐसी बातें उससे कहलवाते हैं।"

ऐसा कहकर वे दोनों ब्राह्मण बहुत प्रसन्नतापूर्वक सभी वस्तुओंको सजाकर स्वयं गौरसुन्दरके पास ले आये।

ब्राह्मण (बहुत प्रेमसे)—"बेटा निमाई! लो, इन सब पकवानोंको तुम प्रसन्नतापूर्वक खाओ। आज हमारा परिश्रम सार्थक हो गया। तुम्हारे ऊपर कृष्णकी असीम कृपा है, क्योंकि कृष्णकी कृपाके बिना किसीकी ऐसी बुद्धि सम्भव नहीं है।"

यह सुनकर श्रीगौरसुन्दरने मुस्कुराते हुए जन्म-जन्मान्तरोंके उन दो सेवकों पर कृपा दृष्टि की तथा बहुत प्रसन्नतापूर्वक अपने भक्तके द्वारा अत्यन्त प्रेमपूर्वक अर्पित किये हुए प्रत्येक पकवानोंमें से थोड़ा-थोड़ा खाया। प्रभुको प्रसन्न देखकर वहाँ पर उपस्थित लोग कीर्तन करने लगे तथा श्रीगौरसुन्दर भी अपने ही कीर्तनमें आनन्दपूर्वक खाते-खाते ही नाचने लगे।

जलक्रीड़ा एवं ब्राह्मणों तथा बालिकाओं पर कृपा

प्रातःकालसे सायंकाल तक श्रीगौरसुन्दर अपने सखाओंके साथ सारे नवद्वीपमें उधम मचाते रहते थे। दोपहरको अपने सखाओंको साथ लेकर गंगा स्नानके लिए पहुँच जाते तथा जलमें अनेक प्रकारकी क्रीड़ाएँ करते। कभी पानीमें डुबकी लगाते, तो कभी तैरने लगते तथा कभी अपने चरणोंसे गंगामें स्नानके लिए आये हुए ब्राह्मणोंके शरीर पर पानीके छींटे डाल देते, जिससे ब्राह्मणोंको गुस्सा आ जाता। परन्तु बच्चा जानकर जब सभी लोग उन बच्चोंको ऐसा करनेसे मना करते तो वे और भी अधिक उधम करने लगते। कोई ब्राह्मण स्नानकर पानीसे बाहर आ रहा हो, तो गौरसुन्दर उसके मुखपर कुल्ला कर देते, किसीको स्पर्शकर देते, किसीके ऊपर मिट्टी डाल देते, जिससे सभीको पुनः पुनः स्नान करना पड़ता। अतः क्रुद्ध होकर जब वे लोग गौरसुन्दर एवं उनके सखाओंको पकड़ने जाते तो वे फुर्तीसे गंगामें तैरते हुए बहुत दूर निकल जाते। इस प्रकार प्रतिदिन होनेवाली इन घटनाओंसे ब्राह्मणलोग दुःखी हो गये। अतः एकदिन सभी लोग मिलकर श्रीजगन्नाथमिश्रके घर पहुँचे। एक साथ इतने लोगोंको अपने घरपर देखकर मिश्रने बहुत प्रसन्न होकर उन सभीको बैठनेके लिए कहा, तो वे लोग इस प्रकार कहने लगे।

ब्राह्मणगण—"हे मिश्र! आप हमारे परम मित्र हैं। आज हम आपके लाडले पुत्र निमाईकी शिकायत करने आये हैं। उसके एवं उसके सखाओंके उत्पातोंके कारण हमारा गंगास्नान मुश्किल हो गया है। स्नानकर जब हम जलसे बाहर आते हैं तो वह हमारे ऊपर मिट्टी डाल देता है; हम आँखें बन्दकर ध्यान करने बैठते हैं, तो चुपचाप आकर हमारे सिर पर पानी

डाल देता है तथा कहता है—'अरे ब्राह्मणो! तुम किसका ध्यान कर रहे हो? तुम सबलोग मेरा ध्यान करो, क्योंकि इस कलियुगमें मैं ही नारायण हूँ।' किसीका शिवलिङ्ग ही चुरा लेता है, तो किसीके वस्त्र लेकर भाग जाता है। कोई ब्राह्मण पुष्प, दुर्वा, मिठाई, चन्दन एवं आसन आदि विष्णु पुजाकी वस्तुओंको किनारे पर रखकर स्नान करने जाता है, तो वह चंचल बालक विष्णु आसन पर बैठ जाता है तथा माला एवं चन्दन धारणकर भगवानके भोगके लिए रखी हुई मिठाई आदि खाकर भाग जाता है। जब वह ब्राह्मण आकर यह सब देखकर दुःखी हो जाता है, तो वह कहता है—'अरे ब्राह्मण! तू दुःखी क्यों होता है? जिसके लिए तू यह सबकुछ लाया था, उसीने यह सब ग्रहण कर लिया है।' जब कोई ब्राह्मण अपने बच्चेको स्नान कराकर किनारे पर बैठकर स्वयं स्नान करने जलमें उतर जाता है, तो मौका पाकर वह उसके बच्चेके कानमें पानी डालकर उसे रुला देता है तथा भाग जाता है। कभी स्नान करते हुए किसीके कंधेपर चढ़ जाता है तथा कहता है—'मैं महेश (शिव) हूँ।' कभी जब स्त्रियाँ एवं ब्राह्मण लोग अलग-अलग घाटोंपर स्नान कर रहे होते हैं, तो उस समय वह और उसके शरारती साथी लोग स्त्रियोंके कपड़े हमारे घाटपर तथा हमारे कपड़े स्त्रियोंके घाटपर रख देते हैं। जब हमलोग स्नानकर बाहर आते हैं, तो उस समय अपने वस्त्रोंके स्थानपर स्त्रियोंके वस्त्र देखकर हमें बहुत लज्जित होना पड़ता है तथा उस समय वे सभी शरारती बच्चे दूरसे खड़े होकर तालियाँ बजाते हुए हँसते हैं। इस प्रकार हे मिश्र! हमलोग बहुत दुःखी हैं। इसके अतिरिक्त यदि वह इस प्रकार सारा दिन जलमें भींगेगा तो बीमार हो जाएगा। अतः कृपाकर तुम उसे समझाओ।"

जगन्नाथ मिश्र—"मैं बहुत शर्मिन्दा हूँ कि मेरे पुत्रके कारण आप लोगोंको कष्ट उठाना पड़ रहा है। आपलोग चिन्ता न कीजिए, मैं आज ही उसे समझाऊँगा।"

इस प्रकार सांत्वना देकर मिश्रने उन सभीको सम्मानपूर्वक विदा किया ही था कि इतनेमें कुछ छोटी-छोटी बालिकाएँ वहाँ पर उपस्थित हुईं। वे कुछ गुस्सेमें थीं। वे शचीमातासे बोलीं—

"हे शचीमाता! तुम्हारा लाडला हमारे साथ बहुत दुर्व्यवहार करता है। जब हम गंगामें स्नान कर रही होती हैं, उस समय वह तथा उसके साथी हमारे कपड़े चुरा लेते हैं तथा हमसे बुरी-बुरी बाते कहते हैं। जब हम उनका उत्तर देती हैं, तो गुस्सेमें आकर हमारे ऊपर पानी डाल देते हैं तथा झगड़ा करने लगते हैं। हम गंगाजीकी पूजाके लिए जो फल इत्यादि ले जाते हैं, वे लोग जबरदस्ती हमसे छीन लेते हैं। जब हम गंगा स्नानकर बाहर निकलती हैं, तो हमारे ऊपर मिट्टी डाल देते हैं। कभी चुपचाप आकर किसीके कानके पास जोरसे शब्द करते हैं, तो कभी किसीके ऊपर कुल्ला कर देते हैं। कभी-कभी किसीसे विवाह करना चाहता है। इस प्रकार एक दिन नहीं, नित्यप्रति उसका ऐसा ही व्यवहार रहता है, जैसे बड़ा कोई राजकुमार हो। हमने सुना है कि द्वापरयुगमें नन्दनन्दन श्रीकृष्ण ऐसी ही लीलाएँ करते थे, जैसा तुम्हारा पुत्र निमाई करता है। हम सब बहुत परेशान हैं। यदि हम अपने माता-पितासे इसकी शिकायत करेंगे, तो वे आकर तुमसे

झगड़ा करेंगे, इसलिए जल्दी ही उसे समझाओ।"

यह सुनकर शचीमाता हँसते हुए उन सभीको बड़े प्रेमसे कहने लगीं—"बेटियो! तुम चिन्ता मत करो। मैं आज ही उसे बाँधकर डंडेसे पीटकर दुरुस्त करूँगी, जिससे कि फिर कभी वह ऐसी शरारतें नहीं करेगा।"

यह सुनकर उन सभी बालिकाएँ शचीमाताकी चरणधूलि अपने सिर पर धारणकर प्रसन्न होकर पुनः गंगा स्नानके लिए चल पड़ीं।

वास्तवमें श्रीगौरसुन्दर जिस किसीके साथ शरारतें करते थे, उससे उसे दुःख नहीं बल्कि आनन्द होता था। वे चाहते थे कि निमाई हमारे साथ-साथ इसी प्रकार शरारतें करता रहे तथा हम उसके मुखचन्द्रका दर्शन करते रहें। परन्तु वे शिकायत करने आते थे, केवल आनन्द लेनेके लिए न कि श्रीगौरसुन्दरके प्रति क्रोधित होकर उन्हें दण्ड दिलवानेके लिये। अतः इस प्रकार ब्राह्मणों एवं बालिकाओंकी शिकायते सुनकर क्रोधित होकर बोले—"यह लड़का बहुत बिगड़ गया है, सभीको परेशान करता है तथा किसीको भी अच्छी तरहसे गंगास्नान एवं गंगा, शिव, दुर्गा आदिकी पूजा नहीं करने देता है। अतः मैं अभी जाकर उसे पकड़कर लाता हूँ। आज उसे अच्छी तरहसे सबक सिखाऊँगा, जिससे भविष्यमें वह किसीके साथ ऐसा दुर्व्यवहार न करे। इसलिए आज उसकी तरफदारी करनेके लिए कोई भी मत आना।"

ऐसा कहकर मिश्र जब क्रोधित होकर गंगाकी ओर चले तो अन्तर्यामी श्रीशचीनन्दन गौरहरि जान गये कि पिताजी मुझे पकड़ने आ रहे हैं। उसी समय वे बालिकाएँ, जो शचीमातासे शिकायत कर आई थीं, वहाँ पर पहुँच गईं तथा श्रीगौरसुन्दरसे बोलीं—"अरे विश्वम्भर! तुम्हारे पिताजी श्रीजगन्नाथमिश्र क्रोधित होकर तुझे पकड़नेके लिए आ रहे हैं। अतः तू जल्दी यहाँसे भाग जा, नहीं तो आज तेरी अच्छी तरह पिटाई होगी।"

यह सुनकर श्रीगौरसुन्दर समझ गये कि हो न हो अवश्य ही इन्हीं लड़कियोंने शिकायत की है। इसलिए गुस्सेमें आकर सभी बच्चोंके साथ उन लड़कियोंको पकड़ने गये। परन्तु लड़कियाँ वहाँसे भाग गईं। अब श्रीगौरसुन्दर अपने सखाओंको इस प्रकार सिखाने लगे—"मैं दूसरे रास्तेसे घर जला जाता हूँ। यदि मेरे पिताजी यहाँ पर आ जाएँ तथा मेरे बारेमें पूछें तो कह देना कि निमाई पढ़कर सीधे घर चला गया तथा हमलोगोंसे यहाँ पर प्रतीक्षा करने करनेके लिए कह गया। इसलिए हमलोग इसी प्रतीक्षामें हैं कि निमाई आएगा तो हम लोग एक साथ गंगास्नान करेंगे।"

इस प्रकार सिखाकर श्रीगौरसुन्दर अन्य रास्तेसे घर पर पहुँच गये। इधर श्रीजगन्नाथमिश्र गुस्सेमें बिगड़ते हुए गंगा किनारे पर आए तथा निमाईको ढूँढ़न लगे। परन्तु जब उन्हें बच्चोंके बीच निमाई दिखाई नहीं दिया, तो वे बच्चोंसे ही पूछने लगे—मिश्र (चतुराईसे)—"अरे बच्चो! हमारा निमाई कहाँ गया?"

बालक—"वह तो पढ़कर सीधा घर चला गया था। हम यहाँ पर अभी तक उसके आनेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

जगन्नाथमिश्रको उन बच्चोंकी बातोंपर विश्वास नहीं हुआ इसलिए हाथमें डंडा लेकर गुस्सेमें चारों ओर देखने लगे। उसी समय जो ब्राह्मणगण शिकायत करने गये थे, वे सभी

बोले—“मिश्र! तुम्हारे यहाँ पहुँचनेसे पहले ही उसे तुम्हारे आनेकी सूचना प्राप्त हो गयी थी, इसलिए भयके कारण वह इन बच्चोंको झूठा पढ़ाकर घर चला गया है। अतः तुम घर जाओ तथा उसे शासन करो। यदि वह पुनः यहाँ आया तो हम स्वयं ही उसे पकड़कर तुम्हारे हाथों सौंप देंगे। देखो मिश्र! तुम ऐसा मत समझना कि हम उससे रूष्ट हैं। पता नहीं क्यों वह हमारे साथ जितनी अधिक शरारतें करता, उसके प्रति हमारा स्नेह उतना ही बढ़ता जाता है। अतः हम शिकायतके बहाने तुम्हें बताने आते हैं कि अवश्य ही तुमने शुद्धरूपमें भगवानकी सेवाकी है; त्रिभुवनमें तुम्हारे समान भाग्यशाली कोई नहीं है, जिसके फलस्वरूप तुम्हें निमाई जैसा पुत्र प्राप्त हुआ।” उनके मुखसे इस प्रकारकी बातें सुनकर श्रीजगन्नाथमिश्र बोले—“निमाई जैसा मेरा पुत्र है, वैसा ही आपलोगोंका भी है। अतः यदि वह आपके चरणोंमें अपराध भी करे तो अपना पुत्र समझकर उसे क्षमा कर देगें। यदि आपलोगोंने उसका अपराध लिया तो आपको मेरी शपथ है।”

इस प्रकार उनसे बातचीत करनेके पश्चात् जगन्नाथमिश्र घरकी तरफ चल पड़े।

उधर गौरसुन्दर अन्य रास्तेसे घर पहुँच गये। उस समय उनके हाथमें पुस्तकें थी तथा हाथोंपर एवं श्रीमुखपर स्याहीके निशान थे, जो उनके गोरे-गोरे शरीर पर सुशोभित हो रहे तथा ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो चम्पक फूलपर चारों ओरसे भ्रमर मंडरा रहे हों। वे आकर शचीमातासे बोले—“माँ! मुझे तेल दो, मैं स्नान करने जाऊँगा।”

निमाईको देखकर शचीमाता प्रसन्न हो गईं तथा उसे तेल देनेके बाद विचार करने लगीं कि आश्चर्यकी बात है, इसके शरीरपर नहानेका कोई लक्षण नहीं है, सारा शरीर धूलधूसरित है तथा हाथोंपर एवं मुखपर स्याहीके निशान हैं। फिर वे बालिकाएँ एवं ब्राह्मण जो शिकायत कर गये हैं क्या वे असत्य बोल रहे थे? परन्तु ब्राह्मण कैसे झूठ बोल सकते हैं? इन सब बातोंपर अभी वे विचार कर ही रही थीं कि इतनेमें जगन्नाथमिश्र वहाँ पर आ पहुँचे। जगन्नाथमिश्रको देखते ही श्रीगौरसुन्दर दौड़कर गये तथा उनकी गोदीमें चढ़ गये। निमाईका स्पर्श एवं दर्शन होते ही आनन्दके कारण जगन्नाथमिश्र सब कुछ यहाँ तक कि स्वयंको भी भूल गये। कुछ देर बाद जब उन्हें बाह्य ज्ञान हुआ तो उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि निमाईके शरीरपर स्नान करनेका कोई चिह्न नहीं है।

मिश्र—“बेटा विश्वम्भर! तेरी कैसी बुद्धि है? तू लोगोंको गंगा स्नान करने क्यों नहीं देता, भगवानके भोगके लिए लाये हुए नैवेद्य (मिठाई इत्यादि) खा लेता है। तू ऐसा क्यों करता है? क्या तुझे भगवानसे भी भय नहीं लगता है?”

गौरसुन्दर—“पिताजी! मैं तो आज गंगास्नानके लिए गया ही नहीं। मेरे साथी गंगाके किनारे मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। शरारतें तो दूसरे बच्चे करते हैं, परन्तु ये लोग शिकायत मेरी करते हैं, जबकि मैं किसीसे कुछ नहीं कहता। यदि मेरे कुछ शरारत न करने पर भी ये लोग मेरी झूठी शिकायत करते हैं, तो अब मैं अवश्य ही ऐसा ही करूँगा।”

ऐसा कहकर श्रीगौरसुन्दर हँसते हुए

गंगास्नानके लिए चल पड़े तथा फिरसे अपने सखाओंके साथ मिल गये। विश्वम्भरको देखकर सभीने प्रसन्न होकर उन्हें गलेसे लगा लिया तथा हँसते हुए बोले—"निमाई वास्तवमें ही चतुर है। आज अच्छी तरहसे पिटाई होनेवाली थी, परन्तु अपनी चतुराईसे बच गया।"

इस प्रकार सभी बच्चे आनन्दपूर्वक हँसने लगे तथा पुनः गौरसुन्दर सभीके साथ मिलकर गंगामें जलक्रीड़ाएँ करने लगे।

उधर शचीमाता एवं जगन्नाथ मिश्र विचार करने लगे कि कैसी अद्भुत बात है? बालिकाएँ एवं ब्राह्मण शिकायत कर गये कि निमाई गंगामें स्नान करते समय सबको परेशान कर रहा है। परन्तु इसके शरीर पर स्नानका कोई चिह्न नहीं है। सारा शरीर धूलसे भरा है, केश बिखरे हुए हैं, हाथ, पैर एवं मुखपर स्याहीके दाग हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि निमाईके रूपमें स्वयं कृष्ण ही हमारे घरमे आविर्भूत हुए हैं या कोई महापुरुष।

अभी वे दोनों ऐसा विचार कर ही रहे थे कि इतनेमें द्विजमणि श्रीगौरसुन्दर स्नानकर आ गये। अपने पुत्रको देखकर दोनों आनन्दसे विह्वल हो गये तथा अपने विचारोंको भूल गये। इस प्रकार वैकुण्ठाधिपति एक ब्राह्मण बालककी भाँति जगन्नाथमिश्रके घरमें भाँति-भाँतिकी लीलाएँ करते थे।

महाभागवतवर वृत्रासुर

जिस वाणीके द्वारा परम प्रेमास्पद श्यामसुन्दरका तथा उनके प्रिय भक्तोंका गुणगान-कीर्त्तन किया जाता है, वही वाणी सारवती एवं सार्थक है; अन्यथा वह निःसार और निरर्थक है।

मृषा गिरस्ता ह्यसतीरसत्कथा
न कथ्यते यद् भगवानधोक्षजः।।
तदेव सत्यं तदुहैव मंगलं
तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम्।।
तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं
तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम्।
तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां
यदुत्तमश्लोकयशोऽनुगीयते।।

(भा० १२/१२/४८,४९)

जिस वाणी द्वारा घट-घटवासी, अविनाशी भगवान्के नाम, रूप, गुण लीला आदिका कीर्त्तन नहीं होता, वह वाणी भावपूर्ण होने पर भी निरर्थक एवं सारहीन है; सुन्दर होने पर भी असुन्दर है; उत्तमोत्तम विषयोंका प्रतिपादन करने वाली होने पर भी असत्-स्वरूपा है। जो वाणी और वचन भगवान्के गुणोंसे परिपूर्ण होते हैं, वे ही परमपावन, मंगलमय एवं परम सत्य हैं। जिन वचनोंके द्वारा भगवान्के परम पवित्र यशका गान हो, वे ही परम रमणीय, रुचिकर एवं प्रतिक्षण नये नये जान पड़ते हैं। उनसे अनन्त काल तक मनको परमानन्दकी अनुभूति होती रहती है। मनुष्योंका सारा शोक, चाहे वह समुद्रतुल्य अगाध एवं असीम क्यों न हो, उन वचनोंके प्रभावसे सदाके लिए सूख जाता है।

परन्तु कुछ दैनन्दिन भौतिक वातावरणोंमें आबद्ध रहनेके कारण मानव-स्वभाव ही कुछ ऐसा बन गया है कि वे अपने अमूल्य क्षणोंका

उपयोग भगवान्‌के नामोच्चारणमें न कर आहार, निद्रा, मैथुनादिमें ही किया करते हैं—

निद्रया ह्रियते नक्तं व्यवायेन च वा वयः।
दिवा चार्थेहया राजन् कुटुम्बभरणेन वा ।।
देहापत्यकलत्रादिष्वात्मसैन्येष्वसत्स्वपि।
तेषां प्रमत्तो निधनं पश्यन्नपि न पश्यति।।

(भा० २/१/३,४)

उनकी रात्रि निद्रा या स्त्री-प्रसंगमें कटती है और दिन धन-संग्रहकी हाय-हाय या कुटुम्बियोंके भरण-पोषणमें बीतता है। इस प्रकार उनकी समस्त आयु समाप्त हो जाती है। संसारमें जिन्हें अपना अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्धी कहा जाता है, वे शरीर, पुत्र, स्त्री आदि और कुछ नहीं हैं केवल असत् ही हैं। परन्तु जीव उनके मोहमें पागल-सा हो जाता है, रात-दिन उनको मत्युका ग्रास होते देखकर भी जागता नहीं है। वह इस भौतिकताकी सर्वग्रासी माया-ग्रह-मरीचिकामें इतना भ्रमित हो गया है एवं असंस्कृरत नयी पीढ़ीके समाजकी नयी विचार-परम्परामें इतना उलझ गया है कि उसे अपने नित्य कल्याणके बारेमें कोई चिन्ता ही नहीं है। मनुष्य आत्म-तत्त्वसे दूर हटकर प्राचीन संस्कृतिको भूल चुका है एवं नयी संस्कृतिमें अत्यधिक उत्साहके साथ डूब चुका है। उसे तुच्छ भोगोंमें तीव्र अनुराग है एवं श्रद्धा, विश्वास, त्याग, तपस्या, पवित्रता, सर्वमंगलप्रदायनी—दुःखविदारिणी भगवान्‌की भक्तिसे सर्वाधिक विराग है। श्रीकृष्ण-कथाके श्रवण, मुकुन्द नाम-माधुरीके आस्वादन, सौन्दर्याम्बुधि नवनीरद-कान्तिवाले व्रजेन्द्रनन्दनके श्रीविग्रह दर्शनको अनुपयोगी समझता है। चल-चित्रोंके पात्र, उनके द्वारा गान किये गीत--- उसके गृहोंकी केवल शोभा बढ़ानेके लिए ही हो ऐसी बात नहीं; भगवत्-स्मरणकी भाँति अहोरात्र उनका स्मरण, और उनकी चर्चा की जाती है। चित्रोंके दर्शन उसके लिए भगवत्-दर्शनसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इस प्रकार मानव भयानक भव-रोगमें और भी जकड़ता जा रहा है। सर्वदा ऐसे वतावरणमें रहनेवाले मनुष्योंके लिए भगवद्‌भक्तोंकी चर्चा परिहासका विषय या अरण्यरोदन सा बन गया है। परन्तु आज भी सन्त एवं भागवत लोग असाध्य रोगीके लिए वैद्य बनकर इस सर्वत्र व्याप्त भवव्याधिके शमनके लिए कृतप्रतिज्ञ हैं। उनकी यह दृढ़ धारणा एवं अनुभूति है कि जिस प्रकार भगवान् भास्कर अपने प्रकाशसे समग्र अन्धकारको दूर कर नव-ज्योति प्रदान कर सभीको नवजीवन देते हैं, जिस प्रकार भगवती गंगाका पवित्र एवं निर्मल जल बिना किसी भेदभावके अनजाने या जाने सभी व्यक्तियोंको पावन कर देता है, उसी प्रकार यशोदानन्दन श्रीकृष्णकी भक्ति-सरिता और उनके भक्तोंकी पावन-कथा निखिल दोषोंसे परिपूर्ण पतित-से-पतित, भ्रान्त-से-भ्रान्त व्यक्तिको भी पवित्र करनेमें परम समर्थ है। ह्रदयके अन्धकारको दूरकर मायिक दोषोंको पूर्णतः छेदकर जीवमात्रका उद्धारकर उन्हें अमूल्य प्रेमधन प्रदान करती है।

इसी भावनाका अनुसरण करते हुए असुर-कुलोत्पन्न महाभागवत वृत्रासुरका परम पवित्र चरित्र यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। श्रीमद्‌भागवतमें वर्णित "मन्येऽसुरान् भागवतान्, की सूक्तिके अनुसार भागवत लोग कुल, जाति, वर्ण आदिसे अतीत हैं। यह अटल सत्य है कि भगवान्‌की प्रेमलक्षणा भक्तिसम्पन्न व्यक्तिके

लिए योनिगत, जातिगत या कुलगत भेद कोई महत्व नहीं रखता। वे सभी भगवान्‌के परम प्रियजन हैं। भक्त-चरित्र भगवत्-चरित्रकी ही तरह परम पवित्र एवं संसारासक्तिका परिपूर्ण रूपसे नाश करनेवाला है। वे संसारमें रहते हुए भी, लोकदृष्टिसे भोगोंमें आसक्त दीखने पर भी परम भक्त हैं। क्योंकि उन्होंने अपने चित्तको स्थिरकर मुकुन्दके चरणोंमें अनन्य भावसे न्यौछावर कर दिया है। वृत्रासुर भी ऐसे ही परम भागवतोंमें से थे। परम भक्त राजा परीक्षित ने इनके चरित्रसे आश्चर्यान्वित होकर श्रीशुकदेवजीसे पूछा था—

रजस्तमः स्वभावस्य ब्रह्मन् वृत्रस्य पाप्मनः।
नारायणे भगवति कथमासीद् दृढ़ा मतिः।।
देवानां शुद्धसत्वानामृषीणां चामलात्मनाम्।
भक्तिर्मुकुन्दचरणे च प्रायेण नोपजायते।।
रजोभिः समसंख्याताः पार्थिवैरिह जन्तवः।
तेषां ये केचनेहन्ते श्रेयो वै मनुजादयः।।
मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः।
सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने।।
(भा० ६/१४/१,२,३,५)

हे महामुने! वृत्रासुर अत्यन्त रजोगुणी एवं तमोगुणी स्वभावसे युक्त था। वह देवताओंको कष्ट पहुँचाकर पाप तो करता ही था। फिर ऐसी परिस्थितिमें भगवान् नारायणके चरणोंमें उसकी सुदृढ़ भक्ति कैसे हुई? प्रायः देखा जाता है कि सत्त्वगुणमें अधिष्ठित देवता एवं भोगमल रहित निर्मलात्मा ऋषियोंका भी भगवान् मुकुन्दके चरणोंमें भक्तिका उदय नहीं होता। जगत्‌में धूलिकणोंके समान असंख्य प्राणी हैं। उनमेंसे मनुष्य आदि कुछ श्रेष्ठ जीव ही अपने कल्याणकी चेष्टा करते हैं। उनमें से भी संसारसे मुक्त होनेकी इच्छा कम लोग ही रखते हैं। करोड़ों सिद्ध एवं मुक्त पुरुषोंमें भी शान्तचित्त महापुरुषका मिलना बहुत ही दुर्लभ है जो कि नारायणके ऐकान्तिक भक्त हों।

वृत्रस्तु स कथं पापः सर्वलोकोपतापनः।
इत्थं दृढमतिः कृष्ण आसीत् संग्राम उल्बणे।।
(भा० ६/१४/६)

वृत्रासुर तो सब लोगोंको सताता था एवं बड़ा पापी था। उस भयंकर युद्धके अवसर पर भगवान् श्रीकृष्णमें अपनी वृत्तियोंको इस प्रकार लगाये हुए था, इसका क्या कारण था? इस विषयमें हमें बहुत अधिक सन्देह है। इसे स्पष्टतः जाननेके लिए कुतूहल हो रहा है। वृत्रासुरका बल-पौरुष कितना महान् था कि उसने रणभूमिमें देवराज इन्द्रको प्रसन्न किया।

परीक्षित् महाराजकी उत्कंठा-पूर्ति एवं शंका-निवृत्तिके लिए श्रीशुकदेवजीने लोक मंगलकारी भगवान् श्रीहरिके चरणोंका स्मरण कर वृत्रासुरके पूर्व इतिहासका वर्णन करना प्रारम्भ किया।

प्राचीनकालमें समग्र साधनोंसे समपन्न शूरसेन देशमें गुण-गणाढ्य, विद्या-ऐश्वर्य-सम्पन्न, परम भक्त, साधु-सेवी, यौवनसम्पन्न, कुलीन चित्रकेतु नामक चक्रवर्ती सम्राट राज्य करते थे। उनके राज्यमें पृथ्वी स्वंय ही प्रजाके इच्छानुसार अन्नरस दे दिया करती थी। राजा चित्रकेतुकी सुन्दरतासे परिपूर्ण, उदार हृदयवाली, यौवन-सम्पन्ना असंख्य रानियाँ थीं। किन्तु दैवेच्छासे एक भी सन्तानवती नहीं थी। इस कारण राजा सब समय चिन्तित रहते थे। उन्हें कोई भी भोग-विलास बिल्कुल नहीं भाता था। पुत्र-प्राप्तिकी प्रबल आकांक्षासे सदा पीड़ित रहते थे।

एकदिन हठात् शाप एवं वरदानमें समर्थ अंगिरा ऋषि राजाके यहाँ आ पहुँचे। राजाने प्रत्युत्थान-अर्घ्यादिके द्वारा ऋषिकी विधिवत् पूजा की। आतिथ्य सत्कारके पश्चात् सुखपूर्वक ऋषिके आसन पर आसीन होनेपर राजा शान्त भावसे ऋषिके समीप ही पृथ्वी पर बैठ गये। राजाके स्थिरचित होनेपर महर्षिने प्रश्न किया—"हे राजन्! तुम्हारे गुरु, राष्ट्र, दुर्ग, कोष, सेना, मित्रमण्डल आदि प्रसन्न तो हैं? क्योंकि प्रजा अपनी रक्षाका भार राजाको सौंपकर ही सुख-समृद्धि प्राप्त करती है। जिस राजाका मन वशमें है, जो भोगोंमें आसक्त नहीं है, अपने स्वार्थसे रहित है, उसका राज्य सर्वसमृद्धिसे युक्त रहता है, लोकपाल उसे भेंट चढ़ाते हैं। जो राजा अपने हितको ही देखता है, धार्मिक नैतिक संस्कारोंसे वर्जित है, जिसकी प्रजा करोंके भारसे पीड़ित है, जिसके राज्यमें अधर्मका साम्राज्य है, सत्यका स्थान जहाँ असत्यने ग्रहण किया है, न्यायकी जहाँ मान्यता नहीं, गौ-ब्राह्मण-सन्तोंका जहाँ आदर नहीं, वह राज्य अधिक दिनों तक स्थायी नहीं रहता और अनेक कष्टोंका भागी होता है। राजाके दोषोंसे ही प्रजाको अनेक प्रकारके कष्ट भोगने पड़ते हैं। उनका जीवन दूभर हो जाता है। आपके राज्यमें पूर्ण विचार करनेपर भी ऐसी कोई बात देखनेमें नहीं आती। फिर आप अप्रसन्न क्यों हैं? आपके मुखपर आन्तरिक चिन्ताके चिह्न क्यों झलक रहे हैं? इसका कारण मैं जानना चाहता हूँ।"

राजाने हाथ जोड़कर कहा—"देव! परम योगी, तपस्वी आपके लिए ऐसी कोई बात नहीं है जो अज्ञात हो। फिर भी मेरे मुखसे सुननेकी इच्छा रखते हैं, तो मैं आपसे निवेदन कर रहा हूँ—

लोकपालैरपि प्रार्थ्याः साम्राज्यैश्वर्यसम्पदः।
न नन्दयन्त्यप्रजं मां क्षुत्तृट्काममिवापरे।।

(भा० ६/१४/२५)

मुझे पृथ्वीका साम्राज्य, ऐश्वर्य, सम्पत्तियाँ सभी प्राप्त हैं, जिसके लिए लोकपाल भी लालायित रहते हैं। परन्तु सन्तानहीन होनेसे इन सुख-भोगोंसे तनिक भी शान्ति नहीं मिलती, जैसे भूखे प्राणीको अन्न-जलके अतिरिक्त दूसरी वस्तुएँ रुचिकर नहीं लगतीं।"

ब्रह्मपुत्र परम कृपालु तेजस्वी ऋषिने राजाकी सभी बातोंको सावधानीसे सुना एवं उसकी पुत्र-लालसा देखकर सन्तानके लिए त्वष्टा देवताके योग्य चरुका निर्माण कर उनका यजन किया। अनन्तर यज्ञावशिष्ट प्रसाद सद्गुणवती महारानी कृतद्युतिको प्रदान किया। ऋषिने कहा कि उसे एक पुत्र उत्पन्न होगा जो हर्ष-शोक प्रदान करनेवाला होगा। ऐसा कहकर ऋषि वहाँसे प्रस्थान कर गये। यथा समय महारानी कृतद्युतिने एक पुत्रको जन्म दिया। पुत्रकी उत्पत्तिके संवादसे चित्रकेतु तो प्रसन्न हुए ही, साथ ही साथ समग्र शूरसेन देशके निवासियोंको भी अपार आनन्द हुआ। राजाने भी मांगलिक स्नानसे पवित्र होकर अपनेको वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत किया। ब्राह्मणोंसे स्वस्ति-वाचन कराकर कर्मादि संस्कार कराया तथा उन्हें स्वर्ण, रजत, वस्त्र, आभूषण, गौएँ आदि प्रदान कीं।

राजाकी उस नवजात शिशुपर उसकी बाल-सुलभ चेष्टाओं एवं विविध प्रकारकी क्रीड़ाओंको देखकर अवर्णनीय आसक्ति हो गई। वे मोह-ममतामें सब कुछ भूल गये। बालकमें आसक्ति होनेके कारण राजाका स्नेह जितना महारानी कृतद्युतिमें था, उतना और

रानियोंमें न रहा। राजाको पुत्र क्या मिला, मानो किसी दरिद्रको भटकते-भटकते राजसम्पत्ति मिल गई हो।

अन्य रानियाँ अपनेको सन्तानहीन तथा राजा द्वारा उपेक्षित देखकर सौतेले डाहसे मन-ही-मन जलने लगीं और अपने आपको धिक्कारने लगीं। वे क्रमशः कृतद्युतिके प्रति अत्यन्त द्वेष करने लगीं।

विद्वेषनष्टमतयः स्त्रियो दारुणचेतसः।
गरं ददुः कुमाराय दुर्मर्षा नृपतिं प्रति॥
(भा० ६/१४/४३)

द्वेषके कारण उन रानियोंकी बुद्धि मारी गई। उनके चित्तमें क्रूरता छा जानेके कारण अपने पति चित्रकेतुका पुत्रस्नेह सहन नहीं हुआ। इसलिए उन्होंने चिढ़कर नन्हेंसे राजकुमारको विष खिला दिया। कृतद्युतिको सौतोंके इस घोर पापमयी करतूतका कुछ भी पता नहीं था। उन्होंने दूरसे देखकर यह समझ लिया कि बालक सुखपूर्वक सो रहा है। वह आनन्दसे इधर-उधर अन्तःपुरमें ही घूमती रही। अधिक देर हो जानेपर उसने अपनी दासीको पुत्र लानेके लिए भेजा। धायने बालकके समीप जाकर उसके देहकी विकृत अवस्था देखी। उसने जान लिया कि शरीरसे जीवात्मा प्रस्थान कर गया है। वह तत्काल चीखती-चिल्लाती पृथ्वी पर गिर पड़ी और छाती पीटकर बड़े आर्त्तस्वरमें जोर-जोरसे रोना आरम्भ किया। रोना सुनकर कृतद्युति बालकके शयन कक्षमें पहुँची। उसने अपने लाड़ले बेटेको मृत पाया।

पुत्रकी अवस्था देखकर अत्यन्त शोकके कारण रानी मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं। उनके सिरके बाल बिखर गये और शरीरके वस्त्र अस्त-व्यस्त हो गये। महारानीका रुदन सुनकर रनिवासके सभी स्त्री-पुरुष वहाँ दौड़कर आये और सहानुभूतिके कारण अत्यन्त दुःखी होकर रोने लगे। वे हत्यारिन रानियाँ भी वहाँ आकर झूठ-मूठ रोनेका अभिनय करने लगीं।

पुत्रको अकारण एवं असमयमें ही मृत्युका ग्रास बना देखकर राजाके आँखोंके सामने अँधेरा छा गया और अत्यन्त स्नेहके कारण वे विह्वल हो पड़े। वे धीरे-धीरे अपने मन्त्रियों एवं ब्राह्मणोंके साथ मार्गमें गिरते-पड़ते मृत बालकके निकट पहुँचे और मूर्च्छित होकर उसके पैरोंके पास गिर पड़े। उनके केश और वस्त्र इधर-उधर बिखर गये तथा लम्बी-लम्बी साँसें लेने लगे। आसुओंकी अधिकतासे उनका गला रुँध गया और वे कुछ बोल न सके। सभीने रानीको विलाप करती और अस्त-व्यस्त अवस्थामें पाया। उस समय उसकी अवस्था सभीके लिए करुणोत्पादक थी। महारानीके नेत्रोंसे आँसू बहकर नेत्रोंके अञ्जनसे केसरचन्दन-चर्चित वक्षस्थलको भिंगो रहे थे, बाल बिखरे हुए थे एवं उनमें से गूँथे हुए फूल गिर रहे थे। वह पुत्रके शोकमें कुररी पक्षीके समान उच्च स्वरसे विविध प्रकारके विलाप कर रही थी। तरह-तरहसे विधाता एवं यमराजकी भर्त्सना कर पागलोंकी भांति पुत्रको उठने-बैठने-भोजन करने-खेलने आदिके लिए कह रही थी। यह क्रम बहुत देर तक चलता रहा। क्रमशः सभी शोकमग्न होकर क्रन्दन करते रहे। इसी बीच भगवान् नारदके साथ महर्षि अंगिराका आगमन हुआ। महलमें मृतपुत्रके समीप चित्रकेतुको शवकी तरह पड़ा हुआ देखकर उनका शोक दूर करने हेतु वे उपदेश

देने लगे।

कोऽयं स्यात् तव राजेन्द्र भवान् यमनुशोचति।
त्वं चास्य कतमः सृष्टौ पुरेदानीमतः परम्॥
(भा० ६/१५/२)

उन्होंने कहा—"हे राजेन्द्र! जिस जीवके लिए तुम इतना शोक कर रहे हो, वह बालक इस जन्म और पहलेके जन्ममें तुम्हारा कौन था? तुम उसके कौन थे? और अगले जन्ममें तुम्हारा उसके साथ क्या सम्बन्ध रहेगा?"

यथा प्रयान्ति संयान्ति स्त्रोतो वेगेन बालुकाः।
संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते तथा कालेन देहिनः॥
(भा० ६/१५/३)

जैसे जलके वेगसे बालूके कण एक दूसरेसे जुड़ते और बिछुड़ जाते हैं, वैसे ही कालके प्रवाहमें प्राणियोंका भी मिलन और विछोह होता रहता है।

यथा धानासु वै धाना भवन्ति न भवन्ति च।
एवं भूतेषु भूतानि चोदितानीशमायया॥
(भा० ६/१५/४)

जैसे कुछ बीजोंसे दूसरे बीज उत्पन्न होते और नष्ट हो जाते हैं वैसे ही भगवान्‌की मायासे प्रेरित होकर प्राणियोंसे अन्य प्राणी उत्पन्न होते और नष्ट हो जाते हैं।

हम, तुम तथा वर्त्तमान सभी प्राणी अपने जन्मके पहले नहीं थे और मृत्युके पश्चात् नहीं रहेंगे। इससे सिद्ध है कि इस समय भी उनका अस्तित्व नहीं है। क्योंकि सत्य वस्तु तो सब समय एक-सी रहती है। परमेश्वर सब प्राणियोंके अधिपति हैं और उनमें जन्म मृत्युका विकार नहीं है। न उन्हें किसीकी इच्छा है न ही किसीकी अपेक्षा। वे स्वयं प्राणियोंकी सृष्टि करते हैं एवं उनके द्वारा अन्य प्राणियोंकी सृष्टि, पालन तथा संहार करते हैं। जैसे एक बीजसे दूसरा बीज उत्पन्न होता है, वैसे ही पिताके शरीरसे माताके शरीर द्वारा पुत्रके शरीरकी उत्पत्ति होती है। पिता, माता और पुत्र जीवके रूपमें देही हैं और बाह्य दृष्टिसे केवल शरीर। उनमें देही जीव घट आदि कार्योंमें पृथ्वीके समान नित्य है। यह देही और देहका विभाग अनादि एवं अविद्या द्वारा कल्पित है। अतः शोक करना अनुचित है।

इस प्रकारके ज्ञानोपदेशसे चित्रकेतु बड़े ही प्रभावति हुए। दोनोंका परिचय पूछते हुए कहा—"मेरे जैसे विषयासक्त प्राणियोंके उद्धार करनेके लिए आप दोनों महान् ज्ञानी होकर भी अपनेको अवधूतके वेषमें छिपाकर यहाँ पधारे हैं। बहुतसे भगवान्‌के प्यारे ब्रह्मवेत्ता पुरुष तो मेरे जैसे विषयासक्त प्राणियोंको उपदेश देनेके लिए उन्मत्त-सा वेष बनाकर पृथ्वीपर स्वच्छन्द विचरण किया करते हैं।

तस्माद्युवां ग्राम्यपशोर्मम मूढधियः प्रभू।
अन्धे तमसि मग्नस्य ज्ञानदीप उदीर्यताम्॥
(भा० ६/१५/१६)

मैं विषय भोगोंमें फँसा मूढ़बुद्धि ग्राम्य पशु हूँ और अज्ञानके घोर अन्धकारमें डूब रहा हूँ। आपलोग मुझे ज्ञानकी ज्योतिसे प्रकाश प्रदान करें।"

अंडे क्यों नहीं खायें?

—श्रीरामनिवासजी लखोटिया

पिछले कुछ वर्षोंसे, विशेषकर जबसे दूरदर्शनपर अंडोंके विज्ञापन धड़ल्लेके साथ दिखलाये जा रहे हैं, युवावर्ग ही नहीं, बल्कि आम शाकहारी व्यक्ति भी भ्रमित हो रहे हैं और उनमें से कुछ लोग यह समझने लगे हैं कि अंडे पौष्टिक हैं तथा स्वास्थ्यके लिये शायद आवश्यक भी। लेकिन वैज्ञानिक तथ्योंके द्वारा विश्वके प्रसिद्ध डॉक्टरोंने अब यह प्रमाणित कर दिया है कि शाकाहारकी तुलनामें जहाँ अंडे पौष्टिकतामें पीछे हैं, वहाँ वे रोग बढ़ानेमें आगे हैं। प्रस्तुत लेखमें हमने अंडोंकी तथाकथित पौष्टिकता और प्रोटीनके अधिक होने सम्बन्धी भ्रामक प्रचारके बारेमें वैज्ञानिक आँकड़े प्रस्तुतकर यह प्रमाणिक करनेका प्रयास किया है कि अंडे पौष्टिक तो कम हैं ही बल्कि स्वास्थ्यकी दृष्टिसे वे हानिकारक भी हैं।

शाकाहारकी तुलनामें अंडोंमें प्रोटीनकी मात्रा कम

सबसे प्रमुख तर्क, जो अंडोंके पक्षमें दिया जाता है, वह यह है कि इसमें प्रोटीनकी मात्रा बहुत अधिक है, जो शरीरकी पौष्टिकताके लिये अनिवार्य है। निम्न तालिकासे यह सिद्ध हो जाता है कि शाकाहारके कई प्रकारके खाद्योंमें अंडेकी तुलनामें प्रोटीन अधिक है। यही नहीं, गेहूँ, चावल, ज्वार, बाजरा, मक्का आदिके साथ यदि पर्याप्त मात्रामें दाल एवं हरी सब्जियोंका, सेवन किया जाय तो प्रोटीनकी पूरी आवश्यकता शाकाहारी बने रहनेपर पूरी हो जाती है।

पौष्टिक तत्त्वका तुलनात्मक विवरण (प्रति १००ग्राम)

नाम पदार्थ	प्रोटीन (ग्राम)	कार्बोहाइड्रेट (ग्राम)	कैलोरी
शाकाहारी खाद्य			
मूँग	२४.०	५६.६	३३४
सोयाबीन	४३.२	२०.९	४३२
मूँगफली	३१.५	१९.३	५४१
स्प्रेटा दूध पाउडर	३८.३	५१.०	३५७
मांसाहारी खाद्य			
अंडा	१३.३	०	१७३
मछली	२२.६	०	९१
बकरेका मांस	१८.५	०	१९४

इस तुलनात्मक विवरणसे यह प्रमाणित होता है कि जहाँ प्रति १०० ग्राम मूँगकी दालमें २४ ग्राम प्रोटीन है और सोयाबीनमें ४३ ग्राम तक प्रोटीन होता है, वहाँ अंडेमें लगभग १३ ग्राम प्रोटीन होता है, जो अंडोंकी पौष्टिकता एवं प्रोटीनकी अधिकता सम्बन्धी भ्रामक प्रचारको हमारे सामने प्रदर्शित करता है। यही नहीं, अन्य मांसाहारी खाद्योंमें भी प्रोटीन कई शाकाहारी खाद्योंकी तुलनामें कम होता है।

शाकाहारमें अंडोंकी तुलनामें अधिक विटामिन

अंडेमें १,२०० अन्ताराष्ट्रीय यूनिट विटामिन 'ए' होता है, जबकि संजना-वृक्षके पत्तोंमें १०,००० से १२,००० अन्ताराष्ट्रिय यूनिट विटामिन 'ए' होता है। यह स्त्रोत सस्ता और अन्य पोषक तत्त्वोंसे भरपूर है। विटामिन

'ए' तो पत्तेदार सब्जियों और गाजरमें प्रचुर मात्रामें तथा प्राकृतिक रूप (बीटाकैरोटीन)में उपलब्ध होता है। अंडोंके बारेमें यह विज्ञापन कि इसमें विटामिन 'डी' होता है, भ्रमित करनेवाला है। विटामिन 'डी' तो सामान्यतः शरीरमें चमड़ीके नीचे वसा द्वारा सूर्य-किरणोंकी मददसे उत्पादित होता है। हमारे देशमें सूर्य-किरणें प्रचुर मात्रामें उपलब्ध होती हैं, इसलिये विटामिन 'डी' के लिये पैसा खर्च करके अंडा खाना बिलकुल व्यर्थ है। अब आइये विटामिन 'बी' जिसके बारेमें अंडोंके विज्ञापनमें असत्य-ही-असत्य है। विटामिन 'बी' पानीमें एक घुलनशील आवश्यक पदार्थ है, जो न्यूरोतन्त्रके विकासके लिये जरूरी है। इस विटामिन समूहमें विटामिन 'बी-१', विटामिन 'बी-६', एवं विटामिन 'बी-१२' होता है जो कि दालोंमें और कुछ अन्य सब्जियोंमें पाया जाता है। यह विटामिन अंडेमें इतना कम होता है कि इसका अनुपात नहीं के बराबर होता है। फिर खमीरयुक्त खाद्य पदार्थ जैसे—इडली, डोसा आदिमें विटामिन 'बी' प्रचुर मात्रामें पाया जाता है।

स्वास्थ्यके लिये अंडा घातक

आजकल प्रायः यह सुननेमें आ रहा है कि बच्चोंको अंडे आदिके सेवनसे अधिक स्वस्थ बनाया जा सकता है। लेकिन यह भ्रान्ति है, जिसका निराकरण १९८५ के नोबेल पुरस्कार विजेता डॉ० माइकल एस० ब्राउन तथा डॉ० जोसेफ एल० गोल्डस्टीप नामक दो अमेरिकन डॉक्टरोंने किया, जब उन्होंने यह साबित कर दिया कि हृदय-रोगोंके कारण ही अधिकांश मौतें होती हैं। उनके अनुसार कॉलेस्टेरोल नामक तत्त्वको रक्तमें जमनेसे रोकना हृदय-रोगोंकी रोकथामके लिये अति आवश्यक है और कॉलेस्टेरोल अंडेमें सबसे अधिक मात्रामें पाया जाता है। यह १०० ग्राम वजनके अंडेमें लगभग ४५० या ५०० मि० ग्राम होता है, जो खतरनाक रूपसे ज्यादा मात्रामें है। इसीलिये अंडा हार्टअटैक एवं हृदय-रोगोंके लिये पूर्णरूपसे जिम्मेदार है। इसकी तुलनामें एक कप दूधमें ५ से १०० मि० ग्राम कॉलेस्टेरोल होता है। नवीन शोधोंके अनुसार प्रत्येक अंडेके सेवनसे लगभग ५ मि० ग्राम कॉलेस्टेरोल खूनमें मिल जाता है। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे यह प्रमाणित किया जा चुका है कि २५० मि० ग्रामसे ज्यादा शरीरमें कॉलेस्टेरोलकी मात्रा हार्टअटैक एवं अन्य हृदय-रोगोंके लिये खुला आमन्त्रण है। इसलिये लगातार अंडे खानेकी सलाह जो विज्ञापनोंके द्वारा दी जा रही है, वह निश्चित तौर पर मानव-स्वास्थ्यके लिये खतरनाक है। कॉलेस्टेरोल वनस्पति और फलमें नहीं के बराबर होता है।

अब यह भी सिद्ध हो गया है कि अंडा सुपाच्य नहीं है, बल्कि अंडेके छिलकेपर लगभग १५,००० सूक्ष्म छिद्रोंके द्वारा कई जीवाणु अंडेमें प्रवेश कर जाते हैं, जो अंडेको खराब कर देते हैं। इसी प्रकार वैज्ञानिकोंने अब यह साबित कर दिया है कि जो व्यक्ति अंडे या मांस खाते हैं, उनके शरीरमें 'रिस्पटरों' की संख्यामें कमी हो जाती है जिससे रक्तके अन्दर कॉलेस्टेरोलकी मात्रा अधिक हो जाती है और उससे हृदय-रोग शुरू हो जाता है। इससे गुर्देके रोगों एवं पथरी-जैसी बीमारियोंको भी बढ़ावा मिलता है। इतना ही नहीं, संतुलित वसाकी

मात्रा भी अंडेमें प्रोटीनकी मात्राके लगभग बराबर ही होती है, जो कॉलेस्टेरोलको धमनियोंमें जमा होनेमें मदद करता है। एक महत्त्वपूर्ण तथ्य अंडोंके बारेमें यह है कि इसमें कार्बोहाईड्रेट और फाइबर नहीं होता है, जो इसके सेवनको सर्वथा अयोग्य साबित करता है। कार्बोहाईड्रेट खानेमें ईंधनके समान होता है, जो कैलोरीज उत्पादनके लिये आवश्यक है। चुस्ती और विकासके लिये अंडोंसे जरूरी कैलोरीज नहीं मिलती जो कि खाद्यान्न और अन्य दालोंसे आसानीसे उपलब्ध हो जाती है, जैसा कि तुलनात्मक विवरणसे स्पष्ट है।

कोई भी अंडा शाकाहारी नहीं होता

अनिषेचित अंडे किसी भी प्रकारसे शाकाहारी नहीं होते, क्योंकि वे न तो पेड़ोंपर उगते हैं और न ही किसी पौधेपर, बल्कि वे सब मुर्गीके पेटमेंसे ही उत्पन्न होते हैं। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि सभी प्रकारके अंडोंमें जीवन होता है। सूक्ष्मदर्शी यन्त्रके द्वारा अनिषेचित अंडोंके शुक्राणु चलते-फिरते नजर आते हैं। सन् १९७१ में मिशीगन यूनिवर्सिटी अमेरिकाके वैज्ञानिकोंने यह सिद्ध किया था कि संसारका कोई भी अंडा निर्जीव नहीं है। अंडेमें हवाके आने-जानेकी नैसर्गिक व्यवस्था है। प्रत्येक अंडेके ऊपरी भागपर १५,००० सूक्ष्म छिद्र होते हैं, जिससे अंडेका जीव श्वास लेता है। इन वैज्ञानिक तथ्योंसे यह स्पष्ट है कि सभी अंडोंमें जीव होता है।

अंडोंका सेवन धर्म एवं अध्यात्मके विरुद्ध

यह बात निर्विवाद है कि अहिंसा एक सात्त्विक गुण है और इसके विपरीत है हिंसा। विशेषकर जब हिंसाकी आवश्यकता ही न हो तब हिंसा करना और अपनी जीभके स्वादके लिये जानवरोंकी हत्या करना या अंडा जो मूलतः मुर्गी-उत्पादनके लिये ही है, उस जीवकी हत्या करना अहिंसाके मूल सिद्धान्तके विरुद्ध है।

(कल्याणसे सभार)

मूर्ख माली और मूर्ख पण्डित

धनी लोगोंके घरमें अनेक प्रकारके जीव वास करते हैं। ऐसे लोगोंके घरको एक चिड़ियाघर या पशुशाला कहा जा सकता है।

ऐसे ही किसी जमींदारके बगीचेमें एक माली और उसकी सभामें एक पण्डितजी थे। माली और पण्डित दोनों ही एक जातिके थे अर्थात् माली यह नहीं जानता था कि पेड़-पौधोंका रख-रखाव किस प्रकार करना चाहिए और पण्डितजी अनुस्वार-विसर्गको याद कर लेनेपर भी साधारण व्यवहारिक ज्ञानसे वञ्चित थे।

एक दिन जमींदार साहब टहलनेके लिए बगीचेमें आए। माली भी अपने मालिकको देखकर खूब परिश्रम करनेका नाटक करने लगा और सभी पेड़-पौधोंको सींचने लगा। मूर्ख मालीने मन-ही-मन विचार किया कि जब पेड़की शखाओंमें ही फूल लगते हैं और फूलसे ही फल होता है, तब शाखा, पत्ते और फूलोंको ही अधिक सींचना उचित है। ऐसा विचारकर वह एक-एक शाखा, पत्ता और फूलको सींचने लगा। यह देखकर जमींदार साहब मूर्ख मालीसे

बोले—"तुम यह क्या कर रहे हो? क्या तुम जानते नहीं कि पेड़की जड़में पानी देना चाहिए? हर एक फूल, पत्ते और शाखामें जल देनेसे पेड़ ही नहीं बचेगा। तुम्हारे जैसा मूर्ख माली तो मैंने और कहीं नहीं देखा। जड़में पानी दो, थोड़े परिश्रमसे ही पेड़के सभी भागोंमें जल पहुँच जाएगा। इससे पेड़, पत्ते, फूल सभी बचे रहेंगे और पेड़में सुन्दर फूल-फल फलेंगे।"

जमींदार साहब बगीचेसे लौटकर जब वापस घर आए तो उन्होंने देखा कि इधर उनके पण्डित महाशय एक अलग ही मूर्खता कर रहे हैं। मालीने लिखना-पढ़ना नहीं जानकर जैसी मूर्खता की है, पण्डितजी लिखना-पढ़ना जानकर भी उससे बड़ी मूर्खता कर रहे हैं। पण्डितजी आसनपर विराजमान हैं, उनके सामने खीर आदि विभिन्न प्रकारके स्वादिष्ट व्यञ्जन रखे हुए हैं। पण्डितजी उन व्यञ्जनोंके द्वारा एक एक पिण्ड बनाते हैं और उसे कभी अपने कानोंमें, कभी अपनी आँखोंमें, कभी अपनी नाकमें, कभी अपने हाथोंपर, तो कभी अपने पाँवोंपर देते हुए जोर-जोरसे मन्त्रोचचारण कर रहे हैं—"ॐ कर्णाभ्यां स्वाहा, ॐ चक्षुर्भ्यां स्वाहा" इत्यादि।

पण्डितजी सोच रहे हैं कि आँख, कान, नाक, हाथ, पैर आदि इन्द्रियाँ सर्वक्षण कार्य कर रहीं हैं। मैं जिस समय जैसी इच्छा करता हूँ, ये उसी समय उसे पूर्ण कर देती हैं। इसलिए इच्छा मात्रसे कामना पूर्ण करनेवाली इन्द्रियोंको भोजन न देकर केवल मुखमें ही भोजन देकर प्राणकी तुष्टि करना अनुचित है। एकमात्र मुख या पेटकी सहायतासे प्राणको सन्तुष्ट करनेकी मूर्खता मूर्ख लोग ही करते हैं। मैं पण्डित हूँ इसलिए मैं मूर्खोंके रास्तेपर क्यों चलूँ?

जमींदार साहब पण्डितजीके इस आचरणको देखकर पहले तो अवाक् हो गए, बादमें समझा कि इन्होंने केवल अनुस्वार विसर्ग पढ़ा है, परन्तु व्यवहारिक ज्ञान लेशमात्र भी नहीं है। उन्होंने पण्डितजीसे कहा—"पण्डित महाशय! आप यह क्या कर रहे हैं? इससे आप शीघ्र ही अपने हाथों ही अपने प्राणसे हाथ धो बैठेंगे। प्राणको आहार प्रदान नहीं कर आप जो खाद्य द्रव्योंका ग्रास कान, आँख, नाक आदिमें दे रहे हैं, इससे ये सभी इन्द्रियाँ अभी नष्ट हो जाएँगीं। मुखमें आहार न देकर अन्यान्य स्थानोंमें जितना भी आहार क्यों न दिया जाय, सब व्यर्थ हो जाएगा और आप भी उपवासी रहते हुए समस्त इन्द्रियोंकी शक्ति खो देंगे। प्राणकी शक्तिके द्वारा ही अन्य सभी इन्द्रियोंमें शक्ति है। जिस समय मनुष्यके प्राण चले जाते हैं, उस समय आँख, कान, नाक, जिह्वा, त्वचा, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ—सभी ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियके द्वारसमूह यथायथ रहनेपर भी पतिरूपी प्राण नहीं रहनेके कारण उनकी कार्यशक्ति लुप्त हो जाती है। अतएव प्राणमें आहार प्रदान करें।

श्रीमद्भागवतमें इसी प्रकारका एक सुन्दर उदाहरण दिया गया है—

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन
तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां
तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या।।

(श्रीमद्भा. ४/३१/१४)

अर्थात् जिस प्रकार वृक्षके मूलमें जल देनेसे वृक्षके स्कन्ध, शाखा उपशाखा प्रभृति सभी सञ्जीवित होते हैं, प्राणमें आहार देनेसे जिस

प्रकार सभी इन्द्रियोंकी तृप्ति होती है, उसी प्रकार एकमात्र अच्युत या श्रीकृष्णकी पूजा द्वारा ही निखिल देवता, पितर आदिकी पूजा हो जाती है।

सभी देवताओंके प्राण हैं—श्रीविष्णु। विष्णु नहीं रहनेपर किसी देवताकी प्राण-प्रतिष्ठा नहीं होती है। विष्णुकी शक्तिसे ही अन्यान्य देवताओंकी शक्ति है। विष्णु ही पूर्ण शक्तिमान् स्वयं भगवान् हैं। जिस प्रकार पेड़की जड़में जल देनेसे पूरा पेड़ जीवित रहता है और उसमें उत्तम फल भी लगते हैं, प्रत्येक शाखा, पत्ता और फूलमें अलग-अलग जल नहीं देना पड़ता है, उसी प्रकार एकमात्र विष्णुकी सेवा करनेसे ही सभी देवताओंका संतोष विधान होता है, क्योंकि कहा गया है—'तस्मिन् तुष्टे जगत् तुष्टम्।' अलग-अलग रूपमें तैंतीस कोटि या अनन्त कोटि देवताओंकी पूजा नहीं करना पड़ता। इतना ही नहीं इन सभी देवताओंकी पूजा करनेसे नित्यमंगल लाभ नहीं होता। एकमात्र विष्णुकी पूजा करनेसे ही नित्यमंगल लाभ होता है। विष्णु ही सभी देवताओंके प्राण हैं, अतएव प्राणमें ही सभी आहार देना उचित है। जो इन बातोंको नहीं समझते हैं, वे बहु परिश्रम, बहु साधन और वेद-वेदान्त-स्मृति प्रभृति बहु शास्त्रोंमें पाण्डित्य प्राप्त कर भी मूर्ख ही रहते हैं अर्थात् श्रेयः फलसे वञ्चित रहते हैं। अतएव मूल वस्तु श्रीविष्णुकी ही सेवा करना कर्त्तव्य है एवं विष्णुके अधीन दासके रूपमें अन्य देवताओंको सम्मान करना उचित है।

विविध संवाद

हवाईके **maui** *द्वीपमें श्रीगौरकथा*

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके उपसभापति एवं सम्पादक श्रीश्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजने ४ मईसे २९ मई तक हवाईके होनोलुलु, माउई आदि द्वीपोंमें श्रीगैरवाणी और भावगतका प्रचार किया। २२ मईसे २९ मई तक माउई द्वीपमें विशेषरूपसे श्रीगौरकथाका आयोजन हुआ, जिसमें श्रील महाराजने श्रीचैतन्य महाप्रभु और राय रामानन्द संवादके ऊपर प्रवचन दिया। कथाका आयोजन समुद्रतटके पास किया गया था, जिसमें प्रायाः २०० लोग प्रवचन सुनने आते थे। कथाके द्वारा श्रोतागण अत्यन्त प्रभावित हुए।

४ मईसे २१ मई तक होनोलुलुमें प्रचार करते समय वहाँके स्थानीय टेलीवीजनके साथ श्रील महाराजजीने साक्षात्कार दिया। १६ मईको श्रीनृसिंह चतुर्दशीका व्रत पारम्परिक निष्ठाके साथ मनाया गया। संध्याके समय प्रवचन और अभिषेकका आयोजन हुआ।

केलिफोर्नियामें भागव-धर्मका प्रचार और अन्नकूट महोत्सव हवाई द्वीपमें प्रचारके बाद श्रील महाराज अमेरिका देशके केलिफोर्निया राज्यमें प्रचारके लिए पहुँचे। ३० मईसे १ जून तक लॉस एंन्जल्समें oak wood appartment में प्रवचनका आयोजन हुआ।

केलिफोर्नियामें भागवत-धर्मका प्रचार और अन्नकूट महोत्सव हवाई द्वीपमें प्रचारके बाद श्रील महाराज अमेरिका देशके केलिफोर्निया राज्यमें प्रचारके लिए पहुँचे। ३० मईसे १ जून तक लॉस एंजल्समें oak wood appartment में प्रवचनका आयोजन हुआ।

लॉस एंजल्ससे श्रील महाराज बेजर पहुँचे। बेजरमें २ जूनसे ९ जून तक हरिकथाका आयोजन हुआ। प्रवचनका विषय था श्रीरूप-शिक्षा और श्रीसनातन-शिक्षा। प्रतिदिन प्रवचनके उपरान्त छोटे-छोटे बच्चों द्वारा शिक्षाप्रद नारिकाओंको प्रस्तुत किया जाता था। बेजरमें प्रस्तुत कार्यक्रमका आकर्षण रहा विराट अन्नकूट महोत्सवका अनुष्ठान।

टेक्सासमें भागवत सप्ताह

बेजरके कार्यक्रमके पश्चात् श्रील महाराज १० जूनको टेक्सास राज्यके ह्युस्टन नगरमें पधारे। इस नगरमें भारतीय मूलके लोगोंकी संख्या बहुत है। यहाँ सात दिनों तक हिन्दीमें श्रील महाराजजीने भागवतका प्रवचन किया।

हरिनाम संकीर्तनकी मंगलमय ध्वनिसे परिपूर्ण बातावरणमें कलश-पूजन तथा ग्रन्थराज श्रीमद्भागवतकी आरति और पूजाके बाद सप्ताह प्रारम्भ किया गया। अन्तमं भी पारम्परिक रीतिसे अनुष्ठानका समापन हुआ। यहाँ भक्तोंने श्रील महाराजसे बहुत अच्छे-अच्छे प्रश्न किये, जिनका बहुत ही सुनदर ढ़ंगसे सन्तोषजनक उत्तर श्रीमहाराजजीने दिया। [इसे अलगसे प्रकाशित किया जा रहा है।]

ह्युस्टनमें प्रचार करनेके बाद श्रील महाराज फ्लोरिडा राज्यके A lachua में नगरमें पहुँचे। १९ जूनसे २४ जून तक alachua में हरिकथाका आयोजन किया गया। यहाँ भी छोटे-छोटे बच्चों द्वारा कई नटिकाओंका प्रदर्शन हुआ। प्रायः ३०० लोग प्रतिदिन प्रवचन सुननेके लिए उपस्थित थे।

Alachua के पश्चात् New Gersy में दो दिन श्रील महाराजका कार्यक्रम हुआ।

यूरोपमें प्रचार

अमेरिकामें सफल प्रचार करनेके बाद श्रील महाराजजीने २८ जूनसे ११ जुलाई तक यूरोपमें प्रचार-कार्यक्रममें व्यस्त रहे। सबसे पहले उन्होंने ईंग्लैन्डके Bath नगरमें दो दिनों तक आत्म-अनात्म तत्त्वका सुन्दर विवेचन किया। Bath के बाद ३० जूनसे ६ जुलाई तक Wales में हरिकथाका आयोजन हुआ। इसमें श्रीगुंडीचा मन्दिर-मार्जन और श्रीजगन्नाथजीकी रथयात्राका मार्मिक विवेचन किया गया। Wales से Birmingham और London होते हुए वे हॉलेन्डकी राजधानी Amsterdom पहुँचे। Amsterdam के निकट ही Bomegraven नामक स्थानमें ६ जूनसे ११ जून तक कार्यक्रमका आयोजन किया गया था। यहाँ श्रील महाराजजीने हेरापञ्चमी और राय रामानन्द संवादपर प्रवचन दिया।

यूरोपमें सर्वत्र ही भक्तोंकी संख्या काफी अधिक रही। प्रायः ५०० से ६०० लोग प्रवचनमें उपस्थित होते थे।

पूरी यात्राके दौरान आस्ट्रेलिया, मलेशिया, सिंगापुर, फिलिपीन्स, ब्राजील, चिली, पनामा, कोस्टारिका, इटली, स्पेन, फ्रांस, जर्मनी, हॉलेन्ड, ईंग्लेण्ड, अमेरिका, कनाडा, आदि विश्वके अनेक देशोंके भक्त श्रील महाराजजीके साथ रहे। सभी जगहोंपर भक्तोंने मृदंग-करतालके साथ अत्यन्त उत्साहपूर्वक स्वागत किया। प्रायः सभी स्थानोंपर दीक्षा-संस्कारका आयोजन किया गया। २०० से भी अधिक लोग वैष्णव-धर्ममें दीक्षित हुए। यात्राके दौरान श्रीभक्तिवेदान्त माधव महाराज, श्रीभक्तिवेदान्त अरण्य महाराज, श्रीमान् पुण्डरीक ब्रह्मचारी, श्रीव्रजनाथ दासाधिकारी, श्रीमती वृन्दादेवी दासी, श्रीमती तुंगविद्या देवी दासी आदिकी सेवा-प्रचेष्टा सराहनीय रही।

ब्राजीलमें

भक्तिवेदान्त वन महाराज श्रीसमितिके अन्यतम संन्यासी श्रीभक्तिवेदान्त महाराज अप्रेल मास मध्यमें भारतसे यात्रा कर यूरोप होते हुए ब्राजील पहुँचे।

श्रीश्रीकृष्ण-जन्माष्टमी

आदरणीय सज्जनों!

निवेदन है कि श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके शाखा मठ श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें श्रीश्रीकृष्ण-जन्माष्टमीका महोत्सव यथारीति इस वर्ष भी समितिके वर्तमान सभापति परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजके आनुगत्यमें बड़े धूमधाम से मनाया जायेगा।

इसके उपलक्ष्यमें २२ अगस्त २००० मंगलवारसे २४ अगस्त २००० बृहस्पतिवार तक श्रीहरिनामसंकीर्तन, श्रीमद्भागवतादि शुद्धभक्तिग्रन्थपाठ, श्रीविग्रहदर्शन, भक्ति रसिक वैष्णव सन्तों एवं विद्वानोंके प्रवचन आदि कार्यक्रम सम्पन्न होंगे।

२३ अगस्त २००० बुधवार को श्रीकृष्णजन्माष्टमी व्रत-उपवासका पालन किया जायेगा।

अतएव आपलोगोंसे अनुरोध है कि अपने बन्धु, बान्धवों एवं परिवारके साथ इस परम मंगलमय समारोहमें तन-मन-वचन-प्राण एवं अर्थके द्वारा सहायता कर हमें परमोत्साह प्रदान करें तथा पारमार्थिक लाभ उठाकर अपने जीवनको सफल बनायें।

कार्यक्रमका विवरण

२२ अगस्त मंगलवारः

प्रातः ५ बजेसे ८ बजे तक—मंगलारति-दर्शन, श्रीहरिनाम संकीर्तन, भक्ति-ग्रन्थ पाठ, तुलसी-परिक्रमा।

सांय ५ बजेसे ८ बजे तक—नगर संकीर्तन (नगरके मुख्य राजमार्गोंसे) रात्रि ८ बजेसे १० बजे तक—श्रीमद्भागवत पाठ।

२३ अगस्त बुधवार— श्रीराकृष्णजन्माष्टमी (व्रत और उपवास)

प्रातः ५ बजेसे ७ बजे तक—मंगलारति दर्शन श्रीतुलसी-परिक्रमा और श्रीहरिनाम-संकीर्तन।

प्रातः ७ बजेसे मध्यरात्रि १२ बजे तक—श्रीमद्भागवत-पारायण

रात्रि ७ बजेसे ९ बजे तक—संध्यारति, श्रीतुलसी-परिक्रमा एवं श्रीहरि-संकीर्तन।

रात्रि ९ बजेसे ११ बजे तक—वैष्णव-सन्तों एवं विद्वानोंके प्रवचन और भाषण।

रात्रि ११ बजेसे मध्यरात्रि १२ बजे तक—महामन्त्र-संकीर्तन और महाभिषेक।

२४ अगस्त बृहस्पतिवार श्रीनन्दोत्सव

(महाप्रसाद वितरण)

सभी कार्यक्रम प्रथम दिनकी तरह।

निवेदनकर्ता—

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठके सेवकोंकी ओरसे

त्रिदण्डिभिक्षु श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण

(मठाध्यक्ष एवं प्रबन्धक)

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

वैकुण्ठ–वार्त्तावह

बृहत्–मृदङ्ग

श्रीभागवत–पत्रिका

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना।।

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।।

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः।।

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र।।
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश।।

वर्ष ४४ } *श्रीगौराब्द ५१४* *वि. सं. २०५७ भाद्र मास, सन् २०००, १६ अगस्त–१५ सितम्बर* { **संख्या ६**

श्रीश्रीसंकर्षण–स्तोत्रम्

मृणालगौरं शितिवाससं स्फुरत् किरीट–केयूर–कटित्र–कंकणम्।
प्रसन्न–वक्त्रारुण–लोचनं वृतं ददर्श सिद्धेश्वर–मण्डलैः प्रभुम्।।१।।

महाराज चित्रकेतुने देखा कि भगवान शेषजी सनत्कुमार आदि सिद्धेश्वरोंके मण्डलमें विराजमान हैं। उनका शरीर कमलनालके समान गौरवर्णका है। उसपर नीले रंगके वस्त्र पहने हुए हैं। सिरपर किरीट, बाँहोंमें बाजुबंद, कमरमें करधनी और कलाईमें कंगन आदि आभूषण चमक रहे हैं। नेत्र अरूणवर्ण हैं और मुख पर प्रसन्नता छा रही है।।१।।

ततः समाधाय मनो मनीषया बभाष एतत् प्रतिलब्धवागसौ।
नियम्य सर्वेन्द्रिय–बाह्यवर्त्तनं जगद्गुरुं सात्वतशास्त्रविग्रहम्।।३३।।

चित्रकेतुरुवाच

अजित जितः सममतिभिः साधुभिर्भवान् जितात्मभिर्भवता।
विजितास्तेऽपि च भजतामकामात्मनां य आत्मदोऽतिकरुणः।।३४।।
क्षित्यादिभिरेषकिलावृतः सप्तभिर्दशगुणोत्तरैराण्डकोषः।
यत्र पतत्यणुकल्पः सहाण्डकोटि–कोटिभिस्तदनन्तः।।३७।।
कामधियस्त्वयि रचिता न परम रोहन्ति यथा करंभबीजानि।
ज्ञानात्मन्यगुणमये गुणगणतोऽस्य द्वन्द्वजालानि।।३९।।
जितमजित तदा भवता यदाऽऽह भागवतं धर्ममनवद्यम्।
निष्किञ्चना ये मुनय आत्मारामा यमुपासतेऽपवर्गाय।।४०।।
न हि भगवन्नघटितमिदं त्वद्दर्शनान्नृणामखिल–पापक्षयः।
यन्नाम–सकृच्छ्रवणात् पुक्कशोऽपि विमुच्यते संसारात्।।४४।।
अथ भगवन् वयमधुना त्वदवलोकपरिमृष्टाशयमलाः।
सुरऋषिणा यत् कथितं तावकेन कथमन्यथा भवति।।४५।।
विदितमनन्त समस्तं तव जगदात्मनो जनैरिहाचरितम्।
विज्ञाप्यं परमगुरोः कियदिव सवितुरिव खद्योतैः।।४६।।
यं वै श्वसन्तमनु विश्वसृजः श्वसन्ति, यं चेकितानमनु चित्तय उच्चकन्ति।
भूमण्डलं सरषपायति यस्य मुर्द्धिन तस्मै नमो भगवतेऽस्तु सहस्त्रमूर्द्धे।।४८।।

—श्रीमद्भागवते षष्ठस्कन्धे चित्रकेतूपाख्याने षोड़शोऽध्याये

अनुवाद—

थोड़ी देर बाद उन्होंने मनको समाहित किया और सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी बाह्यवृत्तिको रोककर वाक् शक्तिको लाभ किया। फिर उन सच्चिदानन्द–विग्रह जगद्गुरु भगवान्‌की, जिनके स्वरूपका पञ्चरात्र आदि भक्तिशास्त्रोंमें वर्णन किया गया है, इस प्रकार स्तुति की।।३३।।

हे अजित! आप दूसरोंके लिये अजित होने पर भी जितेन्द्रिय और समदर्शी साधुओं द्वारा जीत लिये गये हैं अर्थात् उन्होंने आपको वशीभूत कर लिया है। आपने भी अपने सौन्दर्य, माधुर्य, कारुण्य आदि गुणोंसे उनको अपने वशमें कर लिया है। अहो! आप धन्य हैं!! क्योंकि जो निष्काम भावसे आपका भजन करते हैं, उन्हें आप करुणा–परवश होकर अपने आपको भी दे डालते हैं।।३४।।

यह ब्रह्माण्डकोष जो क्रमशः एक–से–एक दसगुने विस्तृत पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, महत् और अहंकार—इन सात आवरणों (सप्त–प्रकृति) से घिरा हुआ है, अपने ही समान दूसरे करोड़ों ब्रह्माण्डोंके सहित आपमें एक परमाणुके समान घूमता रहता है परन्तु फिर भी उसे आपकी सीमाका पता नहीं है। इसलिये आप 'अनन्त' के नामसे प्रसिद्ध हैं।।३७।।

हे परमात्मन्! आप ज्ञानात्मा और निर्गुण हैं। इसलिये जो राज्य प्राप्ति आदि कामनाओंकी पूर्त्तिके लिये आपकी उपासना करते हैं, उनका भी फिरसे जन्म नहीं होता, ठीक उसी तरह जिस प्रकार भुने हुए बीजोंसे अंकुर नहीं उगते। इसका कारण यह है कि जीवको जो सुख–दुःख

आदि द्वन्द्व प्राप्त होते हैं, वे सत्त्व आदि गुणोंसे ही होते हैं, निर्गुणसे नहीं।।३८।।

हे अजित! जब आपने अपनी प्राप्तिके उपाय-स्वरूप अनवद्य भागवत धर्मका उपदेश दिया है, तब आपने सबको जीत लिया है। क्योंकि अपने पास कुछ भी संग्रह-परिग्रह न करने वाले, समदृष्टि सम्पन्न आर्यश्रेष्ठ सनत्कुमार आदि परमऋर्षिगण भी मोक्षकी प्राप्तिके लिये उसी भागवत धर्मका आश्रय लेते हैं।।४०।।

भगवन्! आपके दर्शनमात्रसे मनुष्योंके सारे पाप क्षीण हो जाते हैं, यह कोई असंभव बात नहीं है। क्योंकि आपका नाम एक बार श्रवण करनेसे नीच चाण्डाल भी संसारसे मुक्त हो जाता है।।४४।।

भगवन्! इस समय आपके दर्शनमात्रसे ही मेरे अन्तःकरणके समस्त पाप और उसके कार्यभूत राग, लोभ आदि दूर हो गये हैं, जो ठीक ही है, क्योंकि आपके अनन्य प्रेमीभक्त देवर्षि नारदजीने जो कहा है, वह मिथ्या कैसे हो सकता है?।।४५।।

हे अनन्त! संसारमें प्राणी जो कुछ करते हैं, वह सब आप जानते हैं; क्योंकि आप सबके अन्तर्यामी हैं। जैसे सूर्यके सामने जुगनूके लिये कुछ भी प्रकाशित करनेके लिये नहीं है, उसी प्रकार परम गुरु (सर्व-प्रकाशक) आपसे मेरे जैसोंके लिये निवेदन करनेको है ही क्या? आप सब कुछ जानते हैं।।४६।।

आपके चेष्टायुक्त होने पर पीछेसे विश्व स्रष्टा ब्रह्मा आदि देवतागण चेष्टा करनेमें समर्थ होते हैं; आपके दर्शनके पश्चात् ज्ञानेन्द्रियाँ कार्य करती हैं; आपके मस्तक पर यह भूमण्डल सरसोंके दानेके समान जान पड़ता है। हे सहस्रशीर्ष भगवन्! आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ।।४८।। ❑

वैराग्य

—ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

वैराग्य किसे कहते हैं? वह किस विशेष उपाय से साधित होता है? क्या यह भक्तिका एक अङ्ग है अथवा उसका चरम फल है? ज्ञानके साथ इसका क्या सम्बन्ध है? क्या वैराग्य एक प्रकारका कर्म है? वैराग्य होनेसे ही क्या जीवको सब कुछ मिल गया? क्या यह वैष्णवधर्मका प्रधान अङ्ग है?

ज्ञानमार्गीय लोग वैराग्यका बहुत ही अधिक आदर करते हैं। यहाँ तक कि वे वैराग्यको जीवनका चरम फल मानते हैं। ज्ञानका स्वभाव है—विवेक। उनका कथन है कि जिस समय जीवका विवेक उदय होता है, उसी समय उसके हृदयमें विराग प्रवेश करता है। जीव संसारमें मोहित होकर भोगोंको भोगनेमें ही मस्त है। परन्तु कोई ठेस लगने पर जिस समय वह संसारकी गति पर गाढ़े रूपसे विचारकर विवेक बुद्धि द्वारा यह स्थिर करता है कि संसारका ध्वंश ही प्रयोजन है, क्योंकि उसीसे जीवकी मुक्ति होती है, उस समय उसके हृदयमें संसारके प्रति वैराग्य उत्पन्न हो जाता है, उसका संसार छूट जाता है तथा उसे निर्वाण मुक्ति प्राप्त होती है।

कर्ममार्गपर चलनेवाले सांसारिक भोगोंका ही अधिक माहात्म्य बतलाते हैं। वे जैमिनी ऋषिका मत अनुसरण करते हुए कहते हैं कि जीवोंके लिये संसारके प्रति वैराग्यकी कोई आवश्यकता नहीं है। वैराग्यके अधिकारी केवल अन्धे, बहरे, लंगड़े-लूल्हे व्यक्ति ही

हैं, क्योंकि ये असमर्थ हैं।

ज्ञानमार्गीय तथा भक्तिमार्गीय मानव वैराग्यका इतना अधिक आदर करते हैं कि वे संसार और वैराग्यकी अलग-अलग दो स्थितियाँ स्थिरकर उस विषयमें विशेष-विशेष प्रक्रिया भी निर्दिष्ट करते हैं। अतएव प्रत्येक मार्गकी प्रक्रियामें बहुतसे विधि-निषेधोंकी व्यवस्था परिलक्षित होती है। दत्तात्रेय और शंकराचार्य आदि ज्ञानमार्गके नेता-महात्माओंने शास्त्र-वचनोंका अवलम्बनकर वैराग्यके सम्बन्धमें नाना प्रकारकी व्यवस्थाओंको लिपिबद्ध किया है। उन-उन नेता-महात्माओंकी व्यवस्थाके अनुसार दसनामी संन्यासी, कानफटा योगी तथा गोरखनाथी संन्यासी-व्यक्ति प्रायः विभिन्न प्रकारके वेशोंमें संसारमें भ्रमण करते हैं। दण्डी और मुण्डी आदि नाना प्रकारके वेशधारियोंका उन दलोंमें भारी सम्मान है। लिंग (वैराग्य-चिह्न) ही उनमें धर्मका चिह्न माना जाता है। अधिकांश क्षेत्रोंमें यह देखा जाता है कि वे यह भी नहीं जानते कि चित्तका वैराग्य क्या बला है। बाहरीवेश देखकर ही उन-उन मतोंके संसारी व्यक्ति उनके दर्शनसे कृतकृतार्थ होकर दण्डवत्-प्रणाम करते हैं तथा उनकी विभिन्न प्रकारसे सेवा करते हैं।

भक्ति मार्गमें भी वैराग्यका आदर देखा जाता है। विशिष्टाद्वैतवादी, शुद्धाद्वैतवादी, द्वैताद्वैतवादी और द्वैतवादी वैष्णवोंमेंसे अनेक वैराग्य-चिह्न धारणकर विचरण करते हैं। ज्ञानमार्गियोंकी भांति इनमें भी मठ, शिष्य-संग्रह और विधि-निषेधकी साज सर्वत्र ही दीख पड़ती है। मठाधीश बनकर अनेक व्यक्ति विराट सम्पत्तिके मालिक भी हो हैं। वे एक राजाकी तरह विराट ऐश्वर्यशाली होते हैं—शानसे रहते हैं, यान-वाहनमें बड़े ठाट-बाटसे चलते हैं, अनेकों शिष्योंको शिक्षा देते हैं, बहुतोंको भोजन और वस्त्र देकर बड़ा सम्मान पाते हैं तथा अनेकोंका दण्डवत्-प्रणाम पाते हैं। संसारी व्यक्तिका केवल एक चिह्न अर्थात् विवाहिता स्त्री न रहनेसे ही उनका धर्म ठीक रहता है और वे वैरागीके रूपमें पूजा पाते हैं। विवाहिता स्त्रीकी जगह कौपीन ही उनका प्रधान धर्म-चिह्न होता है। विषयासक्ति, मुकदमा, दूसरेके प्रति इर्ष्या-द्वेष और क्रोध, धन-संचय आदि कार्योंसे उनका वैराग्य-धर्म नष्ट नहीं होता। 'वर्णत्याग'—यह बात केवल मौखिक रूपमें ही व्यवहार करते हैं—आचरणमें नहीं। उनमेंसे अनेकों ब्राह्मण वर्णकी पूजा करते हैं तथा 'मैं ब्राह्मण संन्यासी हूँ' अथवा 'मैं संन्यासी होने पर भी ब्राह्मण हूँ'—ऐसा कहते हैं और वर्णका अभिमान नहीं त्याग कर पाते।

हमारे श्रीमद्गौड़ीय-सम्प्रदायमें भी उसी प्रकार वैराग्यका सम्मान है। प्रभुसन्तान, गोस्वामी, आचार्यगण गृहस्थ हैं, इसीलिये वैरागीगण बात-बातमें गोस्वामी-प्रभुओंको 'गृहस्थ' बतलाकर किंचित परिमाणमें निम्नाधिकारी समझते हैं; इसे गोस्वामी महाशयगण किसी प्रकार कठिनतासे सहन कर पाते हैं। इससे ऐसा लगता है कि 'वैष्णव' कहनेसे वैरागी का बोध होगा और 'आचार्य" कहनेसे गृहस्थ प्रभु-संतान, सम्प्रदायी वैष्णव-ब्राह्मण समझा जायेगा। जैसा भी हो, श्रीकृष्णचैतन्य-सम्प्रदायमें आजकल गृहस्थ वैष्णवकी अपेक्षा वैरागीका सम्मान अधिक है। वैरागीगण कौपीन धारण कर वैष्णव-सम्मानसे मठ या अखाड़ोंमें वास करते हैं। कतिपय निष्किंचन वैरागी वेश धारण कर किसी तीर्थमें या गाँव-गाँवमें अभ्यागतके रूपमें विचरण करते हैं। श्रीमद्गोपाल भट्ट द्वारा रचित 'संस्कार-दीपिका' नामक ग्रन्थमें बेघरवारवाले (अनिकेत) शुद्ध वैरागीके लक्षणमें अर्थात् कौपीन धारणका अधिकारी विचार-प्रसंगमें ऐसा लिखा गया है—

विजितषड्गुणो यस्तु दंभहिंसादिवर्जितः।
मैत्र-कारुण्यशीलश्च विगतेच्छो जितेन्द्रियः।।
गृहीतविष्णुदीक्षाको विष्णुभक्त्यादिसाधकः।

तस्मै देयं प्रयत्नेन याचिते सति साधुभिः।।
दंभाय भक्तिहीनाय शठाय परहिंसके।
न दातव्यं न दातव्यं दत्ते तु धर्मनाशनम्।।

जो भेक (वेश) दिया करते हैं वे सबसे पहले यह देखेंगे कि क्या कौपीन चाहनेवाले व्यक्तिने अपने सम्प्रदायकी विधिके अनुसार श्रीभगवन्मन्त्रके प्रति लोभ युक्त होकर तथा यथाविधि भक्तिका साधन किया है? उस साधनके फलस्वरूप उसने अपने षड्रिपुओंको जीतकर दंभ और हिंसा आदि का वर्जन किया है, मैत्रकारुण्य-स्वभाव सम्पन्न निष्काम और जितेन्द्रिय हुआ है। दांभिक, शुद्धभक्ति-हीन शठ और कपट व्यक्तिको वैराग्य चिह्न नहीं प्रदान करेंगे। वैसा करनेसे दाता और गृहीता दोनोंका धर्म नष्ट हो जायेगा। इस प्रकार अधिकारका विचार न करके वैराग्यका चिह्न धारण करनेसे वैराग्य नहीं होता, उससे तो केवल शठता और अहंकारकी ही वृद्धि होती है। अतएव वह व्यक्ति वैराग्यका अधिकारगत सम्मान और सेवा पानेके योग्य नहीं होता। हम बारंबार कहते हैं कि अयोग्य व्यक्तिको वैराग्यका चिह्न नहीं दिया जाना चाहिये। पक्षान्तरमें ग्रहीता भी यह देखेंगे कि वैराग्यदाता गुरुने भी उसी प्रकारकी योग्यता लाभकर उपयुक्त पात्रके निकट वैराग्य गृहण किया है या नहीं। यदि वैराग्यवेश देनेवाले गुरुने बिना योग्यता प्राप्त किये ही किसी अपात्रसे वैराग्यवेश लिया हो तो, ऐसा जान लेने पर वैसे गुरुसे वैराग्य नहीं लेना चाहिये। अन्यथा कल्याण नहीं होता।

इस विषयमें श्रीसननातन गोस्वामी, दास गोस्वामी आदिके जीवन-चरित्रसे शिक्षा लेकर कार्य करना आवश्यक है। श्रीस्वरूप-दामोदर गोस्वामीके चरित्र की भी विवेचना करनी चाहिए।

वैराग्यके सम्बन्धमें हमने जितने भी शास्त्र देखे या सुने हैं अथवा महापुरुषोंकी कृपासे जो कुछ जान या समझ सके हैं, उन सबका विचारकर हम अपने उपकारके लिये कुछ-कुछ लिखकर रखेंगे। दूसरोंको शिक्षा देनेका अधिकार या प्रवृत्ति हममें नहीं है। यदि यह लेख कभी किसीके हाथों पड़े और इसे पढ़कर उनके हृदयको इसकी किसी बातसे ठेस लगे तो, वे हमें इसके लिए क्षमा करेंगे। मूढ़, दीन व्यक्तिकी बातों पर सज्जन लोग क्रोध नहीं करते।

वैराग्य क्या है? विराग धर्मको ही शास्त्रों में वैराग्य कहा गया है। माया द्वारा बँधे हुए जीवोंकी सांसारिक विषयमें जो आसक्ति होती है, उसीको 'राग' कहते हैं। मायामुक्त जीव—सहज ही कृष्णके प्रति रागप्राप्त पुरुष हैं। कृष्णके प्रति राग उदित होकर जितना ही वह प्रबल होता जाता है, उतने ही परिमाणमें विषयाशक्ति भी नष्ट होती जाती है। सम्बन्ध ज्ञान उदित होने पर वैराग्य सहज ही उदित हो पड़ता है। वैराग्य कभी भी अभ्यासके द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता। श्रीमद्भगवद्गीताके दूसरे अध्यायके ५६ वें श्लोकमें देखिये—

विषया विनिर्वर्त्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्त्तते।।

तात्पर्य यह है कि मायामोहित जीवोंका कृष्णराग लुप्त होकर उसके स्थान पर विषयराग हुआ है। वह विषयराग केवल विषयोंका त्याग करने मात्रसे ही दूर नहीं होता; क्योंकि मन-ही-मन विषयतृष्णा प्रबल रहती है और पुनः पतन अवश्यम्भावी होता है। परन्तु जिस समय अप्राकृत कृष्णरसका आस्वादन मिल जाता है, उस समय वह सहज ही विषय-रस तृष्णाको हेय जान लेता है। ऐसी उपलब्धि होने पर ही स्वाभाविक रूपमें विषय-वैराग्य स्थिर होता है।

वैराग्य भक्तिका हेतु, अंग या चरम फल नहीं है। वैराग्य ज्ञानका भ्राता है। पद्मपुराणमें भक्तिदेवीने स्वयं इनके साथ अपने पारम्परिक

सम्बन्धको बतलाया है—

अहं भक्तिरिति ख्याता इम मे तनयौ मतौ।
ज्ञान-वैराग्य-नामानौ कालयोगेन जर्जरौ।।

पुनः देवर्षि नारद कहते हैं—

अंगीकृत त्वया यद्वै प्रसन्नोऽभूद्धरिस्तदा।
मुक्तिं दासी ददौ तुभ्यं ज्ञान-वैराग्यकाविमौ।।

(पद्मपुराण, उत्तर खण्ड, ६३ अ.)

इस प्रमाणसे यह स्पष्ट है कि भक्ति ही मूल तत्त्व है। मुक्ति तो भक्तिकी परिचारिका मात्र है। ज्ञान और वैराग्य—ये दोनों भक्तिकी संतान हैं। श्रीमद्भागवतमें भी (१/२/७) ऐसा ही सिद्धान्त-वचन पाया जाता है—

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानञ्च यदहैतुकम्।।

जो लोग भगवानके प्रति शुद्ध भक्तियोग करते हैं, उनके हृदयमें वैराग्य पैदा होता है। फलकी कामना से रहित आत्माके स्वतःसिद्ध बोधको ही ज्ञान कहते हैं। इसी ज्ञानको श्रीमहाप्रभुजी ने सम्बन्ध-ज्ञान कहा है। कृष्ण, जीव और इतर जगत्—इनमें जो यथार्थ सम्बन्ध है, उसे जान लेने पर ही सम्बन्ध-ज्ञान होता है। कृष्ण ही एकमात्र सेव्य वस्तु हैं, जीव उनका नित्य-सेवक है तथा इतर जगत अर्थात् प्राकृत जगत्—बद्ध जीवोंकी कृष्णके साथ लीलाकी भूमि है। इस जगतमें चिद्-अणु-स्वरूप जीव कृष्णसे विमुख होनेके कारण कैदीके रूपमें दण्ड भोगनेके लिये बद्ध है अर्थात् माया द्वारा बँधे पड़े हैं। परम कारुणिक कृष्ण कृपा करके जीवोंके साथ उनको उद्धार करनेके लिये अपनी अनन्त लीलाएँ प्रकाश कर रहे हैं। इन विषयोंका विशुद्ध ज्ञान ही सम्बन्ध-ज्ञान कहलाता है। साधुसंगमें जीवोंकी जिस भक्तिका उदय होता है, उसके द्वारा यह सम्बन्ध ज्ञान भी जीवके चित्त पर भक्तिके बलसे उदित होता है। भक्तिकी क्रियासे जीवकी इस प्राकृत जगत् के प्रति जो हेयबुद्धि या घृणा स्वाभाविक रूपसे पैदा होती है—उसीको 'वैराग्य' कहते हैं। यदि ज्ञानमें मोक्षकी वासना रहे तो ऐसे ज्ञानको भक्तिका विरोधी समझना चाहिए। इसी का नाम शुद्ध अद्वयज्ञान है। भक्ति ही शुद्धज्ञान और वैराग्यकी एकमात्र जननी है। अतएव श्रीमद्भागवतमें कहते हैं—

अविस्मृतिः कृष्णपदारविन्दयोः
क्षिणोत्यभद्राणि च शं तनोति।
सत्त्वस्व शुद्धिः परमात्मभक्तिं
ज्ञानञ्च विज्ञान-विरागयुक्तम्।।

जिस समय आत्मा शुद्धभक्तियोगके द्वारा परमात्माको अपनी सत्तामें देख पाती है, उस समय शुद्ध भक्तिकी क्रियामें ज्ञान और वैराग्यका साहचर्य परिलक्षित होता है। जैसे श्रीमद्भागवतमें कहते हैं—

तच्छ्रद्दधाना मुनयो ज्ञानवैराग्ययुक्तया।
पश्यन्त्यात्मनि चात्मानं भक्त्या श्रुतगृहीतया।। (क)

श्रीमद्भा० १/२/१२)

उसकी प्रक्रिया श्रीमद्भागवतमें (१/२/१५-२१) में बतलाई गई है—

यदनुध्यासिना युक्ताः कर्मग्रन्थिनिबन्धनम्।
छिन्दन्ति कोविदास्तस्य को न कुर्यात् कथारतिम्।
शृणवतां स्वकथा कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः।
हृद्यन्तःस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत् सताम्।।
नष्ट प्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवतसेवया।
भगवत्युत्तमश्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी।।
तदा रजस्तमोभावाः कामलोभादयश्च ये।
चेत एतैरनाविद्धं स्थितं सत्त्वे प्रसीदति।।
एवं प्रसन्न मनसो भगवद्भक्तियोगतः।
भगवत्तत्त्व विज्ञानं मुक्तसङ्गस्य जायते।।

(क) श्रद्धालु मुनिजन भागवत श्रवणसे प्राप्त ज्ञान-वैराग्ययुक्त भक्तिसे अपने हृदयमें उस परम तत्त्वरूप परमात्माका अनुभव करते हैं।

भिद्यते हृदयग्रन्थिच्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरे।। (ख)

भगवद्विषयिनी द्रव्यमयी रति ही आत्माका सहज धर्म है। विषय-राग द्वारा मोहित जीवमें वह रति अप्रकाशित होती है। साधुसंग होनेपर समस्त आत्माओंके आत्मा सर्वशक्तिमान्, मायाके अधीश्वर, सर्वेश्वर, सच्चिदाननद-विग्रहस्वरूप श्रीकृष्णके प्रति जब वह रति कियत्-परिमाणमें श्रद्धाके रूपमें उदित होती है, तब साधु-चरित्रके अनुसरण द्वारा अपना चरित्र पवित्र करनेकी इच्छा होती है। इसका भी क्रम श्रीगीतामें निरुपित हुआ है—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।।

अर्जुन! नाना प्रकारके यंत्रणाओंसे भरे इस भवसागरमें पतित करोड़ों-करोड़ों जीवोंमें से कोई विरले ही सत्सङ्ग रूप सुकृतिके बलसे मेरा भजन करते हैं। सर्वप्रथम उनमें से कोई-कोई आर्त्त होकर, कोई जिज्ञासु होकर, कोई अर्थार्थी होकर और कोई ज्ञानी होकर साधु संगमें मेरा तत्त्व जानकर उस आर्ति, जिज्ञासा, अर्थकामना और ज्ञानरूपी संसारिक कामनाओंका परित्याग कर शुद्ध भजन करते हैं। गजेन्द्र, शौनक, ध्रुव और शुकदेव आदि महात्मा इसके जाज्वल्यमान् उदाहरण हैं। संसारके क्लेशोंसे जर्जरित होकर ही वे आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी होते हैं अर्थात् शत्रु-भय और शरीरिक पीड़ा आदिसे आर्त्त; सांसारिक दुःखोंसे कैसे उद्धार हुआ जा सकता है—इस अनुसंधानसे जिज्ञासा; मेरा अभीष्ट कैसे पूर्ण होगा—ऐसी कामनासे अर्थार्थी एवं संसारसे किस प्रकार मुक्ति मिलेगी—इस भावनासे दर्शन आदि के अनुशीलनसे 'मैं ब्रह्म हूँ' अथवा 'ईश्वर आदि कुछ नहीं है, हमारी मृत्युसे ही सब कुछ प्राप्त हो जायेगा'—ऐसा सोचकर ज्ञानाभिमानी हो पड़ते हैं। ज्ञानियोंमें से जो मेरा तत्त्व और सम्बन्ध जानकर यथार्थ ज्ञानी होते हैं, वे ही उक्त चार प्रकारकी श्रेणियों में मेरे सर्वाधिक प्रिय होते हैं। अतएव वे सभी साधुकी कृपासे भजन-पद्धति जानकर श्रद्धापूर्वक मेरा भजन करते हैं।

पुनः श्रीमद्भागवत (११/२०/२८) में कहते हैं

जातश्रद्धो मत्कथासु निर्विण्णःसर्वकर्मसु।
वेद दुःखात्माकान् कामान् परित्यागेऽप्यनीश्वरः।।
ततो भजेत मां प्रीतः श्रद्धालुर्दृढनिश्चयः।
जुषमाणश्च तान् कामान् दुःखोदकर्शिच गर्हयन्।।

अर्थात् जो साधक समस्त कर्मोंसे विरक्त

(ख) कर्मोंकी गाँठ बड़ी कड़ी है। विचारवान् पुरुष भगवत्-चिन्तन रूपी तलवार से उस गाँठको काट डालते हैं। तब भला, ऐसा कौन मनुष्य होगा, जो भगवान्‌की लीला कथामें प्रेम न करे।

भगवान श्रीकृष्णके यशका श्रवण और कीर्तन—दोनों पवित्र करने वाले हैं। वे अपनी कथा सुनने वालोंके हृदयमें आकर स्थित हो जाते हैं और उनकी अशुभ वासनाओंको नष्ट कर देते हैं, क्योंकि वे सन्तोंके नित्य सुहृद हैं।

जब श्रीमद्भागवत अथवा भगवद्भक्तोंके सेवनसे अशुभ वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं, तब पवित्र-कीर्ति भगवान्‌के प्रति स्थायी भक्तिकी (नैष्ठिकी भक्ति) प्राप्ति होती है, तब रजोगुण और तमोगुणके भाव—काम और लोभ आदि शान्त हो जाते हैं और चित्त इनसे दूर होकर सत्त्वगुणमें स्थित और नियुक्त हो जाता है। इस प्रकार भगवान्‌की नैष्ठिकी भक्तिसे जब संसारकी समस्त आसक्तियाँ मिट जाती हैं, हृदय आनन्दसे भर जाता है, तब भगवानके तत्त्वका अनुभव अपने आप हो जाता है। हृदयमें सर्वात्मस्वरूप भगवानका साक्षात्कार होते ही हृदयकी ग्रन्थि टूट जाती है, सारे संदेह मिट जाते हैं और कर्म-बन्धन क्षीण हो जाता है।

हो गया हो, उनमें दुःख-बुद्धि रखता हो, मेरी लीला कथाके प्रति श्रद्धालु हो और यह भी जानता हो कि सभी भोग और भोगवासनाएँ दुःखरूप हैं, किन्तु इतना सब जानकर भी जो उनके परित्यागमें समर्थ न हो, उसे चाहिए कि उन भोगोंको तो भोग ले, परन्तु उन्हें सच्चे हृदयसे दुःखजनक समझे और मन-ही-मन उसकी निंदा करे तथा उसे अपना दुर्भाग्य ही समझे। साथ ही इस दुविधाकी स्थितिसे छुटकारा पानेके लिये श्रद्धा, दृढ़-निश्चय और प्रेमसे मेरा भजन करे।

इस प्रकार कृष्ण भजन आरम्भ करने पर भी ऐसे भजन करने वाले विरले ही है। इसलिये श्रीरूपशिक्षा में श्रीमन्महाप्रभुजी ने कहा है—

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान जीव।
गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्ति लता बीज।।

गुरु-कृष्णकी कृपासे किसी भाग्यवान जीवकी श्रीकृष्ण, श्रीकृष्णनाम, कृष्ण-गुण और कृष्ण-कथाओं के प्रति श्रद्धा होने पर क्रमशः गुरूपदेशके द्वारा श्रीकृष्णकी लीलाकथाओंका श्रवण, कीर्तन, और स्मरण करता है। इसके द्वारा वह अपने कर्मो की गाँठको काटनेमें समर्थ होता है। यहाँ एक बात स्मरण रखनी होगी कि कपटता और भोग तथा मोक्षकी वासनाओंका सम्पूर्ण रूपसे त्याग किये बिना आत्म धर्मका विकास नहीं हो सकता। यदि इस बातको भूल गये तो सारा परिश्रम विफल हो जायेगा। साधु सज्जनोंके चित्तरूपी नवनीतको चुरा लेनेवाले कृष्ण अपनी लीला-कथाओंकी किसीके द्वारा निष्कपट आलोचना की जाती हुई देखकर उस व्यक्तिके निष्कपट चित्तमें प्रवेशकर हृदयमें पहुँच जाते हैं तथा उसकी सारी मलीनताका ध्वंस कर देते हैं। नित्य-भगवत्सेवा द्वारा हृदयकी मलीनता नष्ट प्राय होनेपर कृष्णके प्रति नैष्ठिकी भक्तिका उदय होता है। समस्त प्रकारकी अभद्रताओंमें अर्थात् मलीनतामें विषयासक्ति ही सर्वप्रधान है। कृष्णसे इतर विषयोंमें जो आसक्ति होती है, वह क्रमशः क्षीण होती जाती है, यही भक्तिजनित वैराग्य है। वैराग्य पैदा करनेके लिये पृथक् रूपमें अभ्यास अपने-आप दूर हो जाते हैं और सदभ्यास प्रबल हो पड़ते हैं। भक्ति जितनी ही अधिक बढ़ती है, स्वाभाविक रूपमें वैराग्य भी उसी परिमाणमें अपने आप बढ़ता जाता है और सम्बन्ध-ज्ञान उसी परिमाणमें दृढ़ होता जाता है। अतएव रजस्तमो भाव और काम-लोभ आदि छः रितु अब साधकके चित्त को आकर्षण करनेमें समर्थ नहीं होते। जिस परिमाणमें रजस्तम-काम-लोभ आदिका आवरण चित्तके ऊपरसे हटता जाता है उसीके अनुरूप चित्तकी सत्त्वमें स्थिति होती जाती है और वह उतनी ही अधिक प्रसन्नता को प्राप्त होता है। इस प्रकार प्रसन्नचित्त होने पर ही भगवद्भक्ति योगके प्रभावसे भगवत्-तत्त्व विज्ञान रूप भावभक्ति प्रकाशित होती है। ऐसी अवस्थामें ही जीव वैराग्य चिह्न आदि धारण करनेका अधिकारी होता है। क्योंकि उस समय संसाररूपी गाँठ अपने आप खुल जाती है, समस्त प्रकारके संशय दूर हो जाते हैं, और कर्म-बन्धन शिथिल हो जाता है। क्योंकि उस समय समस्त आत्माओंके आत्मा कृष्णको आत्म-तत्त्वमें आविर्भूत होते देखा जाता है।

जब तक क्रम-विकाश नहीं अवलम्बित होता, तब तक कुछ नहीं हुआ है—ऐसा कहा जा सकता है। केवल मात्र भेक (वैराग्य वेश) ग्रहण करके ही 'हमारा आत्म-विकाश-क्रम उदित हो गया है'—ऐसा समझनेसे आत्म वंचनाके अतिरिक्त और कुछ भी लाभ नहीं होता। साधकावस्थामें हमें प्रतिदिन सतर्क रहनेके सम्बन्धमें श्रीमद्भागवतमें एक पद्धति बतलायी गयी है—

भक्तिः परेशानुभवो विरक्ति-
रन्य त्रचैष त्रिक एक कालः।
प्रपद्यमानस्य यथाश्नतः स्यु-
स्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम्।।

हमें प्रतिदिन यह देखना चाहिए हमारी

श्रवण-कीर्तन आदि भक्ति जिस परिमाणमें क्रमशः बढ़ रही है, उसी परिमाणमें हमारा वैराग्य और सम्बन्ध-ज्ञान समृद्ध हो रहा है या नहीं। यदि न हो, तो ऐसा समझना चाहिए कि हमारी भक्ति चेष्टामें अभी कपटता है। और उस कपटता को बड़े प्रयत्नसे दूर करना होगा। इसीका नाम क्रमोर्द्ध गमन है। ❑

(क्रमशः)

संत [सज्जन] के लक्षण

—ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्‌भक्ति सिद्धान्त सरस्वती।

मित्रता—२३

प्राणीमात्रके बन्धु या हितैषीको धर्मात्मा या मित्र कहते हैं। सज्जन पुरुष सबके मित्र होते हैं। ये तीन प्रकारके होते हैं—उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ। जो भगवानकी पूजा करते हैं, परन्तु भगवद्‌भक्तोंके प्रति उदासीन रहते हैं, वे कनिष्ठ हैं। जो भगवानकी पूजा दृढ़ श्रद्धाके साथ करते हैं और साथ ही भगवद्‌भक्तोंके प्रति मित्रताका व्यवहार रखते हैं, वे मध्यम हैं एवं जो चेतन-अचेतन समस्त पदार्थोंमें सर्वत्र ही भगवत्-भावका दर्शन करते हैं, वे उत्तम कोटिके सज्जन हैं। मध्यम अधिकारमें भगवान, भक्त और भक्तिके विद्वेषी अभक्तोंकी उपेक्षा करना कर्त्तव्य होता है, परन्तु उत्तम अधिकारमें विद्वेषियोंके प्रति उपेक्षा धर्म नहीं है। कनिष्ठ अधिकारमें भक्त-अभक्त पहचाननेका विवेक नहीं होता; मध्यम अधिकारमें उसका विवेक होता और उत्तम अधिकारमें अभक्त भी भक्त होता हैं।

सज्जन सम्पूर्ण जगतके कल्याणकारी हैं

कनिष्ठाधिकारी सज्जन कौन भक्त है, कौन अभक्त है, इसका विवेचन करनेमें असमर्थ होता है। इसलिये वह किसी भी व्यक्तिका विरोध नहीं करता, सबके साथ साधारणतः समानरूपमें भद्र व्यवहार करनेकी कोशिश करता है। परन्तु अधिकारकी उन्नतिके साथ-साथ ज्यों ही वह मध्यमाधिकारमें उपनीत होता है, उसे भक्त-अभक्तका विवेक हो जाता है। ऐसी दशामें वह दोनोंके प्रति एक सा व्यवहार न कर भक्तके प्रति मित्रता और अभक्तके प्रति उदासीनताका भाव अवलम्बन करता है। परन्तु गूढ़ रूपसे विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी वह उदासीनता भी अभक्तोंके प्रति शत्रुता अथवा निर्दयताका व्यवहार नहीं, बल्कि मित्रताका ही व्यवहार है। जिस प्रकार एक चिकित्सक सड़े हुए घावकी निष्ठुरतापूर्वक चीर-फाड़ द्वारा चिकित्सा कर रोगीके कल्याणकी ही कामना करता है, उसी प्रकार मध्यमाधिकारी सज्जन पुरुष असदाचारी अभक्तके प्रति उदासीन रह कर—उसका दुःसंग परित्याग कर उसके प्रति मित्रताका ही व्यवहार करता है। मायावादी, कर्मी और अन्याभिलाषी व्यवहारको समझनेमें असमर्थ होनेके कारण उसे मित्रतापूर्ण व्यवहार होनेमें संदेह करते हैं। भक्तजन अभक्तोंसे उदासीन रहकर एवं भौतिक जड़ज्ञानमें मत्त स्मार्त्तोंकी स्मार्त क्रियाओंका परित्यागकर जो पारमार्थिक-स्मृतिका अनुगमन करते हैं, उससे समाजका प्रचुर कल्याण होता है। सज्जनवृन्द प्रत्येक अधिकारमें सम्पूर्ण जगतका यथार्थ कल्याण करते हैं, दूसरे नहीं; इसीलिये सज्जन पुरुषोंको छोड़कर अन्यत्र कहीं भी मित्रता सम्भव नहीं है।

शिक्षक बालकोंके हितके लिये, उसे सुशिक्षा प्रदान करनेके लिये क्रोध प्रकाश करते हैं, कभी

कभी उसे मारते-फटकारते भी हैं। माँ अपने बच्चोंको कभी-कभी मारती-पीटती और धमकाती है; परन्तु जिस प्रकार शिक्षक और माताके ऊपरसे निष्ठुर जैसे लगनेवाले व्यवहारोंके भीतर सम्पूर्ण रूपसे मित्रता अर्थात् कल्याणका ही भाव ओत-प्रोत रहता है, उसी प्रकार सज्जन पुरुषोंके हृदयमें प्राणीमात्रके प्रति मित्रताका भाव ही ओत-प्रोत रहता है। उसकी प्रत्येक चेष्टा, उसके प्रत्येक अनुष्ठान एवं प्रत्येक आचरणके अन्तरालमें अनन्त कल्याणकी भावना छिपी रहती है, जिसे साधारण बुद्धिवाले मनुष्य समझ नहीं पाते। इसीलिये वे सज्जन पुरुषोंकी मित्रताको सन्देहकी दृष्टिसे देखते हैं।

सज्जन पुरुष जगत्के यथार्थ और नित्य-बन्धु हैं। तात्कालिक मित्र नित्य-बन्धु नहीं कहे जा सकते हैं। इसका कारण यह है कि सज्जन पुरुष अर्थात् संतजन जीवोंके ऐहिक और पारलौकिक सब तरहके कल्याणोंके लिये प्रयत्नशील रहते हैं, परन्तु तात्कालिक संसारी मित्रों द्वारा यह सम्भव नहीं। जो मायिक शरीर और मनरूप विरूप वृत्तिको दूर कर जीवको उसके स्वरूपमें प्रतिष्ठित करा देते हैं, वे सज्जन श्रीगुरुवर्ग ही जीवोंका उद्धार करते हैं; मित्रताका यही चरमोत्कर्ष है। ❑

शिव तत्त्व

—श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

आज शिवरात्रि है। इस दिन भगवान् शिवका आविर्भाव हुआ था। भारतवर्षमें अधिकांश लोग विशेषकर शिवभक्त इस पर्वको समारोहपूर्वक मनाते हैं। यदि शिव-तत्त्व और उनकी महिमाको यथार्थ रूपमें जानकर उपासनाकी जाए, तो वह उपासना सर्वाङ्ग-सुन्दर रूपमें सम्पन्न होगी और अपराध भी घटित नहीं होंगे। किन्तु हमारे समाजमें यह देखा जाता है कि लोग देव-देवियोंकी उपासना उनका तत्त्व एवं महिमा जाने बिना एक सम्पूर्ण अन्धविश्वास पूर्वक करते हैं। इस प्रकारकी अज्ञानतामें की गई उपासनासे यथार्थ फल प्राप्त नहीं होता और अपराध होनेकी भी सम्भावना रहती है।

शिवरात्रिके पर्वको अधिकांशतः लोग तामसिक रूपसे मनाते हैं। वे सोचते हैं कि शिवजी गाँजा, भाँग आदि नशीले द्रव्योंका सेवन करते हैं, हम भी उसी प्रकार मादक द्रव्योंका सेवनकर उनकी उपासना करेंगे। साधारण मनुष्य उनकी भक्तिकी आड़में अनेक प्रकारके शास्त्र-विरुद्ध कार्य करते हैं—जैसे गाँजा, भाँग आदि तामसिक वस्तुओंका सेवन। इस प्रकारकी उपासनाको प्रामाणिक मानकर वे अपना अहित करते हैं और अन्य लोगोंके लिए भी गलत मार्ग प्रशस्त करते हैं।

शिव शब्दका अर्थ है—मंगलमय। वे समस्त प्राणियोंके लिए ही मङ्गलस्वरूप हैं। शिवठाकुर तमोगुणके अधिष्ठातृ देवता हैं। परन्तु वे स्वयं उससे अतीत हैं। समस्त तामसिक वस्तुएँ उनके अधीन हैं इसलिए वे हमारी तरह उन वस्तुओं द्वारा अभिभूत नहीं होते। शिवजीने समुद्र मन्थनके समय विषको पानकर इस जगतका उपकार किया अन्यथा उस विषसे समस्त जगत ध्वंस हो जाता। विषको उन्होंने अपने कण्ठ तक ही रखा, नीचे अपने हृदयमें नहीं जाने दिया, जहाँ उनके ईष्टदेवका वास है। इस प्रकार कण्ठमें विष धारण करनेसे उनका कण्ठ नीला पड़ गया। इसलिए उनका एक नाम नीलकण्ठ महादेव भी है।

शास्त्रोंमें कहा गया है—One man's food another's poison. जो एक व्यक्तिके लिए

आहार है वह अन्य व्यक्तिके लिए विष हो सकता है। उसी प्रकार जो कार्य किसी व्यक्तिके अधिकारानुसार भक्ति है वही कार्य अनाधिकारीके लिए हानिकारक भी हो सकता है। शिवठाकुरने समुद्र मन्थनका विष पान किया एवं तमोगुणका अधिष्ठातृत्व स्वीकार किया। यह कार्य उनके लिए अपने ईष्टदेवकी भक्ति है, किन्तु यदि कोई व्यक्ति शिवजीका भक्त कहलाकर ऐसे तामसिक कार्य करता है, तो यह उसकी अभक्ति और नाशका कारण ही होगा।

श्रीमद्भागवतमें (१०/३३/३१) भी कहा गया है—

नैतत् समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः।
विनश्यत्याचरन् मौढ्याद्यथारुद्रोऽब्धिजं विषम्।।

शिवत्व प्राप्त किए बिना जो विष पान करता है वह निश्चित रूपमें नाशको प्राप्त होता है।

अनेक लोगोंको श्रीशिवके सम्बन्धमें यथार्थ अभिज्ञता न होनेके कारण वे उन्हें स्वतन्त्र ईश्वर मानते हैं। हम यहाँ श्रीशिव-तत्त्वका शास्त्रीय विचार प्रस्तुत कर रहे हैं:—

शिव तत्त्वका यथार्थ विचार (ईश्वर-तत्त्व और जीव-तत्त्वका पार्थक्य)

चैतन्य तत्त्व दो प्रकारके हैं—स्वतन्त्र एवं परतन्त्र। इनमें प्रथम ईश्वर नामक सर्वव्यापक स्वतन्त्र विभुचैतन्य हैं एवं द्वितीय जीव नामक ईश्वराधीन देहमात्रव्यापी अस्वतन्त्र अणुचैतन्य है। पुनः ईश्वर-चैतन्यके दो प्रकारके भेद हैं—(१) मायास्पर्श रहित (अर्थात तुरीयतत्त्व) एवं (२) लीलावशतः स्वेच्छापूर्वक मायास्पर्श-स्वीकारकारी तत्त्व। इनमें प्रथम श्रीनारायणादि नामसे परिचित मायास्पर्श रहित ईश्वर विभुचैतन्य तत्त्व हैं—इसलिए शास्त्र (श्रीमद्भागवत १०/८८/५) में कहा है—श्रीहरि प्रकृतिसे अतीत एवं साक्षाद गुणातीत पुरुष हैं (तुरीय कृष्णेर नाहि मायार सम्बन्ध। चै.च.आ. २/५२)। द्वितीय—शिवादि नामसे परिचित मायास्पर्श स्वीकारकारी ईश्वर चैतन्य है। उनके सम्बन्धमें शास्त्र (श्रीमद्भागवत १०/८८/३) में उल्लिखत है—शिव निरन्तर मायाके साथ सम्बन्धयुक्त हैं और गुण द्वारा संवृत्त होकर त्रिगुणमय रूपमें अवस्थित हैं (निज अंशे-कलाय कृष्ण तमोगुण अंगीकारी। संहारार्थे मायासंगे रुद्र-रूप धरि—चै.च.म. २०/३०८)

श्रीब्रह्मसंहितमें कहा गया है—

क्षीरं यथा दधि विकारविशेषयोगात्
सञ्जायते न हि ततः पृथगस्ति हेतोः।
यः शम्भुतामपि तथा समुपैति कार्यात्
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।
(ब्रह्मसंहिता ४५)

दूध जैसे विकार विशेषके द्वारा दही हो जाता है, फिर भी वह दधि अपने उपादान कारण रूप दूधसे कोई पृथग् तत्त्व नहीं है, वैसे ही जो कार्यवशतः सृष्टि संहारके लिए शिवत्त्वको प्राप्त होते हैं या शिव बनते हैं, ऐसे आदि पुरुष गोविन्दका मैं भजन करता हूँ।।

"सतत्वतेऽन्यथा बुद्धिर्विकार ईत्युदाहृतः" (जै.ध. धृत-सदानन्दकृत वेदान्तसार)—एक सत्यतत्त्वसे अन्य एक सत्यतत्त्वका उदय होने पर उसमें अन्य वस्तुकी जो बुद्धि होती है, उसे विकार अर्थात् परिणाम कहते हैं। ब्रह्मसंहिताके उपरोक्त श्लोकको श्रीलजीव गोस्वामीकृत टीकामें देखा जाता है—दृष्टान्त सम्बन्धी कारणरूप गोविन्दके अविकारी हेतु विकारका जो दृष्टान्त है—कार्यकारण-उसे केवल भावमात्र ही जानना होगा। इस प्रसंगमें श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने कहा है—

शम्भुकी ईश्वरता गोविन्दकी ईश्वरताके अधीन है। इसलिए वे वस्तुतः श्रीगोविन्दसे अभेद तत्त्व हैं। अभेद इसलिए कहा जाता है कि दूध जैसे विकारके कारण दही हो जाता है, वैसे ही विकार विशेषके द्वारा शिवतत्त्व, श्रीगोविन्दसे पृथक् ईश्वर स्वरूप प्राप्त होकर भी परतन्त्र है। इस स्वरूपकी कोई स्वतन्त्रता

नहीं होती।

मायाका तमोगुण, तटस्था शक्तिका स्वल्पता गुण, और चिच्छक्तिका स्वल्प ह्लदिनी मिश्रित सम्विद गुण—ये समस्त मिलित होकर जो विकारविशेष तत्त्व प्रकाशित होता है, वह शिव-तत्त्व है।

इसी स्वरूपको स्वांशभावाभास ईश्वर ज्योतिर्य शम्भुलिङ्ग अर्थात् 'सदाशिव' तत्त्व कहा जाता है एवं इसीसे ही रुद्रदेव प्रकट होते हैं। सृष्टि कार्यके लिए द्रव्यमय उपादान, स्थिति कार्यके लिए किन्हीं-किन्हीं असुरोंका विनाश एवं संहार कार्यके लिए समस्त क्रिया सम्पादनकारी स्वांश भाव सम्पन्न विभिन्नांश रूप शम्भु तत्त्व है। भगवान् गोविन्द ही गुणावतारके रूपमें—शम्भु तत्त्व होकर प्रकट होते हैं। इस शम्भुको काल पुरुष भी कहा जाता है।

वामाङ्गादसृजद् विष्णुं दक्षिणाङ्गात् प्रजापतिम्।
ज्योतिर्लिङ्गमयं शम्भुं कूर्चदेशादवासृजत्।।

(ब्रह्म संहिता १५)

उस महाविष्णुने अपने बाँये अङ्गसे विष्णु, दाहिने अङ्गसे प्रजापति और कूर्चदेश अर्थात् दोनों भौंओंके मध्यसे ज्योतिर्लिङ्गमय शम्भुको सृजन किया।

ब्रह्म संहिताके उपरोक्त विचारको साधारण शब्दोंमें इस प्रकार समझा जा सकता है—भगवान कृष्णके प्रथम प्रकाश मूल-संकर्षण हैं, उन्हींसे चतुर्भुज संकर्षण प्रकट हुए और उनसे कारणाब्धिशायी विष्णु, जिसे प्रथम पुरुष अवतार कहते हैं, प्रकट होते हैं। इस प्रकार जब भगवानको प्रपंचकी रचनाकी इच्छा होती है, तब उनके प्रकाशके अंशके अंश महाविष्णु अर्थात् कारणाब्धिशायी विष्णुसे एक तेज प्रकट होता है। यह तेजोमयी ज्योति क्या है? सः इक्षतिः—कामबीज या उनकी इच्छा। महाविष्णुकी इच्छा शक्ति ही ज्योति स्वरूप हो जाती है। वह ज्योति ही शम्भु है, जिसे ज्योतिर्मय लिङ्ग कहते हैं। यह ज्योति भगवान कारणाब्धिशायीके मस्तकसे निकलती है, अतः यह शुद्ध और सनातन है। इसीका एक आभास शिव लिंगके रूपमें प्रकट होता है। यह लिंग जब रमादेवीकी छाया रूपी मायासे (जो योनिके रूपमें प्रकट होती है) मिलता है, तो इस स्थूल जगतकी सृष्टि होती है।

पुरुषकी प्रकृति दो प्रकारकी है; निमित्त व उपादान। भगवान्‌की इच्छा निमित्त शक्ति है, इसे कुछ उदाहरणों पृथक्‌से समझेंगे।

मैंने लाठी से साँप मारा। यहाँ मैं निमित्त हूँ तथा लाठी उपादान। इसी प्रकार कुम्हारने चाक मिट्टीसे बर्तन बनाए। कुम्हार निमित्त और चाक मिट्टी आदि उपादान हैं।

यह माया जो योनिके रूपमें प्रकट होती है, वह भगवानकी निमित्त प्रकृति है और उपादान शम्भु लिंग है, इन दोनोंके मिलनसे ही सृष्टि होती है।

विष्णु ही परम उपास्य हैं

विष्णु और शिवमें अभेद होनेपर भी दोनों ही परम उपास्यके रूपमें निरूपित नहीं हुए हैं। निर्गुणत्व एवं सगुणत्व विचार द्वारा ही इसका निर्णय किया गया है। श्रीमद्भागवत (१/२/२३) श्लोकको श्रील चक्रवर्तीपाद कृत 'सारार्थदर्शिनी' टीकामें इसका सुन्दर समाञ्जस्य देखा जाता है-संक्षेपमें—एक आदि पुरुष श्रीहरि सत्व, रज, एवं तम प्रकृतिके इन तीन गुणोंसे युक्त होकर यथाक्रमसे विष्णु, ब्रह्मा एवं रुद्र—ये तीन नाम धारण करते हैं। किन्तु उनमेंसे केवल विष्णु ही भजनीय अर्थात उपास्य हैं। यहाँ विष्णु सत्त्वगुणके नियामक होनेके कारण सत्त्वके समीपमें ही अवस्थान मात्र करते हैं—उससे युक्त नहीं होते हैं। इस प्रकार अपने अवस्थान द्वारा ही विश्वके पालनरूप धर्मको उदासीनकी भाँति करते हैं। इसके द्वारा उनके निर्गुणत्वकी हानि नहीं होती है। किन्तु रज एवं तमोगुण संयोग होनेके कारण ब्रह्मा एवं शिवका सगुणत्व

निरुपित होता है। इनमेंसे भी शिवमें जीवत्वका अभाव है, वे गुण युक्त ईश्वर हैं। किन्तु ब्रह्मा वैसे नहीं हैं। वे जीव ही हैं। शम्भुमें जीवोंके पञ्चाश गुण पूर्णमात्रामें है और जीवोंके लिए अप्राप्त और भी पाँच महागुण आंशिक रूपमें उनमें विराजमान हैं। अतएव शम्भुको जीव नहीं कहा जा सकता है।

यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है। विचार तीन प्रकारके होते हैंः—

१. तत्त्वतः विचार

२. ऐश्वर्य मूलक विचार

३. माधुर्य विचार

१. तत्त्व विचारके अनुसार सदाशिव भगवान कृष्णके अंशके अंशकी कला हैं। रुद्र उनकी छाया है।

२. ऐश्वर्य मूलक विचारके अन्तर्गत भगवान कृष्ण शंकरजीके परम आराध्य तत्त्व हैं।

३. माधुर्यमय विचारके अनुसार कृष्णका ऐश्वर्य छिप जाता है और वे नरवत लीला करते हैं। कृष्णकी इन माधुर्यमयी लीलाके अन्तर्गत शंकरजी कभी-कभी कृष्णके आराध्य बन जाते हैं। कहीं कहीं पुराणोंमें ऐसा वर्णन आता है कि श्रीकृष्णने पुत्र प्राप्तिकी इच्छासे शिवकी आराधना की। यह लीला भगवानकी माधुर्यमयी लीलाके अन्तर्गत आती है।

शिव ईश्वर शक्ति द्वारा आविष्ट जीव—

कभी-कभी ईश्वरशक्ति आविष्ट जीव भी ब्रह्माकी भाँति शिवत्व लाभ करता है। इसलिए शास्त्रोंमें वर्णन है—जो व्यक्ति ब्रह्मा रुद्रादि देवताओंको नारायणके समान मानता है, वह पाषण्डी है (ह.भ.वि १/११७) ब्रह्मा-साहचर्या—यहाँ रुद्रको ब्रह्माके समान धर्माचरण करने वाला माननेसे ही संगति होगी, क्योंकि दोनों ही जीवकोटिके अन्तर्गत हैं। सौ जन्मों तक पूर्णरूपसे वर्णाश्रम धर्म पालन करनेसे ब्रह्मत्व प्राप्त होता है और इस प्रकार सौ जन्म तक सुष्ठ रूपसे ब्रह्मत्व पालन करनेसे रुद्रपद प्राप्त होता है।

विवाद अपराध जनक है

इस प्रकार परिपूर्ण भावसे आलोचना न करने पर—विष्णु ही ईश्वर हैं, शिव नहीं। या शिव ही ईश्वर हैं विष्णु नहीं। अथवा मैं श्रीविष्णुका अनन्य भक्त हूँ इसलिए शिवके दर्शन नहीं करूँगा या मैं शिवका अनन्य भक्त हूँ, विष्णुके दर्शन नहीं करूँगा—इस प्रकारके विवादग्रस्त मतिवाले लोगोंका अपराध होता है। यदि ऐसे लोग उक्त तात्पर्यकी आलोचनामें अभिज्ञ साधुओं द्वारा प्रबोधित होते हैं, तब वे शिवको भगवदस्वरूपसे अभिन्न समझ पाते हैं और तभी नाम संकीर्तन द्वारा उनका अपराध क्षय होता है। ❑ (क्रमशः)

महाभागवतवर वृत्रासुर

सर्वप्रथम अंगिराने अपना परिचय देकर महर्षि नारदका भी पूर्ण परिचय दिया और कहने लगे"—पुत्र शोकसे ज्ञानान्धकारमें डूब रहे तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करनेके लिए ही हम यहाँ आये हैं। जो व्यक्ति भगवान् और ब्राह्मणोंका भक्त है, उसे किसी भी अवस्थामें शोक नहीं करना चाहिए। मैं जिस समय पहले तुम्हारे पास आया था, उसी समय तुम्हें ज्ञानोपदेश करता, पर उस समय तुम्हारे हृदयमें पुत्रकी उत्कट लालसा थी। अतएव तुम्हें ज्ञान न देकर उस समय मैंने पुत्र प्रदान किया। अब तुम स्वयं यह अनुभव कर रहे हो कि पुत्रवानोंको कितना शोक होता है।

एवं दारा गृहा रायो विविधैश्वर्यसम्पदः।।
शब्दादयश्च विषयाश्चला राज्यविभूतयः।
मही राज्यं बलं कोषो भृत्यामात्यव सुहृज्जनाः।।

सर्वेऽपि शूरसेनेमे शोकमोहभयार्तिदाः।
गन्धर्वनगरप्रख्याः स्वप्नमायामनोरथाः।।

(भा० ६/१५/२१,२२,२३)

यही स्थिति स्त्री, घर, धन, विविध प्रकारके ऐश्वर्य, सम्पत्तियाँ शब्द-रूप-रस आदि विषय, राज्यवैभव, पृथ्वी, राज्य, सेना, कोष, सेवक, मंत्री, सगे-सम्बन्धी, इष्ट-मित्र सभीकी है। क्योंकि ये सभी अनित्य पदार्थ हैं। शूरसेन! अतएव ये सभी शोक, मोह, भय और दुःखके कारण हैं, मनसे कल्पित हैं, एवं गन्धर्वोंकी तरह ये एक क्षण दीखनेपर भी दूसरे क्षण लुप्त हो जाते हैं। स्वप्न, माया एवं संकल्पकी तरह ये क्षणस्थायी हैं।

जो व्यक्ति कर्मवासनाओंसे प्रेरित होकर विषयोंका चिन्तन करते हैं, वे ही मन द्वारा अनेक प्रकारके कर्मोंकी सृष्टि करते रहते हैं। जीवात्माका यह देह, पञ्च महाभूत, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय और पञ्च कर्मेन्द्रियोंका मिलित रूप है। यह जीवको अनेक प्रकारके क्लेश और सन्तापको देनेवाला है। इसलिए तुम अपने मनको विषयोंमें भटकनेसे रोककर शान्त करो एवं उस मनके द्वारा अपने वास्तविक स्वरूपका विचार करो एवं भगवदितर वस्तुओंमें नित्यत्व बुद्धि परित्याग कर स्थित हो जाओ।"

फिर नारदजीने कहा"—हे महाभाग! तुम एकाग्रचित्त होकर मुझसे भगवान् संकर्षणका मंत्र ग्रहण करो जिसके स्मरणसे तुम्हें सात रातोंमें ही भगवान् संकर्षणके दर्शन प्राप्त होंगे।

यत्पादमूलमुपसृत्य नरेन्द्र पूर्वे
शर्वादयो भ्रममिमं द्वितयं विसृज्य।
सद्यस्तदीयमतुलानधिकं महित्वं
प्रापुर्भवानपि परं न चिरादुपैति।।

(भा० ६/१५/२८)

प्राचीनकालमें भगवान् शंकर आदिने श्रीसंकर्षणदेवके ही चरणकमलोंका आश्रय लिया था। इसीसे उन्होंने द्वैतभ्रमका परित्याग कर दिया था और उनकी उस महिमाको प्राप्त हुए जिससे बढ़कर किसीका होना तो दूर रहा, समान भी कोई प्राप्त नहीं कर सका। तुम भी बहुत शीघ्र ही भगवान्के उसी परमपदको प्राप्त कर लोगे।"

अनन्तर प्रस्थान किए जीवात्माको बुलाकर देवर्षि नारदजीने कहा"—ये तुम्हारे माता-पिता, सुहृत-सम्बन्धी तुम्हारे वियोगमें अत्यन्त शोकाकुल हो रहे हैं। इसलिए तुम अपने शरीरमें आ जाओ और शेष आयु अपने सगे-सम्बन्धियोंके साथ व्यतीत करो और पिता द्वारा प्रदत्त भोगोंका भोग एवं राज्यसिंहासन ग्रहण करो।"

तब जीवात्मा शरीरमें प्रवेश कर कहने लगा"—देवर्षिजी! मैं अपने कर्मोंके अनुसार देवता-मनुष्य, पशु-पक्षी आदि अनेक योनियोंमें न जाने कितने जन्मोंसे भटक रहा हूँ। उनमें से ये लोग कितने जन्मोंमें मेरे माता-पिता हुए? विभिन्न जन्मोंमें सभी एक दूसरेके भाई, बन्धु-नाती, शत्रु-मित्र, उदासीन, मध्यस्थ और द्वेषी होते रहते हैं।

"जैसे सुवर्ण आदि क्रय-विक्रयकी वस्तुएँ एक व्यापारीसे दूसरे व्यापारीके पास जाती रहती हैं, उसी प्रकार जीव भी विभिन्न योनियोंमें उत्पन्न होता रहता है। मनुष्यकी अपेक्षा अधिक दिन ठहरनेवाली स्वर्ण आदि पदार्थोंका सम्बन्ध भी मनुष्यके साथ स्थायी नहीं, क्षणिक ही होता है। जब तक जिस वस्तुसे उसका सम्बन्ध रहता है, तब तक ही उसकी उस वस्तुसे ममता रहती है।

एवं योनिगतो जीवः स नित्यो निरहंकृतः।
यावद्यत्रोपलभ्येत तावत्स्वत्वं हि तस्य तत्।।
एष नित्योऽव्ययः सूक्ष्म एष सर्वाश्रयः स्वदृक्।
आत्ममायागुणैर्विश्वमात्मानं सृजते प्रभुः।।
न ह्यस्यास्तिप्रिया कश्चिन्नाप्रियः स्वः परोऽपिः वा।
एकः सर्वधियां द्रष्टा कर्तृणां गुणदोषयोः।।

(भा० ६/१६/८-१०)

जीव नित्य और अहंकार रहित है। वह गर्भमें आकर जब तक जिस शरीरमें रहता है,

तभी तक उस शरीरको अपना समझता है। यह जीव नित्य, अविनाशी, सूक्ष्म (जन्मादि-रहित), सबका आश्रय अर्थात् उत्पत्ति या जन्मशील देहादिका आश्रय है (स्वयं ही देहादि नहीं है) और स्वतः प्रकाश स्वरूप एवं प्रभु या समर्थवान् होकर भी मायागुणसे अपनेको नानारूपसे सृष्टि करता रहता है। इसका न तो कोई अत्यन्त प्रिय है और न कोई अप्रिय। इसका न तो कोई अपना है और न कोई पराया। क्योंकि गुणदोष (हिताहित) करनेवाले मित्र-शत्रु आदिकी भिन्न-भिन्न बुद्धिवृत्तियोंका यह अकेला ही साक्षी है। वास्तवमें यह अद्वितीय है।"

इस प्रकार वह जीवात्मा ज्ञान-परिपूर्ण वार्ता कहकर उस शरीरसे चला गया। इस वार्ताको सुनकर सब पारिवारिक जनोंका स्नेह-बन्धन कट गया और सबके हृदयसे बालकका मृत्युजनित शोक दूर हो गया। इसके पश्चात् बालककी और्ध्वदैहिक क्रियाएँ पूर्णकर सभी शोक, मोह, भय एवं आर्त्तिप्रद दुस्त्यज स्नेह छोड़ दिया। बाल-घातिनी रानियाँ जो हत्याजनित पापसे श्रीहीन हो गईं थीं, उन लोगोंने यमुना तट पर ब्राह्मणोंके आदेशानुसार प्रायश्चित्त किया। महाराज चित्रकेतु भी गृहस्थीके जंजालसे बाहर निकल पड़े, जिस प्रकार कोई हाथी तालाबके कीचड़से निकल जाता है। उन्होंने यमुनामें स्नानकर धार्मिक कृत्योंका अनुष्ठान किया। तदनन्तर संयतेन्द्रिय तथा मौन होकर देवर्षि नारद एवं महर्षि अंगिराकी चरण-वन्दना की। चित्रकेतुको जितेन्द्रिय, शरणागत एवं भक्तिपरायण देखकर नारदजीने प्रसन्न होकर उन्हें इस विद्याका उपदेश दिया—

ॐ नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय धीमहि।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च॥
नमः विज्ञानमात्राय परमानन्दमूर्तये।
आत्माराय शान्ताय निवृत्तद्वैतदृष्टये॥
(भा० ६/१६/१८,१९)

हे ॐ कारस्वरूप भगवन्! आप वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और सङ्कर्षणके रूपमें क्रमशः चित्त, बुद्धि, मन और अहंकारके अधिष्ठाता है। मैं आपके इस चतुर्व्यूहरूपका बारम्बार नमस्कारपूर्वक ध्यान करता हूँ। आप विशुद्ध विज्ञानस्वरूप हैं। आपकी मूर्त्ति परमानन्दमयी है। आप अपने स्वरूपभूत आनन्दमें ही मग्न एवं परम शान्त हैं। द्वैत-दृष्टि आपको छू तक नहीं सकती। मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

आत्मानन्दानुभूत्यैव न्यस्तशक्त्यूर्मये नमः।
हृषीकेशाय महते नमस्ते विश्वमूर्तये॥
ॐ नमः भगवते महापुरुषाय महानुभावाय।
महाविभूतिपतये सकलसात्त्वतपरिवृढनिकरकर-कमलकुट्मलोपलालितचरणारविन्दयुगल परम-परमेष्ठिन्नमस्ते॥

(भा० ६/१६/२०,२५)

आपने अपने स्वरूपभूत आनन्दकी अनुभूतिद्वारा मायाजनित राग-द्वैषादिरूप दोषोंका तिरस्कार कर रखा है। अतएव आपको नमस्कार करता हूँ। आप हृषीकेश अर्थात् समस्त इन्द्रियोंके अधिष्ठाता, अनन्त-मूर्त्ति एवं महान् हैं। आपको नमस्कार करता हूँ। हे गुणातीत! हे परमेष्ठिन् (सर्वेश्वर)! आपके चरणारविन्दयुगलकी सभी श्रेष्ठ एवं उत्तम भागवत लोग अपने करकमलोंकी कलियोंद्वारा सेवा करते रहते हैं। आप ही भगवान्, महापुरुष, महानुभाव, महाविभूतिके अधिपति हैं। ऐसे ओंकार-स्वरूप आपको नमस्कार करता हूँ।

इस प्रकार इस अलौकिक विद्याका उपदेश देकर नारद देवर्षि अंगिराके साथ ब्रह्मलोकको प्रस्थान कर गये। राजा चित्रकेतुने नारदजीके द्वारा उपदिष्ट विद्याका उनके आज्ञानुसार सात दिनतक केवल जल पीकर बड़ी एकाग्रताके साथ अनुष्ठान किया। तदनन्तर इस विद्याके अनुष्ठानसे सात रात्रिके पश्चात् राजा चित्रकेतुको विद्याधरोंका अखण्ड आधिपत्य प्राप्त हुआ। इस विद्याके प्रभावसे कुछ ही दिनोंमें

उनका मन और भी शुद्ध हो गया। अब वे देवाधिदेव भगवान् शेषजीके चरणोंके समीप पहुँच गये।

मृणालगौरं शितिवाससं स्फुरत्
किरीटकेयूरकटित्रकङ्कणम्।
प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनं वृतं
ददर्श सिद्धेश्वरमण्डलैः प्रभुम्।।
(भा० ६/१६/३०)

उन्होंने दर्शन किया कि भगवान् शेषजी सिद्धेश्वरोंके मण्डलमें विराजमान है। उनका शरीर कमलनालके समान गौरवर्ण है। उसपर नीले रंगका वस्त्र फहरा रहा है। सिरपर किरीट, बाहोंमें बाजूबंद कमरमें करधनी और कलाईमें कंगन आदि आभूषण चमक रहे हैं। नेत्र अरुण एवं सजल हैं और मुखपर प्रसन्नता छा रही है।

भगवान्‌के दर्शनसे चित्रकेतुके समस्त पाप नष्ट हो गये। उनका अन्तःकरण बिलकुल स्वच्छ और निर्मल हो गया। हृदयमें भक्तिकी बाढ़ आ गयी, नेत्रोंमें प्रेमके आँसू छलक आये, शरीर रोमाञ्चित हो गया। ऐसी स्थितिमें प्रमोद्रेकके कारण बहुत देरतक भगवान्‌की कुछ स् तुति न कर सके। थोड़ी देर बाद बोलने की कुछ-कुछ शक्ति उन्हें प्राप्त हुई। तब उन्होंने विवेकबुद्धिसे मनको समाहितकर इन्द्रियोंकी बाह्यवृत्तिको रोककर स्तुति करना प्रारम्भ किया—

अजित जितः सममतिभिः
साधुभिर्भवान् जितात्मभिर्भवता।
विवितास्तेऽपि च भजताम
कामात्मनां य आत्मदोऽतिकरुणः।।
(भा० ६/१६/३४)

हे अजित! जितेन्द्रिय और समदर्शी साधुओंने आपको जीत लिया है। आपने भी अपने सौन्दर्य-माधुर्य-कारुण्य आदि गुणोंसे उनको अपने वशमें कर लिया है। अहो! आप धन्य हैं। क्योंकि जो व्यक्ति निष्काम भावसे भजन करते हैं, उन्हें आप करुणाके परवश होकर अपने आपको भी दे डालते हैं।

नमस्तुभ्यं भगवते सकलजगत्स्थितिलयोदयेशाय।
दुरवसितात्मगतये कुयोगिनां भिदा परमहंसाय।।
(भा० ६/१६/४७)

भगवन्! आपकी अध्यक्षतामें सारे जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होते हैं। कुयोगी व्यक्ति भेददृष्टिके कारण आपका वास्तविक स्वरूप जान नहीं पाते। आपका स्वरूप वास्तवमें शुद्ध है। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार चित्रकेतु बहुत प्रकारसे भगवान्‌की स्तुति करते रहे।

अनन्तर चित्रकेतुकी स्तुतिसे भगवान् अनन्तदेव बड़े ही प्रसन्न होकर उनसे इस प्रकारसे कहने लगे—"हे चित्रकेतो! देवर्षि नारद एवं महर्षि अंगिराने तुम्हें मेरे सम्बन्धमें जिस विद्याका उपदेश दिया है, उसके प्रभाव तथा मेरे दर्शनके द्वारा अब तुम भलीभाँति सिद्ध हो गये हो।

अहं वै सर्वभूतानि भूतात्मा भूतभावनः।
शब्दब्रह्म परं ब्रह्म ममोभे शाश्वती तनू।।
(भा० ६/१६/५१)

"मैं ही स्थावर-जंगमात्मक भूतसमूहके रूपमें हूँ, मैं ही सबका आत्मा स्वरूप हूँ एवं मैं ही भूतभावन हूँ अर्थात् भूतोंका प्रकाशक हूँ। शब्द-ब्रह्म एवं पर-ब्रह्म—ये दोनों ही मेरे नित्य शरीर-द्वय हैं। तुम्हें पूर्णतः ज्ञान प्राप्त कर जीवकी जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति आदि अवस्थाएँ परमेश्वरकी ही माया है—ऐसा जानकर सबके साक्षी मायातीत मुझ परमात्माका ही स्मरण करना चाहिए।

यदेतद्विस्मृतं पुंसो मद्भावं भिन्नमात्मनः।
ततः संसार एतस्य देहाद्देहो मृतेर्मृतिः।।
लब्ध्वेह मानुषीं योनिं ज्ञानविज्ञानसंभवाम्।
आत्मानं यो न बुद्ध्येत न क्वचिच्छममाप्नुयात्।।
(भा० ६/१६/५७,५८)

जब जीव अपने तथा मेरे स्वरूपको भूल

जाता है, तब वह अपनेको मुझसे अलग मान बैठता है। इसीसे उसे संसारके चक्करमें पड़ना पड़ता है और जन्म-पर-जन्म एवं मृत्युके पश्चात् मृत्यु प्राप्त होती है। यह मनुष्ययोनि ज्ञान और विज्ञानका मूल स्रोत है। जो इसे पाकर अपने आत्मस्वरूपको और मुझ परमात्माको जान नहीं लेता, उसे कहीं किसी योनिमें भी शान्ति नहीं मिल सकेगी।"

इस प्रकारका ज्ञानोपदेश देकर भगवान् जगद्गुरु विश्वात्मा संकर्षण चित्रकेतुके देखते-देखते उनके सामने ही अन्तर्हित हो गये।

जिस दिशामें भगवान् संकर्षण अन्तर्धान हुए थे, विद्याधराधिपति चित्रकेतु उस ओर नमस्कार कर आकाश-मार्गमें स्वच्छन्द रूपसे भ्रमण करने लगे। करोड़ों वर्षों तक उन्होंने सुमेरु पर्वतकी घाटियोंमें विहार किया। उनका बल, इन्द्रियोंकी शक्ति अभूतपूर्व हो गई। बड़े बड़े सिद्ध-मुनि-चारण लोग उनकी स्तुति कर अपनेको धन्य मानते। उनकी प्रेरणासे विद्याधरोंकी स्त्रियाँ उनके निकट भगवान्के गुण-लीलादिका गान करती थीं।

एकदिन चित्रकेतु भगवान् विष्णुके प्रदत्त तेजोमय विमानपर चढ़कर कहीं जा रहे थे कि उन्होंने सिद्ध-चारण-मुनियोंकी सभामें महादेव शिवको भगवती पार्वतीको गोदीपर बैठाकर आलिङ्गन करते हुए देखा। उन्हें यह अच्छा नहीं लगा। वे जोरोंसे हास्य करते हुए पार्वतीको सुनाते हुए ऐसा परिहास वाक्य कहने लगे—

ये शिव तो साक्षात् लोकगुरु हैं। ये देहधारियोंमें सर्वश्रेष्ठ एवं धर्मके वक्ता हैं। क्या आश्चर्य है कि ये मुनियोंकी सभामें भार्याके साथ मिलित होकर विराजमान हैं। साधारण एवं नीच व्यक्ति भी गोपनमें ही पत्नीको धारण करते हैं। किन्तु इन महादेवने तो तपस्वी होकर भी सभाके मध्य ही पत्नीको गोदीमें बैठा लिया है।

यह बात सुनकर शिवजी तो हँसकर चुप रह गये एवं उनके अनुचरोंने भी उनका अनुसरण किया। किन्तु शिवके प्रभावको न जाननेवाले एवं शिवके प्रति शासनव्यंजक अनुचित वाक्य प्रयोग करनेवाले जितात्माभिमानी धृष्ट चित्रकेतुके प्रति क्रुद्ध होकर पार्वतीजी ऐसा कहने लगी—

"क्या हम जैसे निर्लज्ज, दुष्टलोगोंका शासनकर्त्ता, दण्डधारी एवं एकमात्र प्रभु क्या यह विरुद्ध आचरणवाला व्यक्ति ही है? क्या हम जैसोंको संसारमें धर्मका ज्ञान नहीं है? क्या यही धर्मका रहस्य जानता है?

क्या पद्मयोनि ब्रह्मा, ब्रह्मापुत्र भृगु-नारदादि ऋषि लोग, सनत्कुमार, कपिल, मनु आदिको धर्म-ज्ञान नहीं है, जो कि शंकरजीको इस शास्त्रविरुद्ध दुष्कार्यसे निवारण नहीं करते? ब्रह्मा आदि समस्त महापुरुष जिनके चरणकमलोंका ध्यान करते हैं, उन्हीं मंगलोंके भी मंगलस्वरूप साक्षात् जगत्पूज्य परम धर्ममूर्त्ति शिवको इसने शासन करनेकी कुचेष्टा की है। अतएव यह ढीठ सर्वदा दण्डनीय है। यह आत्माभिमानी दुर्विनीत व्यक्ति भगवान् श्रीहरिके उन चरणकमलोंके आश्रयमें रहने योग्य नहीं है, जिनकी उपासना बड़े-बड़े सत्पुरुष किया करते हैं। अतः हे दुर्मते! तुम पापमय आसुरी योनिमें जाओ। ऐसा होने से फिर कभी तुम किसी महापुरुषके प्रति अपराध न कर सकोगे।"

माता पार्वतीके क्रोधित होकर शाप देने पर वे विमानसे उतर पड़े और सिर झुकाकर उन्हें प्रसन्न करने लगे। वे कहने लगे"—मैं बड़ी प्रसन्नतासे दोनों हाथ जोड़कर आपका शाप स्वीकार करता हूँ। क्योंकि देवता लोग मनुष्योंको पूर्वजन्मके कर्म-फलानुसार ही सुख या दुःख प्रदान करते हैं।

संसारचक्र एतस्मिञ्जन्तुरज्ञानमोहितः।
भ्राम्यन् सुखं च दुःखं च भुङ्क्ते सर्वत्र सर्वदा।।
नैवात्मा न परश्चापि कर्ता स्यात् सुखदुःखयोः।
कर्तारं मन्यतेऽत्राज्ञ आत्मानं परमेव च।।

गुणप्रवाह एतस्मिन् कः शापः कोन्वनुग्रहः।
कः स्वर्गो नरकः को वा किं सुखं दुःखमेव वा।।
एकः सृजति भूतानि भगवानात्ममायया।
एषां बन्धं च मोक्षं च सुखं दुखं च निष्कलः।।
न तस्य कश्चिद्दयितः प्रतीपो
न ज्ञातिबन्ध न परो न च स्वः।
समस्य सर्वत्र निरञ्जनस्य
सुखे न रागः कुत एव रोषः।।
(भा० ६/१७/१८-२२)

अविद्याच्छन्न जीव इस संसार-वनमें भ्रमण करते करते सभी देशोंमे सभी समयमें पूर्वकर्मानुसार सुख एवं दुःख भोग करता है (अतएव इस शाप प्रदानमें मेरा या आपका कोई दोष नहीं है)। इस संसारमें स्वयं या शत्रु-मित्र आदि दूसरे कोई सुख-दुःखका कर्ता नहीं है, किन्तु अज्ञ व्यक्ति अपनेको या दूसरेको इस विषयमें सुख-दुःखके कर्ता समझते हैं। यह संसार ही मायामय गुणप्रवाह स्वरूप है। अतएव इसमें शाप ही क्या है? अनुग्रह ही क्या है? स्वर्ग ही क्या है? नरक ही क्या है? और सुख-दुःख ही क्या है? अर्थात् इनमें किसी की भी वास्तविक सत्ता नहीं है। बन्ध-मोक्षरहित एकमात्र भगवान ही उनकी मायाद्वारा प्राणियोंकी सृष्टि किया करते है। मायांशभूत अविद्याद्वारा उनका बन्धन और विद्याद्वारा मुक्तिप्रदान एवं सत्त्वगुणमें सुख एव रजोगुणमें दुःख प्रदान करते हैं। भगवान् सभी भूतोंमें सम हैं। इसलिए उनका प्रिय और अप्रिय, ज्ञाति या बन्धु, पर एवं आत्मीय कोई नहीं है। अतएव उस निःसंग-पुरुषका सुखमें अनुराग नहीं है। इसलिए रोष कैसे होगा?

तथापि उनकी मायाशक्तिके कार्य ही पुण्य-पाप आदि कर्म सृष्टि कर इन सभी जीवोंके सुख-दुःख, मंगल-अमंगल, बन्ध-मोक्ष, एवं जन्म-मृत्युरूप संसारके कारण बनते हैं। अर्थात् जीवके कर्मफलानुसार गुणमाया ही पुण्य-पापादि कर्म सृष्टि कर जीवके जन्म-मृत्यु आदिका हेतु बनती है।

पतिप्राणा देवी! मैं शापसे मुक्त होनेके लिए आपसे प्रार्थना नहीं कर रहा हूँ (क्योंकि सुख-दुःख मनुष्योंको अपने-अपने कर्मानुसार ही प्राप्त होता है)। मेरा वाक्य संगत होने पर भी जो आप उसे असंगत समझती हैं, उसके लिए आप मुझे क्षमा करें। ऐसा कहकर चित्रकेतु शिव और पार्वतीको प्रसन्न कर उन लोगोंके सामने ही अपने विमानपर आरोहण कर चले गये। शाप-श्रवणसे भी चित्रकेतु भीत नहीं हुए—ऐसा देखकर शिव-पार्वती दोनों ही आश्चर्यको प्राप्त हुए।

तब शंकरजीने देवता, ऋषि, सिद्ध और पार्षदोंके सामने ही पार्वतीसे कहा"—हे सुन्दरी! दिव्यलीलाविहारी भगवान् श्रीहरिके निःस्पृह और उदारहृदय दासानुदासोंकी महिमा तुमने अपनी आँखोंसे देख ली।

नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति।
स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः।।
(भा० ६/१७/२८)

जो लोग भगवान्के शरणागत भक्त होते हैं, उन्हें कहीं से भी कोई भय नहीं है। उनके लिए स्वर्ग, मोक्ष और नरक—तीनोंमें ही एक वस्तु—केवल भगवान्के ही दर्शन होते हैं।"

"जीवोंको भगवान्की मायासे ही देहसंयोगके कारण सुख-दुःख, जन्म-मरण, शाप-अनुग्रह आदि द्वन्द्व प्राप्त होते हैं। जैसे स्वप्नमें भेद-भ्रमसे सुख-दुःख आदिकी प्रतीति होती है, जाग्रत अवस्थामें भ्रमवश मालामें ही सर्पबुद्धि हो जाती है, वैसे ही मनुष्य अज्ञानवश आत्मामें देवता, मनुष्य आदिका भेद तथा गुण-दोष आदिकी कल्पना कर लेता है। जिनके पास ज्ञान एवं वेराग्यका बल है और जो भगवान् वासुदेवके चरणोंमें भक्तियुक्त हैं, उनके लिए जगत्में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे वे उपादेय या हेय समझकर राग-द्वेष करें।

नाहं विरिञ्चो न कुमारनारदौ

न ब्रह्मपुत्रा मुनयः सुरेशाः।
विदाम यस्येहितमंशकांशका
न तत्स्वरूपं पृथगीशमानिनः।।
(भा० ६/१७/३२)

जब मैं, ब्रह्माजी, सनकादि, नारद, ब्रह्माजीके पुत्र भृगु आदि मुनि लोग, बड़े-बड़े देवता आदि कोई भी भगवान्‌की लीलाका रहस्य नहीं जान पाते, तब श्रीहरिके अंशके अंश होकर भी स्वतन्त्र कर्त्ताभिमानी पुरुष भी निश्चय ही उनके स्वरूपको जान नहीं सकते; अथवा मैं (शिव), ब्रह्मा, अश्विनीकुमारद्वय, ब्रह्मपुत्र, नारदादि ऋषि लोग, देवेन्द्र आदि हम लोग यदि स्वतन्त्र ईश्वराभिमान करें,, तो हम लोग भगवान्‌के अंशके अंश होने पर भी उनके स्वरूपको समझनेमें समर्थ नहीं हो सकेंगे।

"भगवान्‌का न तो कोई प्रिय है और न कोई अप्रिय। उनका न तो कोई अपना है और न कोई पराया। वे सभी प्राणियोंके आत्मा हैं, इसलिए सभी प्राणियोंके प्रियतम हैं। हे प्रिये! ये परम भाग्यवान चित्रकेतु भी उन्हींके प्रिय सेवक हैं, सर्वभूतोंमें समदर्शी और रागद्वेषशून्य हैं। मैं भी भगवान् श्रीहरिका ही प्रिय हूँ। इसलिए तुम्हें भगवान्‌के प्यारे, शान्त, समदर्शी, महात्मा भक्तोंके सम्बन्धमें किसी प्रकारका आश्चर्य या विचार नहीं करना चाहिए।"

शंकरजीके ऐसे वचन सुनकर पार्वतीजी विस्मय परित्याग कर बुद्धि स्थिर कर शान्त हो गई। यद्यपि चित्रकेतु भगवती पार्वतीको शाप देनेमें समर्थ थे, तथापि उन्होंने ऐसा नहीं किया। बल्कि नतमस्तक होकर देवीजीका शाप स्वीकार कर लिया। यही साधु या भक्तका स्वाभाविक लक्षण है।

यही विद्याधर चित्रकेतु दानव-योनिका आश्रय लेकर त्वष्टाके दक्षिणाग्निसे प्रकट हुए। वहाँ इनका नाम वृत्रासुर हुआ। किन्तु फिर भी ये भगवत् स्वरूपके ज्ञान एवं भक्तिसे परिपूर्ण ही रहे। ❑

(क्रमशः)

गौराङ्ग सुधा

—श्रीपरमेश्वरी ब्रह्मचारी

विश्वरूपका संन्यास तथा महाप्रभुका विद्याध्ययन

अब दिन प्रतिदिन श्रीगौरसुन्दरकी चञ्चलता बढ़ने लगी। श्रीजगन्नाथ मिश्र एवं शचीमाताके समझाने पर शान्त होना तो दूर, बल्कि पहलेसे भी अधिक शरारतें करने लगते हैं, यहाँ तक कि गुस्सेमें आकर घरके बर्तनोंको तोड़ डालते हैं। अतः भयके कारण वे दोनों कुछ नहीं बोलते, जिससे गौरसुन्दर स्वच्छन्द रूपसे शरारतें करने लगे। उन्हें भय था तो एकमात्र अपने बड़े भैया विश्वरूपसे। उन्हें देखकर शरारतें छोड़कर ये नम्र बन जाते। विश्वरूप स्वयं बलदेवजीके प्रकाश हैं जो महाप्रभुकी लीलामें उनकी सहायता करनेके लिए उनके बड़े भैयाके रूपमें इस जगतमें अवतरित हुए हैं। विश्वरूप जन्मसे ही संसारसे विरक्त एवं समस्त गुणोंके भण्डार थे। उस समय नवद्वीपके बड़े-बड़े पण्डित गीता-भागवतादि शास्त्रोंका पाठ तो करते थे, परन्तु उनकी व्याख्याएँ भक्तिके प्रतिकूल कर्म-ज्ञान आदिके ऊपर होती थी। परन्तु विश्वरूप समस्त शास्त्रोंकी व्याख्या भक्तिके अनुसार ही करते थे। नवद्वीपमें ऐसा कोई न था जो विश्वरूपकी व्याख्याका खण्डन कर सके।

विश्वरूप सदा-सर्वदा अपनी समस्त इन्द्रियोंके द्वारा इन्द्रियोंके स्वामी हृषीकेशकी सेवामें तल्लीन रहते थे, अर्थात् मुखसे सब समय भगवानकी कथाओंकी ही चर्चा करते, कानोंसे भगवानकी कथाओंको श्रवण करते तथा

मनके द्वारा सब समय भगवानकी लीलाओंका स्मरण करते रहते।

श्रीगौरसुन्दरके अद्भुत कारनामोंका दर्शनकर वे विस्मित होकर विचार करने लगे—"यह कोई साधारण बालक नहीं है। जैसा इसका रूप है तथा जैसे-जैसे यह काम करता है, इससे तो यही लगता है, जैसे यह और कोई नहीं साक्षात् बालगोपाल हो या गोपाल ही इस बालकके शरीरमें आविष्ट होकर नाना प्रकारके असाधारण काम करते हैं।" पर इन सब बातोंको वे किसीके सामने प्रकट नहीं करते थे। उस समय सारा संसार भक्तिसे रहित तथा धन, पुत्र, परिवारमें ही परमत्त था। वैष्णवोंको देखकर पाषण्डी लोग उनका उपहास करते हुए कहते—"देखो, हमारे पास किसी वस्तुका अभाव नहीं है, पाँच-पाँच नौकर हमारे आगे पीछे घूमते हैं तथा सब समय हम लोग गाड़ी, घोड़े या पालकी से ही यहाँ-वहाँ आते जाते हैं। परन्तु तुम्हारे पास खानेके लिए एक दाना अन्न भी नहीं है। भिक्षा मांगकर अपना गुजारा करते हो। इसका कारण यह है कि तुमलोग हरि-हरि बोलते हो, इसीलिए उस हरिने तुम्हारा सबकुछ हरणकर लिया है। अतः यदि तुम सुखपूर्वक रहना चाहते हो तो हरि-हरि बोलना छोड़ दो।" "पाषण्डियोंके मुखसे ऐसी बातें सुनकर अद्वैताचार्य आदि वैष्णवलोग बहुत दुःखी हो जाते। विश्वरूप दुःखी होकर विचार करने लगे—"मैं ऐसे पाषण्डियोंका मुख भी दर्शन नहीं करना चाहता। इसलिए मैं ऐसे भक्तिरहित संसारको परित्यागकर चला जाऊँगा।" वे प्रतिदिन प्रातःकाल गंगा स्नानकर श्रीअद्वैताचार्यके घर जाते, जहाँ पर समस्त वैष्णवलोग भगवच्चर्चाके लिए उपस्थित होते थे। विश्वरूपको देखकर सभी वैष्णव प्रसन्न हो जाते तथा उनसे शास्त्रोंकी व्याख्या सुनते थे। उनकी व्याख्याओंको श्रवणकर सभी आनन्दसे नाचने लगते थे तथा पाषण्डियोंके दुर्वचनोंसे उन्हें जो दुःख होता था, वह कुछ समयके लिए दूर हो जाता था। विश्वरूपको छोड़कर कोई भी अपने घर नहीं जाना चाहता था और न विश्वरूप ही वैष्णवोंको छोड़कर अपने घर आना चाहते थे।

एक दिन शचीमाता रसोई बनाकर विश्वम्भरसे बोली—"बेटा निमाई! जा अपने बड़े भाईको बुलाकर ले आ। उससे कहना कि माँ ने प्रसाद पानेके लिए बुलाया है। माँका आदेश पाकर श्रीगौरसुन्दर दौड़ते हुए भैयाको बुलानेके बहाने अपने भक्तमण्डलीको दर्शन प्रदान करनेके लिए अद्वैताचार्यकी सभामें उपस्थित हुए। उन्होंने देखा कि सभी वैष्णववृन्द कृष्णकी कथाओंमें प्रमत्त हैं, किसीको भी अपने शरीरकी सुधबुध नहीं है। यह देखकर प्रभुने अपने प्रिय भक्तोंके ऊपर कृपा दृष्टि की। उस समय उनका दिगम्बर वेष था अर्थात् उनके शरीरपर एक भी वस्त्र नहीं था तथा सारा शरीर धूल-धूसरित था। वे हँसते हुए विश्वरूपसे बोले—"भैया! आपको माँने खानेके लिए बुलाया है। ऐसा कहकर उन्होंने विश्वरूपका वस्त्र पकड़ लिया तथा उन्हें खींचने लगे। उस समय उनके मनमोहक रूपका दर्शनकर सभीको समाधि जैसे लग गयी। वैष्णवलोग मंत्रमुग्ध होकर अपलक नेत्रोंसे श्रीगौरसुन्दरके मुखकमलको निहारने लगे। भगवानका स्वभाव ही है वे अपने भक्तोंका चित्त हरण करते हैं तथा भगवानका दर्शनकर भक्तोंका मोहित होना स्वाभाविक ही है। इस प्रकार समस्त वैष्णवोंको मोहित कर श्रीगौरसुन्दर अपने बड़े भाईको साथ घरकी ओर चल पड़े। इधर अद्वैताचार्य मन-ही-मन विचार करने लगे कि यह बालक कोई साधारण मनुष्य नहीं है। ऐसा विचार कर वे उपस्थित सभी वैष्णवोंसे बोले—"मैं निश्चित नहीं कर पा रहा हूँ कि वास्तवमें यह बालक कौन है?"

यह सुनकर वैष्णव लोग भी गौरसुन्दरकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे—"हे आचार्य! आप बिल्कुल सत्य कह रहे हैं। जैसा उसका रूप है तथा उसके शरीरसे जैसा लावण्य झलकता

है, उससे तो यही प्रतीत होता है कि यह कोई साधारण बालक नहीं है।" इस प्रकार सभी लोग गौरसुन्दरके विषयमें अनेक प्रकारसे विचार करने लगे।

उधर श्रीविश्वरूप घर गये तथा प्रसाद पाकर वहाँ एक क्षण न रुककर पुनः वैष्णवमण्डलीमें आ पहुँचे क्योंकि उन्हें संसारसुख लेशमात्र भी अच्छा नहीं लगता था। यदि वे घरमें आते भी थे तो घरके लोगोंसे विशेष वार्तालाप नहीं करते थे तथा सदा-सर्वदा मन्दिरमें ही रहते थे। अब शचीमाता एवं जगन्नाथ मिश्र विचार करने लगे कि विश्वरूप युवा हो गया है, अतः किसी गुणवती कन्यासे इसका विवाह कर देना चाहिए जिससे कि यह गृहस्थ-धर्मका पालन करेगा तथा इसका मन भी थोड़ा-बहुत संसारमें लगेगा। इसलिए वे लोग विश्वरूपके अनुरूप किसी गुणवती कन्याकी खोज करने लगे। जब यह बात श्रीविश्वरूपके कानोंमें पहुँची, तो वे बहुत दुःखी हो गये क्योंकि वे संसारमें नहीं फँसना चाहते थे। इसलिए उन्होंने मन ही मन संसार त्याग करनेका विचार कर लिया।

आखिर एक दिन प्रभु विश्वरूपने संसार त्यागकर संन्यासवेष धारण कर ही लिया। उनके संन्यासका नाम हुआ श्रीशंकरारण्य। अब वे सर्वत्र भ्रमण करने लगे। उनके संन्यास ग्रहण करनेपर श्री जगन्नाथ मिश्र एवं शचीमाताके सिरपर मानो बज्रपात हो गया। सारा परिवार उनके विछोहमें बिलख-बिलखकर रोने लगा। भैयाके विरहमें गौरसुन्दरकी अवस्था तो और भी खराब हो गयी। रोते-रोते वे तो मूर्च्छित ही हो गये। उस समय जगन्नाथ मिश्रके घरकी जैसी दयनीय अवस्था हुई उसका वर्णन करना सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त जब अद्वैताचार्य, श्रीवास पण्डित आदि वैष्णवोंने यह बात सुनी तो वे भी विश्वरूपके विरहमें उनका नाम लेकर रोने-विलखने लगे। उस समय नवद्वीपमें बूढ़े, युवा, स्त्री, पुरुष, बच्चे जिसने भी इस घटनाको सुना सभी दुःखसे कातर रोने लगे। शचीमाता एवं जगन्नाथ मिश्र "हा विश्वरूप! बेटा तू हमें छोड़कर कहाँ चला गया ऐसा कहते हुए पुनः पुनः मूर्च्छित हो जाते थे। उन दोनोंकी ऐसी अवस्था देखकर उनके बन्धु-बान्धव उन दोनोंको सांत्वना देने लगे।

बन्धु-बान्धव—"हे मिश्र! आप शान्त हो जाइए। आप दुःख क्यों कर रहे हैं। आपका तो परम सौभाग्य है कि आपके कुलमें एक ऐसा पुत्र हुआ जो दुःखमय संसाररूप कारागृहमें न फँसकर संन्यासी हो गया। शास्त्रोंके अनुसार जिसके वंशमें एक भी संन्यासी हो जाता है, उसके तीन करोड़ कुलोंका वैकुण्ठ वास होता है। वास्तवमें जैसा वह पण्डित था, उसका पाण्डित्य आज सार्थक हो गया, क्योंकि संसारसे विरक्त एवं भगवानके उन्मुख करना ही विद्याका कार्य है। अतः आपको दुःख नहीं बल्कि आनन्द मनाना चाहिए और रही वंश चलानेकी बात तो आपका यह छोटा पुत्र विश्वम्भर तो आपके पास है ही। यह संसार धर्मका पालन करते हुए आप दोनोंकी सेवा करेगा।"

इस प्रकार नाना प्रकारसे समझाने पर भी मिश्र उस दुःखको भूल नहीं पा रहे थे। यदि वे किसी प्रकारसे धैर्य धारण करनेका प्रयास करते भी थे तो विश्वरूपके गुणोंको स्मरणकर फिर धैर्य खो बैठते। आखिरकार निमाईका मुख देखकर उन्होंने कुछ धैर्य धारण किया।

मिश्र (स्वयंको सांत्वना देते हुए)—"यह निमाई भी घरमें रहेगा, इसे मेरा मन स्वीकार नहीं कर रहा है। परन्तु इसमें कोई कर भी क्या सकता है। क्योंकि जैसी भगवानकी इच्छा होगी वैसा ही होगा। उनकी इच्छाके विपरीत कुछ भी करनेकी शक्ति जीवमें लेशमात्र भी नहीं है।"

इस प्रकार जगन्नाथ मिश्रने नाना प्रकारकी युक्तियों एवं विचारोंके द्वारा अपने चित्तको कुछ स्थिर किया। विश्वरूपके संन्यास ग्रहण करनेपर सभी वैष्णवलोग विचार करने लगे—"एक विश्वरूप था, जो हमें सुन्दर-सुन्दर शास्त्रोंकी

व्याख्याएँ सुनाता था, परन्तु जब वही संन्यास ग्रहणकर चला गया तो अब हम इस बहिर्मुख संन्यासमें रहकर क्या करेंगे? अतः इन पापियोंका मुख देखने तथा इनके अपराधपूर्ण दुर्वचनोंको सुननेकी अपेक्षा तो अच्छा है कि हम भी वन चले जाँय। सबके विचारोंको जानकर श्रीअद्वैताचार्य, जो महाविष्णुके अवतार हैं, सबको सांत्वना देने लगे—"तुमलोग कुछ धैर्य धारण करो। आजकल मेरा हृदय बहुत उल्लसित हो रहा है। मुझे ऐसा लग रहा है कि अवश्य श्रीकृष्ण धरा-धामपर अवतरित हो चुके हैं, परन्तु अभी तक वे अपनेको छिपाये हुए हैं। अतः तुम सभी लोग मिलकर कृष्णनाम कीर्त्तन करो, जिससे कुछ ही दिनोंमें वे सबके सामने प्रकट हो जायेंगे तथा सबको साथमें लेकर नाना प्रकारकी लीलाएँ करेंगे।"

उनके श्रीमुखसे ऐसी अमृतके समान सांत्वनापूर्ण वचनोंको सुनकर वैष्णवोंका हृदय उल्लसित हो गया तथा वे "हरि-हरि" कहकर जय-जयकार करने लगे। उस समय श्रीगौरसुन्दर अपने सखाओंके साथ पास ही क्रीड़ा कर रहे थे। अतः वे हरि-हरि ध्वनि सुनकर दौड़ते हुए घरके भीतर आए। उन्हें आया देखकर सभी वैष्णववृन्द उनसे पूछने लगे—"अरे बेटा निमाई! आज तू अकस्मात् यहाँ किस कामसे आया है?"

प्रभु (मुस्कुराते हुए)—"आप सब लोगोंने ही तो मुझे बुलाया है। अतः आपलोग बताइए आप लोगोंने मुझे क्यों बुलाया?"

ऐसा कहकर श्रीगौरसुन्दर वहाँसे दौड़कर चले गये तथा अपने सखाओंके साथ फिरसे खेलने लगे। भगवानकी मायासे मोहित होनेके कारण कोई भी उन्हें पहचान नहीं पा रहा था। जबसे श्रीविश्वरूप संन्यास लेकर चले गये, तबसे गौरसुन्दरकी चञ्चलता कुछ कम हो गयी। अब वे प्रायः सब समय माता-पिताके पास ही रहते थे, जिससे कि वे दोनों विश्वरूपसे विछुड़नेका दुःख भूल जाएँ। अब पहलेकी भाँति खेल-कूद छोड़कर यत्नपूर्वक पढ़ने लगे तथा एक क्षणके लिए भी पुस्तकोंको नहीं छोड़ते थे। बुद्धि इतनी तीव्र थी कि जिस सूत्रको एकबार भी पढ़ लेते थे उन्हें याद हो जाता था। उनकी ऐसी अमानुषी बुद्धिको देखकर लोग आश्चर्यमें पड़ जाते थे तथा उनकी प्रशंसा करते हुए कहते—"धन्य हैं वे माता-पिता जिन्हें ऐसा पुत्ररत्न प्राप्त हुआ।" कुछ लोग जगन्नाथ मिश्रके सामने ही उनके भाग्यकी प्रशंसा करते हुए कहते—"हे मिश्र! आप तो कृत-कृतार्थ हो गये, जो आपको ऐसा पुत्ररत्न प्राप्त हुआ। त्रिभुवनमें ऐसा बुद्धिमान शिशु अन्य कोई नहीं हो सकता। एकबार सुननेमात्रसे ही इसे सूत्र इत्यादि याद हो जाते हैं तथा स्वयं उन सूत्रोंकी सुन्दर-सुन्दर व्याख्याएँ कर लेता है। इस नवद्वीपमें कोई ऐसा नहीं है जो इसके प्रश्नोंका उत्तर दे सके। औरोंकी तो बात ही क्या, यह बालक देवगुरु वृहस्पतिको पराजित कर देगा।"

लोगोंके मुखसे अपने पुत्रकी प्रशंसा सुनकर शचीमाताको बहुत आनन्द हुआ परन्तु यह सुनकर जगन्नाथमिश्र बहुत दुःखी हो गये। दुःखी होकर वे शचीमातासे बोले—"मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि यह बालक भी घर पर नहीं रहेगा। क्योंकि इसी प्रकार विश्वरूप समस्त शास्त्रोंमें प्रवीण होनेके कारण इस संसारको अनित्य एवं दुःखमय जानकर संन्यासी हो गया। अब हमारे जीवनका एकमात्र सहारा यह निमाई भी ठीक उसीका अनुशरण कर रहा है। यदि यह शास्त्रोंमें प्रवीण हो गया तो अवश्य ही यह भी संसारकी वास्तविकता जानकर संसारका त्याग कर देगा। अब यही हम दोनोंका जीवन है। यदि यह चला गया तो हम दोनों तो जीते जी मर जाएँगे। अतः इसे अधिक पढ़ानेकी कोई आवश्यकता नहीं है, जिससे कि मूर्ख होनेके कारण यह संसारका त्याग नहीं करेगा तथा हमारे सामने रहते हुए गृहस्थ आश्रमका पालन करेगा।

शचीमाता—परन्तु यदि यह मूर्ख रह गया

तो जीवित कैसे रहेगा तथा इसे मूर्ख देखकर कोई भी सज्जन व्यक्ति इसके साथ अपनी कन्याका विवाह नहीं करेगा।"

जगन्नाथ मिश्र—"तुम तो वास्तवमें ही एक अबोध ब्राह्मण कन्या हो, इसलिए ऐसी बातें कर रही हो। इस जगतमें पालन करने वाले, जन्म देनेवाले तथा मारनेवाले एकमात्र कृष्ण ही हैं। वे ही सबका पालन-पोषण करते हैं। पाण्डित्य किसीका पोषण नहीं करता। मूर्ख हो अथवा पण्डित कृष्णने सभीके लिए उसीके अनुरूप कन्या एवं खाने-पीनेका व्यवस्था की है। अतः इच्छा नहीं करने पर भी वह स्वाभाविक रूपसे प्राप्त होगा ही। सबका पालन-पोषण कृष्ण करते हैं। यदि पण्डित होनेसे ही धन-सम्पत्तिकी प्राप्ति होती तो मैं भी एक पण्डित हूँ। परन्तु देखो तो हमारे घर खानेके लिए अन्न भी नहीं है। इसके विपरीत जिसे एक अक्षर पढ़ना-लिखना नहीं आता, उसके पास धन-सम्पत्तिका अभाव नहीं है तथा बड़े-बड़े पण्डित उसके घरपर उसका दर्शन करनेके लिए जाते हैं, क्योंकि उसके भाग्यमें धन-सम्पत्ति है। इसके विपरीत यदि किसीके घरमें किसी प्रकारका अभाव नहीं है तथा घरमें समस्त प्रकार भोग उपलब्ध है, परन्तु भगवानने उसे ऐसा भयंकर रोग दे दिया है कि जिसके कारण वह घरमें उपलब्ध उत्तम-उत्तम भोगोंको लेशमात्र भी नहीं भोग सकता। इसलिए शास्त्रोंकी बातोंपर विश्वासकर कि कृष्णकी इच्छाके बिना कुछ नहीं हो सकता, तू निमाईके जीवन निर्वाह एवं विवाहकी चिन्ता छोड़ दे। उसकी व्यवस्था भगवानने पहलेसे की है। और जब तक मैं जीवित हूँ, उसे लेशमात्र भी दुःख नहीं सहने दूँगा। इसलिए निमाईको अधिक पढ़ानेकी आवश्यकता नहीं है। ऐसा कहकर श्रीजगन्नाथमिश्रने निमाईको अपने पास बुलाया तथा बोले—"बेटा निमाई! आजसे पढ़ना बन्द कर दे। तू मुझसे जो चीज चाहेगा मैं तुझे वही वस्तु लाकर दूँगा। बस तू पढ़ना-लिखना बन्दकर घर पर ही बैठा रह। यदि तूने मेरी बात नहीं मानी तो तुझे मेरी शपथ है।"

ऐसा कहकर जगन्नाथमिश्र अपने कार्योंमें व्यस्त हो गये। न पढ़ पानेके कारण श्रीगौरसुन्दर बहुत दुःखी हो गये। परन्तु साक्षात् सनातन धर्म स्वरूप श्रीगौरसुन्दरने धर्मका उल्लंघन नहीं किया अर्थात् पिताजीके आदेशका पालन किया तथा पढ़ना-लिखना बन्द कर दिया। अब पढ़ाई बन्द हो जानेके कारण प्रभु दुःखी होकर पुनः अपने सखाओंके साथ शरारतें करने लगे। अपना घर हो या पराया, सभीके घरोंमें घुसकर बर्तनोंको तोड़ डालते तथा खाने-पीनेकी वस्तुओंको चारों ओर बिखेर देते। दिनके समय देख लेते कि किस घरमें केलेका बाग है। रातमें सभी बच्चे कम्बल ओढ़कर गाय बैलोंकी भाँति घुटनोंके बल चलते हुए बागमें घुसकर सब केलेके पेड़ोंको नष्टकर देते। जब आवाज सुनकर घरके लोग जाग जाते तथा पशु जानकर हाय-हाय करने लगते तो उस समय गौरसुन्दर अपने सखाओंके साथ वहाँसे भाग जाते थे। किसी घरमें घरके सभी लोग सो रहे हैं, तो बाहरसे दरवाजेका कुंडा लगाकर भाग जाते। जिससे सारी रात बेचारे घरके लोग मल-मूत्रके लिए भी नहीं जा पाते।

इस प्रकार श्रीगौरसुन्दर नाना प्रकारकी शरारतें करते परन्तु यह सब जानते हुए भी श्रीजगन्नाथ मिश्र एवं शचीमाता उन्हें कुछ नहीं कहते।

अपवित्र हाँडियों पर बैठकर माताको उपदेश

एक दिन मिश्र किसी कार्यवश कहीं बाहर गये थे। श्रीगौरसुन्दर न पढ़ पानेके कारण बहुत दुःखी एवं क्रोधित थे। इसलिए घरके बाहर एक कूड़ेके ढ़ेरपर कुछ मिट्टीकी जूठी हाँडियाँ फैंकी हुई थीं, जिनमें रसोई बनाई गयी थी। गौरसुन्दर गये तथा उन अपवित्र हाँड़ियोंके ऊपर आरामसे बैठ गये, जिससे हाँड़ियोंकी कालिख उनके सारे शरीरपर लग गयी। उस समय कालिख लग जानेसे तो गौरसुन्दरकी सुन्दरतामें

चार चाँद लग गये। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे किसी सोनेकी पुतली पर चन्दनका लेप किया गया हो। उनके हाँड़ियों पर बैठनेपर उनके साथी बच्चोंने शचीमाताके पास शिकायत की। शचीमाता दौड़ी-दौड़ी आयी तो देखकर हाय-हाय करते हुए बोली—"अरे बेटा निमाई! इन हाँड़ियोंपर बैठना उचित नहीं है क्योंकि ये अपवित्र हैं तथा इन्हें स्पर्श करने पर स्नान करना पड़ता है। तू इतना बड़ा हो गया है क्या तुझे यह साधारण सा ज्ञान भी नहीं है?"

श्रीगौरसुन्दर—तुमलोग मुझे पढ़ने नहीं देते हो, अतः एक मूर्ख ब्राह्मण बालकको अच्छे-बुरेका ज्ञान कैसे हो सकता है?"

शचीमाता—"निमाई, तू इन अपवित्र हाँडियोंपर बैठकर अपवित्र हो गया है। अब तू पवित्र कैसे होगा?

प्रभु—माँ! तुम्हारी बुद्धि तो बिल्कुल बच्चों जैसी है। तुझे मालूम नहीं है कि अपवित्र स्थानमें मेरी स्थिति नहीं है। जहाँ पर मेरा अवस्थान हो जाता है, वह स्थान परम पुण्य तीर्थ सदृश हो जाता है तथा गंगा आदि हजारों तीर्थ वहीं पर निवास करते हैं। ये हाँडियाँ अपवित्र कैसे हो गयीं? क्योंकि तुमने इन हाँडियोंमें भगवानके लिए रसोई बनाई। अतः जो वस्तु भगवानकी सेवामें लग जाती है, वह कभी भी अपवित्र नहीं हो सकती। बल्कि उसके स्पर्शसे अपवित्र स्थान भी पवित्र हो जाता है। अतः तुम यह विश्वास करो कि किसी अपवित्र स्थानपर मेरा अवस्थान नहीं हो सकता, बल्कि मेरे कारण ही सारे जगतकी शुद्धता है।"

इस प्रकार श्रीगौरसुन्दर छलपूर्वक अनेक प्रकारकी तत्त्वपूर्ण बातें कहने लगे। परन्तु उनकी मायाके कारण उन्हें कोई पहचान नहीं रहा था। अतः छोटेसे बच्चेके मुखसे ऐसी बातें सुनकर लोग हँसने लगे। तब शचीमाता बोली—"निमाई! जल्दीसे आकर स्नान कर।" परन्तु प्रभु वहीं पर बैठे रहे, आये नहीं।

शचीमाता—"बेटा! जल्दीसे यहाँ आ, तेरे पिताजी आने वाले हैं। नहीं तो तुम्हें दंड देंगे।"

प्रभु—"यदि तुम लोग मुझे पढ़ने नहीं दोगे, तो मैं यहाँसे नहीं उठूँगा।"

गौरसुन्दरकी बात सुनकर सभी लोग शचीमातासे कहने लगे—"शची माँ! कोई अपने बच्चोंको पढ़ाना चाहता है, परन्तु लाख प्रयास करने पर भी बच्चा नहीं पढ़ता। और तुम्हारा पुत्र पढ़ना चाहता है, परन्तु तुम उसे पढ़ने नहीं दे रहे हो। यह उचित नहीं है। बहुत भाग्यसे ऐसा पुत्र मिलता है जो विद्यानुरागी हो। पता नहीं तुम्हारा कौन शत्रु है, जिससे तुम्हें ऐसी दुर्बुद्धि प्रदान की, जिसके कारण तुम अपने पुत्रको मूर्ख रखना चाहते हो। इसलिए इस बच्चेकी कोई गलती नहीं है, यह जो कर रहा है ठीक कर रहा है।"

अब सभी लोग निमाईसे बोले—"निमाई! तू यहाँ आ जा। यदि तुझे ये लोग पढ़ानेसे मना करेंगे, तो तू अच्छी तरहसे घरका नुकसान करना। परन्तु प्रभु वहाँसे उठे नहीं, वहीं पर बैठकर हँसने लगे। तब शचीमाता स्वयं जाकर उन्हें हाथ पकड़कर ले आयी तथा उन्हें अच्छी तरहसे स्नान कराया। उसी समय जगन्नाथ मिश्र वहाँ पर उपस्थित हो गये। शचीमाताने उन्हें समझाया कि पढ़ाई बन्द होनेके कारण निमाई बहुत दुःखी है। इसके अतिरिक्त आस-पासके लोग भी बोले—"हे मिश्र! तुम तो एक समझदार व्यक्ति हो। फिर किसकी बातोंमें आकर तुम अपने पुत्रको पढ़नेसे रोक रहे हो। यदि तुम्हें भय है कि पढ़ लिखकर निमाई संसार त्यागकर देगा, तो तुम्हारी यह चिन्ता व्यर्थ है। क्योंकि जिसके भाग्यमें जो लिखा है, उसे कोई नहीं टाल सकता। अतः एक शुभ दिन देखकर इसका उपनयन संस्कार कराकर इसे विद्यालयमें भेज दो।"

मिश्र—"आप सभी लोग मेरे परम बन्धु हैं। अतः मैं आपकी बातोंका अवश्य ही पालन करूँगा।" ❑

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ-जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

वैकुण्ठ-वार्त्तावह

बृहत्-मृदङ्ग

श्रीभागवत-पत्रिका

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना।।

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।।

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः।।

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र।।
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश।।

वर्ष ४४ } *श्रीगौराब्द ५१४*
वि. सं. २०५७ आश्विन मास, सन् २०००, १४ सितम्बर—१३ अक्टूबर { **संख्या ७**

श्रीश्रीगोकुलानन्द-गोविन्द-देवाष्टकम्

[श्रील विश्वनाथ-चक्रवर्त्ति-ठक्कुर-विरचितम्]

कोटिकन्दर्प - सन्दर्प - विध्वंसन - स्वीयरूपामृताप्लावितक्ष्मातल।
भक्तलोकेक्षणं सक्षणं तर्षयन् गोकुलानन्द-गोविन्द! तुभ्यं नमः।।१।।

हे गोकुलानन्द-गोविन्द! आप भक्तजनोंको नयनानन्द प्रदान करते हुए करोड़ों कामदेवोंका दर्प चूर्ण-विचूर्ण कर अपने सौन्दर्यामृतसे धरातलको डुबा रहे हैं, आपको प्रणाम है।।१।।

यस्य सौरभ्य-सौलभ्यभाग्-गोपिका-भागलेशाय लक्ष्म्यापि तप्तं तपः।
निन्दितेन्दीवरश्रीक! तस्मै मुहुर्गोकुलानन्द-गोविन्द! तुभ्यं नमः।।२।।
वंशिकाकंठर्योयः स्वरस्ते सचेत् ताल-रागादिमान् श्रुत्यनुभ्राजितः।
का सुधा ब्रह्म किं का नु वैकुण्ठमुद् गोकुलानन्द-गोविन्द! तुभ्यं नमः।।३।।
यत् पदस्पर्शमाधुर्यमज्जत्कुचा धन्यतां यान्ति गोप्यो रमातोऽप्यलम्।
यद् यशो दुन्दुभेर्घोषणा सर्वजिद् गोकुलानन्द-गोविन्द! तुभ्यं नमः।।४।।
यस्य फेलालवास्वादने पात्रतां ब्रह्मरुद्रादयो यान्ति नैवान्यके।
आधरं शीधुमेतेऽपि विन्दन्ति नो गोकुलानन्द-गोविन्द! तुभ्यं नमः।।५।।
यस्य लीलामृतं सर्वथाकर्षकं ब्रह्मसौख्यादपि स्वादु सर्वे जगुः।
तत् प्रमाणं स्वयं व्याससूनुः शुको गोकुलानन्द-गोविन्द! तुभ्यं नमः।।६।।
यत् षडैश्वर्यमप्यार्यभक्तात्मनि ध्यातमुद्यच्चमत्कारमानन्दयेत्।
नाथ तस्मै रसाम्भोधये कोटिशो गोकुलानन्द-गोविन्द! तुभ्यं नमः।।७।।
गोकुलानन्द-गोविन्द-देवाष्टकं यः पठेन्नित्यमुत्ऽ कंठितस्त्वत्पदोः।
प्रेमसेवाप्तये सोऽचिरान्माधुरी सिन्धुमज्जन्मना वाञ्छितं विन्दताम्।।८।।

अनुवाद—

आपके अंग-सौरभ-रूप सुखका भोग करनेवाली गोपरमणियोंके किंचिन्मात्र सौभाग्यको प्राप्त करनेके लिये वैकुण्ठमें निवास करनेवाली लक्ष्मी भी कठोर तपस्या करती हैं; नीलकमलकी शोभाकोभी तिरस्कार करनेवाले हे गोकुलानन्द-गोविन्द! आपको पुनः पुनः प्रणाम है।।२।।

हे गोकुलानन्द-गोविन्द! यदि आपकी वंशी या आपके कंठका ताल और राग-रागिनियोंसे युक्त स्वर कर्णगोचर होता है, तो उसके सामने, क्या अमृत, क्या ब्रह्मज्ञान और क्या वैकुण्ठ-सुख—ये सभी तुच्छ प्रतीत होते हैं, आपको नमस्कार है।।३।

हे गोकुलानन्द-गोविन्द! व्रजकी रमणियाँ आपके श्रीचरणयुगलके माधुर्यपर अपना स्तन-अर्पण कर वैकुण्ठ-निवासिनी लक्ष्मीकी अपेक्षा भी परम कृतार्थ हैं एवं आपके यशः रूपी दुन्दुभिकी घोषणा सबको जय करती है, आपको नमस्कार है।।४।।

हे गोकुलानन्द-गोविन्द! ब्रह्मा, रुद्र और दूसरे-दूसरे देवगण आपके उच्छिष्ट—महाप्रसादकी किंचिन्मात्र कनिका आस्वादन करनेकी योग्यता रखते हैं; परन्तु उनके अतिरिक्त जन-साधारणके लिये वह अतीव दुर्लभ है और वे ब्रह्मा आदि देवता भी आपके अधर-सम्बन्धी मधुका पान नहीं कर पाते हैं, आपको प्रणाम है।।५।।

हे गोकुलानन्द-गोविन्द! आपके भक्तजन ऐसा बतलाते हैं कि आपका लीलामृत ब्रह्मसुखसे भी सम्पूर्णरूपसे अधिक चित्ताकर्षक है। और तो क्या, स्वयं वेदव्यासनन्दन श्रीशुकदेव गोस्वामी इसके प्रमाण हैं, आपको नमस्कार है।।६।।

हे गोकुलानन्द-गोविन्द! आपका षडैश्वर्य सज्जन भक्तोंके हृदयमें ध्यान किया जाकर अपूर्व

आनन्दको उत्पन्न करता है। हे प्रभो! रससागरके स्वरूपमें प्रसिद्ध आपको करोड़ों नमस्कार है।।७।।

जो आपके चरणयुगलकी प्रेम-सेवाको पानेके लिये उत्कंठित होकर इस गोकुलानन्द-गोविन्दाष्टकका नित्य पाठ करेंगे, वे शीघ्र ही माधुर्य-सिन्धुमें निमग्न अन्तःकरण होकर अपनी अभिलषित प्रेमसेवा पायेंगे।।८।।

वैराग्य

(गतांक से आगे)

—ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

इस वैराग्य काण्डमें अब मैं श्रीचैतन्य-महाप्रभुके उपदेशोंकी ओर पाठकोंका ध्यान आकर्षित करता हूँ। श्रीचैतन्यचरितामृत, अन्त्य खण्ड, छठे परिच्छेदमें कहा गया है—

महाप्रभुर भक्तगणेर वैराग्य प्रधान।
याहा देखि प्रीत हन गौर भगवान्।।

अर्थात् श्रीमन्महाप्रभुजीके भक्तोंमें वैराग्यकी प्रधानता होती है, जिसे देखकर स्वयं भगवान् श्रीगौरहरि बड़े प्रसन्न होते हैं।

पुनः उसी ग्रन्थके मध्य खण्ड, २० वें परिच्छेदमें कहा गया है—

सनातनेर वैराग्ये महाप्रभुर आनन्द अपार।
युक्त-वैराग्य-स्थिति सब सिखाइल।
शुष्क वैराग्य-ज्ञान सब निषेधिल।।

(चै.च.म.२३/९९)

अर्थात् श्रीसनातन गोस्वामीका वैराग्य देखकर महाप्रभुजीको अपार आनन्द हुआ। उन्होंने श्रीसनातन गोस्वामीको युक्त वैराग्य (सच्चे वैराग्य) के सम्बन्धमें उपदेश दिया तथा शुष्क वैराग्य—बनावटी वैराग्यको दूर रखनेकी आज्ञा भी दी।

श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने भी कहा है—

वैराग्य-विद्या-निज-भक्ति-योग-
शिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः।
श्रीकृष्णचैतन्य—शरीरधारी
कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये।।

अर्थात् वैराग्य, विद्या और अपने भक्तियोगकी शिक्षा देनेके लिये श्रीकृष्णचैतन्य रूप धारण करनेवाले एक सनातन पुरुष—सदा कृपाके समुद्र हैं, उनके चरणोंमें शरण लेता हूँ।

श्रीमद्भागवत (१२/१३/१८) में भी वैराग्यके सम्बन्धमें उल्लेख है—

श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां प्रियं
यस्मिन् पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते।
यत्र ज्ञान-विराग-भक्ति-सहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं
तच्छृण्वन् सुपठन् विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः।।

इस श्लोकमें भी ज्ञान, वैराग्य और भक्तिकी क्रिया द्वारा जो नैष्कर्म्य अर्थात् अप्राकृत क्रिया-स्थित है उसके सम्बन्धमें कहा गया है। वैराग्य—सहज-भक्तिका एक अवान्तर फल है—ऐसा समझ लेनेपर फिर वैराग्यके लिये पृथक् रूपमें चेष्टा नहीं हो सकती। जो लोग भक्तिमें प्रतिष्ठित हुए बिना ही वैराग्यका प्रयास

करते हैं, उनका जीवन व्यर्थ हो जाता है और अन्तमें नाना प्रकारके व्यर्थके बखेड़ोंमें पड़कर पतित हो जाते हैं। श्रीमद्भागवत (३/२३/५६) में भी कहा गया है—

नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते।
नतीर्थपदसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः।।

अर्थात् संसारमें जिस पुरुषके कर्मोंसे न तो धर्मका सम्पादन होता है, न वैराग्य उत्पन्न होता है और न भगवानकी सेवा ही सम्पन्न होती है, वह पुरुष जीते जी मुर्देके समान है।

देह-यात्रा निर्वाहके लिये जितने भी प्रकारके कर्म किये जा सकते हैं और समाज-यात्राके लिये जो नित्य, नैमित्तिक और सकाम कर्म किये जाते हैं, वे सब यदि धर्मके उद्देश्यसे सम्पादित न हों, तो नितान्त ही हेय हैं; कर्म यदि धर्मके उद्देश्यसे सम्पादित हो, तो उन्हें कर्म न कहकर 'धर्म' कहते हैं। पुनः धर्मका उद्देश्य वैराग्य न हो तो वैसा धर्म भी नितान्त हेय है। दूसरी तरफ वैराग्यके उद्देश्यसे अनुष्ठित धर्म भी 'वैराग्य' ही कहलाता है—धर्म नहीं; फिर वैराग्य भी यदि भगवान्‌की सेवाके उद्देश्यसे न किया जाय, तो वह भी नितान्त हेय है। ऐसा वैरागी जीवित अवस्थामें भी मुर्देके समान अकर्मण्य है। अतएव महाप्रभुके मतसे भगवद्भक्तिके उद्देश्यसे अर्थात् भक्तिका अवान्तर फलस्वरूप जानकर वैराग्य स्वीकार नहीं करनेसे कल्याण नहीं। अतएव वैराग्य प्रयोजन-तत्त्वकी श्रेणीमें स्थान न पाने पर भी वह संतोंका अवश्य लभ्य धर्मविशेष है। भक्तिमान् पुरुषको वैरागी होना ही होगा। जिनके हृदयमें जितनी भक्ति है, उनके हृदयमें उतना ही सहज वैराग्य है। जहाँ भक्ति तो अधिक मात्रामें देखी जाती है, अथच वैराग्यका अभाव देखा जाता है, तो वहाँ मूल भक्तिके सम्बन्धमें निश्चय ही सन्देह करना होगा। जब भक्ति अधिक प्रबल होती है, तब उनके साथ-साथ वैराग्य भी प्रबल होकर भक्तके संसारका छेदन कर डालता है। पीछे क्रमशः माया-बन्धनसे सहज मुक्ति, निर्वाण या ब्रह्मसायुज्य उपस्थित होता है। गीतामें भी भगवान् स्वयं कहते हैं—

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्।।

जड़-सम्बन्धमें निर्वाण या ब्रह्म सायुज्य होनेके साथ-ही-साथ भक्तकी भक्ति भावके रूपमें उदित होती है, उसीका नाम प्रेम भक्ति है। जो मुक्ति उदित हुई, वह भक्तिके अत्यन्त अनुगत होकर संतान या प्रिय सेवककी तरह कार्य करने लगी; अब वैराग्य या मुक्ति एक-एक स्वतन्त्र धर्मके रूपमें लक्षित नहीं होते। जैसे कर्म-समुदाय नैष्कर्म्यके रूपमें पक जानेपर भक्ति हो जाता है, उसी प्रकार ज्ञान और वैराग्य भी अपनी-अपनी क्रियाके परिपाक होनेपर भक्तिके साथ सारूप्य प्राप्त कर लेते हैं अथवा क्रमशः भक्तिके साथ सायुज्य लाभ करते हैं। भक्ति नित्य है, अनादि है और अनन्त है। परन्तु कर्म, वैराग्य और विवेक—ये सभी अनित्य हैं, अतएव नित्यधर्ममें मिल जाते हैं। इस प्रकार कृष्णके प्रति प्रेम भक्ति, जीवको कृष्णदास जानकर उनके प्रति भ्रातृभाव, कृष्णसे इतर वस्तुके प्रति वैराग्य और कृष्ण-प्रीतिके कार्योंके लिये कर्मचेष्टा—केवल इनकी ही स्थिति है।

अब कोई-कोई ऐसा भी सोच सकते हैं कि संसारमें रहकर भी यदि वस्तुसिद्धि तक

सब कुछ साधित हो सकता है, तब कौपीन आदि ग्रहण कर संसार छोड़नेकी आवश्यकता ही क्या है? निदाघ, ऋषभ, जनक, रामानन्दराय और श्रीवास पण्डित आदिकी तरह स्त्री-पुत्र लेकर भी यदि प्रेम-भक्तिका साधन किया जा सकता है, तब संसारको त्याग करनेकी आवश्यकता ही क्या है? और यदि आहार तथा कुछ अर्थ संग्रह ही वैराग्यका उद्देश्य है, तब गृहस्थधर्म और वैराग्य-आश्रममें भेद ही क्या रहा? ऐसी शङ्काका उत्तर यह है कि वैराग्य आश्रममें अर्थ-संग्रहकी चेष्टा बहुत ही अल्प है, थोड़ेमें ही अभाव दूर हो जाता है; निरन्तर अर्थ-संचयके लिये उद्वेग नहीं रहता। अकिंचन वेशमें अनेक प्रकारके वस्त्रोंका संग्रह आवश्यक नहीं होता। इसीलिये सनातन गोस्वामीने भेक ग्रहण किया था और श्रीचैतन्य महाप्रभुने उनके विषयमें रामानन्दको कहा था—

इँहार जे ज्येष्ठ भ्रातार नाम सनातन।
पृथ्वी ते विज्ञवर नाहि तार सम॥
तोमार जैछे विषय त्याग, तैछे तार रीति।
दैन्य-वैराग्य-पाण्डित्येर ताँहातेइ स्थिति॥

(चै.च.अ.१/२००-२०१)

सनातने कहिला—'तुमि याह' वृन्दावन।
तोमार दुइ भाई तथा कैराछे गमन॥
काँथा-करङ्गिया मोर कांगाल भक्तगण।
वृन्दावन आइले ताँदेर करिह पालन॥

गृहस्थाश्रममें भक्तिके बलसे वैराग्य साधित होता है, यह बात सत्य है, फिर भी श्रीचैतन्य महाप्रभुने रघुनाथदासको इस प्रकारकी शिक्षा दी थी—

प्रभु कहे—''कृष्ण-कृपा बलिष्ठ सबा हैते।
तोमारे काडिल विषय-विष्ठा-गर्त हैते॥''
तथापि विषयेर स्वभाव हय महा अंध।
सेई कर्म कराय याते हय भव-बन्ध॥
हेन 'विषय' हैते कृष्ण उद्धारिला तोमा'।
कहन न जाय कृष्ण-कृपार महिमा॥

(चै.च.अ.६परिच्छेद)

विशेष अवस्थामें संसारका त्याग कर वैराग्य ग्रहण करना चाहिए—यही महाप्रभुका अभिप्राय है; इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। महाप्रभुने सनातन गोस्वामीको फल्गु (बनावटी) वैराग्य छोड़कर युक्त वैराग्य स्वीकार करनेके लिये जो उपदेश दिया था, उसके विषयमें कुछ आलोचना करना आवश्यक है। युक्त वैराग्य और फल्गु वैराग्यमें क्या भेद है, जब तक इसे पूरी तरह समझ न लिया जाय, तब तक संशय दूर नहीं हो सकता। श्रीरूप गोस्वामीने युक्त वैराग्यका यह लक्षण बतलाया है—

अनासक्तस्य विषयान् यथाऽर्हमुपयुञ्जतः।
निर्बन्धः कृष्णसम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते॥

और फल्गु वैराग्यका लक्षण—

प्रापञ्चिकतया बुद्ध्या हरिसम्बन्धिवस्तुनः।
मुमुक्षुभिः परित्यागो वैराग्यं फल्गु कथ्यते॥

इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण करने योग्य समस्त विषयोंको कृष्ण-सम्बन्धी जानकर, अनासक्त होकर यथायोग्यरूपमें ग्रहण करनेको 'युक्त वैराग्य' कहते हैं। इन्द्रियाँ स्वभाविक रूपमें विषयोंकी तरफ अवश्य दौड़ेंगी। पूर्व-महाजनोंने जीव कल्याणके लिये कृष्णार्चन-पद्धतिकी व्यवस्था की है; उन्हीं क्रियाओंमें विषयको कृष्णसेवाका उपकरण मानकर ग्रहण करनेसे कृष्ण-संसारमें रहने पर क्रमशः वैराग्य हो सकता है।

पक्षान्तरमें इस प्रकार हरि-सम्बन्धी वस्तुओं

और व्यक्तिओंको संसारी विषय मानकर उनसे छुटकारा पानेके लिये जो वैराग्यका मार्ग अवलम्बित होता है, वह फल्गु वैराग्य है। साधनकालमें पहले-पहले संसार-सम्बन्ध त्यागकर साधन कैसे हो सकता है और वह साधन कितने दिनों तक चल सकता है? फल पानेकी तो कोई आशा ही उस साधनमें नहीं है।

भक्तिके क्रम-विकाशका विचार करने पर हम यह देख पाते हैं कि पहले-पहले संसारी जीवको किसी सुकृतिके प्रभावसे कृष्णभक्तिके प्रति श्रद्धा होती है। 'कृष्णभक्ति मेरा नित्यधर्म है, इसके अतिरिक्त मुझे और कुछ भी नहीं चाहिए'—ऐसे साधु-उपदेशके प्रति दृढ़ विश्वासका नाम ही श्रद्धा है। ऐसी श्रद्धाका उदय होने पर साधु-गुरुका संग करना चाहिए। सत्सङ्गमें क्रमशः भजन-शिक्षाके पथ पर अग्रसर हुआ जा सकता है। निर्बन्धिनी मतिके साथ भजन करने पर थोड़े ही दिनोंमें साधकके सारे अनर्थ दूर हो जाते हैं।

भक्तियोगेन मनसि सम्यक् प्रणिहितेऽमले।
अपश्यत् पुरुषं पूर्णं मायाञ्च तदपाश्रयाम्।।
यया सम्मोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम्।
परोऽपि मनुतेऽनर्थं तत्कृतञ्चाभिपद्यते।।
अनर्थोपशमं साक्षाद्भक्तियोगमधोक्षजे।
मायामुग्धस्य जीवस्य ज्ञेयोऽनर्थश्चतुर्विधः।
हृदौर्बल्यञ्चापराधोऽसत्तृष्णा तत्त्वविभ्रमः।।
स्वतत्त्वे परतत्त्वे च साध्य-साधन-तत्त्वयोः।
विरोधि-विषये चैव तत्त्वभ्रमश्चतुर्विधः।।
ऐहिकेष्वेषणा पारत्रिकेषु चैषणाऽशुभा।
भुक्तिवांछा मुमुक्षा च ह्यसत्तृष्णा चतुर्विधाः।।
कृष्णनाम-स्वरूपेषु तदीय चित्कणेषु च।
ज्ञेया बुधगणैर्नित्यमपराधाश्चतुर्विधाः।।
तुच्छासक्तिः कुटिनाटी मात्सर्यं स्वप्रतिष्ठता।
हृद्दौर्बल्यं बुधैः शश्वज्ज्ञेयं किल चतुर्विधम्।।

इन अनर्थोंमें स्वरूप-विभ्रम ही सर्वप्रधान अनर्थ है। श्रीमद्भागवतमें भी बतलाया गया है—

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्या-
दीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः।
तन्माययातो बुध आभजेत्तं-
भक्त्यैकयेशं गुरु देवतात्मा।।

'मैं अमुक शर्मा हूँ, मेरे कर्म, मैं भोग करता हूँ'—इस प्रकारके जड़ीय अहंकारसे ही सब दुःख उत्पन्न होते हैं। भजनके प्रभावसे क्रमशः ये अहंकार दूर होते हैं। इस अहंकारसे क्रमशः निवृत्तिको वैराग्य कहते हैं और पूर्ण निवृत्तिको मुक्ति कहते हैं। अतएव वैराग्य और मुक्ति एक ही तत्त्व हैं। क्रमविकाशके पथमें पहले वैराग्य और अन्तमें मुक्ति होती है। मुक्त पुरुष ही प्रेमभक्तिके अधिकारी हैं।

इस भयङ्कर संसार-बन्धनको एक ही क्षणमें छेदन करना कठिन है। अतएव कृष्णसे इतर विषयोंके प्रति युक्त वैराग्य अवलम्बित हुए बिना भजन नहीं होता और भजन हुए बिना प्रयोजनकी सिद्धि नहीं होती। जो लोग मनमाने ढङ्गसे सम्पूर्ण संसार-बन्धनका छेदन क्षण भरमें ही करनेकी चेष्टा करते हैं, वे फल्गु वैराग्यका अवलम्बन करते हैं और अन्तमें निराशा ही फलके रूपमें उन्हें प्राप्त होता है।

'एवं निर्विषयं चेतः क्रमाद्भवति नान्यथा।
क्रमं विसृज्य रभसादारुरुक्षुः पतत्यधः।।

जिन्होंने भजनके क्रम-विकाशको भलीभाँति नहीं समझा है, वे आरुरुक्षु—साधन-मार्गमें ऊपर चढ़ने वाले व्यक्ति कुछ ही दिनोंमें उस अवस्थासे नीचे गिरेंगे ही—यह नैसर्गिक धर्म है। अतएव

जो भजन करना चाहते हैं, उनको युक्त वैराग्यका अबलम्बन अवश्य ही करना चाहिए। दो अवस्थाओंमें कौपीन धारण करके घर-बार छोड़ा जा सकता है। पहली अवस्था—भजन हो रहा है, परन्तु घरके लोग उसके भजनमें बाधक होते हैं; दूसरी अवस्था—हृदयमें सम्पूर्ण रूपमें संसारके प्रति वैराग्य उदय हो जाय तथा घर-बार अच्छा नहीं लगे। इनमें पहली अवस्थामें सद्‌गुरुके उपदेश और अपनी सद्‌बुद्धिके द्वारा वास्तव स्थितिका विचार करके ही गृहत्याग करना चाहिए। कृष्ण-भजन स्वभाव और तात्पर्य समझकर स्थिर मतिसे जो भजन प्रारम्भ करते हैं, वे बहुत ही अल्प समयमें भक्तिपथ पर आगे बढ़ जाते हैं—उनके अनर्थ कुछ-कुछ दूर होने लगते हैं, धीरे-धीरे उनकी श्रद्धा परिपक्व होकर निष्ठा और निष्ठा परिपक्व होकर नैष्ठिकी भक्ति हो पड़ती है।

सद्धर्मस्यावबोधाय येषां निर्बन्धिनी मतिः।
अचिरादेव सर्वार्थः सिद्धयत्येषामभीप्सितः।।

भजन चालू हो गया। धीरे-धीरे अनर्थ और भी अधिक परिमाणमें साफ होनेसे भक्ति-सम्बन्धी निष्ठा रुचि हो पड़ती है। इस पद्धतिसे भक्ति-विषयनी आसक्ति कुछ ही दिनोंमें भावरूपा बन जाती है। इसी पद्धतिसे पूर्व कथित भावरूप आसक्ति रति हो पड़ती है। यह भाव-रति क्रमशः इसी प्रकार भक्तिरसमें बदल जाती है। यही भक्तिका विकाश-क्रम है। साथ-ही-साथ विरक्ति भी अर्थात् ज्ञान और वैराग्य भी मुक्तिके रूपमें बदल कर कृष्णकी कृपासे भक्तिके स्वरूपमें सायुज्य प्राप्त करते हैं। उस दशामें अखण्ड प्रेम पूर्णचन्द्रकी भाँति उदित होकर अपनी अप्राकृत सच्चिदानन्दरूपी ज्योत्सनाका विस्तार कर साक्षात् व्रजरसको उदित करता है।

भजनके विकाशका स्वरूप क्या है? इस पर विचार होना आवश्यक है। कृष्ण और उनका सारा परिचय—अप्राकृत, पूर्ण और सच्चिदानन्द-तत्त्व है। जीव इस तत्त्व सूर्यका किरण-कण होकर सम्पूर्ण आनन्द भोग करनेका योग्यपात्र है। वर्तमान अवस्थामें जीव मायाबद्ध है। इस मायाबद्ध अवस्थामें जीव अपना स्वरूप, कृष्ण-स्वरूप और दोनोंका परस्पर सम्बन्ध—सब कुछ भूला हुआ है। इस भूलको दूरकर अपने स्वरूपका प्रकाश करनेके लिये जो चेष्टा होती है, उसीका नाम साधन-भजन है। जब स्वरूपका उदय होने लगता है, उस दशाके भजनको भाव-भजन कहते है तथा उसके सम्पूर्ण उदित होने पर प्रेम-भजन हो पड़ता है।

अप्राकृत तत्त्वकी खोजकी चेष्टाका नाम ही साधन-भजन है। बद्धजीवोंके छिपे हुए अप्राकृत शुद्ध भावको प्रकट करनेके लिये ही साधनकी आवश्यकता है। ऐसे साधनके बिना जीव अपने छिपे या भूले हुए स्वरूपको फिरसे प्राप्त नहीं कर सकता। इसके लिये कुछ शुद्ध चेष्टा और कुछ कृष्णकी कृपा भी अपेक्षित है। इस पद्धतिको वाणीद्वारा वर्णन करना तथा मन द्वारा चिन्तन करना कठिन है। सुकृति-सम्पन्न साधक सद्‌गुरुके भक्तिभाव तथा चरित्र (आचरण) का अनुसरण करता हुआ जब इस संसारके मायिक द्रव्य, देश, काल, शरीर, चिन्तन, गृह, भोजन और वस्त्रादिमें अप्राकृत भावको मिश्रित कर भजन करता है, तब वह स्वभावतः ही अकिंचन होकर कृष्णके

चरणोंमें शरणागत होकर तथा निष्कपट होकर आत्म-दुःखको निवेदन करता है। उसकी निष्कपट प्रार्थनासे प्रसन्न होकर कृष्ण उस हृदयके मैलको साफ कर देते हैं तथा वहाँ अपने अप्राकृत तत्त्वको प्रकाशित कर देते हैं। उस तत्त्वके आलोकसे साधकके अप्राकृत नेत्र खुल जाते हैं—

अद्वैतमच्युतमनादिमनन्तरूप-
माद्यं पुराणपुरुषं नवयौवनञ्च।
वेदेषु दुर्लभमदुर्लभमात्मभक्तौ
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।
प्रेमाञ्जनच्छुरित-भक्ति-विलोचनेन
सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति।
यं श्यामसुन्दरमचिन्त्य-गुणस्वरूपं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।

इस प्रकार कृपाका दर्शन होनेपर वास्तवमें अप्राकृत भजन होने लगता है तथा विकाश भी सहज ही होता है। विमुख-चेष्टा, असतृष्णा, उदासीनता, जड़ता और असत्संग—ये सब अप्राकृत चेष्टाके मार्गमें महाबाधक हैं। असल बात तो यह है कि प्राकृत चेष्टासे अप्राकृतकी प्राप्ति नहीं होती है। कृष्णमें दृढ़ रूपमें मति लग जानेपर अप्राकृत देश, काल और द्रव्यमें भी कृष्णके प्रति दृढ़ चेष्टा रह सकती है। कृष्णमें दृढ़तापूर्वक मति लगनेको कृष्णनिर्बन्धिनी मति कहते हैं। तदाश्रयमें प्राथमिक भजन होता है, परन्तु प्राथमिक भजनके समय साधु-गुरुकी कृपासे जो लोग कृष्ण-निर्बन्धिनी मति प्राप्त होनेकी चेष्टा नहीं करते, वे किसी भी प्रकार भजनमें उन्नति नहीं कर सकते। इसलिये विशेष यत्नपूर्वक सद्गुरुका वरण करनेसे ही सिद्धि होती है। असद्गुरुका वरण करनेसे केवल निष्फल लौकिक साधनोंकी ही प्राप्ति होती है। श्रीमद्भागवत (२/३/२४) में श्रीशुकदेव गोस्वामी कहते हैं—

तदश्मसारं हृदयं वतेदं
यद्गृह्यमानैर्हरिनामधेयैः।
न विक्रियेताथ यदा विकारो
नेत्र जलं गात्ररुहेषु हर्षः।।

अब मैं आदर्श वैरागी महात्माओंके आचरणके सम्बन्धमें जो महाजन आचार्योंकी वाणियाँ हैं तथा शास्त्रोंकी शिक्षाएँ हैं, उनका यहाँ उल्लेख करता हूँ—

सुनि तुष्ट हइया प्रभु कहिते लागिल।
भाल कैला वैरागीर धर्म आचरिला।।
वैरागी करिबे सदा नाम संकीर्त्तन।
मागिया खाइया करे जीवन रक्षण।।
वैरागी हइया येवा करे परापेक्षा।
कार्यसिद्धि नहे, कृष्ण करेन उपेक्षा।।
वैरागी हइया करे जिह्वार लालस।
परमार्थ याय, आर हय रसेर वश।।
वैरागीर कृत्य सदा नाम-संकीर्त्तन।
शाक-पत्र फल-मूले उदर भरण।।
जिह्वार लालसे येइ इति-उति धाय।
शिश्नोदर-परायण कृष्ण नाहि पाय।।
ग्राम्यकथा न सुनिबे ग्राम्यवार्ता न कहिबे।
भाल न परिबे, आर भाल न खाइबे।।
अमानी मानद कृष्णनाम सदा लबे।
व्रजे राधाकृष्ण-सेवा मानसे करिबे।।

श्रीमद्भागवतमें भी—

प्राणवृत्त्यैव सन्तुष्येन्मुनिर्नैवेन्द्रियप्रियैः।
ज्ञानं यथा न नश्येत नावकीर्येत् वाङ्मनः।।

श्रीचैतन्यन्द्रोदय नाटकमें श्रीचैतन्य महाप्रभुकी वाणी—

निष्किञ्चनस्य भगवद्भजनोन्मुखस्य
पारं परं जिगमिषोर्भवसागरस्य।
सन्दर्शनं विषयिणामथ योषिताञ्च
हा हन्त हन्त विषभक्षणतोऽप्यसाधु।।
न शिष्याननुध्नीत ग्रन्थान्नैवाभ्यसेद्बहून्।
न व्याख्यामुपयुञ्जीत नारम्भानारभेत् क्वचित्।।
(भागवत)
अलब्धे वा विनष्टे वा भक्ष्याच्छादनसाधने।
अविक्लवमतिर्भूत्वा हरिमेव धिया स्मरेत्।।
शोकामर्षादिभिर्भावैराक्रान्तं यस्य मानसम्।
कथं तत्र मुकुन्दस्य स्फूर्तिःसंभावना भवेत्।।
(पद्मपुराण)
यावता स्यात् स्वनिर्वाहः स्वीकुर्यात्तावदर्थवित्।

तात्पर्य यह है कि वैराग्य चिह्न—कौपीन धारण करनेके पश्चात् वनवास, भक्तोंके देवालयों या विशुद्ध तीर्थोंमें ही वास करना चाहिए, विषयी लोगोंका सङ्ग छोड़ देना चाहिए, कृष्णकी कृपासे प्रतिदिन जो कुछ मिले उसीसे सन्तुष्ट हो जाना चाहिए, संचय नहीं करना चाहिए तथा किसीके साथ व्यर्थकी बातें न करके दिन-रात कृष्ण कीर्तन करना चाहिए। मृत्यु होनेपर शरीरका क्या होगा—इस विषयमें चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

संत (सज्जन) के लक्षण

—ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर

कवि——२४

काव्य और कविकी संज्ञा; जड़ काव्य और जड़ कवियोंसे सज्जन पुरुषका भेद

रसात्मक वाक्यको काव्य कहते हैं। काव्य रचयिता और काव्य आस्वादकको कवि कहते हैं। काव्य दो प्रकारका होता है—ग्राम काव्य और अप्राकृत काव्य। रस साधारणतः बारह प्रकारका होता है। इनमें पाँच स्थायी और सात गौण हैं। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—ये पाँच मुख्य या स्थायी रस हैं। हास्य, करुण, वीर, अद्भुत, रौद्र, वीभत्स और भयानक—ये सात गौण रस हैं, जो मुख्य रसकी पुष्टि करते हैं। प्रकृतिके अन्तर्गत रससमूह जड़काव्यके उपादान हैं। इनमें प्राकृत, नश्वर, अनुपादेय नायक-नायिका आलम्बनके रूपमें अचित् उद्दीपना द्वारा प्रचालित होकर अनुभाव, सात्त्विक और संचारी सामग्रियोंके साथ स्थायीभाव रतिके समिश्रणसे रसकी उद्भावना करते हैं। यह नितान्त विरस और काव्य-नामके अयोग्य होता है। सज्जन ऐसे कुकवि नहीं हुआ करते। वे अप्राकृत रसात्मक वाक्यमय काव्यमें सुपण्डित होते हैं। अप्राकृत काव्यके नायक व्रजेन्द्रनन्दनको आश्रयकर जो काव्य निर्झरित होते हैं, वे ही सज्जनोंके आस्वादनीय विषय हैं।

ग्राम्य कविके काव्य सिद्धान्त-विरुद्ध और रसाभास दोषसे दूषित होते है। सज्जन-प्रवर श्रीदामोदर स्वरूपने कहा है—

ग्राम्य-कविर कवित्व सुनिते हय दुःख।
'यद्वा-तद्वा' कविर वाक्ये हय रसाभास।।
(चै० च० अ० ५/१०७, १०२)

जड़ कवि अतात्त्विक, नास्तिक और मायावादी होता है। अप्राकृत रस-तत्त्वके मर्मज्ञ

श्रीस्वरूप गोस्वामीने एक प्राकृत मायावादी जड़ कविका चित्र बड़े मार्मिक शब्दोंमें व्यक्त किया है। एक बार पुरीमें एक जड़ कवि श्रीचैतन्य महाप्रभुको अपना एक काव्य सुनानेके लिये उनके भक्तोंसे बार-बार आग्रह करने लगा। श्रीमन्महाप्रभुका ऐसा नियम था कि वे केवल श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा परीक्षा किये गये काव्य, गीत आदि ही श्रवण करते थे। जब जड़ कविने स्वरूप दामोदरको अपना काव्य सुनाया, तो वे बड़े दुःखित हुए और बिगड़ कर बोले—तुमने बड़ा ही अनर्थ कर डाला है। भगवान् श्रीजगन्नाथदेव पूर्णानन्द और पूर्ण सच्चिदानन्द स्वरूप हैं, परन्तु तुमने उनको प्राकृत, जड़, नश्वर, शरीरमात्र माना है। दूसरा अपराध तुमने यह किया है कि श्रीचैतन्य देव षडैश्वर्यपूर्ण स्वयं-भगवान् हैं; परन्तु तुमने उनको एक क्षुद्र अणुचैतन्य जीव बना दिया है—

पूर्णानन्द-चित्स्वरूप जगन्नाथ राय।
ताँरे कैले जड़ नश्वर-प्राकृत काय।।
पूर्ण षडैश्वर्य चैतन्य—स्वयं भगवान्।
ताँरे कैले क्षुद्र-जीव स्फुलिंग समान्।।

(चै. च. अ० ५/११८-१९६)

यहाँ पर श्रीस्वरूपदामोदर गोस्वामीने यह दिखलाया है कि भगवान्के शरीरको जड़ बतलाना अथवा भगवानमें शरीरी और शरीरका भेद दर्शन करना—ये दोनों भयङ्कर अपराध हैं। अप्राकृत तत्त्वसे अनभिज्ञ जड़ कवि इन तत्त्वोंको अनुभव करने या समझनेमें असमर्थ है। इसलिए अप्राकृत तत्त्वके सम्बन्धमें वह जो कुछ कहतौ या लिखता है, उसमें दोष रहना अवश्यंभावी है। सज्जन पुरुष ऐसे काव्य श्रवण नहीं करते। श्रवण करनेसे उन्हें दुःख ही होता है। अप्राकृत रसज्ञोंके काव्यमें ये दोष संभव नहीं। अतएव सज्जन पुरुष अप्राकृत कवियोंके काव्यका बार-बार श्रवण करके भी तृप्त नहीं होते; उनको बड़ा आनन्द होता है। श्रीस्वरूपदामोदर गोस्वामी एक तरफ जहाँ जड़ कविको भर्त्सना करते हैं, वहीं दूसरी तरफ वे अप्राकृत कवि श्रीरूपगोस्वामीके काव्यकी भूयसी प्रशंसा करते हैं—

रूप जैछे दुई नाटक करियाछे आरंभ।
सुनिते आनन्द बाड़े यार मुखबन्ध।।
दुई श्लोक कहि प्रभुर हैल महासुख।
निज भक्तेर गुण कहे हञ पंचमुख।।
कह, तोमार कवित्व सुनि हय चमत्कार।
राय कहे-'तोमार कवित्व अमृतेर धार।।

(चैतन्यचरितामृत)

राय कहे—'रूपेर काव्य अमृतेर धार।'

(चैतन्यचरितामृत)

रूपेर कवित्व प्रशंसि सहस्त्र वदने।

(चैतन्यचरितामृत)

मधुर प्रसंग इँहार काव्य अलंकार।
ऐछे कवित्व विना नहे रसेर प्रचार।।

(चैतन्यचरितामृत)

जड़ और अप्राकृतमें नित्य भेद है, ग्राम्य-कवि अप्राकृत-कवियों और अप्राकृत काव्योंका अनादर करते हैं

ग्राम्य कविकी कविताओंके आस्वादक वास्तवमें कवित्वकी उपलब्धि करनेमें असमर्थ होते हैं। ये लोग ग्राम्य कविताओं और ग्राम्य कवियोंको ही श्रेष्ठ समझते हैं। राय रामानन्द, एवं स्वयं स्वरूप श्रीदामोदर अभिन्नव्रजेन्द्रनन्दन श्रीगौरसुन्दरने श्रीरूपके काव्यकी बड़ी सराहना

की है, जिसे आधुनिक ग्राम्यरसके रसिक कतिपय तथाकथित साहित्यिक आदरकी दृष्टिसे नहीं देखते। यदि ये लोग सज्जन होते, तो ग्राम्य कवियों और उनके काव्योंकी अनुपादेयता और त्रुटियोंको हृदयङ्गम कर पाते और हरिप्रेमोन्मत्त कवियोंके काव्योंका उत्कर्ष स्वीकार किये बिना न रह सकते। लोगोंकी रुचि भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। दुर्जनकी रुचि और सज्जनकी रुचिमें भेद है, मूर्ख और पण्डितकी रुचिमें भेद है, अज्ञ और अभिज्ञकी रुचि पृथक्-पृथक् होती है। इसी प्रकार जड़ रसके रसिकों और भगवद्रसके रसिकोंमे निश्चय ही भेद है।

यथार्थ कवि कौन हैं

संत अर्थात् सज्जन पुरुषोंमें ही कवित्वका सौन्दर्य पूर्णरूपसे विकसित होता है। परन्तु जड़-रसके रसिक उसका आस्वादन करनेमें असमर्थ होते हैं। परम भागवत, सज्जनशरोमणि श्रीहंसवाहन ब्रह्मा, बाल्मीकि और श्रीवेदव्यासने भगवद्रसका वर्णन किया है तथा उसका आस्वदन किया है, ये सज्जन शिरोमणि ही 'महाकवि' के नामसे प्रसिद्ध हैं। इनके अनुगत अनेक सज्जनवृन्द भी कविके नामसे प्रख्यात हैं। आज भी साहित्यके भंडारमें वैसी-वैसी अमूल्य निधियोंको साहित्य-भण्डारसे निकाल देने पर उसका मूल्य ही क्या रह जाता है? इसे तो साहित्यिक और कवि-परिचयाकांक्षी ग्राम्य कवि भी विचार कर देख सकते हैं।

असत् समाजकी चेष्टाओंका उद्देश्य

असत् समाजमें एक ऐसी रुचि भी प्रबल है कि हरिरस-मदिरापानोन्मत्त व्यक्तियोंको कवि न माना जाय। बल्कि कवि उन्हें कहा जाय जो जड़ मदिरामत्त, इन्द्रियपरायण, निरीश्वर और दुर्नीतिपरायण हैं। सज्जन पुरुष इसका कदापि अनुमोदन नहीं कर सकते। श्रीजयदेव, श्रीविल्वमंगल आदि सज्जनोंका अनादर कर जो लोग ग्राम्य कवियोंका आदर करते हैं, वे सज्जन-समाजमें प्रवेश करेंगे—इसकी आशा नहीं। बिना सज्जन हुए यथार्थ कवि नहीं हुआ जा सकता है। श्रीचैतन्यचरितामृतके लेखक परम सज्जन श्रीकृष्णदास 'कविराज' नामसे ही प्रसिद्ध हैं। सज्जन नित्य कवि होते हैं, चिन्मय और आनन्दमय होते हैं। उनके काव्योंकी तुलना दूसरोंसे नहीं की जा सकती है।

श्रीगौराङ्ग-सुधा

—श्रीमान् परमेश्वरी ब्रह्मचारी

निमाईका उपनयन संस्कार तथा गंगादास पण्डितके पास गमन

श्रीजगन्नाथमिश्रने देखा कि निमाई आठ वर्षका हो गया है, अतः शास्त्रानुसार इसका उपनयन संस्कार करना चाहिए, जिससे कि इसका विधिपूर्वक विद्या-अध्ययन आरम्भ हो सके। क्योंकि बिना उपनयन संस्कारके विद्या-अध्ययन नहीं किया जा सकता। इसलिए शुभदिन देखकर श्रीजगन्नाथमिश्रने अपने समस्त बन्धु-बान्धवोंको अपने घरपर बुलाया। गौरसुन्दरके उपनयन संस्कारकी बात सुनकर सभी लोग आनन्दपूर्वक वहाँ पर उपस्थित हुए तथा अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार काम-काज करने लगे। स्त्रियाँ हरिनाम संकीर्त्तन करने

लगीं तथा ब्राह्मण लोग सुस्वरसे वेदपाठ करने लगे। इस प्रकार शचीमाताका घर आनन्दसे भर गया। श्रीगौरसुन्दर उपवीत धारण करेंगे, यह जानकर समस्त प्रकारके शुभ लग्न एवं मुहूर्त शचीमाताके घर उपस्थित हो गये। इस प्रकार शुभ मास, शुभदिन तथा शुभ क्षणमें श्रीगौरसुन्दरने यज्ञसूत्र (उपवीत) धारण किया। उस समय उनके श्रीअंगपर वह उपवीत इस प्रकार शोभायमान होने लगा, मानो स्वयं आनन्ददेव ही सूत्ररूप धारणकर उनके श्रीअंगसे लिपट गये हों। गौरसुन्दरके उस अपूर्व रूपको देखकर ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे वहाँ पर स्वयं वामन भगवान् ही अवतरित हो गये हों। उनके श्रीअंगसे अद्भुत ब्रह्मतेज निकल रहा था। हाथमें दण्ड और कन्धेपर भिक्षाकी झोली धारणकर आज भगवान् श्रीगौरसुन्दर स्वयं अपने भक्तोंके घर-घर जाकर भिक्षा माँगने लगे। जिसकी जैसी सामर्थ्य थी, उसीके अनुरूप प्रभुको भिक्षा देकर स्त्रियाँ हँसने लगी। प्रभुके उस वामनरूपका दर्शन करनेके लिए तो ब्रह्माणी, रूद्राणी (पार्वती) देवताओंकी स्त्रियाँ तथा ऋषि-मुनियोंकी स्त्रियाँ भी ब्राह्मणीका वेश धारणकर नवद्वीपमें उपस्थित हुईं। वे गौरसुन्दरके वामनरूपका दर्शनकर परम आनन्दित होकर हँसते हुए उनकी झोलीमें भिक्षा प्रदान करने लगीं। इस प्रकार यज्ञोपवीत धारण करनेके पश्चात् गौरसुन्दरकी गंगादास पण्डितके निकट विद्या-अध्ययन लीलाकी इच्छा हुई, जो कृष्णलीलामें सन्दीपन मुनि थे। उनकी इच्छा जानकर एक दिन जगन्नाथमिश्र श्रीगौरसुन्दरको साथ लेकर श्रीगंगादास पण्डितके घर पहुँचे। श्रीजगन्नाथमिश्रको अपने घर आया देखकर गंगादासने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें गलेसे लगा लिया तथा उन्हें बैठनेके लिए आसन प्रदान किया। आसनपर बैठनेके पश्चात् श्रीजगन्नाथमिश्र बोले—"पण्डित जी। मैं अपना पुत्र आपको प्रदान कर रहा हूँ। आप कृपापूर्वक इसे पढ़ा-लिखाकर योग्य बनाएँ।"

गंगादास—"अहो! यह तो मेरा परम सौभाग्य है। आप चिन्ता न करें। मैं अपनी सामर्थ्यके अनुसार अवश्य ही इसे पढ़ाऊँगा।"

श्रीगौरसुन्दरको शिष्यरूपमें पाकर गंगादास बहुत आनन्दित हुए। वे अपने पुत्रके समान स्नेहपूर्वक उन्हें पढ़ाने लगे। गंगादास उन्हें जो कुछ पढ़ाते थे, गौरसुन्दर उसे एकबार मात्र सुननेसे ही याद कर लेते। इतना ही नहीं यहाँ तक कि अपने गुरुकी बातोंका खण्डन कर पुनः उन्हें स्थापित भी कर देते थे। गंगादास पण्डितके विद्यालयमें उनके छात्र विद्याध्यन करते थे, परन्तु उनमें से किसीकी सामर्थ्य नहीं होती थी कि श्रीगौरसुन्दरके विचारोंका खण्डन कर सके। उनकी ऐसी अद्भुत बुद्धिको देखकर गंगादास पण्डितने प्रसन्न होकर उन्हें सर्वश्रेष्ठ शिष्यकी उपाधिसे विभूषित किया। गौरसुन्दर सर्वदा ही अन्यान्य विद्यार्थियोंको शास्त्रार्थमें पराजित कर देते थे। अध्ययनके पश्चात् वे अपने सखाओंके साथ गंगास्नानके लिए चले जाते। जहाँ पर अन्यान्य अध्यापकोंके भी शिष्य आते थे। चञ्चल स्वभाव होनेके कारण ये उन सभी छात्रोंसे शास्त्रार्थ करने लग जाते। परन्तु पराजित हो जानेके पश्चात् वे छात्र क्रोधित हो जाते, जिससे गौरसुन्दरके दलवाले छात्रों एवं उन छात्रोंमें लड़ाई-झगड़ा होने लगता। इस कारण जल भरनेके लिए आई

स्त्रियों एवं स्नान करनेके लिए आए सज्जनोंको बहुत असुविधा होती। उनसे जेष्ठ्य छात्रोंने उन्हें जब इस प्रकार लड़ते-झगड़ते देखा तो उनसे पूछा—"तुमलोग आपसमें झगड़ा क्यों कर रहे हो? किसकी कितनी बुद्धि है अभी परीक्षाके द्वारा सिद्ध हो जायेगा।"

गौरसुन्दर—"अच्छी बात है। जिसकी जो इच्छा हो मुझसे पूछो, समुचित उत्तर प्रदान करूँगा।"

छात्र—"अरे निमाई! तुझे इतना अहंकार क्यों है?"

गौरसुन्दर—"तुमलोगोंके मनमें जो प्रश्न हो मुझे पूछकर देखो, उसके बाद बात करना।"

यह सुनकर उनमेंसे एक छात्रने धातुके एक सूत्रकी व्याख्या करनेके लिए कहा।

श्रीगौरसुन्दर—"ठीक है, अब तुम ध्यानपूर्वक इस सूत्रकी व्याख्या सुनो, मैं व्याख्या कर रहा हूँ।"

यह कहकर सर्वशक्तिसम्पन्न भगवान् श्रीगौरसुन्दरने बहुत ही सुन्दर ढंगसे उस सूत्रकी व्याख्या की, जिसे सुनकर सभी छात्र विस्मित होकर उनकी प्रसंशा करने लगे।

गौरसुन्दर कहने लगे कि मैं अब अपनी ही व्याख्याका खण्डन कर रहा हूँ। यह कहकर उन्होंने ऐसा सुन्दर खण्डन किया कि सबको ऐसा प्रतीत होने लगा कि यही व्याख्या ठीक है। परन्तु अगले ही क्षण श्रीगौरसुन्दर पुनः बोले कि अब मैं पूर्व व्याख्याको पुनः स्थापित करता हूँ। यह कहकर उन्होंने बहुत ही सुन्दर ढंगसे पुनः पूर्व व्याख्याकी स्थापना भी कर दी। यह देखकर सभी छात्र आश्चर्यचकित होकर विचार करने लगे कि क्या यह कोई साधारण बालक है, क्योंकि साधारण बालककी ऐसी बुद्धि सम्भव नहीं है। सभी छात्र श्रीगौरसुन्दरका सम्मान करने लगे।

जगन्नाथ मिश्रका स्वप्न

जगन्नाथमिश्र भी अपने पुत्र की विलक्षण बुद्धि एवं कामदेवको भी पराजित करनेवाले सुन्दर रूपका दर्शनकर सदा-सर्वदा आनन्द सागरमें डूबे रहते। साथ-ही-साथ उन्हें यह भय लगा रहता कि कहीं मेरे पुत्रको कोई भूत-प्रेत न पकड़ ले। इसलिए वे भगवान्‌से प्रार्थना करते कि आप सबकी रक्षा करने वाले हैं, अतः मेरे पुत्रकी भी रक्षा कीजिए, जिससे कोई भी मेरे पुत्रका अनिष्ट न कर सके। यह सुनकर गौरसुन्दर मुस्कराने लगते।

एक दिन जगन्नाथमिश्रने एक स्वप्न देखा, जिससे वे बहुत दुःखी हो गये तथा भगवान्‌के श्रीचरणोंमें दण्डवत् प्रणाम करते हुए प्रार्थना करने लगे—"हे गोविन्द! हे कृष्ण! मैं आपसे यही वर माँगता हूँ कि मेरा निमाई गृहस्थ होकर घर पर ही रहे।"

उन्हें इस प्रकार प्रार्थना करते हुए देखकर शचीमाताने उनसे पूछा—"क्या बात है, आप आज अकस्मात् भगवानसे ऐसी प्रार्थना क्यों कर रहे हैं?"

मिश्र—"आज मैंने एक स्वप्नमें देखा कि निमाईने अपना मस्तक मुण्डन कराकर अद्भुत सन्यासी वेष धारण कर रखा है। वह रोते-रोते कृष्ण-कृष्ण बोलते हुए कभी नाच रहा है, कभी गा रहा है तथा अद्वैताचार्य, श्रीवास आदि हजारों भक्तलोग उसे घेरकर कीर्तन कर रहे हैं। कभी निमाई विष्णुके सिंहासनपर बैठकर सबके सिरपर अपना चरण रख रहा है। ब्रह्म, शिव,

शेष एवं समस्त देवतावृन्द आदि आनन्दमें भरकर 'जय श्रीशचीनन्दन! जय श्रीशचीनन्दन! कहते हुए जयगान कर रहे हैं, तथा आनन्दित होकर स्तव-स्तुति कर रहे हैं। यह देखकर भयके मारे मेरे मुखसे एक शब्द नहीं निकला।

"अगले ही क्षण मैंने देखा कि करोड़ों लोगोंको साथ लेकर निमाई नाचते-गाते हुए नगर-नगरमें भ्रमण कर रहा है। करोड़ों लोग 'हरि बोल हरि बोल' बोलते हुए निमाईके पीछे-पीछे चल रहे हैं। उस समय उस 'हरि बोल' की ध्वनिसे सारा ब्रह्माण्ड गूँजने लगा। फिर मैंने देखा कि चारों ओर निमाईकी स्तुति की जा रही है तथा निमाई हजारों भक्तोंके साथ नीलाचलकी ओर जा रहा है। ऐसा स्वप्न देखकर मैं बहुत चिन्तित हूँ कि कहीं ऐसा न हो कि निमाई संसारसे विरक्त होकर संन्यास-वेश धारणकर गृहत्याग कर दे।"

शचीमाता—"आप व्यर्थ ही चिन्ता कर रहे हैं। आपने तो यह एक दुःस्वप्न देखा। स्वप्न भी कहीं सच होता है? आप स्वयं विचार तो कीजिए। निमाई सब समय विद्या अध्ययनमें डूबा रहता है। अतः उसे इतनी फुर्सत ही कहाँ है कि वह इन सब विषयोंपर विचार करे।"

इस प्रकार वे दोनों पुत्र स्नेहके कारण नाना-प्रकारसे एक-दूसरेको सांत्वना प्रदान करते । यही चिन्ता करते-करते श्रीजगन्नाथमिश्रने अन्तर्धान लीला की अर्थात् उनका परलोक गमन हो गया। पिताके परलोक सिधारने पर श्रीगौरसुन्दर बहुत क्रन्दन करने लगे, ठीक उसी प्रकार जैसे महाराज दशरथके परलोक गमन करनेपर श्रीरामचन्द्र रोये थे। उस समय शचीमाताकी अवस्थाका क्या वर्णन किया जाए? एकमात्र श्रीगौरसुन्दरके प्रति स्नेह भावके कारण ही उनके प्राणोंकी रक्षा हुई। अब शचीमाता श्रीगौरसुन्दरको पितृहीन बालक जानकर पहलेकी अपेक्षा कई गुणा अधिक देख-रेख करने लगीं। वे सब समय उन्हें प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करतीं। श्रीगौरसुन्दर भी शचीमातासे बहुत प्रेम करते थे। इसलिए वे भी सब समय शचीमाताको प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करते तथा कहते—"माँ! तुम किसी प्रकारकी चिन्ता न करना। मैं जब तक तुम्हारे पास हूँ, तब तक तुम्हारे पास किसी चीजका अभाव नहीं होगा। ब्रह्मा, शिव आदिके लिए भी जो वस्तु दुर्लभ है, वह वस्तु मैं तुम्हें सहज ही लाकर दूँगा।"

अपने पुत्रके मुखसे ऐसी बातें सुनकर तथा उसका सुन्दर रूप देखकर आनन्दके कारण शचीमाता अपने शरीरकी सुध-बुध भी खो बैठती थीं।

कभी-कभी श्रीगौरसुन्दर अद्भुत लीला करते थे। उनके घरकी अर्थिक स्थिति दयनीय थी, परन्तु कभी-कभी वे ऐसी वस्तुकी माँग करने लगते, जो वस्तु घरपर उपलब्ध नहीं होती। परन्तु उन्हें इससे कोई मतलब नहीं, उन्हें तो वह वस्तु देनी ही पड़ेगी। नहीं देनेपर क्रोधित होकर घरके दरवाजे, बर्तन तोड़ डालते थे तथा खाने-पीनेकी सब चीजोंको घरमें चारों ओर बिखेर देते थे। यह सब देखते हुए भी शचीमाता पुत्र-स्नेहके कारण उन्हें डाँट-फटकार नहीं लगाती थीं तथा किसी दूसरेके घरसे भी लाकर उन्हें वह वस्तु देतीं। तब वे शान्त होते थे।

एक दिनकी बात है। गौरसुन्दर गंगा-स्नानके लिए जानेको तैयार हुए तथा शचीमातासे

बोले—"माँ! मैं गंगास्नानके लिए जा रहा हूँ। मुझे आँवलेका तेल, सुगन्धित माला तथा चन्दन दो। मैं गंगाजीकी पूजा करूँगा।"

शचीमाता—"बेटा! तू एक क्षणके लिए ठहर। मैं अभी बाजारसे माला लेकर आती हूँ।"

माँके मुखसे "अभी लेकर आती हूँ" इतना सुनना था कि श्रीगौरसुन्दरने रुद्र–रूप धारणकर लिया; गुस्सेमें दौड़ते हुए घरके अन्दर गये तथा गंगाजलके जितने बर्तन थे उन सबको तोड़ डाला। तत्पश्चात् हाथमें एक डंडा लेकर तेल, घी, नमक इत्यादिके बर्तनोंको चूर्ण–चूर्ण कर दिया, जिससे घी, तेल, दूध–नमक, चावल, दाल आदि घरमें चारों ओर फैल गये। इसके बाद घरमें जितने भी कपड़े सामने टँगे हुए थे, उन सबको चीर–फाड़कर टुकड़े–टुकड़े कर दिया। जब घरमें कुछ भी शेष नहीं बचा तो अब उनके क्रोधका शिकार हुआ घर। अपने दोनों हाथोंसे डंडा पकड़कर घरके ऊपर प्रहार करने लगे। इतने पर भी जब उनका क्रोध शान्त नहीं हुआ तो वे उस क्रोधको वृक्ष पर उतारने लगे। परन्तु क्रोध शान्त होनेका नाम ही नहीं ले रहा था। अन्तमें जब कुछ नहीं बचा तो पृथ्वीपर बरस पड़े तथा डंडा लेकर पृथ्वी पर प्रहार करने लगे। परन्तु इतना होनेपर भी उन्होंने धर्मका उल्लंघन नहीं किया अर्थात् शचीमातापर हाथ नहीं उठाया। अन्तमें डंडा फेंककर गुस्सेमें आँगनमें रोते–रोते लोट–पोट होने लगे। उनका सारा शरीर धूलसे भर गया। कुछ देर इसी तरह जमीन पर लोट–पोट खानेके पश्चात् वे शान्त होकर जमीन पर ही सो गये। अर्थात् निद्रादेवीके ऊपर कृपा दृष्टि की। [जो शेषशैय्या पर शयन करनेवाले हैं तथा श्रीलक्ष्मीदेवी अपने कोमल करकमलोंसे जिनके श्रीचरणकमलोंकी सेवा करती हैं, चारों वेद आज भी जिनका अन्वेषण कर रहे हैं, अनन्त–अनन्त ब्रह्माण्ड जिनके लोमकूपोंसे बाहर निकलते हैं तथा ब्रह्मा, शिव आदि जिनका गुणगान करते–करते प्रमत्त हो जाते हैं, वे प्रभु आज श्रीशचीमाताके आँगनमें एक भोले–भाले निर्बोध बच्चेकी भाँति जमीन पर सो रहे हैं।] शचीमाता सबकुछ छिपकर देख रही थीं। निमाईके सो जानेपर वे माला ले आईं। पूजाका सारा सामान एक थालीमें सजाकर धीरे–धीरे गौरसुन्दरके पास गईं तथा बड़े प्रेमसे उनके अंगोंको सहलाते हुए तथा धूल झाड़ते हुए उठाने लगीं—"बेटा निमाई! उठ–उठ, यह देख, मैं माला ले आई हूँ। अब गंगाजीकी पूजा करने जा।"

यह सुनकर श्रीगौरसुन्दर उठकर बैठ गये तथा पूजाकी थाली हाथमें लेकर अपनी करनीपर कुछ लज्जित–से होकर गंगा पूजाके लिए चल पड़े। इधर श्रीशचीमाताने घरको साफ किया तथा रसोई बनानेमें लग गईं। यद्यपि गौरसुन्दरने घरका इतना नुकसान कर दिया परन्तु शचीमाताको लेशमात्र भी दुःख या क्रोध नहीं आया। जिस प्रकार गोकुलमें श्रीयशोदा मैया कृष्णकी समस्त प्रकारकी शरारतोंको देखते हुए भी क्रोधित नहीं होती थीं, बल्कि कृष्णके प्रति उनका प्रेम और भी अधिक बढ़ जाता था, उसी प्रकार शचीमाताको भी गौरसुन्दरकी ऐसी करनीसे गुस्सा नहीं बल्कि उनके प्रति उनका असीम स्नेह उमड़ पड़ता था।

शचीमाताने रसोई बना ली। उसी समय

श्रीगौरसुन्दर गंगास्नान कर आ गये। घरमें आकर सर्वप्रथम उन्होंने भगवान्‌की पूजा की। तत्पश्चात् तुलसीजीको जल प्रदान कर तथा प्रणामकर प्रसाद पानेके लिए बैठे। जब उन्होंने भोजनकर लिया तथा आरामसे बैठकर ताम्बूल चबाने लगे, तब मैया धीरे-धीरे कहने लगीं—"अरे बेटा! यह घर तो तुम्हारा ही है फिर अपने ही घरमें नुकसान करनेसे क्या लाभ? अब घरमें कुछ भी नहीं बचा है। अभी तो पढ़ने जायेगा, परन्तु वहाँसे आकर क्या खायेगा?"

गौरसुन्दर (हँसते हुए)—"माँ! तुम क्यों चिन्ता कर रही हो? कृष्ण ही सबको पालने वाले हैं, अतः वे ही हमें भी खिलायेंगे।"

यह कहकर वे पुस्तक लेकर पढ़नेके लिए चले गये। जब सन्ध्याके समय वापस आए तो शचीमाताको एकान्तमें बुलाकर एक तोला सोना देते हुए कहने लगे—"मैया! मैंने कहा था ना कि कृष्ण ही पालन-पोषण करनेवलो हैं, वे हमारा भी पोषण करेंगे। कृष्णने हमें यह सोना दिया है। अब तुम जाकर इसे बेचकर खाने-पीनेकी एवं आवश्यक सामग्री ले आओ।"

ऐसा कहकर वे सोनेके लिए चले गये। परन्तु शचीमाता विस्मित होकर मन-ही-मन विचार करने लगी कि यह सोना ले आता है। न जाने यह कोई सिद्धि जानता है या कहींसे उधार लाता है अथवा कहींसे चुराकर लाता है। यह सोचकर वह उस सोनेको बेचनेमें भी डरती थी। दस-बीस लोगोंको दिखानेके बाद उनकी सलाहके अनुसार तब वे बाजारमें उसे बेचती थीं तथा घरकी आवश्यक सामग्रियाँ ले आती थीं।

शिव-तत्त्व

—श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

गतांकसे आगे

श्रीगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायमें शिवकी उपासना (आश्रय रूपमें)

समस्त गौड़ीय वैष्णव श्रीरूप-सनातन आदि षड्गोस्वामियोंके अनुयायी हैं। अपनेको रूपानुगा कहनेसे यदि हम केवल श्रीरूपगोस्वामीको ही मानेंगे, अन्य गोस्वामिओंको नहीं तो अर्द्ध कुक्कुटी न्यायकी भांति दोष लगेगा। इसलिए रूपानुगा वैष्णव श्रील सनातन गोस्वामीके भी अनुयायी हैं। श्रील सनातन गोस्वामीके जीवन कालमें देखा गया कि वे सदैव शिव ठाकुरके साथमें ही रहे। गोवर्धनमें चकलेश्वर, काम्यवनमें कामेश्वर और वृन्दावनमें गोपेश्वर महादेव आदि व्रजके विभिन्न स्थानोंमें श्रील सनातन गोस्वामीने शिव ठाकुरके निकट रहकर भजन किया। इसका कारण यह है कि वे व्रजप्रेम तक दे सकते हैं।

सृष्टिकी प्रथम रचना जब हुई और भगवान् कृष्णकी रासकी इच्छा हुई तो श्रीकृष्णके बाम अंगसे राधाजी प्रकटित हुईं और दाएँ भागसे गोपीश्वर महादेव सदाशिव प्रकट हुए।

सदाशिव जो भगवान कृष्ण द्वारा रास करनेकी इच्छा करने मात्रसे उनके दाहिने भागसे प्रकट हुए थे सदैव सदाशिव लोकमें विहार

करते हैं। कैलाशपति शिव इन्हीं सदाशिवकी एक कला हैं। गोपीश्वर महादेव स्वयं सदाशिव हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कृत श्रीसंकल्पकल्पद्रुमके १०३ श्लोकमें वर्णन है—

वृन्दावनावनिपते! जय सोम! सोममौले!
सनक-सनन्दन-सनातन-नारदेड्य।
गोपीश्वर! व्रजविलासि-युगांघ्रि-पद्मे
प्रेम प्रयच्छ निरुपाधि नमो नमस्ते।।

सदाशिव गोपीश्वर महादेव वृन्दावनके रक्षक हैं, श्रीवृन्दावनमें विजातीय और अनधिकारियोंके प्रवेशको रोकते हैं। सनक,सनन्दन, सनातन व नारद आदि भी जिनकी स्तुति करते हैं, वे सदाशिव गोपीश्वर महादेव व्रजविलासी युगल श्रीश्रीराधाश्याम-सुन्दरके चरणोंमें प्रेम प्रदान करनेवाले हैं, समस्त उपाधिरहित ऐसे गोपीश्वर महादेवको मैं प्रणाम करता हूँ।

श्रीलरघुनाथदास गोस्वामी पाद कहते हैं—

मुदा गोपेन्द्रस्यात्मज भुजपरिष्वंग निधये
स्फुरद्गोपीवृन्दैर्यमिह भगवन्तं प्रणयिभिः।
भजद्भिस्तैर्भक्त्या स्वमभिलषितं प्राप्तमचिराद्
यमीतीरे गोपीश्वरमनुदिनं तं किल भजे।।

(श्रीव्रजविलासस्तव-८७)

नन्दनन्दन श्रीकृष्णकी भुजाओंका आलिंगन-रूपी जो रत्न है, उसकी प्राप्तिकी आशामें कृष्ण-प्रणयमयी गोपियाँ यमुना पुलिनमें प्रतिदिन गोपीश्वर महादेवकी पूजा करके अपनी मनोकामना पूर्ण करती हैं, उन गोपीश्वर महादेवको मैं प्रणाम करता हूँ।

जिस प्रकार वैकुण्ठपति श्रीनारायण सदैव लक्ष्मीके साथ विराजमान रहते हैं, उसी प्रकार मूल पार्वती सदाशिव लोकमें सदाशिवके साथ विराजमान रहती हैं।

श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरके स्वरचित ग्रन्थ जैवधर्ममें श्रीगोपालगुरु गोस्वामी एवं विजय कुमारकी वार्ताके प्रसंगमें श्रीगोपालगुरु गोस्वामीने सनत्कुमार संहितासे उद्धत कर लिखा है कि स्वयं सदाशिवने श्रीकृष्णकी अष्टकालीय लीलाका वर्णन किया है और कहा है कि समयानुसार जो सेवा निर्दिष्ट है, उस समय उसी लीलाका स्मरण करना चाहिए।

श्रीशिव ठाकुर सम्पूर्ण रूपमें अमलपुराण श्रीमद्भागवतके तात्पर्यको जाननेवाले हैं। ऐसा इसलिए कि वे वैष्णवोंके लिए आश्रय स्थानीय हैं, विषय नहीं। आश्रय (भक्त) के बिना विषय (भगवान) को पूर्ण रूपसे कोई नहीं जान सकता। इसलिए महादेवजीने स्वयं कहा है

अहं वेद्मि शुको वेत्ति व्यासो वेत्ति न वेत्ति वा।
भक्त्या भागवतं ग्राह्यं न बुद्ध्या न च टीकया।।

श्रीमद्भागवतका तात्पर्य मैं जानता हूँ, शुक जानते हैं, व्यास जानते हैं अथवा नहीं—इसमें सन्देह है। एकमात्र भक्ति द्वारा ही भागवतका रहस्य समझा जाता है, बुद्धि अथवा टीका द्वारा नहीं।

महादेव शिव श्रीकृष्णके दास हैं

श्रीमद्भागवतके अनुसार शिव ठाकुर वैष्णवोंमें प्रधान हैं—"वैष्णवानां यथा शम्भुः" ये भगवानके अतिप्रिय एवं द्वादश महाजनोंमें से एक हैं।

स्वयम्भूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः।
प्रह्लादोजनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम्।।

(श्रीमद्भा. ६/३/२०)

स्वयम्भू, नारद, शम्भु, सनत्कुमार, देवहूति पुत्र कपिल, मनु, जनक, भीष्म, बलि, वैयासकि,

प्रह्लाद तथा यम—ये द्वादश महाजन हैं।

नाम-माहात्म्यके अन्तर्गत नाम-अपराधके विचारमें लिखा है—

शिवस्य श्रीविष्णोर्य इह गुणनामादि सकलं।
धिया भिन्नं पश्येत् स खलु हरिनामाहितकरः।।

शिव आदि देवताओंको भगवान विष्णुसे पृथक् तथा स्वतन्त्र सत्ताशील तत्त्व माननेसे अपराध होता है। उन्हें भगवान्का सेवक माननेसे अपराध नहीं होता है, बल्कि ऐसा माननेवालेके प्रति वे प्रसन्न होते हैं। वे भगवान्के प्रिय हैं इसलिए उन्हें हरिहर भी कहा जाता है अर्थात् हरि और हर; या हरिके प्रिय हर भी कहा जाता है।

सदाशिव गौरलीलामें अद्वैताचार्यके रूपमें प्रकट हुए। श्रीचैतन्यचरितामृत आदि लीला, अध्याय छः में श्रीअद्वैताचार्य तत्त्वके अन्तर्गत वर्णन मिलता है—

अनन्त ब्रह्माण्डे रुद्र—सदाशिवेर अंश।
गुणावतार तेंहो, सर्वदेव-अवतंस।।

सदाशिवके अंशरूप रुद्र, जो असंख्य ब्रह्माण्डोंमें प्रकट होते हैं और अनन्त ब्रह्माण्डोंमें देवताओंके अलंकार हैं, वे भी गुणावतार हैं।

तेंहो करेन कृष्णेर दास्य-प्रत्याश।
निरन्तर कहे शिव, 'मुञि कृष्णदास'।।

वे भी भगवान् कृष्णके ही दास बननेकी कामना करते हैं। श्रीसदाशिव यही कहते हैं, "मैं भगवान् कृष्णका दास हूँ।।"

कृष्णप्रेमे उन्मत्त, विह्वल दिगम्बर।
कृष्ण-गुण-लीला गाय, नाचे निरन्तर।।

कृष्णके प्रेममें उन्मत्त होकर वे विह्वल है जाते हैं और बिना वस्त्रके लगातार नृत्य करने लगते हैं तथा कृष्णके गुणों एवं उनकी लीलाओंका गान करते रहते हैं।

पिता-माता-गुरु-सखा-भाव केने नय।
कृष्णप्रेमेर स्वभावे दास्यभाव से करय।।

सारे भाव, चाहे वे पिताके, माताके, गुरुके या मित्रके हों, दास्यभाव से परिपूर्ण हैं। कृष्ण-प्रेमका यही स्वभाव है।

एक कृष्ण—सर्वसेव्य, जगत्-ईश्वर।
आर यत सब,—ताँर सेवकानुचर।।

ब्रह्माण्डके एकमात्र स्वामी भगवान् कृष्ण सबोंके द्वारा सेव्य हैं। निःसन्देह प्रत्येक व्यक्ति उनके दासके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

सेई कृष्ण अवतीर्ण—चैतन्य-ईश्वर।
अतएव आर सब,—ताँहार किङ्कर।।

वे श्रीकृष्ण ही भगवान् श्रीचैतन्यके रूपमें अवतरित हुए हैं। अतएव अन्य सभी उनके दास हैं।

केह माने, केह ना माने, सब ताँर दास।
ये ना माने, तार हय सेई पापे नाश।।

कुछ लोग उन्हें स्वयं भगवान् मानते हैं और कुछ नहीं मानते, तो भी उन्हींके दास हैं। किन्तु जो उन्हें स्वयं भगवान् नहीं मानते, वे अपने पापकर्मोंसे स्वयं विनष्ट हो जायेगें।

चैतन्येर दास मुञि, चैतन्येर दास।
चैतन्येर दास मुञि, ताँर दासेर दास।।

"मैं चैतन्यका दास हूँ, मैं चैतन्यका दास हूँ। मैं चैतन्यका दास हूँ और उनके दासोंका दास हूँ।

एत बलि' नाचे, गाय, हुङ्कार गम्भीर।
क्षणेके वसिला आचार्य हैञा सुस्थिर।।

यह कह कहकर अद्वैत प्रभु—सदाशिव नाचते तथा जोर-जोर से गाते हैं। फिर अगले क्षण वे आनन्दमें विभोर होकर निश्चेष्ट हो

जाते हैं।

श्रीमहादेव अथवा शम्भु यथार्थमें 'सदाशिव' विष्णु-तत्त्व हैं। सदाशिव एक अंशसे रुद्रके रूपमें तमोगुणका अवलम्बन कर जगत्‌का ध्वंस करते हैं और जीवोंकी कामनाओंको पूर्ण करते हैं। विमुख जीवोंको मोहित कर और उन्मुख जीवोंको कृष्ण-भक्ति प्रदानकर उनका पालन भी करते हैं। ये काशी एवं कैलाशमें रहकर श्रीकृष्णभजन करते हैं। ये वैष्णवोंमें प्रधान एवं श्रीहरिके अतिप्रिय हैं। प्रिय होनेके नाते ही ये हरिसे अभिन्न हैं।

श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा रामेश्वरकी स्थापनाके समय एकत्र समुदाय 'रामस्य ईश्वरः' (षष्ठी तत्पुरुष) मानकर देवाधिदेव रामेश्वरकी जय देने लगे अर्थात् 'शिव ही रामके ईश्वर हैं,' ऐसा समझा। देवताओंने इसका विरोध किया और रामेश्वर शब्दका अर्थ किया—'रामश्चासौ च ईश्वरः' अर्थात् द्वन्द्व समासके द्वारा 'राम और शंकर दोनों ही ईश्वर हैं।' इस पर शंकरजी क्षुब्ध होकर श्रीशिवलिंगमेंसे बोले, "रामेश्वरके ये दोनों अर्थ ठीक नहीं, रामेश्वरका अर्थ है—रामः यस्य ईश्वरः स रामेश्वरः।" यहाँ बहुव्रीहि समास द्वारा अर्थ हुआ राम ही जिनके ईश्वर हैं, वे रामेश्वर हैं। इस तरह श्रीकृष्ण ही एकमात्र समस्त ईश्वरोंके ईश्वर हैं। शंकरजी इनके प्रिय सेवक हैं। वैष्णवजन श्रीशंकरजीको भगवान्‌का प्रिय और वैष्णव-मात्रका गुरु मानकर उनका आदर एवं सम्मान करते हैं। भगवद् धामोंमें सर्वत्र ही शंकरजी क्षेत्रपाल धाम-रक्षकके रूपमें विराजमान हैं। श्रीवृन्दावन धाममें वे गोपीभाव अंगीकार कर श्रीगोपीश्वरके नामसे प्रसिद्ध हैं और योग्य जीवोंको कृष्ण-प्रेम दानकर वृन्दावनमें प्रवेश कराते हैं। श्रीमद्‌भागवतमें भी शंकरजीको वैष्णव-श्रेष्ठ माना गया है। 'वैष्णवानां यथा शम्भुः' भगवान्‌का कोई भी आदेश अप्रिय होनेपर भी सर्वथा पालन करनेके लिए तत्पर रहते हैं। समुद्र-मंथनके बाद विष्णुकी इच्छा जानकर विषको पानकर जगत्‌की रक्षा की। अपने प्रभु श्रीकृष्णकी इच्छा जानकर श्रीशंकराचार्यके रूपमें वेद-विरुद्ध मायावादका प्रचार कर शुद्ध-भक्ति और भगवत्-तत्त्वज्ञानको आच्छादित किया। नास्तिक बौद्धोंका दमन कर निरीश्वर कर्मकाण्डको ध्वस्त किया। इस प्रकार ये भगवान्‌के आदेशको सदैव पालन कर प्रभुकी मनोऽभीष्ट सेवा करते हैं।

(क्रमशः)

महाभागवतवर वृत्रासुर

वृत्रासुर तमःप्रवृत्तिका होने पर भी भगवान्‌का अनन्य उपासक था। उसे जितनी प्रभुकी भक्ति प्रिय थी, वैसी अन्य वस्तुएँ नहीं। देह और सांसारिक वस्तुओंसे ममत्वका परित्याग कर वह आत्मनिष्ठ हो गया था। ऐसे उस प्रभु-प्रेमीका पूर्व-वृत्तान्त पहले ही वर्णित हो चुका है। अब हम उसके उत्तर-वृत्तान्तका पठन-मनन कर अपनेको पवित्र करनेका प्रयास करें।

जब इन्द्रने त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपका वध कर दिया, तब त्वष्टाने क्रुद्ध होकर इन्द्र-वधके लिए अन्वाहार्य-पचन नामक दक्षिणाग्निमें हवन

किया। यज्ञकी समाप्ति पर उस यज्ञकुण्डसे विकराल आकृतियुक्त महादैत्य प्रकट हुआ। यही हमारे पूर्वपरिचित महाराज चित्रकेतु थे, जो इस शरीरको प्राप्त हुए थे। उस महादैत्यको देखनेसे ऐसा जान पड़त कि मानो समस्त लोकोंका नाश करने के लिए प्रलयकालीन काल ही प्रकट हुआ हो।

वह दैत्य उत्पन्न होनेके अनन्तर दिन-प्रतिदिन अपने शरीरके सब ओरसे बढ़ने लगा। वह जलते हुए पर्वतके समान काला और विशाल शरीरवाला था। उसके शरीरसे संध्याकालीन बादलोंकी सी कान्ति निकलती रहती थी। उसके सिरके केश, दाढ़ी-मूँछ तप्तताम्रके सद्दश लाल रंगके थे, नेत्र मध्याह्नकालीन सूर्यवत् प्रचण्ड थे। वह तीन नोकवाले त्रिशूलको लेकर जब नाचने-कूदने चिल्लाने लगता था, तब ऐसा जान पड़ता था कि मानो पृथ्वी काँपकर विदीर्ण हो जायगी, त्रिशूलकी नोकपर अन्तरीक्षको उठा लेगा। जंभाई लेते समय उसका मुख कन्दराके समान खुल जाता था। उस समय वह आकाशको निगलता-सा जान पड़ता था, जीभसे नक्षत्रोंका चाटता हुआ-सा तथा तीनों लोकोंको भक्षण करता-सा जान पड़ता था। उसके भयानक रूपसे सभी लोग घबड़ाकर यहाँ-वहाँ भागने लगते थे। त्वष्टाके तमोगुणी पुत्रने सारे लोकोंको घेर लिया था। इसीसे उसका नाम वृत्रासुर हुआ।

बड़े-बड़े देवता अपने अनुयायियोंके साथ उसपर एक साथ ही टूट पड़े और अपने-अपने दिव्य अस्त्र-शस्त्रोंसे प्रहार करने लगे। परन्तु वृत्रासुर उन सब अस्त्र-शस्त्रोंको ग्रास कर जाता था। इससे देवता लोग आश्चर्यचकित हो गये और अपनेको हतप्रभ देखकर दीनहीन एवं उदास होकर भगवान् नारायणकी शरणमें जाकर

इस प्रकार उनसे कहने लगे-

वाय्वम्वराग्न्यप्क्षितयस्त्रिलोका
ब्रह्मादयो ये वयमुद्विजन्तः।
हराम यस्मै बलिमन्तकोऽसौ
बिभेति यस्मादरणं ततो नः।।
(भा० ६/९/२१)

वायु, आकाश, अग्नि, जल, पृथ्वी—ये पाँचों भूत, इनसे बने हुए तीनों लोक, उनके अधिपति ब्रह्मादि तथा हम सब देवता जिस कालसे डर जाते हैं और उसे पूजा-सामग्री, भेट चढ़ाते हैं, वही काल आपसे डरता है। इसलिए आप भगवान् ही हमारे रक्षक हैं।

आप पूर्णकाम हैं। आपके लिए कोई विस्मयजनक स्थिति नहीं है, अतएव आप ही हमारे शरण्य हैं। जो व्यक्ति आपको छोड़कर दूसरेका शरण लेता है, वह मूर्ख है तथा कुत्तेके पूँछको पकड़कर समुद्र पार करना चाहता है। हे नाथ! जब हम देवता शत्रुओंसे पीड़ित हुए, तब-तब वास्तवमें निर्विकार रहने पर भी अनेक अवतार धारणकर और अपना समझकर युग-युगमें आपने हमारी रक्षा की है।

तमेव देवं वयमात्मदेवतं
पर प्रधानं पुरुषं विश्वमन्यम्।
व्रजाम सर्वे शरणं शरण्यं
स्वानां सा नो धास्यति शं महात्मा।।
(भा. ६/९/२७)

विविध संवाद

विदेश प्रचार

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सहसभापति एवं संपादक त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज लगभग पच्चीस देशी और विदेशी वैष्णवोंको साथ लेकर सिंगापुर, आष्ट्रेलिया, हवाई द्वीप समूह, न्युएंजल्स, कैलीफोर्निया, ह्यूस्टन, वाशिगंटन, न्युयार्क आदि अमेरिकाके शहरोंमें, लन्दन, न्युव्हैल्स, वर्मिघम आदि ग्रेट ब्रिटेन तथा हालैण्ड, जर्मनी, फ्राँस, इटली आदि के शहरोंमें श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा आचरित एवं प्रचारित शुद्ध भक्तिधर्मका प्रचार कर ११ जुलाई २००० तारीखको भारत लौटे।

गुरु पूर्णिमा

१६ जुलाई २००० को मथुराके केशवजी गौड़ीय मठमें गुरु पूर्णिमा या व्यास पूर्णिमाके अवसर पर १५ हजार देशी एवं विदेशी भक्तोंने महाराजजीके आनुगत्यमें भारतीय वैदिक संस्कृतिके मूल स्तम्भ श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासजीके चरणोंमें पुष्पाञ्जली अर्पित की। इस अवसर पर श्रील महाराजजीने विशेष रूपसे यह बतलाया कि व्यासजीने वेदोंका विभाग कर विशेषकर वेदोंके परस्पर विरोधी लगने वाले वाक्योंका सामञ्जस्यकर वेदान्त सूत्रकी रचना की, महाभारतकी रचना की, पुराणोंकी रचना की फिर भी उनके हृदयमें शान्ती नहीं हुई वे अतृप्त थे। किन्तु नारदजीकी कृपा और परामर्शसे श्रीमद् भागवतको वेदान्त सूत्रकी व्याख्याके रूपमें प्रकाश किया तब उनका चित्त अत्यन्त प्रसन्न हो उठा।

रूसमें प्रचार

इस प्रकारसे व्यास पूर्णिमाके पश्चात् २७ जुलाई २००० को उन्होंने बहुतसे भक्तोंके साथ रूसकी राजधानी मास्कोके लिए यात्रा की। वहाँ मास्कोमें हवाई अड्डे पर लगभग दो सौ भक्तोंने शंख, करताल, मृदंगके साथ कीर्त्तन करते हुए महाराजजीका स्वागत किया। तत्पश्चात् वे लोग श्रील महाराजजीको मास्को शहरके निकट उपवनमें ले गये, जहाँ सभी भक्तोंके ठहरनेकी व्यवस्था की गयी और वहीं पर सात दिन तक सुबह-शाम धर्म सभाएँ हुईं, जिसमें महाराजजीने श्रीरूप शिक्षा एवं सनातन शिक्षाके सम्बन्धमें सुन्दर-सुन्दर व्याख्याएँ की। विशेष रूपसे—

अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञान कर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।।

इस श्लोकको सुन्दर व्याख्या की। उनकी सभाओंमें अमेरीका, भारत, फ्रान्स, रूष, ब्रिटेन, स्विडेन आदिके भक्तोंने विशुद्ध हरिकथाका रसास्वादन किया और वे सभी लोग बड़े संतुष्ट और प्रसन्न थे। प्रतिदिन सुन्दर रूपमें कीर्त्तन होता और नये नये भक्तोंके साथ साथमें श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजके बहुतसे पुराने शिष्य जिनकी श्रद्धा डगमगा गयी थी, वे लोग भी महाराजजीके पास आये जिससे पुनः उनके हृदयमें शुद्ध भक्तिका संचार हुआ और वे लोग पुनः भक्तिके अनुशीलनमें लग गये। वे भक्तलोग भी रसियामें महाराजजीसे मिले जो स्वामी महाराजजीके समयमें मास्कोमें

कृष्णभावनामृतका प्रचार करना चाहते थे, और वहाँकी सरकारने उनको जेलमें भेज दिया। इस प्रकार वे लोग दो तीन वर्ष तक जेलमें ही रहे, जहाँ पर उन्हें बड़ी कठोर यातनाएँ मिलीं, किन्तु अब जेलसे निकलनेके बाद स्वामीजीके अभावमें उनकी भक्ति क्षीण होने लगी। शुद्धभक्तिका मार्गदर्शन नहीं मिलनेसे बहुतसे लोगोंने इस्कॉनको छोड़ अपने अलग-अलग आश्रम बना लिये थे, परन्तु अब वे लोग भी पूज्यपाद महाराजजीके पास आये। मास्कोमें श्रील महाराजजीने दो विषयों पर प्रकाश डाला—गुरुतत्त्व, शुद्धभक्तितत्त्व तथा भक्तिके स्तरोंका तारतम्य। इन विषयोंका वृहद् भावगतामृतमें स्पष्ट रूपसे वर्णन किया गया है। श्रील महाराजजीने गौड़ीय वैष्णवोंके नामपर चल रहे अपसिद्धान्तोंका कठोर शब्दोंमें खण्डन किया। उन्होंने बतलाया—गुरु केवल वही हो सकता है जो शुद्धभक्तिका अनुभवी हो, विषयोंसे अनासक्त हो, शास्त्रोंका तात्पर्य धारण करनेवाला हो तथा विशेष रूपसे भगवद् अनुभूति सम्पन्न हो। जिन व्यक्तियोंमें ये गुण नहीं हैं, वे लोग गुरुका कार्य करने पर भी कुछ दिनोंमें पतित हो जाते हैं। आजकल ऋत्विकका बड़ा ही प्रचार है, परन्तु शास्त्रोंमें इसका कहीं भी उल्लेख नहीं है। यज्ञमें ऋत्विकोंका वरण किया जाता है और बादमें उन्हें त्याग दिया जाता है। इसमें गुरुसे सम्बन्धित कोई भी तथ्य नहीं है। इसलिए ऋत्विकका जो अनुमोदन या अनुसरण करते हैं उनका भक्तिसे कोई सम्बन्ध नहीं होता। इन लोगोंसे सर्वदा सावधान रहनेकी चेष्टा करनी चाहिए। किसी तरहसे यदि सद्गुरुके बदले असद्गुरुका वरण कर लिया गया हो, गुरु पतित हो गया हो अथवा गुरु-परम्परा एवं शुद्धभक्तिके विचारोंको नहीं मानता हो, शास्त्रोंमें ऐसे गुरुको तत्क्षणात् छोड़ देनेकी व्यवस्था दी गयी है। विशेषरूपसे श्रील जीवगोस्वामीजीके सन्दर्भमें इसका स्पष्ट रूपसे वर्णन है। इसलिए यदि परमार्थ मार्गमें अग्रसर होनेकी इच्छा हो तो सद्गुरुका चरणाश्रय करना अति आवश्यक है। धर्मसभाके पश्चात् श्रील महाराजजी सभी भक्तोंके साथ मास्को शहरमें उपस्थित हुए। वहाँ दो दिन तक मास्कोके हृदय-स्थलरूप रेडस्क्वायर स्थलपर महाराजजी लगभग ५०० भक्तोंके साथ पहुँचे। वहाँ निकट ही लेनिन एवं स्टालिनके मकबरे हैं। आजकल लोग उन्हें घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं, क्योंकि उन्होंने प्रतिज्ञा की—हमलोग रूसको समृद्ध एवं शक्तिशाली बना देगें, किन्तु यह कार्य न तो लेनिन और न स्टालिन ही कर सके। इसलिए लोग उनसे घृणा करते हैं। वहाँ के लोग भारतीय संस्कृतिकी ओर अग्रसर हो रहे हैं। जिस समय श्रील महाराज रेडस्क्वायर पर पहुँचे, उस समय वहाँपर लगभग पन्द्रह हजार दर्शक उपस्थित थे जो कीर्तन-प्रवचन सुनकर बहुत प्रभावित हुये। वहाँ निकट ही एक एडोटोरियममें श्रील महाराजजीकी सभाका आयोजन हुआ, जिसमें लगभग दो हजार लोगोंने भाग लिया। वहाँ श्रील महाराजजीने शुद्धभक्तिके विभिन्न स्तरोंका, गुरु परम्पराका वर्णन किया। किसी श्रोताके प्रश्न पर रागानुगा-रागात्मिका एवं रागानुगा-रूपानुगामें क्या अन्तर है इस विषयका संक्षेपमें एव सुन्दर रूपसे विश्लेषण किया, जिसे सुनकर लोग बहुत ही प्रभावित हुए। इस प्रकार वहाँपर भक्तिका

प्रचारकर श्रील महाराजजी ६/८/२००० को स्वदेश लौटे।

झूलनोत्सव एवं श्रीरूपगोस्वामीजीका तिरोभाव

१० अगस्त से १५ अगस्त तक श्रील महाराजजी राधाविनोद विहारीजीके झूलनोत्सवमें वृन्दावनके श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठमें रहे। ११ अगस्तको श्रीरूपगोस्वामीजीका तिरोभाव दिवस मनाया गया। श्रील महाराजजीके साथ अनेक भक्तोंने प्रातः काल रूपगोस्वामीकी समाधिके दर्शन एवं परिक्रमा की। वहाँ पर श्रील महाराजजीने कविकर्णपूर द्वारा लिखे गये श्लोककी सुन्दर व्याख्या की। श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठके प्रांगणमें पंचदिवसीय सभाका आयोजन किया गया। प्रथम दिवसकी सभामें श्रीकृष्णचैतन्याश्रय तीर्थमहाराज (अतुलकृष्ण गोस्वामी), राधारमणजीके श्रीपद्मनाभ गोस्वामीजीने सभाका संचालन किया। श्रीप्राणगोपाल गोस्वामीके मंगलाचरण करनेके बाद श्रीअच्युतभट्ट गोस्वामी, पण्डित लक्ष्मी नारायण शर्मा, श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज, श्रीभक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज आदि वक्ताओंने रूप गोस्वामीजीके अप्राकृत जीवन चरित्र एवं वैशिष्ट्य पर प्रकाश डाला। दूसरे दिन श्रीकृष्णचैतन्य गौड़ीय मठके तत्त्वविद् श्रीमद्भक्तिविज्ञान भारती महाराजके सान्निध्यमें सभा हुई जिसमें श्यामसुन्दर संगीताचार्य, डा० अच्युतभट्ट, भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज, भक्तिवेदान्त माधव महाराज, भक्तिवेदान्त वन महाराज, भक्तिवेदान्त अरण्य महाराज रसानन्द ब्रह्मचारी इत्यादि वक्ताओंने श्रील रूप गोस्वामीजीकी महिमाका वर्णन करते हुए उनके श्रीचरणोंमें पुष्पाञ्जली अर्पित की। तीसरे दिन श्रीचैतन्य गौड़ीय मठके अध्यक्ष एवं आचार्य श्रीमद्भक्तिबल्लभ तीर्थ महाराजजीके सभापतित्वमें तथा श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजके संचालनमें सभा हुयी, जिसमें बहुतसे वक्ताओंने श्रीरूपगोस्वामीके चरणोंमें श्रद्धा सुमन अर्पित किये। चौथे दिन श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके सभापतित्वमें सभा हुयी जिसमें भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज, भक्तिवेदान्त माधव महाराज, हरिप्रिया ब्रह्मचारी इत्यादिने वक्तृता प्रदान की।

बलदेव पूर्णिमा

इस उत्सवके अन्तमें श्रील महाराजजीने बलदेव पूर्णिमा या रक्षा बन्धनके विषयमें प्रवचन दिया। महाराज जीने कहा बलदेव प्रभुका नाम अनन्तदेव है। वे कृष्णके वैभव प्रकाश हैं। अनन्तदेव जगतकी रक्षा करते हैं इसलिए रक्षा बन्धनके दिन लोग अनन्त पहनते थे।

श्रीजन्माष्टमी व्रत

श्रीजन्माष्टमीसे एक दिन पहले संध्याके समय लगभग पाँच बजे सैकड़ों भक्त श्रीकेशवजी गौड़ीय मठके समक्ष शोभायात्राके लिए उपस्थित हुए। एक असाधारण शोभायात्रा प्रारम्भ हुई। श्रील महाराजजीकी उपस्थिति एवं उन्हींके आनुगत्यमें निकाली गयी इस शोभायात्राने हजारोंकी संख्यामें मथुरावासियोंको आकर्षित किया।

इस शोभायात्रामें अत्यन्त सुन्दर रूपसे सुशोभित हाथी, दो ऊँटों पर बजते नगाड़े, बैन्ड, कृष्ण-बलरामके रूपमें सुसज्जित दो अत्यन्त आकर्षक बालक चमकीले वस्त्रोंसे सुसज्जित घोड़ों पर विराजमान होकर शोभायात्राकी सुन्दरताको और भी बढ़ा रहे थे। भारत, अमेरिका, इंग्लैन्ड, आस्ट्रेलिया, फ्राँस, हालैण्ड, फिजी, न्युजीलैण्ड आदि देशोंके भक्तों द्वारा सुशोभित यह शोभायात्रा अत्यन्त मनमोहक थी।

सभी भक्त अत्यन्त उत्साहित एवं आन्नदित होकर उच्च स्वरसे श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रचारित संकीर्तनमें भाग लेकर श्रीगुरु गौरांग, राधाविनोद विहारीजीके कृपाभाजन हुए। इसमें अनेक झाँकियाँ निकाली गई थीं। जिसमें श्रीजगन्नाथ, बलदेव, सुभद्रा, श्रीमन्महाप्रभु, श्रील गुरुदेव एवं श्रीराधाविनोद विहारीजीकी झाँकियाँ विशेष रूपसे आकर्षणका केन्द्र थीं। यह शोभायात्रा मथुराके सभी प्रमुख राजमार्गों से होती हुई लगभग दस बजे श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें लौट आई।

जमाष्टमीके दिन प्रातःकाल श्रील महाराजजीने श्रीकृष्णतत्त्वके विषयमें प्रवचन किया। श्रील महाराजजीके उपरान्त भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराजजीने श्रीमद्भागवतसे पाठ एवं प्रवचन किया। इसी प्रकार संध्याको ७ बजे तक अनेक वक्ताओं द्वारा भागवतका अखण्ड पाठ किया गया। संध्याकालमें नगरके विशिष्ट कलाकारोंने भजन–संगीतके द्वारा वातावरणको भक्तिमय बना दिया। मध्य रात्रिके बारह बजे श्रीकृष्णका महाराजजीके द्वारा महाभिषेक किया गया। जिसका हजारों लोगोंने दर्शन किया।

रात्रिमें सभी भक्तोंने फलाहरके उपरान्त विश्राम किया। अगले दिन सभी भक्त नन्दोत्सवकी तैयारियाँ करने लगे। इस वर्ष भी प्रातःकाल छः बजकर तीस मिनट पर श्रील महाराजजीने इस्कॉनके संस्थापक श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजजीकी आविर्भाव तिथिके उपलक्ष्यमें एक सभा रखी। श्रील महाराजजीने पहले श्रीस्वामी महाराजजीके वरिष्ठ शिष्योंको उनके चरणोंमें कथारूपी पुष्पांजली अर्पित करनेका सौभाग्य प्रदान किया एवं तत्पश्चात् वह स्वयं श्रीस्वामी महाराजजीका गुणगान करने लगे। श्रील महाराजजीने कहा कि अपनी प्रकट लीलाके अन्तिम समयमें श्रील स्वामी महाराजने मुझसे कहा कि "मैंने विश्वके अनेक व्यक्तियोंको अपना शिष्य स्वीकार किया है। परन्तु मैं अभी इनको सम्पूर्ण रूपसे शिक्षा नहीं दे पाया हूँ। इसलिए वैष्णवोचित दीनताके वशीभूत होकर उन्होंने मुझसे प्रार्थना की कि मैं उनके शिष्योंको शिक्षा दूँ।

श्रील महाराजजीके प्रवचनके उपरान्त श्रील स्वामी महाराजजीकी गुरु–पूजा एवं पुष्पांजली अर्पित की गई। तदोपरान्त स्वामी महाराजजीके आविर्भाव एवं नन्दोत्सवके उपलक्ष्यमें विशाल उत्सव हुआ, जिसमें लगभग १५,००० अतिथियोंने प्रसाद पाया।

इसी शृंखलामें २७/८/२००० को मथुराके श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें महाराजजीके आनुगत्यमें भावुक और विद्वानोंकी एक सभा हुयी, उस सभाका विषय था, भागवतमें भक्तिका तारतम्य। विभिन्न विद्वानोंने अति सुन्दर रूपसे इसकी विशद् व्याख्या की। श्रीमनोहर लाल शास्त्रीजीको इस सभाका सभापति नियुक्त किया गया। इसमें मुख्या अतिथि वृन्दावनके डा० अच्युत लालभट्ट थे। भक्तिवेदान्त माधव महाराजजीके द्वारा सभी विद्वानोंको माल्यार्पण किया गया, उसके बाद पंकज और दिनेशजीने मंगलाचरण और संचालन श्रीवसन्तलाल शास्त्रीने किया। इस सभाके धीरेन्द्र शास्त्री, श्रीछोटलाल शास्त्री, यमुना प्रसाद प्रीतम, श्रीहरिहर चाचाजी, श्रीठाकुरजी शास्त्री, डा० अच्युतलाल भट्ट, हरिलाल पाण्डेय एवं भक्तिवेदानत तीर्थ महाराज थे। अन्तमें श्रील महाराजजीने सभीको धन्यवाद ज्ञापन देते हुए इस विषयपर अत्यन्त सुन्दर विचार प्रस्तुत किये।

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

वैकुण्ठ–वार्त्तावह

बृहत्–मृदङ्ग

श्रीभागवत–पत्रिका

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना।।

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।।

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः ।।

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र।।
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश।।

वर्ष ४४ } श्रीगौराब्द ५१४
वि. सं. २०५७ कार्तिक मास, सन् २०००, १४ अक्टूबर —१३ नवम्बर { संख्या ८

श्रीगोवर्द्धननाश्रय–दशकम्

[श्रील–रघुनाथदास–गोस्वामि–विरचितम्]

सप्ताहं मुरजित्–कराम्बुज–परिभ्राजत् कनिष्ठाङ्गुलि–प्रोद्यद्वल्गु–वराटकोपरि–मिलन्मुग्ध–द्विरेफोऽपि यः।
पाथःक्षेपक–शक्रनक्र–मुखतः क्रोडे व्रजं द्रागपात् कस्तं गोकुल–बान्धवं गिरिवरं गोवर्द्धनं नाश्रयेत्।।१।।

जिन्होंने एक सप्ताह तक श्रीकृष्णके करपद्मस्थित कनिष्ठा अंगुलिरूप पद्मकोषमें मुग्ध भ्रमरकी भाँति स्थित होकर प्रबल वारि वर्षणकारी इन्द्ररूप नक्र (मगर) के मुखसे ब्रजमण्डल की रक्षा की थी, उन गोकुलके परम बान्धव गिरिवर गोवर्द्धन की कौन सेवा न करेगा?।।१।।

इन्द्रत्वे निभृतं गवां सुरनदी-तोयेन दीनात्मना शक्रेणानुगता चकार सुरभिर्येनाभिषेकं हरेः।
यत्-कच्छेऽजनि तेन नन्दितजनं गोविन्दकुण्डं कृती कस्तं गो-निकरेन्द्रपट्ट-शिखरं गोवर्द्धनं नाश्रयेत्।।२।।
स्वर्धुन्यादि-वरेण्य-तीर्थगणतो हृद्यान्यजस्त्रं हरेः सीरि-ब्रह्म-हराप्सरः-प्रियक-तत्-श्रीदानकुण्डान्यपि।
प्रेम-क्षेम-रुचि-प्रदानि परितो भ्राजन्ति यस्य व्रती कस्तं मान्य-मुनीन्द्र-वर्णितगुणं गोवर्द्धनं नाश्रयेत्।।३।।
ज्योत्स्नामोक्षण-माल्यहार-सुमनोगौरी-वलारिध्वजा गान्धर्वादि-सरांसिनिर्झर-गिरिः श्रृङ्गार-सिंहासनम्।
गोपालोऽपि हरिस्थलं हरिरपि स्फूर्जन्ति यः सर्वतः कस्तं गो-मृग-पक्षि-वृक्षललितं गोवर्द्धनं नाश्रयेत्।।४।।
गंगा कोट्यधिकं वकारि-पदजारिष्टरि-कुण्डं वहन् भक्त्या यः शिरसा नतेन सततं प्रेयान् शिवादप्यभूत्।
राधा-कुण्डमणिं तथैव मुरजित् प्रौढ़-प्रसादं दधत् प्रेयः स्तव्यतमोऽभवत् कइहतं गोवर्द्धनं नाश्रयेत्।।५।।
यस्यां माधव-नाविको रसवतीमाधाय राधां तरौ मध्ये चञ्चलकेलिपात-वलनात्त्रसैः स्तुवत्यास्ततः।
स्वाभीष्टं पणमादधे वहति सा यस्मिन्मनोजाह्नवी कस्तं तन्नवदम्पती-प्रतिभुवं-गोवर्द्धनं नाश्रयेत्।।६।।
रासे श्रीशतवन्द्य-सुन्दर-सखी वृन्दाञ्चिता सौरभभ्राजत्-कृष्णरसाल-बाहु-विलसत्-कंठी मधौ माधवी।
राधा नृत्यति यत्र चारु वलते रासस्थली सा परा यस्मिन् कः सुकृती तमुन्नतमये गोवर्द्धनं नाश्रयेत्।।७।।
यत्र स्वीयगणस्य विक्रमभृता वाचा मुहुः फुल्लतोः स्मेर-क्रूरदृगन्त-विभ्रम-शरैः शश्वन्मिथो विद्धयोः।
तद्यूनोर्नवदान-सृष्टिजकलिभंग्या हसन् जृम्भते कस्तं तत्-पृथकेलिसूचनशिलं गोवर्द्धनं नाश्रयेत्।।८।।
श्रीदामादि-वयस्य-सञ्चयवृतः संकर्षणोनोल्लसन् यास्मिन् गोचय-चारू-चारणपरो री-रीति गायत्यसौ।
रंगे-गूढ-गहासु च प्रथयति स्मारक्रियां राधया कस्तं सौभगभूषिताञ्चिततनुं गोवर्द्धनं नाश्रयेत्।।९।।
कालिन्दीं तपनोद्भवां गिरिगणानत्युन्नमच्छेखरान् श्रीवृन्दाविपिनं जनेप्सितधरं नन्दीश्वरं चाश्रयम्।
हित्वा यं प्रतिपूजयन् व्रजकृते मानं मुकुन्दो ददौ कस्तं श्रृङ्गि-किरीटिनं गिरिनृपं गोवर्द्धनं नाश्रयेत्।।१०।।
तस्मिन् वासदमस्य रम्यदशकं गोवर्द्धनस्येह यत् प्रादुर्भूतमिदं यदीय कृपया जीर्णान्धिवक्त्रादपि।
तस्योद्यद्गुणवृन्द-वन्धुरखनेर्जीवातु-'रूपस्य' तत् तोषायापि अलं भवत्विति फलं पक्वं मया मृग्यते।।११।।

अनुवाद—श्रीकृष्ण द्वारा उठाये गये गोवर्द्धनसे गोकुल की रक्षा हो गयी है—ऐसा जानकर इन्द्र द्वारा लायी गयी सुरभिने जिस निर्जन स्थानमें गंगाजल द्वारा श्रीकृष्णको गौवोंके इन्द्रत्व पदपर अर्थात गोपालन कर्त्तृत्वपद पर अभिषिक्त किया था एवं जिनके समीप आज भी सर्वजननयनानन्दप्रद गोविनद कुण्ड विराजमान हैं, उन ब्रजेन्द्रनन्दन के विश्राम-स्थान श्रीगोवर्द्धनका आश्रय कौन पण्डित व्यक्ति न करेगा?२।।

जो गंगा आदि तीर्थो से बढ़कर हृदयङ्गम है, जो भक्ति, परम कल्याण और कान्ति प्रदान करते हैं, जो श्रीकृष्ण, बलदेव, ब्रह्मा, शिव और अप्सराओंके प्रीतिजनक हैं, जिनके चारों ओर श्रीदानकुण्ड आदि समूह सुशोभित हो रहें हैं और महामान्य मुनिवर द्वारा जिनकी महिमा विशेष रूपसे गायी गयी है, उन श्रीगोवर्द्धनका आश्रय कौन व्रतपरायण न करेगा?३।।

जिनके चारों ओर मनोहर ज्योत्स्ना, मोक्षणा, माल्य, हार, सुमन, गौरी , बलारिध्वज, गन्धर्व आदि सरोवर और निर्झरसुशोभित हो रहे है, जहाँ स्वयं भगवान गोपालमूर्ति धारण कर विहार करते हैं, जो शृंगार रसके सिंहासन स्वरूप हैं तथा जो गो, मृग, पक्षी और

वृक्षादि द्वारा अत्यंत मनोहर होकर श्रीकृष्णके आश्रय स्थान हैं, उन गोवर्द्धनका कौन आश्रय न लेगा?४।।

जो श्रीकृष्णके चरणकमलोंसे उत्पन्न अरिष्टकुण्ड अर्थात् श्यामकुण्ड एवं अमूल्य मणि स्वरूप श्रीराधाकुण्डको जो करोड़ों गंगाकी अपेक्षा भी अधिक श्रेष्ठ हैं, भक्तिपूर्वक सिर झुकाकर धारण करते हुये श्रीमन्महादेव से भी अधिक माननीय हो रहें हैं और श्रीकृष्णके सदा अनुग्रह पात्र होनेके कारण भक्तजनोंके अतिशय वन्दनीय हो रहे हैं उन गोवर्द्धनका संसारका कौन-सा व्यक्ति आश्रय न करेगा?५।।

जहाँ श्रीकृष्णने नाविक बनकर परमरसवती श्रीमती राधिकाको नौकामें बैठाकर तरंगोंसे पूर्ण बीचों-बीच जलमें ले जाकर नौका हिलने-डुलनेसे भयातुरा श्रीमती राधिका द्वारा स्तुत होकर अपनी मनोभीष्ट उतराई वसूल की थी, वे मानसगंगा जिस स्थानमें सदासर्वदा प्रवाहित होती हैं एवं जो नव-दम्पतीं अर्थात् श्रीराधा-कृष्णके मध्यस्थ-स्वरूप हैं, उन श्रीगोवर्द्धन का कौन पुण्यवान व्यक्ति आश्रय न करेगा?६।।

जहाँ रास क्रीड़ामें सैकड़ों लक्ष्मीके वन्दनीय अतिरमणीय सखियोंसे परिवेष्टित और श्रीकृष्णके रसमय सौरभ-शोभित बाहुँओंसे घिरी हुयी गले वाली माधवप्रिया श्रीमती राधिकाने मधुमासमें नृत्य कियाथा, इसलिये आज भी जहाँ द्वितीय रासस्थली विराजमान हैं, हे-भक्तगण! ऐसे अत्युन्नत उन गोवर्द्धनका भला कौन व्यक्ति आश्रय नहीं करेगा?।।७।।

जहाँ अपने-अपने विक्रमपूर्ण वचनों द्वारा प्रसन्नचित्त और पुनः पुनः इषत् हास्य एवं कुटिलतर कटाक्ष-चालनरूप वाण-वर्षण द्वारा परस्पर विद्ध हुए श्रीराधाकृष्ण अपने नये-नये दानोंके लिये वाक्कलह परिवर्द्धित कर रहे हैं तथा जहाँ इस प्रकार श्रीराधाकृष्णके नव-नव लीलासूचक विलाससमूह परिपूर्ण हैं, उन गोवर्द्धनका भला कौन व्यक्ति आश्रय नहीं करेगा?८।।

जहाँ श्रीकृष्णने श्रीदाम आदि वयस्यगण तथा बलदेवके साथ गोचारण करते-करते "री-री"-इस प्रकार मधुर स्वरमें गान किया था और जिनकी निर्जन गुहाओंमें रंगस्थली निर्माण कर श्रीराधिकाके साथ कन्दर्पकेलि की थी, इस प्रकार सौभाग्यशाली उन गोवर्द्धनका भला, कौन व्यक्ति आश्रय न करेगा?९।।

श्रीकृष्णने रवितनया कालिन्दीको, अतिशय ऊँचे पर्वतोंको तथा ब्रजवासियोंके आश्रयीभूत और मनोरथपूर्ण करनेवाले नन्दीश्वरको त्यागकर, वृन्दावनकी रक्षाके लिये पर्वतोंके शिरोमणि स्वरूप जिनका अर्चन कर सम्मान प्रदान किया था, उन गिरिराज गोवर्द्धनका भला कौन व्यक्ति आश्रय न करेगा?१०।।

जिनकी कृपासे मेरे समान जीर्णान्ध व्यक्तिके मुखसे भी यह रमणीय गोवर्द्धनवासप्रद गिरिराज गोवर्द्धनका दशक प्रादुर्भूत् हुआ है, वह परमोन्नत एवं उत्कर्षशील रत्न मेरे जीवन सर्वस्व श्रीगुरूदेव श्रीरूपगोस्वामीको संतोष प्रदान करनेमें समर्थ हो—मेरी यही प्रार्थना है।।११।।

हरिनाम

—जगद्‌गुरु श्रीश्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

भव-समुद्र बड़ा ही दुस्तर है। परमेश्वरकी कृपाके बिना इसको पार करना कठिन ही नहीं, असंभव है। जीव जड़से श्रेष्ठ होनेपर भी स्वभावतः दुर्बल और पराधीन है। भगवान् ही जीवोंके एकमात्र रक्षक, पालक और त्राता हैं। जीव अणुचैतन्य हैं, अतएव परम चैतन्य भगवान्‌के अधीन और सेवक हैं। परम चैतन्य परमेश्वर ही जीवोंके आश्रय हैं। यह जड़जगत माया द्वारा रचित है। इस जड़-जगतमें जीवों की स्थिति ठीक उसी प्रकार है, जिस प्रकार अपराधी व्यक्ति कारागार में होता है। भगवान् से विमुख होनेके कारण जीव मायाके संसारमें चक्कर काट रहे हैं। भगवद्-विमुख जीवोंको बद्ध जीव कहते है; क्योंकि वे माया द्वारा बँधे हुए होते हैं। इसके विपरीत जो जीव भगवान्‌के अनुगत् होते हैं, वे मायासे मुक्त होते हैं; ऐसे जीवोंको मुक्त जीव कहते हैं। इस प्रकार अवस्था भेदसे अनन्त जीव दो भागोंमें विभक्त हैं—बद्ध जीव और मुक्त जीव। बद्ध जीव साधन द्वारा भगवान्‌की कृपा प्राप्त कर, मायाकी सुदृढ़ रज्जुको तोड़नेमें समर्थ होते हैं। हमारे महामहिम महर्षियोंने अनेक छान-बीनके पश्चात् तीन प्रकारके साधन स्थिर किये है। कर्म, ज्ञान और भक्ति। वर्णाश्रमधर्म, यज्ञ, तपस्या, दान, व्रत, योग—इनको शास्त्रमें कर्माङ्ग कहा गया है। इन विभिन्न कर्मोंके भिन्न-भिन्न फल भी उन शास्त्रोंमें कहे गये हैं। उन फलोंका पृथक् पृथक् विचार करने पर पता चलता है कि स्वर्गभोग, मृत्युलोक का भोग, रोगशान्ति तथा उच्च कर्म करनेके सुअवसर की प्राप्ति—ये ही उनके प्रधान फल हैं। इनमें से उच्च कर्म करनेके सुअवसरकी प्राप्ति रूप फलको पृथक् कर देने पर शेष समस्त प्रकारके फल मायिक प्रतीत होते हैं। स्वर्ग भोग, मर्त्यसुखभोग, ऐश्वर्य आदि फल, जिन्हें जीव कर्म द्वारा प्राप्त करते हैं सभी नश्वर हैं। ये सभी भगवान्‌के कालचक्रमें पड़कर विनष्ट हो जाते हैं। इन फलोंके द्वारा मायाका बन्धन खुलना तो दूर रहे, इनसे और भी अधिक रूपमें कर्म वासनाएँ उत्पन्न होती हैं, जो माया-बन्धनको और भी अधिक सुदृढ़ कर देती हैं। उच्चकर्मोंका सुयोगरूप फल भी निरर्थक ही होता है, यदि उच्च कर्म वास्तवमें न किये जाएँ। श्रीमद्भागवत्‌में इस प्रकार कहते हैं—

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन्कथासु यः।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्।।

वर्णाश्रम धर्मका मूल तात्पर्य यह है कि स्वभावके अनुसार सांसारिक और शारीरिक कर्मोंके विभाग द्वारा मनुष्य सहज रूपमें संसार और शरीर यात्राका निर्वाह कर सके। ऐसा होनेसे हरिकथाके अनुशीलनके लिये पर्याप्त समय मिलेगा। यदि कोई मनुष्य वर्णाश्रम धर्मका उत्तम रूपसे पालन तो करता है, परन्तु हरि- कथामें उसकी रूचि नहीं होती, तो उसका सारा धर्मानुष्ठान व्यर्थका परिश्रम ही हो जाता है। कर्म द्वारा निश्चित रूपमेंभव समुद्रको पार नहीं किया जा सकता—इसे मैंने संक्षेपमें

बतलाया।

ज्ञानको भी उच्चगति प्राप्त करनेमें साधन बतलाया गया है। ज्ञानका फल आत्मशुद्धि है। आत्मा जड़ातीत वस्तु है; परन्तु इस तत्त्वको भूलकर जीव जड़ाश्रित होकर कर्म-मार्गमें भटक रहा हैं। ज्ञान-चर्चा द्वारा यह जाना जाता है कि मैं जड़ नहीं, चिद्-वस्तु हूँ। ऐसा ज्ञान स्वभावतः नैष्कर्म्य कहलाता है। इसका कारण यह है कि इसमें चिद्वस्तुका कुछ-कुछ ज्ञान रहने पर भी चिद्स्तुका नित्यधर्म—जो चिदास्वादन है प्रारम्भ नहीं होता। इस अवस्थाको प्राप्त हुए जीव आत्माराम कहलाते हैं। परन्तु जब चिदास्वादन रूप चित्क्रिया प्रारम्भ हो जाती है, तब नैष्कर्म्य नहीं रहता। इसलिये देवर्षि नारदजीने कहा है।

नैष्कर्म्यमप्यच्युत-भाववर्जितं
न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्।

अर्थात् नैष्कर्म्य रूप निर्मल ज्ञान भी भगवानकी भक्तिसे स्निग्ध न होने पर नितान्त उपेक्षणीय होता है।

श्रीमद्भागवतमें और भी कहते हैं—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्थाऽप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूगुणो हरिः।।

परम चैतन्य हरिमें एक ऐसा असाधारण गुण है कि जड़ समस्त जड़मुक्त आत्माराम जीवोंका भी आकर्षण कर अपनी भक्तिमें लगा देता है।

अतएव कर्म उच्चकर्मका सुअवसर प्रदान कर और ज्ञान अपना नैष्कर्म्य स्वरूप परित्याग कर जब भक्तिसाधन करानेमें नियुक्त होते हैं, तभी कर्म और ज्ञानको साधन-अङ्ग कहा जा सकता है। उनकी स्वयं कोई साधन अंगता स्वीकृत नहीं है। इसीलिए केवल भक्तिको ही साधन कहा गया है। कर्म और ज्ञान भक्तिके अधीन होनेपर कहीं-कहीं साधनके रूपमें माने गये हैं, परन्तु भक्ति तो स्वभावतः ही साधन-स्वरूप है। इस विषयमें श्रीमद्भागवतका निर्णय स्पष्ट है—

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपत्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता।।

हे उद्धव! कर्मयोग, सांख्ययोग वर्णाश्रम धर्म,
वेदपाठ, तपस्या या वैराग्य मुझे प्रसन्न नहीं कर पाते केवल तीव्र भक्ति ही मुझे प्रसन्न करनेमें समर्थ है।

भगवानको प्रसन्न करनेके लिये भक्तिके अतिरिक्त और कोई भी उपाय नहीं है। साधन भक्ति नौ प्रकारकी होती है—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन वंदन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन। इनमें से श्रवण, कीर्तन और स्मरण—ये तीन प्रधान साधनाङ्ग है। भगवानके नाम रूप, गुण, और लीला—इन चारों विषयोंका ही श्रवण, कीर्तन और स्मरण होता है। इनमें भी श्रीनाम ही आदि और सर्वबीज-स्वरूप है। अतएव हरिनाम ही सब प्रकार की उपासनाओंके मूल हैं। शास्त्रोंमें कहते है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

कलिकालमें हरिनामके अतिरिक्त जीवोंकी दूसरी गति नहीं है। 'कलिकाल' शब्द द्वारा यह समझना होगा कि सभी समयोंमें हरिनामके बिना जीवोंकी गति नहीं है। विशेषरूपमें

दूसरे-दूसरे मंत्रादि साधन दुःसाध होनेके कारण केवल हरिनामका ही अवलम्बन करना उचित है, क्योंकि हरिनाम सबसे बढ़कर वीर्यशाली है। हरिनामके सम्बन्धमें पद्मपुराणमें इस प्रकार लिखा गया है—

संत (सज्जन) के लक्षण

—ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी

दक्ष—२५

'दक्ष' शब्दका अर्थ 'निपुण' है। विषयी लोग भोगोंमें आसक्त होकर उसकी प्राप्तिके लिये जड़ कर्मोंमें अपनी निपुणता प्रदर्शन करते हैं; परन्तु विज्ञजनोंकी दृष्टिमें वह निपुणता नहीं, भव-बन्धनकी रस्सी है। विषयोंसे विरक्त सज्जन साधारण लोगोंकी दृष्टिमें कर्मोंमें निपुण भले ही न प्रतीत हों, परन्तु वास्तवमें वे हरिसेवाके समस्त कार्योंमें बड़े दक्ष होते हैं। वे अपने भक्तिसिद्धान्तोंके बल पर कर्मी, ज्ञानी और अन्याभिलाषियोंकी तथाकथित निपुणताकी हेयता प्रमाणित करनेमें भी दक्ष होते हैं। वे सदा-सर्वदा अनुकूल कृष्णानुशीलमें तत्पर होते हैं।

जो व्यक्ति कुकर्मियोंकी तरह असत्कर्मोंमें प्रवृत्त नहीं होता अथवा वह पुण्यमय कर्मवीरोंकी तरह क्षय होनेवाले नश्वर भोगोंकी आशासे सत्कर्मोंमें प्रवृत्त नहीं होता, मोक्षका भी प्रयास नहीं करता वरन् भोग और त्यागकी कामनाओंको सर्वथा दूर कर भगवत् कार्योंमें संलग्न रहता है, उसे अवैष्णव लोग नैष्कर्मवादी कह सकते हैं; परन्तु वास्तवमें वही व्यक्ति सबसे अधिक दक्ष है।

सज्जन वेदज्ञ और शास्त्र-पारङ्गत होते हैं। जड़ीय प्रतिष्ठा और पाप-पुण्य उनको मोहित नहीं कर सकते हैं। वे सर्वश्रेष्ठ कर्मवीर होने पर भी जड़ीय कर्मवीरोंकी जड़ीय कर्म-निपुणताके प्रति उदासीन होते हैं। यही उनकी सर्वोच्च दक्षताका परिचय है। वे अप्राकृत कवि होते हैं, अप्राकृत विद्वान होते हैं; जड़ कवियों और विद्वानोंसे उनकी कोई तुलना नहीं।

सज्जन अपनी दक्षताका जगत्में प्रचार नहीं करते। इसलिये साधारण व्यक्ति उनके गुणोंको देख नहीं पाता। भगवान्की कृपा होने पर द्रष्टाके हृदयमें भगवद्भक्तिका संचार होने पर वह सज्जनोंकी दक्षताका पक्षपाती हो सकता है। कुकर्मोंसे बचनेकी दक्षता उनमें होता है। वे भगवद्विद्वेषी असद्व्यक्तिकी उपेक्षा करते हैं। वे वैसे उपेक्षा द्वारा ही अपनी दक्षताकी श्रेष्ठता प्रमाणित करते हैं।

श्रीमन्महाप्रभु और उनके सेवकोंने श्रीहरिभक्तिका प्रचार करनेमें जिस दक्षताका परिचय दिया है, उसे विद्वन्मण्डली भलीभाँति जान चुकी है। उनकी दक्षताका ही यह परिणाम है कि भारतवर्षमें आज लगभग दो करोड़ लोग गौड़ीय वैष्णवके नामसे अपना परिचय देते हैं।

उपरोक्त दो करोड़ लोगोमें से सभी शुद्ध वैष्णव और दक्ष हैं, ऐसी बात नहीं है। बल्कि उनमेंसे जो सुदक्ष हैं, वे ही शुद्ध भक्ति-पथका आदर करते हैं और ब्रह्माण्ड स्थित जीव मात्रको ही वैष्णव समझते हैं। पाण्डित्य

प्रतिभामें श्रीजीव गोस्वामीका नाम, काव्य-रचनामें श्रीरूप गोस्वामी और प्रबोधानन्द सरस्वतीके नाम, असाधारण दैन्य और नम्रता प्रदर्शनमें तथा भगवद्भक्तकी सहायता करनेमें उत्कल नरेश प्रतापरुद्रका नाम, श्रीवैष्णव धर्मप्रचारमें श्रीभक्तिविनोद ठाकुरका नाम दक्षताके गगनमें सूर्यकी भाँति उज्जल है।

शिव-तत्त्व

—श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

गतांकसे आगे

श्रीकृष्ण पर निर्भरता

श्रीशंकरजीने एक असुरको वरदान दे दिया था कि वह जिसकी भी छाती पर हाथ रखेगा, वह भस्म हो जाएगा। असुरको पार्वती पसन्द आ गई। शंकरजीको भस्म करनेकी इच्छासे वह शंकरजी छाती पर हाथ रखनेके लिए आगे बढ़ा। शंकरजी वहाँसे भागे। असुर भी उनके पीछे भागा। शंकरजीका डमरू गिर गया, मृगछाल खुल गई। वे यह पुकारते हुए नङ्गे दौड़ने लगे—"प्रभु मेरी रक्षा करो"। भगवान उनके सम्मुख प्रकट हो गए और मुस्कराते हुए बोले—"तुम क्यों इस प्रकारके वरदान असुरोंको दे देते हो।" शिवजी बोले—"प्रभु मैंने सोचा कि आप तो सम्भाल ही लेंगे।" तब भगवानने एक सुन्दर वटुका भेष बनाया। वृकासुर जब भागता हुआ जा रहा था वटुके वेशमें भगवानने उससे पूछा—"कहाँ जा रहे हो?" असुरने दौड़ते हुए पूछा—"क्या शिवजीको देखा है?" वटुने पुछा—"तुम शंकरजीके पीछे बेकार क्यों दौड़ रहे हो?" असुरने कहा—"शंकरजीने मुझे यह वर दिया है कि मैं जिसकी भी छाती पर हाथ रखूँगा, वह भस्म हो जाएगा। इस वरदानको पाकर मैं शिवजीकी छाती पर हाथ रखना चाहता हूँ, ताकि वह भस्म हो जाए और मैं पार्वतीको प्राप्त कर लूँ।" तब भगवान बोले—"अरे मूर्ख! यह शंकर कबसे वरदान देने लगा? जो गाँजा और भाँगका सेवन करता है, शमशानमें रहता है, वह दूसरोंको क्या वर दे सकता है? अरे! तुम्हें विश्वास नहीं होता तो अपनी छाती पर हाथ रखकर तुम स्वयं परीक्षा कर लो।" वटु भगवानकी चमत्कारी बातोंसे मोहित होकर असुर वृकासुरने अपनी छाती पर हाथ रख दिया और हाथ रखते ही वह भस्म हो गया। अधिकतर असुर शंकरजीको भगवान मानकर ही आराधना करते हैं। शंकरजी वाणासुरके आराध्य थे। वाणासुरके हजारों हाथ थे, जिनसे वह शिवजीकी सेवा किया करता था। वाणासुर अपनी आसुरिक प्रवृत्तिके कारण भगवान कृष्णसे युद्ध कर बैठा। भगवानने अपने चक्रसे उसकी सारी भुजाएँ काट दीं। जब चक्र अन्तिम चार भुजाओं और शिरको भी काटने जा रहा था तब वाणासुर त्राहि शंकर, त्राहि शंकर चिलाने लगा। शंकरजी श्रीकृष्णसे भिड़ गए। भगवानकी मायासे शंकरजीको ज्वर चढ़ गया। तब पार्वतीजी कृष्णको मोहित करनेके लिए अर्धनग्न होकर कालीरूपमें कृष्णके पास आईं, पर भगवानने मुँह फेर लिया। तब पार्वतीजी कृष्णके चरणों पर गिर पड़ीं और कातर भावसे प्रार्थना की—"हे प्रभु! मेरे स्वामी

और पुत्र वाणासुर दोनोंको क्षमा कर दो।" शंकरजी कृष्णके अत्यन्त प्रिय हैं। अतः उन्होंने शिवजी और वाणासुरको क्षमा कर दिया।

द्वारिकामें श्रीकृष्ण कभी-कभी चतुर्भुज होकर लीला करते थे। एक राजा पौन्ड्रक-वासुदेव श्रीकृष्णका द्रोही था। उसने और भी दो नकली भुजाएँ लगाकर चतुर्भुज वेष धारण कर लिया और श्रीकृष्णको सन्देश भिजवाया कि मैं ही यथार्थ चतुर्भुज वासुदेव हूँ। तुम अपनी दो भुजाएँ हटा लो और वासुदेव नाम भी छोड़ दो। कृष्णने उसकी नगरी पर आक्रमण करके चक्रसे उसका गला काट दिया। काशी-नरेश जो शिवजीका अनन्य भक्त था उसने पौन्ड्रक-वासुदेवका पक्ष लेकर कृष्णसे युद्ध किया। श्रीकृष्णने चक्रसे उसका सिर काटकर काशीमें ही गिरा कर सारी काशीनगरी को भस्म कर दिया। तब शिवजी चक्रसे अपनी जान बचानेके लिए वहाँसे भागे। अन्तमें शिवजी नवद्वीप धाममें हरिहर क्षेत्र आए और श्रीचैतन्य महाप्रभुकी शरण ली। महाप्रभु अत्यन्त दयालु हैं, उनकी कृपासे चक्र शान्त हो गया। उसके बाद शिवजी भुवनेश्वरमें एकाम्रकाननमें चले गए।

शिक्षाप्रद लीला

रुद्र शिव भी सदा अपनी पत्नी पार्वतीके साथ नग्न अवस्थामें रहते हैं। वे काम आदि दोषोंसे अतीत हैं। भगवत्प्रेममें अत्यन्त अविष्ट रहनेके कारण यद्यपि वे नग्न रहते हैं और पार्वतीजी उनकी गोदीमें बैठती हैं, पर वे काम विकारसे अछूते रहते हैं। जगतमें स्त्री-पुरुष ऐसे साथ रहे तो वे पूर्णतः पतित हो जाएँगे, पर शिव-पार्वतीका कुछ नहीं बिगड़ता।

एक समय राजा चित्रकेतुने सख्य भावके आवेशमें भगवान शिवको कुछ व्यंग भरे शब्द कह डाले। पार्वतीजी क्रोधित हो गईं और उन्होंने श्राप दे दिया कि तू असुर योनिको प्राप्त हो। राजा चित्रकेतुने सहर्ष वह श्राप स्वीकार कर लिया। तब भगवान शिवने पार्वतीजीको उनकी भूल बतलाई। उन्होंने कहा कि राजा चित्रकेतु भगवानके अनन्य भक्त हैं। वे चाहते तो तुम्हारे श्रापको निरस्त कर देते, अपितु वे तुम्हींको श्राप दे सकते थे। पर भगवानके भक्तोंकी महिमा अपरम्पार है, उन्होंने प्रसन्नतासे तुम्हारा श्राप ग्रहण कर लिया।

श्रीशंकरजीका कामके द्वारा कुछ बिगड़ता नहीं। उन्होंने तो कामदेवको भस्म ही कर दिया। अतः भगवानके भक्त त्यागी बन कर रहे या स्त्रीके साथ रहे उनमें कोई विकार नहीं आता। श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु दो पत्नियोंके साथ रहें या भगवान् कृष्ण अनेकों गोपियोंके साथ रहें, उनमें काम विकार नहीं होता।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि फिर क्यों शिवजी मोहिनी रूपसे इतने आकर्षित हुए कि अपनी सुध-बुध खो बैठे। वस्तुतः यह भगवानकी निज माया है। सर्व समर्थ भगवानने पहले शिवजीके हृदयमें काम जगा दिया और स्वयं मोहनी रूप धारण कर शिवजीको मोहित करने लगे। ऐसेमें शिवका कामातुर हो कर मोहनीके पीछे भागना भगवानकी ही लीलामयी इच्छा है।

शंकरजीके इष्ट संकर्षण हैं जो बलरामजीके अवतार हैं। इसलिए राजा चित्रकेतु और

शंकरजीमें आपसमें सख्य भाव है। राम शब्द कभी दशरथके पुत्र श्रीराम और कभी बलरामजीके लिए भी आता है। यहाँ यह बात स्पष्ट करना आवश्यक है कि महामन्त्रमें राम न तो दशरथनन्दन रामके लिए है और न ही बलरामके लिए। यह राम—राधाजीके साथ रमण करने वाले राधारमण श्रीकृष्णके लिए है।

दण्डकारण्यमें जब भगवान राम लक्ष्मणजीके साथ विलाप करते हुए सीताजीकी खोज कर रहे थे, तब शिवजी सतीजीके साथ वहाँ उपस्थित हुए। शंकरजी ने दूरसे ही भगवानको प्रणाम किया। तब सतीजीने पूछा—"भगवन्! आप किसको प्रणाम कर रहे हैं? आप तो सदैव परब्रह्म श्रीराम ही को प्रणाम करते हैं।" तब शिवजीने कहा कि मैं इन्हीं परब्रह्म श्रीरामको प्रणाम कर रहा हूँ। पर सतीजीने पूछा—"ये परबह्म श्रीराम कैसे हो सकते हैं? परबह्म श्रीराम तो स्वयं-भगवान हैं। यह तो कामुक पुरुषकी तरह अपनी स्त्रीके लिए विलाप कर रहा है। यह भगवान् कैसे हो सकता है जिसे यह भी नहीं मालूम कि, सीताजीको कौन चुराकर ले गया है।" तब शिवजी ने कहा कि तुम परीक्षा करके देख लो। ऐसा कहकर शंकरजी आगे कुछ दूर एक वट वृक्षके नीचे जाकर रुक गए। सतीने सोचा कि मैं इनकी पत्नी सीताका रूप धारण करके इनके सम्मुख चलूँ, मुझे अपनी पत्नी समझकर ये मुझे आलिंगन करने दौड़ेंगे। ऐसा सोचकर वे सीताजीका रूप धारण कर रामके सामने आयीं। श्रीराम मुख पलटकर दूसरी ओर चलने लगे। सतीने सोचा शायद उन्होंने मुझे देखा नहीं। वे फिर उनके सामने खड़ी हो गईं, पर श्रीरामने उनकी ओर देखा ही नहीं। जब वे तीसरी बार रामके सामने आयीं, तो भगवान श्रीराम बोले—"भगवती देवि! महादेव शिवजी कहाँ गये? आप यहाँ अकेली क्या कर रही हैं?" यह सुनते ही उनकी आँखे खुल गईं। वे भगवान श्रीरामके चरणों पर गिर पड़ीं। जब उन्होंने आँखें खोलीं तो सर्वत्र ही कण-कणमें सीता-राम, सीता-रामके दर्शन किये। जब वे प्रणाम करके खड़ी हुईं तब पुनः देखा कि भगवान् श्रीराम अपनी पत्नी सीताके लिए विलाप कर रहे हैं। सती वहाँसे लौटकर शिवजीके पास चली आईं। शिवजीने पूछा—"तुम्हारी परीक्षा पूर्ण हो गई?" तब सतीने झूठ बोल दिया। प्रभु मैंने आपकी बात पर विश्वास कर लिया। परीक्षा क्या करनी है। शिवजी सतीके पति और गुरु दोनों ही हैं। सतीने गुरुके चरणोंमें दो अपराध किये। एक तो गुरुकी बात पर विश्वास नहीं किया, दूसरा उनसे झूठ बोला। अपने इन्हीं अपराधोंके कारण सतीको अपनी देह त्यागनी पड़ी और दूसरे जन्ममें पार्वतीके रूपमें जन्म लेकर पुनः शिवजीकी पत्नी बनना पड़ा।

शिवजी अपनी जटाजालमें भगवान् श्रीहरिका पदधौत जल भगवती गंगाको धारण किये हुए हैं और इसमें सदा सन्तुष्ट रहते हैं। यदि वे ऐसा नहीं करते तो गंगाजीकी तीव्र-धारा पृथ्वी भेदकर पताल पहुँच जाती। महाराज भगीरथकी प्रार्थना पर उन्होंने इस जगतके उपकारके लिए अपनी जटासे गंगाजीकी एक धारा छोड़ दी।

शिवजी तमोगुण या संहारके अधिष्ठाता

हैं। वे शमशानमें रहते हैं। जीवोंको इस मरणशील जगतकी अनित्यता समझानेके लिए ऐसा करते हैं। शरीर पर भस्म लगाकर ये प्रदर्शित करते हैं—शरीर भी एक दिन भस्म हो जायेगा, इसलिए इसमें आसक्ति न रखकर भगवानका भजन करो। वे अपने कंठ एवं भुजाओंमें सर्पोंको धारण करते हैं। ये सर्प शिवजीके इष्ट संकर्षण-अनन्त देव हैं तथा उनके आभूषण स्वरूप हैं जो सदा उनके कर्ण गुहाओंमें हरिकथा परिवेषण करते रहते हैं।

उपसंहार

परम भक्त तुलसी दासजी कहते हैं कि शिव पार्वतीको गुरु रूपमें लो। इस प्रकार शंकरजीकी पूजा गोपीश्वर रूपमें या गुरु रूपमें करो। शास्त्रोंकी सारी गूढ़-कथाओंका इसी प्रकार सामंजस्य करना चाहिए।

जो इन विचारोंको ध्यानमें रखकर शिवजीकी वैष्णवोचित उपासना करते हैं, आशुतोष शिव उन जीवोंके हृदयसे समस्त तमोराशिका नाशकर उन्हें कृष्णप्रेमका अधिकारी बना देते हैं।

गौरांग-सुधा

—श्रीमान् परमेश्वरी ब्रह्मचारी

महाप्रभुकी अध्यापना तथा मुरारीगुप्तके साथ हास-परिहास

श्रीगौरसुन्दर सदा-सर्वदा विद्यारसमें डूबे रहते हैं। विद्यालयमें जब छात्रोंके मध्य बैठकर पढ़ते हैं तो उस समय उनके ललाटपर उर्द्ध्वपुण्ड्र तिलक, गलेमें तुलसी माला तथा कन्धेपर उपवीत अत्यन्त शोभायमान होता है। उनके शरीरसे एक अद्भुत ज्योति निकलती है तथा उनके घुंघराले केश, कमलके समान नयन बरबस ही चराचर जगतको आकर्षित कर लेते हैं। एक क्षणके लिए भी उनके हाथसे पुस्तक छूटती नहीं है। सूत्रोंकी उनकी सुन्दर-सुन्दर व्याख्याएँ सुनकर श्रीगंगादास पण्डित प्रसन्न होकर कहते—"बेटा निमाई! तू मन लगाकर पढ़। मुझे पक्का विश्वास है, यदि तू इसी प्रकार पढ़ता रहा, तो अतिशीघ्र ही भट्टाचार्य बन जायेगा।"

गौरसुन्दर—"पण्डितजी! यदि किसीके ऊपर आपकी कृपा हो गई तो भट्टाचार्यका पद उसे सहजरूपमें ही प्राप्त हो जायेगा।"

गंगादास पण्डितके जितने भी छात्र थे, वे सभी गौरसुन्दरकी विलक्षण बुद्धिसे प्रभावित होनेके कारण प्रभुका गुरुकी भाँति सम्मान करते थे। गंगादास पण्डितसे पढ़नेके पश्चात् सभी गौरसुन्दरके पास बैठ जाते तथा उनसे पढ़ते थे। उसी विद्यालयमें मुरारीगुप्त नामक एक छात्र था। वे वैद्यवंशमें उत्पन्न हुए थे तथा परम भगवद्भक्त थे। वे परम भक्त हनुमानके अवतार थे तथा गौरसुन्दरकी लीलामें उनकी सेवाके लिए अवतरित हुए थे। वे कभी-कभी गौरसुन्दरके पास पढ़ने नहीं आते थे। इसलिए गौरसुन्दर उन्हें चिढ़ाया करते थे तथा उन्हें सुनाते हुए कहते—"अरे! मूर्खोंके पास तो सभी अपनी पण्डिताई दिखा सकते हैं। यदि किसीमें हिम्मत है तो मेरे सामने

आए तथा मेरी बातोंका खण्डन करके दिखाए। सन्धि करना जानते नहीं हैं, बनने चले पण्डित।"

यह सुनकर भी बेचारे मुरारीगुप्त कुछ बोलते नहीं, बस मुख नीचाकर चुपचाप अपनी पढ़ाई करते रहते। परन्तु भगवानका स्वभाव ही है कि वे अपने भक्तोंके साथ हास-परिहास करते हैं। अतः मुरारीगुप्तके कुछ न बोलने पर गौरसुन्दर पुनः पुनः उन्हें चिढ़ाते हुए कहते—"अरे वैद्य महाशय! आप संस्कृत व्याकरण पढ़ने क्यों आ गये? यह आपके वशकी बात नहीं है कि आप व्याकरण पढ़ सकें। आपके वशकी तो एकमात्र वैद्यगिरि ही है, जिसमें उल्टी-पुल्टी दवाई देकर मरीजसे रूपये ऐंठ लो फिर वह मरे या जिये उससे आपको कोई मतलब नहीं। आप तो चुपचाप अपने घर जाकर जड़ी-बुटी घिसकर रोगियोंको औषधि दीजिए। "फिर यदि कोई मारा भी गया तो आपको क्या मतलब है, क्योंकि आपको तो मतलब होता है एकमात्र पैसे से।" यद्यपि रूद्रके अंश होनेके कारण मुरारीगुप्त अत्यन्त क्रोधी भी हैं। परन्तु श्रीगौरसुन्दरकी ओर देखकर उन्हें लेशमात्र भी क्रोध नहीं आया। उन्होंने मन-ही-मन विचार किया कि यह निमाई पण्डित बहुत अभिमानी हो गया है, अतः इसका समुचित खण्डन करना चाहिए। यह सोचकर वे बोले—"निमाई पण्डित! आपका इतना घमण्ड अच्छा नहीं है। आप सभीको परेशान करते हैं। आपने मुझसे कुछ पूछे बिना कैसे मान लिया कि मैं कुछ जानता नहीं हूँ। आप ब्राह्मण हैं, अतः आपको निराभिमानी होना चाहिए।"

श्रीगौरसुन्दर—" वैद्य महाशय! अच्छी बात है। आपने आज जो पढ़ा, कृपापूर्वक उसकी व्याख्या कीजिए।"

यह सुनकर मुरारीगुप्तने व्याख्या की, परन्तु श्रीगौरसुन्दरने हँसते-हँसते उसका खण्डन कर दिया। इस प्रकार मुरारीगुप्त भी पुनः पुनः उत्तर देते, परन्तु गौरसुन्दर सहज रूपमें ही उनका खण्डन कर देते। इस प्रकार भगवान तथा भक्तमें बहुत देर तक शास्त्रार्थ होता रहा। परन्तु कोई भी किसीको पराजित नहीं कर पा रहा था। मुरारीगुप्तका अगाध पण्डित्य देखकर गौरसुन्दर बहुत प्रसन्न हुए। तथा अपने हस्तकमल द्वारा उनके शरीरको स्पर्श किया। स्पर्श करनेके साथ-साथ मुरारीगुप्तका शरीर आनन्दसे पुलकित हो गया तथा वे मन-ही-मन विचार करने लगे कि यह निमाई पण्डित कोई साधारण मनुष्य नहीं है। क्योंकि ऐसा अगाध पाण्डित्य साधारण व्यक्तिके लिए असम्भव है। इसके अतिरिक्त इसके स्पर्श करनेसे मेरा हृदय आनन्दसे नाचने लगा है, जो साधारण मनुष्यके स्पर्शसे सम्भव नहीं है। ऐसा विचारकर वे श्रीगौरसुन्दरसे बोले—"हे निमाई पण्डित! मैं भी आजसे आपके पास पढ़ने आऊँगा। इस प्रकार भगवानकी मायासे मोहित होनेके कारण मुरारीगुप्त अपने प्रभुको पहचान नहीं पा रहे हैं, परन्तु भगवानका स्वभाव ही है कि वे अपने भक्तोंके चित्तको हरणकर लेते हैं। ठीक यही स्थिति हुई मुरारीगुप्तकी। वे यद्यपि वे गौरसुन्दरको पहचान नहीं पाये परन्तु गौरसुन्दरका दर्शनकर एक अनजानी शक्तिने उन्हें गौरसुन्दरका दास बना दिया।

श्रीलक्ष्मी देवीसे विवाह

शचीमाताने देखा कि निमाई युवा हो गया है तथा उसने अध्ययन समाप्तकर स्वयं पढ़ाना भी आरम्भ कर दिया है। अतः अब उचित समय आ गया है। इसका विवाह कर देना चाहिए। इसलिए वे जहाँ भी जातीं थी, वहाँ किसी भी लड़कीको देखकर मन-ही-मन निमाईके साथ उसकी तुलना करतीं। परन्तु उन्हें कहीं भी ऐसी लड़की नहीं दिखाई पड़ी जो निमाईके योग्य हो। बल्लभाचार्य नामक नवद्वीपमें ब्राह्मण निवास करते थे। वे महाराज जनकके समान धीर-गम्भीर एवं समस्त सद्गुणोंके भण्डार थे। लक्ष्मीके समान सवगुण सम्पन्न उनकी एक कन्या थी, जिसका नाम भी उसके अनुरूप ही लक्ष्मी था। एक दिन वह गंगास्नान करनेके लिए गयी। उसी समय श्रीगौरसुन्दर भी वहाँ पर आ पहुँचे। प्रभु अपनी नित्य सेविका लक्ष्मी देवीको पहचानकर मुस्कुराने लगे तथा लक्ष्मी भी मन-ही-मन अपने प्रभुके चरणकमलोंकी वन्दना करने लगी। तत्पश्चात् वे दोनों ही अपने-अपने घरकी ओर चल पड़े।

भगवानकी इच्छासे एक दिन वनमाली नामक एक ब्राह्मण शचीदेवीके पास गया तथा उन्हें प्रणाम किया। शचीमाताने भी परम आदरपूर्वक उन्हें बैठनेके लिए आसन प्रदान किया तथा ब्राह्मण आरामसे उस आसन पर बैठ गया। शचीमाताके साथ कुछ देर इधर-उधरकी बात करते-करते, वह शचीमातासे बोला—"निमाई युवा अवस्थाको प्राप्त हो गया है, अतः आप उसके विवाहके विषयमें विचार क्यों नहीं कर रही हैं। इस नवद्वीपमें एक कुलीन एवं सुशील ब्राह्मण हैं, जिनका नाम बल्लभाचार्य है। उनकी लक्ष्मी सदृश सर्वगुणसम्पन्न एक कन्या है। यदि आपकी इच्छा हो तो मैं आज ही बल्लभाचार्यसे बातचीत करूँ।"

शचीमाता—"मेरा निमाई पितृहीन है। अतः पहले वह पढ़ लिखकर अपने पैरोंपर खड़ा हो जाए, विवाह तो उसके बादमें भी हो सकता है।"

शचीमाताका उत्तर सुनकर ब्राह्मण निराश एवं कुछ दुःखी होकर वहाँसे चल पड़ा। रास्तेमें ही गौरसुन्दरसे उसकी भेंट हो गयी। उसे दुःखी देखकर प्रभु श्रीगौरसुन्दर बोले—"हे ब्राह्मणदेव! आप कुछ दुःखी जान पड़ते हैं, आप कहाँसे आ रहे हैं? आपके दुःखका क्या कारण है?"

ब्राह्मण—मैं आपकी माताजीके पास आपके विवाहके सम्बन्धमें बातचीत करने गया था। परन्तु न जाने क्यों उन्हें मेरी बात पसन्द नहीं आयी।"

यह सुनकर गौरसुन्दर चुप हो गये तथा हँसते हँसते उसे विदाकर घर आये। घरमें आकर हँसते हुए शचीमातासे पूछने लगे—"माँ! आपने उस ब्राह्मणसे अच्छी तरहसे बातें क्यों नहीं की।" अनुभवी शचीमाता पुत्रका इशारा समझ कर बहुत प्रसन्न हो गईं। दूसरे ही दिन वनमाली पण्डितको बुलवाकर बोली—"हे ब्राह्मणदेव! आप कल जिस सम्बन्धकी बात कर रहे थे, कृपाकर शीघ्रसे शीघ्र उस सम्बन्धको पक्का कीजिए।"

यह सुनकर ब्राह्मणकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। उसने शचीमाताको प्रणाम किया और बल्लभाचार्यके घरकी ओर चल पड़ा। बल्लभाचार्यने ब्राह्मणको आया हुआ देखा

तो बहुत आदरपूर्वक उन्हें बैठाया। आरामसे बैठनेके बाद वह बल्लभाचार्यसे बोला—"हे आचार्य! आपकी कन्या विवाहके योग्य हो गयी है। इसलिए कोई योग्य वर देखकर इसका विवाह कीजिए। मेरी दृष्टिमें एक लड़का है जो सब प्रकारसे लक्ष्मीके अनुरूप है। वह अद्वितीय पण्डित एवं रूपमें साक्षात् कामदेवको भी मोहित करने वाला है। शायद आप भी उसे अवश्य ही जानते होंगे, जिसका नाम इस समय नवद्वीपमें सूर्यकी भाँति चमक रहा है, वह है परलोकगत जगन्नाथमिश्रका सुपुत्र निमाई। इस समय नवद्वीपमें ऐसा एक भी पण्डित नहीं है, जो शास्त्रार्थमें उसके सामने टिक सके। यदि आपकी इच्छा हो, तो मैं यह सम्बन्ध पक्का कर दूँगा।"

निमाई नाम सुनकर बल्लभाचार्य एवं उनके परिवारके लोगोंका हृदय नाचने लगा। सभी विचार करने लगे, ऐसा योग्य वर अनेक जन्मोंके भाग्यसे ही मिलता है। अतः अवश्य ही लक्ष्मीका अनेक जन्मोंका सौभाग्य उदित हुआ है, जो घर बैठे हुए ही इतना सुन्दर वर प्राप्त हो गया है। इस प्रकार मन-ही-मन विचार कर बल्लभाचार्य बोले—"हे ब्राह्मण! ऐसा योग्य वर लड़कीके बहुत भाग्यसे ही मिलता है। अवश्य कृष्ण मुझपर प्रसन्न हैं अथवा लक्ष्मी पर शिव-पार्वती प्रसन्न हैं तभी ऐसा योग्य वर प्राप्त है। अतः आप अतिशीघ्र जाकर इस सम्बन्धको पक्का कीजिए। परन्तु मैं आपसे एक बात कहना चाहता हूँ कि मैं एक निर्धन ब्राह्मण हूँ। मेरे पास देनेके लिए कुछ नहीं है। मैं तो एकमात्र अपनी कन्याको ही दान करूँगा। इसलिए आप कृपाकरके मेरा यह निवेदन शचीमातासे कह देना।"

यह सुनकर ब्राह्मण बहुत प्रसन्नतापूर्वक शचीमाताके घर आया तथा सम्बन्ध पक्का होनेकी बात उन्हें सुनाई। यह शुभ समाचार सुनकर आस-पड़ोसके लोग तथा बन्धु-बान्धव बहुत आनन्दित हुए तथा सभी लोग विवाहकी तैयारियोंमें जुट गये। इस प्रकार आखिर वह शुभ दिन भी आ पहुँचा जब श्रीगौरसुन्दर अपनी नित्य प्रेयसी श्रीलक्ष्मी देवीको नरलीलाके अनुरूप वरवेश धारणकर ब्राह्मणों एवं अग्निके समक्ष पत्नीके रूपमें ग्रहण करेंगे। प्रातःकाल उठकर श्रीगौरसुन्दरने स्नानकर ब्राह्मणोंको दान दिया तथा अपने पितृ पुरुषोंकी पुजा की। घरमें नट लोग आकर गाना-बजाना करने लगे। पतिव्रता नारियाँ तथा ब्राह्मणलोग मंगलकामना करनेके लिए आने लगे तथा शचीमाता स्त्रियोंको खिल, सिन्दूर, पान, तेल इत्यादि प्रदानकर संतुष्ट करने लगीं। स्वयं देवता लोग एवं उनकी स्त्रियाँ भी साधारण ब्राह्मण एवं ब्राह्मणियोंके वेशमें आकर मंगलकामना करने लगे। इस प्रकार सारा दिन इसी चहल-पहलमें व्यतीत हो गया। ठीक गोधूलिके समय (सूर्य अस्तके समय) श्रीगौरसुन्दर बन्धु-बान्धवोंके साथ बल्लभाचार्यके घरपर उपस्थित हुए। जैसे ही प्रभु उनके घरके द्वारपर पहुँचे। वहाँ पर उपस्थित सभी आनन्दके सागरमें डूबने लगे। सम्मानपूर्वक बल्लभाचार्यने अपने दामादको आसन पर बैठाया तथा उनका पूजन किया। तब तक पतिव्रता नारियाँ तथा लक्ष्मीजीकी सखियाँ लक्ष्मीको सजाकर प्रभुके समीप ले आयीं। चारों ओर सभी लोग मंगल

ध्वनि करने लगे। तत्पश्चात् लक्ष्मीजीने प्रभुकी सात बार परिक्रमा कर उन्हें प्रणाम किया। इसके बाद माला अदल-बदल हुई। लक्ष्मी नारायणने कौतूहलपूर्वक एक दूसरेको माला पहनाई। लक्ष्मीदेवीने प्रभुके चरणोंमें माला अर्पणकर आत्मसर्मण किया। उस समय चारों दिशाएँ दोनोंके जय-जयकारसे गूंजने लगीं। आकाशसे देवतावृन्द पुष्प बरसाने लगे। माला अदल-बदलके पश्चात् लक्ष्मीदेवीको श्रीगौरसुन्दरकी बायीं तरफ बिठा दिया गया। उस समय उस अपूर्व जोड़ीका दर्शन कर सभी मत्र मुग्ध हो गये। अन्तमें श्रीबल्लभाचार्य राजा भीष्मकी भाँति कन्यादान करनेको बैठ गये। सर्वप्रथम उन्होंने श्रीगौरसुन्दरके श्रीचरणकमलोंको धोया। उनके चरणोंकी पूजा की, उन्हें माला पहनाई तथा उनके श्रीअंगपर चन्दनका लेप किया। इस प्रकार विधि अनुसार कन्याका दानकर बल्लभाचार्य आनन्द-सागरमें डूब गये। उस दिन रात्रिमें वहीं पर निवासकर प्रातःकाल श्रीगौरसुन्दर लक्ष्मीके साथ दोलेपर चढ़कर अपने घरकी ओर चल पड़े। रास्तेमें उस सुन्दर जोड़ीका दर्शन करनेको लोगोंकी भीड़ लग गयी। जो भी उस जोड़ीका दर्शन करता मन्त्रमुग्ध-सा होकर धन्य-धन्य कहने लगता। विशेषकर स्त्रियाँ श्रीगौरसुन्दर तथा लक्ष्मीदेवीका दर्शनकर भावाविभोर हो जातीं वे भाग्यकी प्रशंसा करते हुए आपसमें कहने लगीं—"थोड़े भाग्यसे ऐसा पति नहीं मिलता। ऐसा प्रतीत होता है कि इस भाग्यवतीने अनेक जन्मों तक शिव-पार्वतीकी निष्कपट रूपसे सेवा की है। उनकी कृपासे ही इसे ऐसा गुणवान एवं रूपवान पति प्राप्त हुआ है।" इतनेमें एक अन्य स्त्री बोली—"तुम कह रही हो शिव-पार्वतीकी कृपासे इसे ऐसा वर प्राप्त हुआ है। पर मुझे लगता है कि यह जोड़ी अन्य किसीकी नहीं, बल्कि शिव-पार्वतीकी ही है। तीसरी कोई स्त्री बोली—"मुझे यह जोड़ी इन्द्र एवं इन्द्राणाी (शची) की लगती है। मुझे तो ये दोनों लक्ष्मी-नारायण लगते हैं।

इस प्रकार कोई उन दोनोंको कामदेव-रतिदेवीके रूपमें तो कोई सीता-रामके रूपमें दर्शन कर रही थी। इस प्रकार स्त्रियाँ उन दोनोंकी प्रशंसा करते थक नहीं रही थीं तथा श्रीगौरसुन्दर एवं लक्ष्मीदेवी उनपर शुभ कृपादृष्टि कर रही थीं। इस प्रकार आनन्दपूर्वक चलते-चलते सन्ध्याके समय श्रीगौरसुन्दर लक्ष्मी देवीको लेकर अपने घरपर पहुँचे। पुत्र एवं पुत्रवधूके द्वार पर पहुँचने पर शचीमाता प्रसन्नकर होकर अन्यान्य ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंको साथ लेकर अपनी पुत्रवधूको घरके भीतर ले आयी। आज उनकी प्रसन्नताका ठिकाना न था। उन्होंने प्रसन्न होकर ब्राह्मण, वाद्यकार इत्यादि जितने भी लोग बारातमें शामिल थे सभीको यथायोग्य धान्य, वस्त्र तथा अन्न द्वारा संतुष्टकर विदा किया। अब शचीमाता सदा-सर्वदा अपने पुत्र-पुत्रवधुकी अनुपम जोड़ीको निहारती रहती थीं। वे सब समय घरके भीतर-बाहर एक अद्भुत ज्योति देखती थीं, परन्तु समझ नहीं पाती थीं कि आखिर यह ज्योति कैसी है? कभी-कभी उसे अपने पुत्रकी वाईं ओर एक प्रकाशपुञ्ज दिखाई पड़ता, परन्तु अगले ही क्षण देखतीं तो वहाँ पर कुछ भी नहीं एकमात्र लक्ष्मी बैठी दिखाई

देती थी। कभी-कभी सारे घरमें कमलके फूलोंकी सुगन्ध फैल जाती थी। शचीमाता आश्चर्यमें पड़ जातीं कि घरमें एक भी कमल फूल नहीं है, फिर यह सुगन्ध कहाँसे आ रही है? फिर मन-ही-मन चिन्ता करने लगतीं—"मेरी पुत्रवधूके शरीरमें अवश्य ही लक्ष्मी (कमला) जीका अधिष्ठान है। इसीलिए घरमें कभी इधर-उधर प्रकाश पुञ्ज दिखाई पड़ता है, कभी कमल फूलकी सुगन्ध आती है। इन सब बातोंको शचीमाता एकान्तमें श्रीगौरसुन्दरसे कहतीं, तो वे हँसकर टाल देते थे।

महाभागवतवर वृत्रासुर

(गताङ्कसे आगे)

वे आप ही सबके आत्मा और परमाराध्यदेव हैं। प्रकृति और पुरुषरूपसे विश्वके कारण हैं। विश्वसे पृथक् रूपसे भी हैं और विश्वरूप हैं। हम सभी शरणागतवत्सल भगवान् श्रीहरि आपकी शरण ग्रहण करते हैं? उदारशिरोमणि प्रभु आप अवश्य ही अपने निजजन समझ हम देवताओंका कल्याण करें।

इस प्रकार जब देवताओंने भगवान्की स्तुति की तो स्वयं भगवान् शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि धारणकर सबके बीचमें प्रकट हुए। इस समय उनकी शोभा अपूर्व थी। उनके नेत्र शरत्कालीन कमलके समान विकसित थे, पार्षद उनकी सेवामें लग्न थे, भगवान्के वक्ष-स्थलमें श्रीवत्सका चिह्न था और गलेमें कौस्तुभ मणि शोभा पा रही थी।

भगवान्के दर्शनकर सभी देवता आनन्द विह्वल हो गये। उन सबने पृथ्वी पर लोटकर साष्टांग दण्डवत् किया और धीरे-धीरे वे लोग भगवान्की स्तुति करने लगे—

नमस्ते यज्ञवीर्याय वयसे उत ते नमः।
नमस्ते ह्यस्तचक्राय नमः सुपुरुहूतये।।

(भा॰ ६/९/३२)

यज्ञोंके द्वारा स्वर्गादि देनेकी शक्ति तथा उनके फलकी सीमा निश्चित करनेवाले काल भी आप ही हैं। और यज्ञोंमें विघ्न डालनेवाले दैत्योंको आप चक्रसे छिन्न-भिन्न करते हैं।

इसलिए आपके नामोंकी काई सीमा नहीं है। हम आपको बारम्बार नमस्कार करते हैं। आप जगत्के परम कारण महापुरुष पुरुषोत्तम हैं। आप मंगलमय परम कल्याण-स्वरूप दयालु हैं। आप ही जगत्के स्वामी हैं। सौन्दर्य और मृदुलताकी अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मीजीके आप ही पति हैं। आपकी रहस्यमयी लीलाओंको जानना बहुत ही कठिन है।

अतएव स्वयं तदुपकल्पयास्माकं भगवतः परमगुरोस्तव चरणशतपलाशच्छायां विविध वृजिनसंसारपरिश्रमोपशमनीमुपसृतानां वयं यत्कामेनोपासादिताः।। ४३ ।।

हे भगवन्! हम अपना अभिप्राय प्रकट करें, इसकी अपेक्षा न रखकर जिस अभिलाषासे हम लोग यहाँ आये हैं, उसे पूर्ण कीजिए। आप अचिन्त्य ऐश्वर्यसम्पन्न जगत्के परम गुरु हैं। हम आपके चरणकमलोंकी छत्रछायामें आये हैं, जो विविध पापोंके फलस्वरूप जन्म-मृत्यु संसारमें भटकने की थकावटको मिटानेवाली है।

अथो ईश जहि त्वाष्ट्रं ग्रसन्तं भुवनत्रयं।

ग्रस्तानि येन नः कृष्ण तेजांस्यस्त्रायुधानि च।।
(भा॰
६/९/४४)

हे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर! वृत्रासुरने हमारे प्रभाव और अस्त्र–शस्त्रोंको ग्रास कर लिया है। वह अब तीनों लोकोंको भी ग्रास कर रहा है। आप उसे मार डालिए।

हंसाय दह्रनिलयाय निरीक्षकाय
कृष्णाय मृष्टयशसे निरुपक्रमाय।
सत्संग्रहाय भवपान्थनिजाश्रमाप्ता–
वन्ते परीष्टगतये हरये नमस्ते।।
(भा॰ ६।९।४५)

हे प्रभो! आप शुद्धस्वरूप, हृदयस्थित शुद्ध ज्योतिर्मय आकाश, सबके साक्षी, अनादि, अनन्त और उज्ज्वल कीर्त्तिसम्पन्न हैं। संत लोग आपका ही संग्रह करते हैं। संसारके पथिक जब घूमते–घूमते आपकी शरणमें आ पहुँचते हैं, तब आप उन्हें परमानन्द स्वरूप अभीष्ट फल देते हैं और इस प्रकार उनके जन्म–जन्मान्तरके कष्टोंको हर लेते हैं। हे प्रभो! हम आपको नमस्कार करते हैं।

जब देवताओंने बड़े आदरके साथ इस प्रकार भगवान्का स्तवन किया, तब भगवान् बहुत प्रसन्न हो कर उनसे इस प्रकार कहने लगे–

प्रीतोऽहं वः सुरश्रेष्ठा मदुपस्थानविद्यया।
आत्मैश्वर्यस्मृतिः पुंसां भक्तिश्चैव यया मयि।।
किं दुरापं मयि प्रीते तथापि विबुधर्षभाः।
मय्येकान्तमतिर्नान्यन्मत्तो वाञ्छति तत्त्ववित्।।
(भा॰
६/९/४७–४८)

हे देवताओ! तुम लोगोंने स्तुतियुक्त ज्ञानसे मेरी उपासना की है। इस स्तुतिके द्वारा जीवोंको अपने वास्तविक स्वरूपकी स्मृति और मेरी भक्ति होती है। हे देवशिरोमणियो! मेरे प्रसन्न हो जाने पर कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रह जाती। तथा मेरे अनन्य प्रेमी तत्त्ववेत्ता भक्त मुझसे मेरे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं चाहते।

जो पुरुष जगत् के विषयोंको सत्य समझता है, वह नासमझ तथा वास्तविक कल्याणका अनिच्छुक है। परन्तु यदि कोई जानकार व्यक्ति उसे उसकी इच्छित भोग–सामिग्री प्रदान करता है, तो वह भी नासमझ है। जो पुरुष मुक्तिका स्वरूप जानता है, वह अज्ञानी को भी कर्मो में फँसने का उपदेश नहीं देता, ठीक उसी प्रकार जैसे कि रोगी के चाहने पर भी सद्वैद्य उसे कुपथ्य नहीं देता ।

मघवन् यात भद्रं वो दध्यञ्चमृषिसत्तमम्।
विद्याव्रततपःसारं गात्रं याचत मा चिरम्।।
स वा अधिगतो दध्यङ्ङश्विभ्यां ब्रह्म निष्कलम्।
यद् वा अश्वशिरो नाम तपोरमतां व्यधत्।।
(भा ा .
६/९/५१–५२)

देवराज इन्द्र! तुम लोगों का कल्याण हो। अब देर मत करो । ऋषि–शिरोमणि दधीचि के पास जाओ और उनसे उनका शरीर जो उपासना, व्रत , तपस्याके कारण दृढ़ हो गया है, मांग लो । दधीचि ऋषि को शुद्ध ब्रह्मज्ञान है। अश्विनीकुमारोंको घोड़ेके सिरसे उपदेश करनेके कारण उनका एक नाम अश्वसिरः है। उनकी उपदेशकी हुई आत्म विद्याके प्रभावसे ही दोनों अश्विनी कुमार जीवन्मुक्त हुये हैं।

दधीचि ऋषि धर्मके मर्मज्ञ हैं। वे तुमलोगोंको अश्विनीकुमारके माँगने पर अपने शरीरके अंग अवश्य दे देंगे। इसके पश्चात् विश्वकर्माके द्वारा उन अंगोंसे एक श्रेष्ठ आयुध ा तैयार कर लेना। हे देवराज! फिर मेरी शक्तिसे युक्त होकर तुम उसी शस्त्रके द्वारा उस वृत्रासुरका सिर काट लेना।

हे देवताओ! वृत्रासुरके मारे जाने पर तुमलोगोंको फिरसे तेज, अस्त्र-शस्त्र और सम्पत्तियाँ प्राप्त हो जायेंगी। तुम्हारा कल्याण अवश्यंभावी है। क्योंकि मेरे शरणागतोंको कोई कष्ट नहीं पहुँचा सकता।

भगवान् परमपिता अपने श्रीमुखसे इस प्रकारके वचन कहकर अन्तर्हित हो गये। इसके पश्चात् देवताओंने दधीचि ऋषिके पास जाकर भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार ऋषिसे याचना की। प्रभुकी आज्ञा सुनकर दधीचि ऋषिको बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने प्रसन्नमुद्रासे हँसते हुए देवताओंसे से कहा—

अपि वृन्दारका यूयं न जानीथ शरीरिणाम्।
संस्थायां यस्त्वभिद्रोहो दुःसहश्चेतनापहः॥
जिजीविषूणां जीवानामात्मा प्रेष्ठ इहेप्सितः।
कः उत्सहेत तं दातुं भिक्षमाणाय विष्णवे॥

(भा. ६/१०/३-४)

हे देवताओ! आप लोगोंको सम्भवतः यह बात नहीं मालूम है कि मरते समय प्राणियोंको बड़ा कष्ट होता है। उन्हें जब तक चेत रहता है, बड़ी असह्य पीड़ा सहनी पड़ती है और अन्तमें मूर्च्छित हो जाते हैं।

जे जीव जगत्‌में जीवित रहना चाहते हैं, उनके लिए शरीर बहुत ही अनमोल, प्रियतम एवं अभीष्ट वस्तु है। ऐसी स्थितिमें स्वयं विष्णु भगवान् भी यदि जीवसे उसका शरीर माँगे, तो कौन उसे देनेका साहस करेगा?

किं नु तद् दुस्त्यजं ब्रह्मन् पुंसां भूतानुकम्पिनाम्।
भवद्विधानां महतां पुण्यश्लोकेड्यकर्मणाम्॥

(भा. ६/१०/५)

हे ब्रह्मन्! आप जैसे उदार और प्राणियोंपर दया करनेवाले महापुरुष जिनके कर्मोंकी बड़े-बड़े यशस्वी महानुभाव भी प्रशंसा करते हैं, प्राणियोंके भलाईके लिए कौन-सी वस्तु न्योछावर नहीं कर सकते? हे भगवन्! इसमें सन्देह नहीं कि माँगनेवाले लोग स्वार्थी होते है। उनमें देनेवालोंकी कठिनाईका विचार करने की बुद्धि नहीं होती। यदि उनमें इतना ज्ञान होता, तो वे माँगते ही क्यों? इसी प्रकार दाता भी माँगनेवालेकी विपत्ति नहीं जानता। अन्यथा उसके मुखसे कदापि 'नहीं' न निकलता। इसलिए आप हमारी विपत्ति समझकर हमारी याचनाको पूर्ण कर यशके भागी बनिए।

ऐसा सुनकर दधीचिने कहा कि हे देवताओ! मैंने आपलोगोंके मुखसे धर्मकी बात सुननेके लिए ही आपकी याचनाके प्रति उपेक्षा दिखलाई थी। यह लीजिए, मैं अपने प्यारे शरीरको अभी छोड़ देता हूँ, क्योंकि यह एक दिन मुझे स्वयं ही छोड़नेवाला है।

जो मनुष्य इस विनाशी शरीरसे दुःखी प्राणियोंपर दया कर मुख्यतः और गौणतः यशका सम्पादन नहीं करता, वह जड़ पेड़-पौधोंसे भी गया-बीता है। बड़े-बड़े महात्माओंने इस अविनाशी धर्मकी उपासना की है। उनका स्वरूप बस, इतना ही है कि मनुष्य किसी भी प्राणीके दुःखमें दुःखका

अनुभव करे और सुखमें सुखका।

अहो दैन्यमहो कष्टं पारक्यैः क्षणभंगुरैः।
यन्नोपकुर्यादस्वार्थैर्मर्त्यः स्वज्ञातिविग्रहैः।।

(भा. ६/१०/१०)

जगत्के धन–जन और शरीर आदि क्षणभंगुर हैं। ये अपने किसी काममें नहीं आते। अन्तमें दूसरोंके ही काम आयेंगे। ओह! यह कैसी कृपणता है, कितने दुःखकी बात है कि यह मरणधर्मा मनुष्य इनके द्वारा दूसरोंका उपकार नहीं कर लेता।

इस प्रकार धर्मयुक्त बात कहते हुए अथर्ववेदी महर्षि दधीचिने ऐसा निश्चय कर अपनेको परब्रह्म परमात्मा श्रीभगवान्के ध्यानमें स्थिर करके अपना स्थूल देह परित्याग कर दिया।

अनन्तर दधीचि ऋषिकी अस्थियोंको लाकर इन्द्रने विश्वकर्माको दी। उसने वज्र बनाकर इन्द्रको दिया। दूसरी ओर इन्द्र भगवान्की अपूर्वशक्तिसे सम्पन्न हो गये। फिर वे ऐरावत हाथी पर चढ़कर अपने देव, रुद्र, वसु, आदित्य, मरुद्गण आदिको साथ लेकर त्रिलोकको हर्षित करते हुए वृत्रासुरका वध करने चले और अपनी पूरी शक्ति लगाकर उस पर भयानक आक्रमण किया। जब वृत्रासुरने देखा कि युद्धके लिये देवताओंने पूरी तैयारी कर ली है, तो वह भी अपने दैत्य, नमुचि, शम्बर, अर्नवा, शंकुशिरा आदिकी महती सेना लेकर मोर्चे पर आ डटा।

एक ओर शक्ति सम्पन्न इन्द्र देवताओंको लेकर, दूसरी ओर वृत्रासुर अपने अनेक दानवोंको लेकर संग्राममें तत्पर हो गये। परन्तु युद्धमें देवता शक्तिसम्पन्न होनेके कारण सफलता प्राप्त करने लगे । तो दूसरी ओर वृतासुरके अनुयायी अत्यधिक पराभव एवं असफलता प्राप्त करने लगे। असुरों के अस्त्र–शस्त्र देवसेना का कुछ नहीं बिगाड़ सके और न उनके वृक्षों, पत्थरों, चट्टानों, पर्वतों के शिखरों के प्रहार करने पर भी देवसेनाके किसी व्यक्तिके शरीरमें खरोंच नहीं आई। दैत्य लोग देवताओंको पराजित करनेके जो–जो प्रयत्न करते, वे सबके सब निष्फल हो जाते–ठीक वैसे ही जैसे भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा सुरक्षित भक्तों पर क्षुद्र मनुष्योंके कठोर और अमंङ्गलमय दुर्वचनोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। भगवद् विमुख लोग अपने प्रयत्न को व्यर्थ होते देखकर उत्साहरहित हो गये। उनकी वीरता का घमण्ड जाता रहा। अब वे अपने सरदार वृतासुरको युद्धभूमि में ही छोड़कर भाग खड़े हुये, क्योंकि देवताओंने उनका सारा बल–पौरूष छीन लिया था। वृत्रासुरने जब अपने असुरों को भागते हुये और अपनी सेना को भयभीत एवं छिन्न–भिन्न हाते हुये देखा तो उसने उन्हें हँसते–हँसते पुकार कर कहा–

जातस्य मृत्युर्ध्रुव एष सर्वतः
प्रतिक्रिया यस्य न चेह क्लृप्ता।
लोको यशश्चाथ ततो यदि ह्यमुं
को नाम मृत्युं न वृणीत युक्तम्।।
द्वौ संमताविह मृत्यु दुरापौ
यद् ब्रह्मसंधारणया जितासुः।
कलेवरं योगरतो विजह्याद्
यदग्रणीर्वीरशयेऽनिवृत्तः।।

(भा॰ ६/१०/३२-३३)

इसमें सन्देह नहीं कि जो उत्पन्न हुआ है, उसे एक न एक दिन अवश्य ही मरना पड़ेगा। इस जगतमें विधाताने मृत्युसे बचनेका कोई उपाय नहीं बतलाया है। ऐसी स्थितिमें यदि मृत्युके द्वारा स्वर्गादि लोक और सुयश भी मिल रहा हो, तो ऐसा कौन बुद्धिमान है, जो उत्तम मृत्युको न अपनेयागा? संसारमें दो प्रकारकी मृत्यु परम दुर्ल्लभ और श्रेष्ठ मानी गयी है। एक तो योगी पुरुषका अपने प्राणोंको वशमें करके ब्रह्म-चिन्तन द्वारा शरीरका परित्याग और दूसरा युद्धभूमिमें सेनाके आगे बिना पीठ दिखाये जूझ मरना। तुम भाग्यसे प्राप्त ऐसे शुभ अवसरको क्यों हाथसे खो रहे हो?

असुर सेनाने भयभीत और अचेतावस्थाके कारण स्वामीके धर्मानुकूल वचनोंपर ध्यान नहीं दिया। तब वृत्रासुरने असुरोंकी सेनाको खदेड़कर और देवोंको रोककर कहा- हे देवों! कायर असुरोंपर छिपकर क्यों प्रहार कर रहे हो?

यदि वः प्रधने श्रद्धा सारं वा क्षुल्लका हृदि।
अग्रे तिष्ठत मात्रं मे न चेद् ग्राम्यसुखे स्पृहा।।

(भा॰ ६/११/५)

यदि तुम्हारे मनमें युद्ध करनेकी शक्ति और उत्साह है तथा जीवित रहकर विषय सुख भोगनेकी लालसा नहीं है, तो क्षणभर मेरे सामने डट जाओ और युद्धका आनन्द चख लो।

वृत्रासुर बड़ा ही बली था। वह क्रोधमें भरकर शत्रु देवताओंको भयभीत करने लगा। उसके सिंहनादसे बहुतसे जन अचेत होकर पृथ्वीपर गिर पड़े, मानो उन पर बिजली गिरी हो।

जैसे मदोन्मत्त गजराज नरकटका वन रौंद डालता है, वैसे ही रणबाँकुरे वृत्रासुर हाथमें त्रिशूल लेकर भयसे नेत्र बन्द किये पड़ी हुई देवसेनाको पैरोंसे कुचलने लगा। उसके वेगसे धरती डगमगाने लगी। वज्रपाणि देवराज इन्द्र उसकी यह करतूत सहन न कर सके। जब वह उनकी ओर झपटा, तो उन्होंने और भी चिढ़कर अपने शत्रुपर बहुत बड़ी गदा चलायी। अभी वह असह्य गदा वृत्रासुरके पास पहुँची भी न थी कि उसने खेल ही खेलमें बाँये हाथसे उसे पकड़ लिया।

पराक्रमी वृत्रासुरने उसी गदासे क्रोधमें भरकर इन्द्रवाहन ऐरावतके सिरपर बड़े जोरसे गरजते हुए प्रहार किया। उसके इस कार्यसे सभी प्रसन्न हुए। परन्तु वृत्रासुरकी गदाकी आघातसे ऐरावत हाथी वज्राहत पर्वतके समान तिलमिला उठा और सिर फट जानेसे व्याकुल हो गया। ऐरावतको मूर्छित देखकर इन्द्र भी विषादग्रस्त हो गये। वृत्रासुरने फिर गदा न चलायी क्योंकि वह धार्मिक युद्धविद्यामें प्रवीण था। कुछ समयके पश्चात् जब इन्द्रको सामने वृत्रासुरने आते देखा तो वह हँसता इन्द्रसे बोलने लगा—

हाथमें पञ्जिका और मंगलवार

यदि किसीके हाथमें पञ्जिका हो और वह पूछे कि मंगलवार कब है, तो उसे मूर्खता ही कहना पड़ेगा। क्योंकि पञ्जिका खोलकर देखनेसे ही तो वह जान जायेगा कि मंगलवार

कब है।

कुछ लोग ऐसे होते हैं जो सद्गुरु और शुद्ध वैष्णवका सुदुर्लभ सत्संग प्राप्त करनेपर भी अनमना रहते हैं, उनके उपदेशको धारण नहीं कर पाते हैं। सद्गुरु और शुद्ध वैष्णवकी सेवा प्राप्त करना ही सर्वसिद्धि है। इसलिए अलगसे सिद्धि लाभके लिए कौतूहल या प्रश्न करना, यही प्रमाणित करता है कि सेवाके प्रति उनका मनोयोग नहीं है।

बहुत से लोग यह धारणा नहीं कर पाते कि 'हरिना' ही हरि अथवा भगवान् हैं, इसलिए वे यह प्रश्न करते हैं कि हरि कहाँ और किस रूपमें मिलेंगे? यदि उन्हें यह कहा जाय कि 'हरिनाम' ही साक्षात् हरि हैं, शुद्ध भावसे हरिनाम ग्रहण करना ही हरिका दर्शन लाभ करना है, कलिकालमें शुद्ध नामके रूपमें ही श्रीहरि दर्शन प्रदान करते हैं, तो वे इस परम सत्य बात पर विश्वास नहीं करते। यह ठीक वैसा ही है, जैसा हाथमें पञ्जिका रहनेपर भी यह पूछना कि मंगलवार कब है तथा यह अमनोयोगताके कारण केवल कौतूहल है। अन्यमनस्क रहकर केवल कौतूहल चरितार्थ करनेकी चेष्टा द्वारा कोई मंगल प्राप्त नहीं होता। यदि प्रकृत 'मंगलवार' जाननेकी इच्छा हो अर्थात् प्रकृत मंगलका अनुसन्धान करना हो, तो कृपापूर्वक सन्निकट अवतीर्ण गुरु-वैष्णवके प्रति शरणागत होना आवश्यक है।

विविध-संवाद

विश्वव्यापी श्रीमन्महाप्रभुजीकी वाणीके प्रचारक एवं श्रीगौड़ीयामठोंके प्रतिष्ठाता नित्यलीलाप्रविष्ट विष्णुपाद श्रीलभक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रभुपादके अन्तरङ्ग परिकर नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके अनगृहीत मदीय शिक्षागुरुपादपद्म श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजने अपनी जयपुर यात्राकी पूर्व सन्ध्या पर भारतकी राजधानी दिल्लीमेर १४ और१५ सितम्बरको व्यापक रूपमें शुद्ध भक्तिका प्रचार किया। प्रचारका प्रधान वैशिष्ट्य था—नित्यसुखको पानेके उपायस्वरुप साधनकी व्याख्या एंव सर्वधर्म समन्वय। श्रील महाराजके प्रवचन सारांश इस प्रकार है—

सुख एवं दुख भाई-भाई हैं। सुखकी इच्छा मत करो एवं दुख आने पर उद्विग्न मत होओ। भगवान् रामचन्द्रके जीवनको देखो। पहले विवाहका सुख फिर वनवास सीताहरण युद्ध, अग्नि परीक्षा, सीताजीका परित्याग, पुत्रोंके वनमें जन्मका दुःख। कृष्णके जीवन चरित्रको देखो। भयवश गोकुलमें पालन-पोषण, ब्रजमें असुरोंका संहार ब्रजको परित्यागकर मथुरा एवं द्वारिकामें वास, महाभारतका युद्ध अपनी आँखोके सामने ही यदुवंशका नाश। भगवान् श्रीरामचन्द्र एवं भगवान् श्रीकृष्णने अपने पवित्र जीवन चरित्रसे शिक्षा दी कि अनासक्त होकर अपने कर्त्तव्यका पालन करो फलकी आकांक्षा मत करो। भगवान् और श्रीगुरुदेवसे सांसारिक वस्तुएँ मत माँगो, तत्वज्ञान एवं शुद्ध भक्तिकी प्रार्थना करो।

प्रवचनके उपरान्त श्रीपाद रामचन्द्र प्रभुजी ने पूछा—महाराजजी यदि फलकी स्पृहा ही नहीं

रहेगी तो मनुष्य कर्म ही क्यों करेगा– श्रीलमहाराजजीने उत्तर दिया कि फलकी आकांक्षा ही दुखका कारण है। श्रीकृष्णकी तो बातही क्या भक्त भीष्म पितामह और पाण्डवोंने भी फलकी कामनाका सर्वथा परित्यागकर केवल श्रीकृष्णकी प्रीतीकी कामनासे ही महाभारतका युद्ध और सारे कर्त्तव्य कर्मोंका आचरण किया था। हमें भी ऐसा ही करना उचित है।

श्रीलमहाराजीने बताया कि विषयोंसे वैराग्य होने पर विश्वकी ऐसी कोई भी ताकत नहीं जो साधु–संगमें भजन करनेसे रोक सके। सभी जागतिक विषयोंको छोड़कर वृन्दावनमें साधुसंगमें रहकर साधन भजन करो। यदि शारीरिक रूपसे सम्भव नहीं है, तो मनसे रहो। वृन्दावन वास एवं ब्रजगोपियोंका आनुगत्य किये बिना कोई भी भजन राज्यमें प्रवेश नहीं कर सकता। इसीलिए श्रीलरूपगोस्वामी पादने कहा है—

तिष्ठन ब्रजे तदानुरागी जनानुगामी कालं नयेदखिलमित्युपदेशसारम्।

श्रील महाराजजीने बताया कि सभी धर्म एक समान नहीं हैं। सभी धर्मोको एक समान बतलाकर समन्वय नहीं किया जा सकता है चोरोंका धर्म और साधुका धर्म एक समान कैसे हो सकता है। समन्वयका तात्पर्य है—भली भाँति सुन्दर रूपसे अन्वय करना; कर्त्ता, कर्म और क्रियाको यथास्थान पर रखकर अर्थ करनेसे है। कर्त्ताको कर्मके स्थान पर रखना अन्वय नहीं। एक प्रतिव्रता स्त्री पतिको पतिके स्थानपर, पुत्र, ससुर, भाई, पिता आदिको यथा स्थानपर रखकर आदर करती है। सभी पुरुषोंको एक समान पति मानकर सेवा करना समन्वय नहीं, अधर्म है। कोई पतला, कोई मोटा, कोई बुद्धिमान है, कोई निर्बोध है, कोई धनी है, कोई निर्धन है इन सबको बराबर कैसे किया जा सकता है? गीताकी दृष्टिसे ही समन्वय सम्भव है और कहीं नहीं। जीवमात्र भगवानका दास है, इस सम्बन्धसे ही सर्वसमन्वय सम्भव है।

दिल्लीमें प्रचार समाप्त करके श्रील महाराजजी अपने पूरे दल–बलके साथ जयपुर पहुँचे। १६/९/२००० को श्रीलमहाराजजीके शताब्दी एक्सप्रेससे जयपुर रेलवे प्लेटफार्म पर पहुँचते ही सम्पूर्ण प्लेटफार्म हरिनाम संकीर्तनसे गूँज उठा। शताब्दी एक्सप्रेसके अवतरण द्वारसे लेकर प्लेटफार्मके निकासी द्वार और आगे है टेक्सी स्टैण्ड तक गुलाबी नगरी जयपुरके भक्तोंने सम्पूर्ण मार्गको गुलाबकी पंखुड़ियोंसे ढक दिया। शंख, करताल और मृदंगकी ध्वनिके साथ संकीर्तनके द्वारा भक्तवृन्द अत्यधिक आनन्द एवं उत्साहके साथ श्रीमहाराजजीका स्वागत कर रहे थे। स्टेशन पर उपस्थित जनता, शताब्दी एक्सप्रेसके यात्री सभी श्रीलमहाराजजीके स्वागतको विस्फारित नेत्रोंसे देख रहे थे। भक्तोंने श्रील गुरुदेवको फूल मालाओंसे ढक दिया। स्टेशनमें इतने सुन्दर स्वागत समारोहको देखकर आसानीसे प्रतीत हो रहा था कि जयपुरके प्रभु श्रीराधागोविन्ददेव अपने निजजनका अभिनन्दन करनेके लिए सभीके अन्दर ऐसी प्रेरणा प्रदान कर रहे हैं। जयपुरमें यह अभिनन्दन अनूठा और अपूर्व था।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके माध्यमसे पहली

बार शुद्धभक्तिके विश्व प्रचारक श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजी द्वारा जयपुरमें इतने व्यापक रूपसे प्रचार हुआ। वहाँ पर पञ्चदिवसव्यापी कार्यक्रमका आयोजन किया गया। महाराजजीने प्रतिदिन प्रातः ९ बजे से ११.३० बजे तक श्रीराधागोपीनाथ मन्दिरमें सरल–सहज और सुबोध रूपमें श्रीहरिकथाका परिवेशन किया। कलियुगके उपास्य करुणा–वरुणालय श्रीशचीनन्दन गौरहरि द्वारा प्रचारित हरिनाम संकीर्तनका प्रचार करके वहाँ उपस्थित सभी भक्तोंको मन्त्रमुग्धकर दिया। श्रील महाराजजीके प्रवचन प्रारम्भ होनेसे पूर्व श्रीपाद ओम प्रकाश ब्रजवासीजीने महाराजजीका परिचय देते हुए कहा—

"विभिन्न देशोंके भक्तोंका सर्वत्र महाराजजीके साथ–साथ यात्रा करना ही इनकी लोकप्रियताका यथेष्ट प्रमाण है। ऐसे प्रसिद्ध महाभागवतके विषयमें नवीन रूपसे कुछ परिचय देना अनावश्यक है, इन्होंने विश्वके प्रमुख राष्ट्रों जैसे—अमेरिका, कनाडा, फ्रांस, जर्मनी, इटली, फिजी, बेल्जियम, स्पेन, आस्ट्रेलिया, ईंग्लैण्ड, रशिया, जापान, सिंगापुर, हाँगकाँग इत्यादि विभिन्न देशोंकी केवलमात्र विशुद्ध भक्तिके प्रचार हेतु दस बार यात्रा की है। एवं वर्तमान वैष्णव जगतमें भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रकटित विशुद्ध भागीरथीकी पुनीत धाराको पुनः प्रबलवेगसे प्रवाहित करनेवाले, विभिन्न भाषाओंमें भक्ति सम्बन्धी सैकड़ों ग्रन्थोंका प्रकाशन एवं अनगिनत ग्रन्थोंकी रचना की है। ये श्रीचैतन्य महाप्रभुकी कृपाके परमपात्र श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके परिकर प्रवर एवं मदीय ज्येष्ठ गुरुभ्राता एवं शिक्षागुरु हैं।"

श्रील महाराजजीने अपने प्रथम दिनके प्रवचनमें श्रीश्रीराधागोविन्दजीके प्राकट्यके सम्बन्धमें विशेष रूपसे गूढ़ विवेचना की। श्रीमन्महाप्रभु एवं महाप्रभुके भक्तों द्वारा ब्रजकी लीला–स्थलियों एवं श्रीविग्रहोंके प्रकाशके विषयमें विस्तारपूर्वक वर्णन किया। श्रीचैतन्य महाप्रभुके मनोऽभीष्टको पूर्ण करनेवाले श्रीलरूप गोस्वामीपादने किस प्रकार श्रीब्रजनाभके द्वारा प्रकाशित श्रीगोविन्ददेवजीको आजसे लगभग ५०० वर्ष पूर्व वृन्दावनके गोमाटीला नामक स्थानसे प्रकाशित किया, इसपर श्रील महाराजजीने विशद रूपसे प्रकाश डाला। महाराजजीके मुखसे इस कथाको सुनकर जयपुरके श्रद्धालु जनता तथा श्रीगोविन्दजी मन्दिरके वर्तमान प्रधान सेवाइत एवं व्यवस्थापक श्रीअजंन कुमार गोस्वामीजी बड़े ही आकर्षित एवं प्रसन्न हुए। श्रील महाराजजीने भक्तिके तारतम्यसे भक्तोंके तारतम्य और भक्तोंकी उपासनाके तारतम्यसे उनके आराध्य इष्टदेवका तारतम्य—इस विषयके ऊपर विशेष रूपसे प्रकाश डाला।

श्रील महाराजजीने कहा कि गोपियोंके आनुगत्यके बिना राधाकुण्डकी महिमाको कोई भी भक्त ठीकसे नहीं समझ सकता है और न ही राधाकृष्णकी युगल सेवामें अधिकार प्राप्त कर सकता है। श्रील महाराजजीने श्रीगोविन्ददेवजीका वृन्दावनसे आना, श्रीवैष्णवों द्वारा राधाजीको गोविन्ददेवसे अलग करना, श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरके आदेशसे श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभु द्वारा गलतामें श्रीब्रह्ममध्व गौड़ीय सम्प्रदायको प्रमाणित

सम्प्रदायके रूपमें स्थापित करना इत्यादि अनेक विषयोंका दिग्दर्शन कराया। श्रील महाराजजीने बताया कि श्रीमद्भागवतमें सार्वकालिक, सार्वदेशिक एवं सार्वजनिक समस्याओंका आश्चर्य रूपसे समाधान है। श्रीशुकदेव गोस्वामीके जीवन-चरित्र पर भी महाराजजीने प्रकाश डाला।

श्रील महाराजजीके भाव बड़े ही गम्भीर एवं भाषा सरल और आकर्षक थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि महाराजजीकी हरिकथा सब प्रकारके विवादोंसे ऊपर उठकर अनन्त विश्वकी कल्याण कामनाके लिए सतत प्रयत्नशील है।

सन्ध्यामें महाराजजीने श्रीराधागोपीनाथके मन्दिरमें सर्वप्रथम श्रीश्रीराधागोपीनाथजीके प्राकट्यका विस्तारसे वर्णन किया। महाराजजीने कहा कि तत्त्व जाने बिना श्रीराधागोपीनाथजीसे कोई भी यथार्थ प्रीति नहीं कर सकता।

द्वितीय दिवसके कार्यक्रममें प्रातःकाल श्रील महाराजजीने बताया कि श्रील शुकदेव गोस्वामीके वन जानेपर व्यासदेवजी करुणावश हा पुत्र! हा पुत्र! कह रहे थे, न कि मोहवश। वे अपने निर्गुण ब्रह्ममें परिनिष्ठत पुत्रको श्रीकृष्णलीला-रस समुद्रमें निमग्न कराना चाहते थे। श्रील गुरुदेवजीने कहा कि यदि गो अर्थात् गोपी ही न रहे तो गोविन्द कैसे? यह कहकर श्रील गुरुदेवने मन्द-मन्द मुस्कराते हुए कहा कि यह सुनकर गोविन्दजी भी मुस्करा रहे होंगे। श्रीराधागोविन्दजीकी सेवा ही भजनका चरम लक्ष्य है। श्रीलरूप गोस्वामीपादके "अन्याभिलाषिता शून्यं" श्लोककी व्याख्या विशद रूपमें की। इसके उपरान्त महाराजजीने आरोपसिद्धा संगसिद्धा एवं स्वरूपसिद्धा भक्तिको उदाहरण देकर बोधगम्य बनाया। श्रील महाराजजीने बताया कि निष्ठाके पूर्व भक्त अनिश्चिता भक्ति ही करता है।

श्रील महाराजजीने कहा कि जिस प्रकार गोपियोंने लोकलज्जाको छोड़कर कृष्णसे प्रेम किया, ऐसा ही सीता व लक्ष्मीजीके लिये करना असम्भव है। महाराजजीने कहा कि इस जगतमें प्रेम अनायास ही टूट जाता है, किन्तु अप्राकृत जगतमें ऐसा नहीं होता, अपितु दिन-प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त करता है। महाराजजीने कहा कि सदाचारी होकर भजन करो। भजनके नामपर भगवान् एवं भगवानके भक्तोंको ठगनेका व्यर्थ प्रयास मत करो।

चर्तुथ दिवस भक्तोंका तारतम्य बताते हुए जब श्रील महाराजजी प्रेमी भक्त हनुमानजीके प्रसंग पर पहुँचे, तब सभी भक्त एकान्तचित्तसे महाराजजीके मुखमण्डलसे निकल रही वीर्यवती मधुर कथाका पानकर अतृप्त-सा अनुभव कर रहे थे। प्रत्येक दिन महाराजजीकी कथाका श्रवण करनेके लिये श्रोताओंकी संख्या बढ़ती ही जा रही थी। दिल्लीके अनेक गृहस्थ भक्तोंने भी श्रील महाराजजीकी कथाओंके माध्यमसे श्रीश्रीराधागोविन्ददेव एवं श्रीश्रीराधागोपीनाथजीके नाम, रूप, गुण एवं लीलाका रसास्वादन किया।

श्रील महाराजजीकी वाणीमें इतना आकर्षण है कि साधारण जनता भी प्रवचन शेष होने तक वहीं पर ही बैठी रहती थी, एक बार जिसने भी मन्दिरमें प्रवेश किया वह महाराजजीके जानेसे पहले बाहर नहीं आ सका।

सन्ध्यामें महाराजजीने बताया कि यदि कोई राधागोपीनाथजीको यथार्थ रूपमें जानना चाहता है तो सर्वप्रथम उसे श्रीमन्महाप्रभुको जानना चाहिये। महाराजजीने कहा कि यदि कोई शुद्ध रूपसे हरिनाम करना चाहता है तो उसे भक्तिके ६४ अंगोंमें सर्वप्रथम गुरुपदाश्रय करना होगा। सद्गुरु वे होते हैं जिन्होंने नामको अपने हृदयमें धारण करके सिद्धि लाभकी है। जब वह सौभाग्यसे ऐसे सद्गुरुकी प्राप्ति होती है तभी कल्याण होता है। सद्गुरुके आश्रयको छोड़कर अपने आप नाम करनेसे उतना कल्याण नहीं होता है। श्रील महाराजजीने श्रीमन्महाप्रभुजीकी बाल्य लीलासे प्रारम्भ करके संन्यास लीला तकका विस्तृत वर्णन किया।

पञ्चदिवसीय सभाके अन्तिम दिन श्रील महाराजजीने कृष्ण द्वारा उद्धवको ब्रजमें भेजना, उद्धवजीका नन्द बाबाके विरहको देखकर बोलती बन्द होना एवं माता यशोदाका विरह एवं गोपियोंकी दशाका विस्तृत वर्णन किया। श्रील महाराजजीने कितनी सरस, मधुर, भावुक, रसीली, अप्लावित करने वाली व्याख्या की, इसका वर्णन मेरे जैसे अबोध एवं अनभिज्ञ एक साधारण व्यक्तिके लिये बता पाना कठिन ही नहीं, असम्भव है।

जयपुरमें प्रचार समाप्तकर श्रील महाराजजी प्रचार हेतु दिल्ली होते हुए फरीदाबादमें उपस्थित हुए।

वहाँ श्रील महाराजजीने प्रचार करते हुए कहा कि सन्तानको (भले ही वे लड़की हो या लड़का) अपने माता-पिताकी सेवा करना चाहिए। यदि समर्थ होनेपर भी कोई अपने माता-पिताकी सेवा नहीं करता तो उन्हें परलोकमें यमदूतगण उनका ही माँस खिलाते हैं। आजकल तो कहना ही क्या? धनके लालचमें, जमीन-जयदादके लालचमें सन्तान माता-पिताकी हत्या करनेसे भी नहीं डरता, ऐसे लोगोंके लिये यमदूतको अलगसे ही कोई स्थान बनाना पड़ेगा।

श्रील महाराजजीने कहा कि आजकलके माता-पिता भी माता-पिता नहीं है, उन्हें भी पहले अपने कर्त्तव्यको समझनेके लिए पारमार्थिक विश्वविद्यालयमें शिक्षा प्राप्त करना होगा।

फरीदाबादमें अपने प्रचारको समाप्तकर श्रील महाराजजी मथुरामें पहुँचे।

त्रिदण्डी स्वामी भक्तिवेदान्त तीर्थमहाराज द्वारा इग्लैण्डमें प्रचार

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रचारक श्रीभक्तिवेदान्त तीर्थमहाराजने लगभग एक महीने तक इग्लैण्डमें बहुत अच्छे रूपमें प्रचार किया। जिसमें स्वदेशी तथा विदेशी भक्त प्रचुर मात्रामें सम्मिलित हुए।

त्रिदण्डी स्वामी भक्तिवेदान्त वनमहाराज द्वारा पूर्वीय देशोंमें प्रचार।

गौड़ीय वेदान्त समितिके उपाध्यक्ष त्रिदण्डी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजके अनुगत्यमें श्रील वनमहाराज १३ सितम्बरको दिल्लीसे मलेशिया, सिंगापुर एवं आष्ट्रेलियाके विभिन्न स्थानोंमें गीता, भागवत, चैतन्यचरितामृतसे संबधित विभिन्न प्रसंगों पर अत्यन्त गम्भीर एवं विवेचना पूर्ण प्रवचन किया। उनके प्रवचनोंको सुनकर श्रोतागण अत्यन्त प्रवाभित हुए।

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

वैकुण्ठ–वार्त्तावह

बृहत्–मृदङ्ग

श्रीभागवत–पत्रिका

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना।।

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।।

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः।।

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र।।
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश।।

वर्ष ४४ } *श्रीगौराब्द ५१४*
वि. सं. २०५७ मार्गशीर्ष मास, सन् २०००, १४ नवम्बर—१३ दिसम्बर { **संख्या ९**

श्रीप्रेमाम्भोज–मरन्दाख्य–स्तवराजः

[श्रील–रघुनाथदास–गोस्वामि–विरचितः]

महाभावोज्ज्वलच्चिन्ता–रत्नोद्भावित–विग्रहाम्। सखी–प्रणय–सद्गन्धवरोद्धर्त्तन–सुप्रभाम्।।१।।
कारुण्यामृत–वीचीभिस्तारुण्यामृत–धारया। लावण्यामृत–वन्याभिः स्नपितां ग्लपितेन्दिराम्।।२।।

महाभाव–स्वरूप उज्ज्वल चिन्तारत्न द्वारा जिनका श्रीअङ्ग अतिशय पवित्र है एवं सखियोंके प्रणयरूप कुंकुमादि द्वारा जिन्होंने परम सुन्दर कान्ति धारण किया है।।१।।

पूर्वाह्नमें कारुण्य अर्थात् दयालुता–रूप अमृत–तरंगमें, मध्याह्नमें तारुण्य अर्थात् यौवनरूप अमृतधारामें और संध्याकालमें लावण्य अर्थात् कान्तिरूप अमृतकी बाढ़में स्नान कर जो श्रीमती राधिका लक्ष्मी देवीको भी लज्जित कर रही हैं।।२।।

ह्री-पट्टवस्त्र-गुप्ताङ्गीं सौन्दर्य-घुसृणाञ्चिताम्। श्यामलोज्ज्वल-कस्तूरी-विचित्रित-कलेवराम्।।३।।
कम्पाश्रु-पुलक-स्तम्भ-स्वेद-गद्गद-रक्तताः। उन्मादो जाड्यमित्यैते रत्नैर्नवभिरुत्तमैः।।४।।
क्लृप्तालङ्कृति-संश्लिष्टां गुणाली-पुष्प-मालिनीम् । धीराधीरात्व-सद्वास-पटवासैः परिष्कृताम्।।५।।
प्रच्छन्न-मान-धम्मिलां सौभाग्य-तिलकोज्ज्वलाम्। कृष्णनाम-यशःश्राव-वतंसोल्लासि-कर्णिकाम्।।६।।
राग-ताम्बूल-रक्तौष्ठीं प्रेम-कौटिल्य-कज्जलाम् । नर्म-भाषित-निःस्यन्द-स्मित-कर्पूर-वासिताम्।।७।।
सौरभान्तःपुरे गर्व-पर्यङ्कपरि लीलया। निविष्टां प्रेमवैचित्र्य-विचलत्तरलाञ्चिताम्।।८।।
प्रणय-क्रोध-सच्चोली-बन्ध-गुप्तीकृत-स्तनाम् । सपत्नी-वक्त्र-हृच्छोषि-यशः श्रीकच्छपीरवाम्।।९।।
मध्यतात्मसखी-स्कन्ध-लीला-न्यस्त-कराम्बुजाम्। श्यामां श्याम-स्मरामोद-मधूली-परिवेशिकाम्।।१०।।
त्वां नत्वा याचते धृत्वा तृणं दन्तैरयं जनः। स्वदास्यामृत-सेकेन जीवयामुं सुदुःखितम्।।११।।
न मुञ्चेच्छरणायातमपि दुष्टं दयामयः। अतो गन्धर्विके! हा हा मुञ्चैनं नैव तादृशम्।।१२।।
प्रेमाम्भोज-मरन्दाख्यं स्तवराजमिमं जनः। श्रीराधिका-कृपा-हेतुं पठंस्तद्दास्यमाप्नुयात्।।१३।।

जिनके अङ्ग लज्जारूप पट्टवस्त्र द्वारा आच्छादित हैं, जो सौन्दर्यरूप कुंकुम द्वारा सुशोभित हैं एवं श्यामवर्ण उज्ज्वल शृंगार-रसरूप कस्तूरीसे जिनका कलेवर चित्रित है।।३।।

जिन्होंने कम्प, अश्रु, पुलक स्तम्भ, स्वेद, गद्गद-भाव, रक्तता, उन्माद और जड़ता—इन नौ प्रकारके रत्नों द्वारा निर्म्मित अलंकार धारण किया है, सौन्दर्य और माधुर्य आदि गुण-समूह ही जिनकी पुष्पमाला स्वरूप है एवं धीराधीरात्व भावरूप सद्गन्धको ही जो कर्पूर आदिके रूपमें व्यवहार करती हैं।।४-५।।

प्रच्छन्न मान ही जिनका बँधा हुआ जूड़ा (केशपाश) है, जो सौभाग्यरूप तिलक द्वारा परमोज्ज्वल हैं एवं श्रीकृष्णका नाम और यश श्रवण ही जिनके कर्णभूषण हैं।।६।।

अनुरागरूप ताम्बूलकी ललाईसे जिनके होठ रञ्जित हैं, प्रेम-कौटिल्य ही जिनका कज्जल है, उपहास वाक्य बोलना ही जिनका हेतु है, वैसे ही मधुर-हास्यरूप कर्पूर द्वारा जो सुवासित हैं।।७।।

सौरभ अर्थात् कीर्त्ति-स्वरूप अन्तःपुरमें जो गर्वरूप पलंगके ऊपर आनन्दसे लेटकर विप्रलम्भरूप चञ्चल तरल अर्थात् हारके बीचकी मणि द्वारा सुशोभित हैं।।८।।

सप्रणय क्रोधसे उत्पन्न लालिमारूप कंचुकी (स्तनको ढकनेवाली चोली) द्वारा जिन्होंने अपने स्तनोंको ढक रखा है एवं सपत्नियोंके कुटिलतम वदन और हृदयका शोषण करनेवाली यशःश्री जिनकी उत्तम कच्छपी अर्थात् वीणा-स्वर है।।९।।

मध्यता अर्थात् यौवनरूप अपनी सखीके कंधेपर जिन्होंने अपने लीलारूप करकमलोंको रखा है, जो श्यामा अर्थात् विशेष गुणोंवाली हैं तथा जो शृंगाररस द्वारा कन्दर्प-मत्ततारूप मधुका परिवेशन कर रही हैं।।१०।।

मैं दाँतोंके नीचे तृण धारणकर (दीनता पूर्वक) प्रणतिपूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि वे श्रीमती

राधिका कृपापूर्वक मुझ सुदुःखित व्यक्तिको अपनी दासतारूप अमृत प्रदान कर जीवित करें।।११।।

हे गान्धर्विके! जब दयालु व्यक्ति शरणागत दुष्ट-जनका भी परित्याग नहीं करते, तब आप भी इस आश्रित दुष्ट व्यक्तिका त्याग न करें।।१२।।

जो व्यक्ति श्रीराधाकी कृपाके हेतुस्वरूप इस "प्रेमांभोज-मकरन्द" नामक स्तवराजका पाठ करते हैं, वे श्रीराधिकाका दास्य प्राप्त करनेमें समर्थ होते हैं।।१३।। ❑

हरिनाम

—जगद्गुरु श्रीश्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

हरिनामके सम्बन्धमें पद्मपुराणमें इस प्रकार लिखा गया है--

नाम चिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्यरसविग्रहः।
पूर्णःशुद्धोनित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनामिनोः।।

श्रीजीव गोस्वामी इस श्लोक की व्याख्या करते हुए लिखते हैं—

एकमेव सच्चिदानन्द-रसादिरूपं तत्त्वं द्विधाऽविर्भूतमित्यर्थः।

श्रीकृष्णतत्त्व अद्वय सच्चिदान्द स्वरूप है। उनका दो रूपोंमें आविर्भाव होता है—(१) नामीके रूपके श्रीकृष्णविग्रह तथा (२) नामके रूपमें। श्रीकृष्ण सर्वशक्तिमान हैं। शक्तिमान जो पुरूष हैं, उनके समस्त प्रकाश ही उनकी शक्तिके प्रकाश हैं। शक्ति ही अपने आधार-रूप पुरुषको दूसरेके निकट प्रकाश करती है। शक्तिके दर्शनके प्रभाव द्वारा कृष्णरूप प्रकाशित होता है। और आह्वय-प्रभाव द्वारा कृष्णनाम विज्ञापित होता है। अतएव कृष्णनाम चिन्तामणि-स्वरूप और चैतन्य-रस विग्रह स्वरूप हैं। नाम सर्वदा पूर्ण स्वरूप हैं अर्थात् उनमें विभक्तियोंके योगसे "कृष्णाय नारायणाय" इत्यादि मंत्रादि निर्माणकी अपेक्षा नहीं होती। कृष्णनाम उच्चारित होते ही चित्तत्त्वमें कृष्णरस अकस्मात् उदित हो पड़ता है। नाम सदा विशुद्ध होते हैं अर्थात् वे जड़ीय अक्षरोंकी भांति जड़ाश्रय नहीं होते। नाम केवल चैतन्यरस मात्र हैं। नाम सदा मुक्त होते हैं, अतएव नित्यमुक्त हैं, वे कभी भी जड़से पैदा नहीं होते। जिन्होंने नाम रसका पान किया है, वे ही केवल इस व्याख्याको समझनेमें समर्थ हो सकते हैं। यदि यह कहो कि हम निरन्तर जो नाम उच्चारण करते है; वह जड़ीय अक्षरोंको आश्रय करके हुआ करता है; उसे ऐसी दशामें नामको जड़से उत्पन्न वस्तु कहा जायेगा; उसे नित्यमुक्त कैसे कहा जा सकता है? इस बहिर्मुख तर्कके उत्तरमें श्रीरूप गोस्वामी कहते हैं-

अतःश्रीकृष्ण नामादि न भवेद्ग्राह्यमिन्द्रियैः।
सेवन्मुखे हि जिह्वादो स्वयमेव स्फूरत्यदः।।

प्राकृत वस्तु ही प्राकृत इन्द्रिय-ग्राह्य होती है। कृष्णनाम अप्राकृत हैं। अतएव वे कदापि प्राकृत इन्द्रिय ग्राह्य हैं। तब जो नाम जिह्वासे प्रकाशित होता है, वह केवल आत्माके अप्राकृत आनन्दकी तदुपयोगी इन्द्रियमें स्फूर्त्ति मात्र है। भक्त जिस समय आत्माकी अप्राकृत रसनासे कृष्णनाम उच्चारण करते हैं, उस समय वह उच्चरित परमतत्त्व प्राकृत रसना पर

आर्विभूत होकर नृत्य करने लगती है। आनन्द से, हास्य, स्नेहसे क्रन्दन, प्रीतिसे नृत्य जिस प्रकार अप्राकृत रसकी इन्द्रिय तक व्याप्त होते हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्णनाम-रसकी रसना तक व्याप्ति होती है। प्राकृत रसनासे कृष्णनाम उत्पन्न नहीं होता। साधन कालमें जिस नामका अभ्यांस किया जाता है, वह यथार्थ नाम नहीं है। उसे छायानाम अथवा नामाभास कहा जा सकता है। नामाभास करते-करते क्रमोन्नित द्वारा बहुधा अप्राकृत नाममें रुचि होती देखी गयी है। वाल्मीकि और अजामिलके जीवनचरित्र इस विषयमें ज्वलंत दृष्टान्त है।

जीवकी नाममें रुचि न होनेका कारण अपराध है। जो अपराध रहित होकर कृष्णनाम ग्रहण करते हैं, उनके हृदयमें चैतन्यरस-विग्रहरूप अप्राकृत श्रीहरिनामका उदय होता है। अप्राकृत नामका उदय होनेपर हृदय प्रफुल्लित हो उठता हे, नेत्रोंसे अश्रुधारा-प्रवाहित होने लगती है, तथा शरीरमें सात्त्विक विकार पैदा होने लगते हैं। अतएव श्रीमद्भागवतमें ऐसा कहा गया है—

तदश्मसारं हृदयं बतेदं यद्गृह्यमाणेर्हरिनामधेयैः । न विक्रियेताथ यदा विकारो नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः।।

जीव जिस समय हरिनाम ग्रहण करते हैं, उस समय उनका हृदय निश्चित रूपमें विकृत होगा, आँखोंसे निश्चय ही अश्रुधारा प्रवाहित होगी तथा शरीरमें अवश्य ही रोमांच होगा। जो कृष्णनाम उच्चारण तो करते हैं, परन्तु उनमें ऐसे विकार लक्षित नहीं होते, उनका हृदय अपराधके कारण अतिशय कठोर हो चुका है—ऐसा समझना चाहिए।

निरपराध होकर हरिनाम लेना साधकका नितान्त कर्त्तव्य है। अतएव अपराध हो जाय, इसके लिये अपराध कितने प्रकार हैं, इसका ज्ञान होना आवश्यक है।

शास्त्रों में हरिनाम के सम्बन्ध में दस प्रकारके अपराधों का उल्लेख है—(१) साधु-निन्दा, (२) शिव आदि देवताओंको भगवान्से पृथक् स्वतंत्र मानना, (३) गुरूकी अवज्ञा करना, (४) वेदादि सत्-शास्त्रोंकी निन्दा करना, (५) हरिनामके माहात्म्यको केवलमात्र प्रशंसा समझना, (६) हरिमें अर्थ कल्पना अर्थात् कृष्ण, राम आदि नाम कल्पित हैं, ऐसी धारणा रखना, (७) नामके बलपर पाप करना,(८)दूसरे-दूसरे शुभकर्मो के साथहरि नाम समान समझना,(९)अश्रद्धालु व्यक्ति को हरिनाम का उपदेश करना, (१०) नामका माहात्म्य श्रवण करके भी उसके प्रति अविश्वास रखना।

साधुभक्तोंके प्रति अश्रद्धा प्रकाश करनेसे तथा साधु-चरित्र महाजनोंकी निन्दा करनेसे हरिनामके प्रति अपराध होता है। अतएव जो हरिनामका आश्रय करेंगे, उनको सर्वप्रथम वैष्णव-अवज्ञाकी प्रवृतिको सर्वतोभावेन परित्याग करनी चाहिए। वैष्णवोंके कार्योंके प्रति सन्देह होने पर साथ-ही-साथ निन्दा न करके उसका तात्पर्य अनुसन्धान करनेकी चेष्टा करनी चाहिए। अतएव साधुजनोंके ऊपर श्रद्धा करना ही कर्त्तव्य है।

शिव आदि देवताओंको भगवानसे पृथक् समझना नामापराध कहा गया है। भगवत् तत्त्व एक और अद्वितीय है। शिव आदि देवताओंकी भगवान्से पृथक् स्वतंत्र कोई सत्ता नहीं है। शिव आदि देवताओंको भगवानका गुणावतार अथवा भगवद्भक्त मानकर सम्मान करनेसे

भेदज्ञान नहीं रहता। जो लोग महादेवको एक पृथक् अर्थात् स्वतंत्र देवता मानकर शिव और विष्णुकी पूजा करते हैं, वे महादेवकी भगवत्ता स्वीकार नहीं करते हैं। इससे वे विष्णु और शिव दोनोंके प्रति अपराधी हो पड़ते हैं। जो हरिनाम करते हैं, उनको इस प्रकारके भेद-ज्ञानका भली प्रकार त्याग करना चाहिए।

गुरुदेवकी अवज्ञा करना एक नामापराध है। जो नाम-तत्त्वकी सर्वोत्तमताकी शिक्षा देते हैं, उनको आचार्यरूपी भगवत्-प्रेष्ठ समझना चाहिए। उनके प्रति दृढ़ भक्ति करके हरिनाममें अचला श्रद्धा प्राप्त करनी चाहिए।

सत्शास्त्रोंकी कदापि निन्दा नहीं करनी चाहिए। वेदादि शास्त्रोंमें भागवत धर्मका वर्णन है—श्रीनामका बहुत ही माहात्म्य बतलाया गया है। उन शास्त्रोंकी निंदा करनेसे हरिनामापराध होता है। वेद आदि शास्त्रोंमें सर्वत्र ही हरिनामका माहात्म्य बतलाया गया है—

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा।
आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते।।

इस प्रकारके सत् शास्त्रोंकी निंदा करनेसे हरिनाममें किस प्रकार प्रीति हो सकती है?

कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि वेदादि शास्त्रोंमें हरिनामका जो माहात्म्य वर्णन किया गया है, वह केवल नामकी प्रसंशामात्र है। जिनकी ऐसी धारणा है, वे नामापराधी हैं। ऐसे लोग हरिनाम करके भी हरिनामका वास्तविक फल प्राप्त नहीं कर पाते। ऐसे लोग यह समझते हैं कि जिस प्रकार कर्मकाण्डमें रुचि उत्पन्न करनेके लिये कर्मकाण्डकी बढ़ा चढ़ाकर प्रशंसा बतलायी गयी है, उसी प्रकार शास्त्रोंमें हरिनामकी भी बढ़ा-बढ़ाकर फल-श्रुति दी गयी है। ऐसा समझनेवाले बड़े दुर्भागा है। इसके विपरीत भाग्यवान् व्यक्तियोंका विश्वास इस प्रकार होता है—

एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभमय् ।
योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्त्तनम्।।

संसारसे निर्वेद प्राप्त सब प्रकारके भयोंसे छुटकारा पानेकी इच्छा रखनेवाले योगीके लिये हरिनामका कीर्तन ही एकमात्र कर्तव्य है। ऐसा विश्वास करनेवाले व्यक्ति ही हरिनामका वास्तविक फल प्राप्त करते हैं।

नामाभास और नामका भेद नहीं समझकर कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि नाम अक्षरमय है। अतएव श्रद्धा नहीं रहने पर भी नाम लेनेसे फल होगा ही। वे लोग अजामिलका दृष्टान्त देते हैं तथा "सांकेत्य पारिहास्य वा" आदि शास्त्र-वचनोंका उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। यह बात तो पहले ही बतलायी जा चुकी है कि हरिनाम चैतन्य रस विग्रह हैं तथा प्राकृत इन्द्रियग्राह्य नहीं है। अतएव निरपराध होकर नामाश्रय नहीं करनेसे नामका फलोदय सम्भव नहीं है। जो अश्रद्धापूर्वक नामोच्चारणका करते हैं, उनको नामका फलोदय सम्भव नहीं होता। अश्रद्धालु व्यक्तियोंके नामोच्चारणका फल यह होता है कि कुछ दिनोंमें उनकी नामके प्रति श्रद्धा पैदा हो सकती है। इसलिये अश्रद्धापूर्वक अर्थवाद करके नाम को जड़ात्मक अक्षररूप में जो कर्मकाण्ड का अङ्ग समझते हैं अथवा ऐसा ही प्रचार करते हैं, वे नितान्त बर्हिमुख व नामापराधी हैं। वैष्णवजन इस अपराध का यत्नपूर्वक वर्जन करेंगे। कुछ लोग हरिनामाश्रय करके ऐसा समझते हैं कि हमने अब समस्त प्रकार के पापों के लिये एक सस्ती औषधि

ा प्राप्त कर ली है। इस विश्वाश के साथ वे ठगी, राहजनीं, डकैती, चोरी या बदमाशी आदि पाप कर्मों को करके फिर हरिनाम कर लेंगे,जिससे उनके सारे पाप कट जाएगें। ऐसा समझने वाले व्यक्ति नामापराधी हैं। जो लोग नामाश्रय करते हैं, वे एक बार चिद्रसका आस्वादन कर फिर कभी भी जड़ीय असत् वस्तुओं में आसक्त नहीं होते।कुछ लोगों का ख्याल ऐसा होता है कि यज्ञ आदि कर्म, दानादि धर्म, तथा तीर्थयात्रा की चेष्टाएं-यह सब जिस प्रकार शुभकर हैं, नाम भी वैसी ही कोई चीज है। ऐसे व्यक्ति नामापराधी हैं।नाम सदा चिद्रस स्वरूप हैं। अन्यान्य सारे सत्कर्म ही जड़मय हैं।अतएव वे नाम के विजातीय हैं।जो लोग इन क्रियाओं या सत्नाम के समान समझते हैं,वे वास्तव में नाम रस का आस्वादन नहीं कर सके हैं।जिस प्रकार हीरा और काँच में भेद है. ठीक उसी प्रकार हरिनाम और दूसरे-दूसरे शुभकर्मों में वस्तुगत् भेद है। अश्रद्धालु व्यक्ति को हरिनाम उपदेश या मंत्र देने वाले व्यक्ति नामापराधी हैं।जिस प्रकार शूकर को मुक्ताफल देने से कोई लाभ नहीं होता, उलटे मुक्ताफल का ही अपमान व अवज्ञा करनी हो जाती है,उसी प्रकार जिन लोगों को हरिनाम के प्रति उपयुक्त श्रद्धा का अभाव है, उनको नामोपदेश करना नितान्त अनान्य है। ऐसे लोगोंको हरिनाम के प्रति किस प्रकार से श्रद्धा हो, इसके लिये प्रयत्न करना उचित है।श्रद्धा होने के बाद नामोपदेश करना उचित है। जो लोग अपने को गुरू अभिमान कर अपात्र को भी हरिनाम उपदेश करते हैं, वे नामापराध के कारण अधःपतित हो जाते हैं। हरिनामका महात्म्य श्रवण करके भी जो नाम के प्रति एकान्तिक श्रद्धा न करके अन्यान्य साधनों का- कर्म, ज्ञान या योग का आश्रय त्याग नहीं करते, वे भी नामापराधी हैं।

इस प्रकार नामापराध वर्जन करने से हरिनाम उदित नहीं होते। कलियुग-पावनावतारी श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुी संसारी जीवोंके नाना प्रकारके दुखोंको देख कर दयाद्रचित्तमें ऐसा उपदेश किये हैं—

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।

तृणसे भी अपनेको तुच्छ मानकर वृक्षसे भी अधिक सहिष्णा होकर स्वंय अभिमान शून्य और दूसरोंका मान देनेवाला बनकर जीव हरिनाम संकीर्तनमें अधिकार प्राप्त करता हैं। व्यवहार शुद्धिके साथ हरिनाम ग्रहण करनेकी व्यवस्था ही इस वाणीका मुख्य तात्पर्य है कि जो अपनेको सबसे अधिक दीन-हीन समझते है वे कभी भी साधुकी निंदा नहीं कर सकते, शिव आदि देवताओंकी वेद-बुद्धि द्वारा अवज्ञा नहीं करते, सत्-शास्त्रोंकी निंदा नहीं करते तथा हरि नामके माहात्म्यको सत्य मानते हैं। वे शुष्कज्ञानजात तर्क द्वारा हरि शब्दमें निगुर्ण-ब्रह्मवादकी कल्पना नहीं करते नामके बल पर पाप-कर्म नहीं करते दूसरे सत्कर्मोके साथ हरिनामको समान नहीं मानते अश्रद्वालु व्यक्तियोंका हरिनाम नहीं देते तथा नामके प्रति तनिक भी अविश्वास नहीं रखते। वे स्वभावतः दस प्रकारके नामापराधसे दूर रहनेकी चेष्टा करते हैं। कोई उनको उपहास करने पर अथवा कोई उनका अहित करने पर भी वे उसका उपकार ही करते है। वे जगतका समस्त कार्य

करने पर भी स्वंय अपनेमें भोक्ता या कर्त्ताका अभिमान नहीं रखते। वे अपनेको जगतका दास मानकर जगतकी सेवामें ही लगे रहते हैं।

ऐसे अधिकार व्यक्तिके मुखसे जब हरिनाम उच्चरित होता है, तव अन्तः-स्थित चिज्जगतसे बिजलीकी भाँति चित् ज्योति व्याप्त होकर जगतके जीवोंके माया विकार रूप अन्धकारको दूर देती है। अतएव महात्माओं! अपराध-रहित होकर निरन्तर हरिनाम कीर्तन कीजिए। हरिनामके बिना जीवो के लिये और कोई दूसरा सहारा नहीं है। इस दुस्तर भव-समुद्रमे डूबते हुए व्यक्तिके ज्ञान या कर्म आदिका सहारा लेना केवल तृणका सहारा लेकर महासागरको पार करनेकी इच्छाकी भाँति सर्वथा निरर्थकी है। हरिनाम रूप महापोतका अवलम्बन करके इस दुस्तर भव-समुद्रको पार कीजिए। ❑

संत (सज्जन) के लक्षण

—ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी

मौनी—२६

श्रीगीतामें भगवान श्रीकृष्णने कहा है—

दुखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।।

अर्थात् जो दुखोंके उपस्थित होने पर भी दुःखी नहीं होता और सुखोंमे स्पृहारहित रहता है, जो राग, भय और क्रोधरहित होता है, जो विषयोंमें आसक्तिशून्य होता है, ऐसा स्थिर-बुद्धिसम्पन्न जीव ही मुनि शब्दवाच्य है। जब बह्मचारी समावर्तन कर गृहस्थ जीवनमें नाना-प्रकारसे राग-द्वेष, भय, क्रोध आदि का शिकार होता है और जड़ सुखकी प्राप्तिमें तथा जड़ दुःखको दूर करनेमें तत्पर होता है, परन्तु जब उसे इस कार्यमें सफलता नहीं मिलती तब दुःखोंसे मुक्त होनेके लिए वानप्रस्थाका अवलम्बन करता है। ऐसे वानप्रस्थी वनचारीको मुनि कहते हैं। जो गृहस्थ अपने पुत्रके पुत्र—पौत्रका दर्शनकर पचास वर्षसे अधिककी उम्रमें जड़ विषयोंकी क्षणभंगुरता उपलब्धि कर भगवद्भजन करनेके लिये वनमें अर्थात साधु संगमें गमन करते हैं, उनकी वृत्ति कह लाती है। मुनि-वृति वाले सज्जन ही 'मौनी' कहलाते हैं।

जो स्थूल और सूक्ष्म शरीरमें आत्मबुद्धि रखते रखते हैं, वे असत् हैं, क्योंकि शरीर और मन परिवर्तनशील और क्षणभंगुर दो प्रकारकी उपाधियाँ है। वैष्णव ही एकमात्र सत् शब्दवाच्य हैं, दूसरे नहीं। इसीलिए सत्सम्प्रदायके आचार्य श्रीरामानुजाचार्यने अपने सम्प्रदाय सत् समप्रदाय कहा हैं, मायावादी और कर्मफल भोगी व्यक्ति असत् हैं, क्योंकि उनके अनुष्ठान-समूह स्थूल और सूक्ष्म उपाधियुक्त होते हैं। सज्जन पुरुष बाह्य जगत्के विकारोंसे सर्वथा दूर रहकर निरन्तर भगवत्-सेवामें तत्पर रहते हैं। बाह्य जगतके उँचे शब्द-समूह उनके कानोंमें प्रवेश तो करते हैं, परन्तु उनसे सज्जन पुरुष कतई सहयोग नहीं करते। वे निर्जन स्थानमें न तो उच्च-स्वरमें बोलते हैं। और न ही चुप ही

रहते हैं। वे उच्च-स्वरसे अथवा मन ही मन प्रत्येक अवस्थामें सदा-सर्वथा हरिनाम करते हैं। वे उच्च स्वरसे हरि नाम करते हैं, फिर भी उनका मौन-व्रत भंग नहीं होता। कुछ लोगकी धारणा यह है कि जो लोग मुखसे तो नहीं बोलते परन्तु उनके हृदयमे भले ही अफुरन्त कामनाएँ हो और उन कामनाओंको वे भले ही स्लेट या कागज पर तथा इंगित आदि द्वारा प्रकाश करें वे ही मौनी हैं। परन्तु ऐसी धारणा करने वाले भ्रममें है। अवैष्णव बाहर मौन व्रत अवलम्बन करने पर भी वास्तवमें मौनी नहीं हो सकते। अव्यक्त वाक्-वेग उनका मौन-व्रत भंग कर देता है। सज्जन पुरुष व्यर्थके बकवादों (प्रजल्प) से दूर रहते हैं। अव्यक्त वाक्वेग उन्हें पीड़ीत नहीं करता। उच्च स्वरसे चारों और हरिनामकी ध्वनिका विस्तार करके भी वे सच्चे मौनी हैं। वे मौनी होकर भी वैदिकी और लौकिकी समस्त क्रियाओंके हरि सेवाके अनुकूल रूपमें नियुक्त करते हैं।

भगवत्-चर्चा द्वारा भगवन्नाम आदिके कीर्तन द्वारा मौन-व्रत भंग नहीं होता। भगवद्भक्तोंमें सारे सद्गुण नित्यकाल निवास करते हैं। अभक्त पुरुषोंमें इन गुणोंकी संभावना नहीं। इसलिए सज्जन पुरुष ही एकमात्र सच्चे मौनी हैं। ❑

गौरांग-सुधा

—श्रीमान् परमेश्वरी ब्रह्मचारी

मायामोहित वैष्णवोंका प्रभुको भक्तिविहीन जानकर

दुःखी होना एवं प्रभुकी भविष्यवाणी

श्रीगौरसुन्दरका अपूर्व रूप एवं पाण्डित्य देखकर नवद्वीपवासी वैष्णववृन्द अत्यन्त आनन्दित होते थे, परन्तु साथ-ही-साथ उन्हें यह देखकर कष्ट भी होता कि गौरसुन्दर सदा-सर्वदा व्यर्थ ही तर्क-वितर्कमें अमूल्य समय नष्ट करते हैं। इसलिए वे प्रायः परस्पर उनके विषयमें ही बातें करते रहते थे—"यह निमाई है तो अद्वितीय पण्डित एवं अद्वितीय रूपवान, परन्तु दुःखकी बात है कि यह भगवानका भजन नहीं करता। अतः इसका अगाध पाण्डित्य एवं सुन्दरता दोनों ही व्यर्थ हो रहे हैं। क्योंकि विद्याका वास्तविक अर्थ भगवानको जानना है। परन्तु यह तो सारा दिन पाण्डित्यके अभिमानमें प्रमत्त होकर दूसरोंको शास्त्रार्थमें परास्त करता रहता है तथा भक्तिसे इसका कोई सम्बन्ध ही नहीं है।" कोई-कोई वैष्णव तो रास्तेमें आते-जाते समय प्रभुको देखकर उन्हें समझाते—"अरे निमाई! तुम सारा दिन व्यर्थके तर्क-वितर्कमें क्यों समय नष्ट करते हो। यह मनुष्य जन्म अनमोल है। मनुष्य जन्म एकमात्र भगवद्भजनके लिए है। यह तो बहुत सौभाग्यकी बात है कि तुम इतने बड़े विद्वान हो, परन्तु तुम इस विद्याका सदुपयोग न कर दुरुपयोग कर रहे हो। अतः तुम व्यर्थका तर्क-वितर्क छोड़कर भगवानका भजन करो तभी तुम्हारा पाण्डित्य सार्थक होगा।"

उनके उपदेशोंको श्रवणकर प्रभु हँसते हुए बस इतना ही कहते—"यह तो मेरा सौभाग्य

है कि आपलोग मुझे उपदेश प्रदान कर रहे हैं। आप जैसे वैष्णववृन्द जिसके कल्याणकी चिन्ता करें, अवश्य ही उसका कल्याण होगा। मैं भी सोच रहा हूँ कि कुछ दिन छात्रोंको व्याकरण पढ़ाकर किसी वैष्णवके चरणोंका आश्रय ग्रहण करूँगा।"

उसी नवद्वीपमें वैष्णवोंके कृपापात्र मुकुन्द रहते थे, जो वाल्यावस्थासे ही कृष्णके चरणोंमें अनुरक्त थे। वे उत्तम कीर्तनीया भी थे। प्रतिदिन सन्ध्याके समय सभी वैष्णववृन्द श्रीअद्वैताचार्यकी सभामें उपस्थित होते थे। उस सभामें जब मुकुन्द भगवानका कीर्तन करते थे तो उस समय सभी वैष्णवोंका हृदय द्रवित हो जाता था। सभी अपने शरीरकी भी सुध-बुध खो बैठते थे। सभीके अन्दर एक अद्भुत भाव उदित हो जाता। कोई रोने लगता तो कोई हँसने लगता, कोई नाचने लगता तो कोई जमीन पर लोट-पोट खाने लगता तथा कोई-कोई मुकुन्दके चरण पकड़ लेता। इस प्रकार उस सभामें आनन्दकी लहरें उठने लगतीं, जिससे वैष्णववृन्दका पाषण्डियोंके दुर्वचनों जर्जरित हृदय शान्त हो जाता। स्वयं श्रीगौरसुन्दर भी मन-ही-मन बहुत प्रसन्न थे। यदि रास्तेंमें उसे देख लेते तो अपने भक्तको पहचानकर उससे हास-परिहासके उद्देश्यसे प्रश्न पूछने लगते। परन्तु मुकुन्द भी पीछे नहीं हटते। बस प्रभु एवं सेवकमें ही शास्त्रार्थ आरम्भ हो जाता। इस प्रकार गौरसुन्दर जहाँ-जहाँ अपने प्रिय भक्तोंको देखते उनसे ही शास्त्रार्थ करने लगते तथा उन्हें पराजित कर देते। वैष्णवोंका स्वभाव ही है कि वे भगवचर्च्चाके अतिरिक्त कुछ भी नहीं बोलते। इसलिए यदि किसी वैष्णवको दूरसे श्रीगौरसुन्दर आते हुए दिखाई देते तो वे छिप जाते या रास्ता बदल लेते। क्योंकि वे जानते कि यह निमाई पण्डित बहुत तार्किक है। इसे तो भजनसे कोई मतलब नहीं है। परन्तु इसके चक्करमें पड़कर हमारे भजनका अमूल्य समय अवश्य नष्ट हो जाएगा। एक दिन राजमार्गसे श्रीगौरसुन्दर अपने छात्रोंके साथ प्रमत्त हाथीकी भाँति आनन्दसे डोलते-डोलते आ रहे थे। उस समय मुकुन्द उसी रास्तेसे गंगास्नानके लिए जा रहे थे। जब मुकुन्दकी दृष्टि प्रभु पर पड़ी तो वे भागकर दूसरी ओर चले गये। उन्हें भागते हुए देखकर अन्तर्यामी श्रीगौरसुन्दरने गोविन्दसे पूछा—"गोविन्द! यह मुकुन्द इसी रास्तेसे आ रहा था, परन्तु मुझे देखकर भाग क्यों गया?"

गोविन्द—"मैं नहीं जानता कि वह क्यों भाग गया। हो सकता वह किसी अन्य कार्यसे गया हो।"

प्रभु—"मैं सब जानता हूँ कि मुझे देखकर वह क्यों भाग गया। ये सब वैष्णवलोग हरिकथाके अतिरिक्त कुछ भी बोलना तथा श्रवण करना पसन्द नहीं करते। परन्तु मेरे मुखसे कृष्णकी कथा तो निकलेगी नहीं। अतः विषयवार्ताके भयसे ये मेरे सामने आनेसे कतराते हैं।"

अन्दरसे प्रभु मुकुन्दपर बहुत सन्तुष्ट होकर प्रेमपूर्वक गाली देते बोले—"अरे बेटा! भागो, कब तक मेरे जालसे बचकर भागोगे। कुछ दिन रुक जाओ, उसके बाद मेरे शरीरपर वैष्णवोंके भाव देखोगे। संसारमें मैं ऐसा वैष्णव बनूँगा कि ब्रह्म, शिव आदि देवतावृन्द भी मेरे दर्शनके लिए मेरे दरवाजे पर आएँगे। अभी तक जो मुझे देखकर भाग रहे हैं, एक दिन

वे ही लोग गुणगान करेंगे तथा एक क्षणके लिए भी मुझे छोड़ना नहीं चाहेंगे।" ऐसा कहकर प्रभु श्रीगौरसुन्दर हँसते हुए अपने छात्रोंके साथ घरकी ओर चल पड़े। परन्तु भगवानकी मायाके कारण कोई प्रभुकी बातका अर्थ न समझ सके। समझें भी तो कैसे? भगवानकी इच्छाके बिना तो स्वयं लक्ष्मीदेवी भी अपने प्रभुको नहीं पहचान सकतीं, तो साधारण जीवोंकी तो बात ही क्या?

श्रीईश्वरपुरीपादका आगमन

उसी समय श्रीमाधवेन्द्रपुरीके अन्तरंग शिष्य श्रीईश्वरपुरी नवद्वीपमें उपस्थित हुए। वे अलक्षित (मायावादी संन्यासीके) वेशमें थे, अर्थात् उन्होंने हाथमें एक दण्ड धारण कर रखा था। इसलिए उन्हें कोई पहचान नहीं पाया। घूमते-घूमते जब वे श्रीअद्वैताचार्यके गृहमें उपस्थित हुए तो उन्हें देखकर श्रीआचार्यने पूछा—"हे महात्मन्! आप कौन हैं तथा आपका आगमन कहाँसे हो रहा है? आपको दर्शनकर तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आप एक वैष्णव संन्यासी हैं।"

पुरी—"मैं एक अधम शूद्र हूँ। आपके दर्शनके लिए आया हूँ।"

उसी समय मुकुन्दने कृष्णलीला सम्बन्धित एक पद गाना आरम्भ किया। जिसे श्रवण करनेके साथ ही श्रीईश्वरपुरी जमीनपर गिर पड़े। उनके नेत्रोंसे गंगा-यमुनाकी भाँति अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। उनकी ऐसी अवस्था देखकर अद्वैताचार्यने जल्दीसे उन्हें अपनी गोदीमें उठा लिया। उनकी आँखोंकी अश्रुधारासे अद्वैताचार्यजीका शरीर भींग गया, परन्तु ईश्वरपुरीका प्रेमावेश दूर ही नहीं हो रहा था, बल्कि क्षण-प्रतिक्षण बढ़ता ही जा रहा था। मुकुन्द भी उच्चस्वरसे भागवतके श्लोकोंका गान करने लगे। ईश्वरपुरीके शरीरमें होनेवाले प्रेमके विकारोंका दर्शन कर वहाँपर उपस्थित सभी वैष्णव विस्मित हो गये तथा उनके हृदयमें अपार आनन्द होने लगा। इस प्रकार कुछ समय पश्चात् जब उनका आवेश शान्त हुआ तो सभी जान गये कि ये महात्मा अन्य कोई नहीं श्रीमाधवेन्द्रपुरी (जिनके लिए स्वयं गोपालने खीर-चोरीकी) के अन्तरंग शिष्य हैं। इस प्रकार नवद्वीपमें ईश्वरपुरीपाद अलक्षितवेशमें भ्रमण करते रहते थे। एक दिन श्रीगौरसुन्दर छात्रोंको पढ़ाकर अपने घरकी ओर जा रहे थे, तो उसी समय मार्गमें ईश्वरपुरीसे उनकी भेंट हो गयी। प्रभु अपने भक्तको पहचान गये। अतः भक्तका सम्मान वर्धन करनेवाले श्रीगौरसुन्दरने उन्हें प्रणाम किया। श्रीगौरसुन्दरके अपूर्व स्वरूपका दर्शन कर पुरी विस्मित हो गये। उन्होंने श्रीगौरसुन्दरसे पूछा—"हे ब्राह्मण! तुम्हारा क्या नाम है? तुम्हारा घर कहाँ हैं तथा तुम क्या पढ़ाते हो?"

प्रभु—"मेरा नाम निमाई पण्डित है।"

निमाई पण्डित नाम सुनते ही ईश्वरपुरी बहुत प्रसन्न होकर बोले—"अच्छा तो आप ही निमाई पण्डित हैं। आपकी बहुत महिमा सुनी है। आपसे मिलकर बहुत प्रसन्नता हुई।" प्रभुने उन्हें अपने घरपर प्रसाद पानेके लिए निमन्त्रित किया तथा अत्यन्त आदरपूर्वक उन्हें अपने घर ले जाकर सत्कार किया। प्रसाद पानेके बाद वे दोनों ही मन्दिरमें आकर बैठ गये तथा कृष्ण कथाकी चर्चा करने लगे, जिससे श्रीईश्वरपुरी भावाविष्ट हो गये तथा उनकी

आँखोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। उनके भावोंको देखकर श्रीगौरसुन्दर बहुत आनन्दित हुए। परन्तु प्रभुने अपनेको प्रकाशित नहीं किया।

ईश्वरपुरी कुछ महीने नवद्वीपमें ही गोपीनाथ आचार्यके घरमें रहे। हजारों-हजारों लोग उनके दर्शनके लिए जाते थे। स्वयं श्रीगौरसुन्दर भी नित्यप्रति उनके पास जाते थे। ईश्वरपुरी पहचान नहीं पाये कि ये ही मेरे प्रभु हैं, परन्तु प्रभुका दर्शनकर वे भावविभोर हो जाते थे। एक दिन जब श्रीगौरसुन्दर उनसे मिलने आए तो पुरी बोले—"हे निमाई! आप तो परम पण्डित हैं। मैंने कृष्णके चरित्रपर एक ग्रन्थकी रचना की है। मेरी तीव्र इच्छा है कि आप ग्रन्थको देखें तथा यदि उसमें कोई भूल हो तो आप उसमें संशोधन करें। इस प्रकार मुझे बहुत प्रसन्नता होगी।"

प्रभु—"हे महात्मन्! आप कैसी बातें कर रहे हैं। यदि कोई भगवानका प्रियभक्त कृष्णके विषयमें कुछ वर्णन करता है, तो उसमें दोष देखनेवाला महापापी है। भक्त जिस किसी भी प्रकारसे भगवानका गुणानुवर्णन करता है, कृष्ण उसीमें संतुष्ट रहते हैं। जैसा कि शास्त्रोंमें वर्णन है—

मूर्खो वदति विष्णाय धीरो वदति विष्णवे।
उभयोस्तु समं पुण्यं भावग्राही जनार्दन।।

अर्थात् मूर्ख व्यक्ति विष्णुको प्रणाम करते समय "विष्णाय नमः" (ऐसा व्याकरण दोषयुक्त अशुद्ध पद) उच्चारण करते हैं तथा पण्डित व्यक्ति "विष्णवे नमः" (इस शुद्धपद) का उच्चारण करते हैं। परन्तु प्रणामका फल दोनोंको समान ही मिलेगा, क्योंकि भगवान श्रीजनार्दन जीवके हृदयके भावोंको ग्रहण कर उसके अनुसार फल प्रदान करते हैं। भगवान मूर्खत्व अथवा पाण्डित्यकी अपेक्षा नहीं रखते।

अतः आपने प्रेमपूर्वक जो कुछ वर्णन किया है, कोई उसमें सुधार करेगा; ऐसा दुस्साहस किसमें होगा?"

प्रभुकी अमृतसमान मधुरवाणीको श्रवणकर पुरीके शरीरमें मानो अमृतका सञ्चार हो गया हो। वे पुनः हँसते-हँसते वोले—"ऐसी बात नहीं है। इससे आपको कोई दोष नहीं लगेगा। इसमें जो भी दोष हों आप बिना किसी हिचकिचाहटके उनमें सुधार करें।"

इस प्रकार श्रीगौरसुन्दर नित्यप्रति पुरीके पास बैठकर ग्रन्थके विषयमें आलोचना करते। एक दिन ग्रन्थालोचनाके समय गौरसुन्दर हँसते हुए बोले—"यह धातु आत्मनेपदी है, परस्मैपदी नहीं। इसका रूप आत्मनेपदीके अनुसार ही चलेगा।" ऐसा कहकर वे अपने घरकी ओर चल पड़े। परन्तु ईश्वरपुरी भी परम पण्डित थे। प्रभुके चले जानेके पश्चात् वे उस धातुके विषयमें विचार करने लगे। अनेक विचारके बाद भी उन्हें उसमें कोई दोष नहीं दिखा अर्थात् वहाँ पर आत्मनेपदी प्रयोग ही ठीक था। अतः दूसरे दिन जब श्रीगौरसुन्दर आये तो वे बोले—"हे पण्डित! आपने कल जिसे परस्मैपदी कहा था, मैंने उसपर बहुत विचार किया तथा निर्णय यही निकला कि वहाँ पर आत्मनेपदी ही धातु लगेगा।" अपने भक्तकी व्याख्या श्रवणकर प्रभु संतुष्ट हो गये तथा अपने भक्तकी जयके लिए उन्होंने और दोष नहीं निकाले। क्योंकि भगवानका स्वभाव ही है कि वे सदैव अपने भक्तकी महिमा ही बढ़ाते हैं। इस प्रकार कुछ

दिन नवद्वीपमें ही श्रीगौरसुन्दरके साथ व्यतीत कर वे जगतको पवित्र करनेके लिए चल पड़े। क्योंकि वैष्णवोंका भ्रमण होता ही है—भगवद्विमुख लोगोंपर कृपा करनेके लिए।

श्रीगौरसुन्दरका नानाविध ऐश्वर्य प्रकाश

वैष्णव लोग विचार करते कि यदि निमाई पण्डित भगवद्भजन करता तो हम सभी एक क्षणके लिए भी इसका संग नहीं छोड़ते। यद्यपि श्रीगौरसुन्दर सभीको जहाँ-तहाँ पकड़कर शास्त्रार्थमें पराजित करते, उनका अपमान करते, परन्तु न जाने क्यों उन्हें गौरसुन्दर पर क्रोध नहीं आता था। बल्कि वे सभी भगवानसे प्रार्थना करते—"हे कृष्ण! हमारा आपके श्रीचरणकमलोंमें यही निवेदन है कि आप इस निमाई पण्डितकी बुद्धिको सुधारकर उसे अपने श्रीचरणोंमें लगाओ।"

भगवानके चरणोंमें उनका यह निवेदन सुनकर श्रीगौरसुन्दर उनके भोलेपन पर मुस्कराकर रह जाते। बड़े-बड़े योगी जिनके चरणोंकी नखज्योतिका ध्यान करते हैं, परन्तु सफल नहीं हो पाते। ऐसे प्रभुका स्वभाव ही है कि वे अपने भक्तोंके साथ हास-परिहास करते हैं तथा उनका मान बढ़ाते हैं। मार्गमें जब कभी वे श्रीवासदि वैष्णवोंका दर्शन करते तो उन्हें प्रणाम करते। तब वे वैष्णवलोग प्रभुको आशीर्वाद प्रदान करते—"तुम्हें कृष्णभक्ति हो।" प्रभुजी हँसते-हँसते अपने भक्तोंके आशीर्वादको शिरोधार्यकर लेते थे।

एक दिन अकस्मात् प्रभु अलौकिक बातें करने लगे। उस समय उनका भाव असामान्य हो गया। कभी जमीन पर लोट-पोट खाने लगे तो कभी रोने लगे, कभी हँसने लगे, कभी घरमें ही तोड़-फोड़ करने लगे। उनके सामने जो आता उसे ही मारने दौड़ते। यह देखकर शचीमाता घबरा गईं तथा उन्होंने सभीको बुलवाया। बहुतसे वैद्य भी बुलाये गये परन्तु कोई भी प्रभुको स्वस्थकर नहीं पाया। वास्तवमें यह कोई रोग नहीं था, बल्कि वायुरोगके छलसे प्रभुने अपने प्रेमाभक्तिको प्रकाशित किया था। परन्तु माया विमोहित होनेके कारण कोई कहने लगे—"किसी भूत-प्रेतका आवेश इसके ऊपर हो गया है अथवा इसके सिरपर वायु चढ़ गया है, इसीलिए यह ऐसी अटपटी हरकतें कर रहा है।" अतः सभी लोग नाना प्रकारके शीतल तेल एवं औषधियाँ उनके सिरपर मलने लगे। परन्तु कुछ भी असर न हुआ। असर होता भी तो कैसे? क्योंकि जब तक स्वयं इच्छामय भगवानकी इच्छा न हो कौन उनके भावका परिवर्तन कर सकता है। इस प्रकार कुछ समय अपनी इच्छासे वे स्वयं ही उठकर शान्तिपूर्वक बैठ गये। यह देखकर चारों ओर खुशीकी लहर दौड़ गई। सभी आनन्दसे "हरि-हरि" बोलने लगे तथा ब्राह्मणोंको अन्न, वस्त्र इत्यादि दान करने लगे। ❑

महाभागवत वृत्रासुर

[गताङ्कसे आगे]

आज मेरे लिए यह परम सौभाग्यका दिन है कि तुम्हारे जैसा शत्रु जिसने विश्वरूपके रूपमें ब्राह्मण, अपने गुरु एवं मेरे भाईकी हत्या की है, मेरे सामने खड़ा है। अरे दुष्ट! अब शीघ्र-से-शीघ्र मैं तेरे पत्थरके समान कठोर हृदयको अपने शूलसे विदीर्ण कर भाईके ऋणसे ऊऋण हो जाऊँगा और शान्तिका अनुभव करूँगा। यह मेरे लिए कैसे सौभाग्यकी बात होगी।

इन्द्र! तूने आत्मवेत्ता और निष्पाप मेरे बड़े भाईको जो ब्राह्मण होनेके साथ ही यज्ञमें दीक्षित और तुम्हारा गुरु था, विश्वास दिला कर तीनों सिर उतार लिए, ठीक वैसे ही जैसे स्वर्गकी कामनावाला निर्दय मनुष्य यज्ञमें पशुका सिर काट डालता है।

"दया, लज्जा, लक्ष्मी, कीर्ति तुझे छोड़ चुकी है। तूने ऐसे ऐसे नीच कर्म किए हैं जिनकी निन्दा मनुष्यकी बात ही क्या राक्षस तक करते हैं। आज मेरे त्रिशूलसे तेरा शरीर टूक-टूक हो जायेगा। बड़े कष्टसे तेरी मत्यु होगी। तेरे जैसे पापीको आग भी नहीं जलायेगी, तुझे तो गीध नोच-नोच कर खाएँगे।

इस प्रकार अत्यन्त कटु गर्वोक्तियोंसे भरे वाक्य प्रयोग करते हुए क्रोधावेशमें वृत्रासुर इन्द्रकी प्रताड़ना करता ही रहा। अन्तमें फिर कहने लगा—"तू तो ठीक है, पर ये अज्ञानी देवता तेरे जैसे नीच और क्रूरके अनुयायी बनकर मुझपर शस्त्रोंका प्रहार कर रहे हैं। मै त्रिशूलसे इनके सिर काट डालूँगा। इसके अतिरिक्त यह भी सम्भव है कि तू वज्रसे मेरा ही सिर काट ले, तो मैं अपने शरीरकी बलि पशुओंको तथा पक्षियोंको समर्पित कर कर्मबन्धनसे मुक्त हो जाऊँगा और महापुरुषोंके चरणरजका आश्रय ग्रहण करूँगा और जिस लोकमें महापुरुष जाते हैं, उसी लोकमें चला जाऊँगा।

पूर्ण समाहित होकर महामनस्वीके समान फिर कहने लगा—"हे देवराज इन्द्र! मैं तेरे सामने खड़ा हूँ। तेरे शत्रु मुझपर अपने अमोघ अस्त्र वज्रको क्यों नहीं छोड़ता। तू यह सन्देह न कर कि जैसे तेरी गदा निष्फल हो गयी,। वैसे कृपण पुरूषसे की गई याचनाके समान तेरा वज्र निष्फल जायगा। यह वज्र अमोध है क्योंकि—

नन्वेष वज्रस्तव शक्र तेजसा
हरेर्दधीचेस्तपसा च तेजितः।
तेनैव शुत्रुं जहि विष्णुयन्त्रितो
यतो हरिर्विजयः श्रीगुणास्ततः।।
अहं समाधाय मनो यथाऽऽह
संकर्षणस्तच्चरणारविन्दे।
त्वद्वज्ररंहोलुलितग्राम्यपाशो
गतिं मुनेर्याम्यपविद्धलोकः।।

(भा० ६/११/२०)

हे इन्द्र! तेरा यह वज्र श्रीहरिके तेज और दधीचि ऋषिके तपस्यासे शक्तिमान हो रहा है। विष्णु भगवान्ने मुझे मारनेके लिए तुझे आशा

दी है। इसलिए अब तू उसी वज्रसे मुझे मार डाल, क्योंकि जिस पक्षमें भगवान् श्रीहरि हैं, उधर ही विजय, लक्ष्मी और सारे गुण निवास करते हैं।

भगवान् संकर्षणके आज्ञानुसार मैं अपने मनको उनके चरणकमलोंमें समर्पण कर दूँगा और तेरे वज्रका वेग मेरे विषय भोगके फंदेको काट देगा और शरीर त्याग कर मैं मुनिजनोचित गति प्राप्त करूँगा।

पुंसां किलैकान्तधियां स्वकानां
याः सम्पदो दिवि भूमौ रसायाम्।
न राति यद् द्वेष उद्वेग आधि-
र्मदः कलिर्व्यसनं संप्रयासः॥
त्रैवर्गिकायासविघातमस्मत्
पतिर्विधत्ते पुरुषस्य शक्र।
ततोऽनुमेयो भगवत्प्रसादो
यो दुर्ल्लभोऽकिञ्चनगोचरोऽन्यैः॥
(भा॰ ६/११/२२-२३)

जो पुरुष भगवानसे अनन्य प्रेम करते हैं, उनके निजजन हैं, उन्हें भगवान् स्वर्ग, पृथ्वी या रसातलकी सम्पत्तियाँ नहीं देते। क्योंकि उनसे परमानन्दकी उपलब्धि होती ही नहीं, उल्टे द्वेष, उद्वेग, अभिमान, मानसिक पीड़ा, कलह, दुःख और परिश्रम ही हाथ लगते हैं। इन्द्र! हमारे स्वामी अपने भक्तके अर्थ, धर्म एवं कामसम्बन्धी प्रयासको व्यर्थ कर दिया करते हैं और यथार्थमें इसीसे भगवान्‌की कृपाका अनुमान होता है। क्योंकि उनका ऐसा कृपा-प्रसाद अकिञ्चन भक्तोंके लिए ही अनुभवगम्य है, दूसरोंके लिए तो अत्यन्त दुर्लभ ही है।

ऐसा कहते-कहते महाभागवत वृत्रासुरने ध्यानावस्थित होकर सभी ओरसे अपने मनको हटा लिया ओर उसने ऐसा अनुभव किया कि भगवान श्रीहरि प्रत्यक्ष रूपसे मेरे सामने उपस्थित हैं। वह भावमग्न हो गया और युद्धकी सारी बातें भूल गया। यह प्रार्थना भक्तोंकी परमादरणीय एवं प्रीति-वर्द्धनकारी है—

अहं हरे तव पादैकमूल-
दासानुदासो भवितास्मि भूयः।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते
गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः॥
न नाकपृष्ठं न चपारमेष्ठ्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
समञ्जस त्वा विरहय्य कांक्षे।
अजातपक्षा इव मातरं खगाः
स्तन्यं यथा वत्सतरा क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा
मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥
ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं
संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः।
त्वन्माययाऽऽत्मात्मजदारगेहे-
ष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात्॥
(भा० ६/११/२४-२)

हे प्रभो! आप मुझपर ऐसी कृपा कीजिये कि अनन्यभावसे आपके चरणकमलोंके आश्रित सेवकोंकी सेवा करनेका अवसर मुझे प्राप्त हो सके। हे प्राणवल्लभ! मेरा मन आपके मंगलमय गुणोंका स्मरण करता रहे, मेरी वाणी उन्हींका गान करे और शरीर आपकी सेवामें ही लगा रहे।

समग्र सौभाग्योंके आधारस्वरूप आपको छोड़कर मैं स्वर्गका राज्य, ब्रह्मलोक,

पृथ्वीतलका साम्राज्य, रसातलका एकछत्र राज्य, योगसिद्धियाँ और अपुनर्भवरूप मोक्ष तक नहीं चाहता।

जैसे पक्षियोंके पंखहीन बच्चे अपनी माँकी बाट देखते हैं, जैसे भूखे बछड़े अपनी माँका दूध पीनेके लिए आतुर रहते हैं एवं जैसे वियोगिनी पत्नी अपने प्रवासी प्रियतमसे मिलनेके लिए उत्कण्ठित रहती है, वैसे ही हे कमलनयन! मेरा मन आपके दर्शनके लिए छटपटा रहा है।

प्रभो! मैं मुक्ति नहीं चाहता। मेरे कार्योंके फलस्वरूप मुझे बार-बार जन्म-मृत्युके चक्रमें भटकना पड़े, इसकी परवाह नहीं; परन्तु मैं जहाँ-जहाँ जाऊँ, जिस-जिस योनिमें जन्म ग्रहण करूँ, वहाँ-वहाँ आपके प्यारे भक्तोंसे मेरी प्रीति तथा मित्रता बनी रहे। स्वामिन्! मैं केवल यही चाहता हूँ कि जो लोग आपकी मायासे देह-गेह और स्त्री-पुत्र आदिमें आसक्त हो रहे हैं, उनके साथ मेरा कदापि किसी प्रकारका भी सम्बन्ध ही न रहे।

वृत्रासुर रणमें अपने शरीरका परित्यागकर भगवच्चरणारविन्दकी प्राप्तिको ही श्रेयस्कर मानता था न कि विजय प्राप्त कर स्वर्ग। अतएव वह त्रिशूल लेकर इन्द्रकी ओर दौड़ा और कहने लगा—अब तू बच नहीं सकता। तब इन्द्रने आगे बढ़कर उसकी भुजा काट डाली। फिर वृत्रासुरने क्रोधाविष्ट हो परिघसे ऐसा प्रहार किया कि इन्द्रका वज्र उनके हाथसे गिर पड़ा। वृत्रासुरके इस अद्भुत कार्यसे असुर, चारण, सिद्ध सभी उसकी प्रशंसा करने लगे। पर इन्द्रके आये इस संकटपर देवता दुःखी हुए। इन्द्रके हाथसे छूटा हुआ वज्र वृत्रासुरके समीप आकर गिरा था। अतएव वृत्रासुरने फिर कहा—इन्द्र वज्र उठाओ और मुझे मार डालो। सनातन पुरुष भगवान ही जगत्‌की उत्पत्ति-स्थितिप्रलयके कारण हैं। उनके अतिरिक्त देहाभिमानी कभी विजय प्राप्त करते हैं तो कभी पराजय। इसमें विचारकी कौन-सी बात है? ये सब लोक और लोकपाल जालमें फँसे पक्षीके समान कालके अधीन हैं। वह काल ही सबकी जय-पराजयका मूल है।

ओजः सहो बलं प्राणाममृतं मृत्युमेव च।
तमज्ञाय जनो हेतुमात्मानं मन्यते जडम्।।
यथा दारुमयी नारी यथा यन्त्रमयो मृगः।
एवं भूतानि मघवन्नीशतन्त्राणि विद्धि भोः।।
पुरुषः प्रकृतिर्व्यक्तमात्मा भूतेन्द्रियाशयाः।
शक्नुवंत्यस्य सर्गादौ न बिना यदनुग्रहात्।।
अविद्वानेवमात्मानं मन्यतेऽनीशमीश्वरम्।
भूतैः सृजति भूतानि ग्रसते तानि तैः स्वयम्।।
आयुः श्रीः कीर्तिरैश्वर्यमाशिषः पुरुषस्य याः।
भवन्त्येव हि तत्काले यथानिच्छोर्विपर्ययाः।।

हे इन्द्र! वही काल मनुष्यके मन, इन्द्रिय, शरीर, बल, प्राण, जीवन और मृत्युके रूपमें स्थित है। मनुष्य उसको नहीं जानकर जड़ शरीरको ही जय-पराजय आदिका कारण मानता है। जैसे काठकी पुतली और यन्त्रका मृग नृत्य करानेवालेके हाथमें होते हैं, वैसे ही समस्त प्राणी भगवानके अधीन हैं, ऐसा मानो।

भगवानके कृपा-प्रसादके बिना पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, पञ्चभूत, इंद्रियाँ और अन्तःकरण चतुष्टय—कोई भी इस विश्वकी उत्पत्ति करनेमें समर्थ नहीं है। जिसे इस बातका पता नहीं है कि भगवान ही सबका नियन्त्रण करते हैं वही इन परतन्त्र जीवोंको

स्वतन्त्र कर्ता-भोक्ता मान बैठता है। वस्तुतः भगवान ही प्राणियोंके द्वारा प्राणियोंकी रचना और उन्हींके द्वारा उनका संहार करते हैं।

जिस प्रकार इच्छा न रहने पर भी समय विपरीत होनेसे मनुष्यको मृत्यु और अपशय आदि प्राप्त होते हैं, वैसे ही समयकी अनुकूलता होनेपर इच्छा न करनेपर भी उसे आयु, लक्ष्मी, यश और ऐश्वर्य आदि भोग भी मिल जाते हैं।

इसके अतिरिक्त तुम्हें और भी हितकारी बातें सुनाता हूँ। उन्हें ध्यानसे सुनकर मनन करो—

तस्मादकीर्त्तियशसोर्जयापजययोरपि ।
समः स्यात् सुखदुःखाभ्यां मृत्युजीवितयोस्तथा।।
सत्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः।
तत्र साक्षिणमात्मानं यो वेद न स बध्यते।।
पश्य मां निर्जितं शक्र वृक्णायुधभुजं मृधे।
घटमानं यथाशक्ति तवप्राणजिहीर्षया।।
प्राणग्लहोऽयं समर इष्वक्षो वाहनासनः।
अत्र न ज्ञायतेऽमुष्य जयोऽमुष्य पराजयः।।

(भा. ६/१२/१४-१७)

इसलिए यश-अपयश, जय-पराजय, सुख-दुःख, जीवन-मरण, इनमेंसे किसी एककी भी इच्छा न रखकर सभी परिस्थितियोंमें समभावसे रहना चाहिए। हर्ष-शोकके वशीभूत न होना चाहिए।

सत्व, रज, तम आदि गुण प्रकृतिके हैं, आत्माके नहीं। अतएव जो पुरुष आत्माको उनका साक्षीमात्र जानता है, वह उनसे नहीं बाँधता है।

देवराज इन्द्र! मुझे भी तो देखो! तुमने मेरा हाथ और शस्त्र काटकर मुझे एक प्रकारसे पराजित कर दिया है। फिर भी मैं तुम्हारे प्राण लेनेके लिए यथाशक्ति प्रयत्न कर रहा हूँ।

यह युद्ध क्या है, एक प्रकारसे क्रीड़ा है। इसमें प्राणकी बाजी लगती है। बाणोंके पासे डाले जाते हैं और वाहन ही चौसर हैं। पहलेसे यह बात मालूम नहीं होता कि कौन जीतेगा या कौन हारेगा।

इस प्रकार वृत्रासुरके सारगर्भित, सत्य और निष्कपट वचन सुनकर इन्द्रने उसका बड़ा आदर किया और वज्र उठा लिया। फिर मुस्कुराते हुए कहने लगे—

अहो दानव सिद्धोऽसि यस्य ते मतिरीदृशी।
भक्तः सर्वात्मनाऽऽत्मानं सुहृदं जगदीश्वरम्।।
भवानतार्षीन्मायां वै वैष्णवीं जनमोहनीम्।
यद् विहायासुरं भावं महापुरुषतां गतः।।
खल्विदं महदाश्चर्यं यद् रजःप्रकृतेस्तव।
वासुदेवे भगवति सत्त्वात्मनि दृढ़ा मति।।
यस्य भक्तिर्भगवति हरौ निःश्रेयसेश्वरे।
विक्रीडतोऽमृताम्भोधौ किं क्षुद्रैः खातकोदकैः।।

(भा. ६/१२/१९-२२)

अहो दानवराज! सचमुच तुम सिद्धपुरुष हो। तभी तो तुम्हारा धैर्य, निश्चय और भगवद्भाव इतना विलक्षण है कि तुमने समस्त प्राणियोंके सुहृद् आत्मस्वरूप जगदीश्वरकी अनन्यभावसे भक्ति की है।

अवश्य ही तुम लोगोंको मोहित करनेवाली भगवानकी मायाको पारकर गये हो, तभी तो असुरोचित भावको छोड़कर महापुरुष बन गये हो।

जो परम कल्याणके स्वामी भगवान श्रीहरिके चरणोंमें प्रेममय भक्तिभाव रखता है, उसे जगत्के भोगोंकी क्या आवश्यकता है? जो अमृतके सागरमें विहार कर रहा है, उसे क्षुद्र

गङ्गाके जलसे प्रयोजन ही क्या है?

इस प्रकार योद्धाओंमें श्रेष्ठ पराक्रमी देवराज इन्द्र और महाभागवतवर वृत्रासुर धर्मतत्त्वको जाननेकी अभिलाषासे एक दूसरेसे बातचीत करते हुए फिर युद्धमें प्रवृत्त हुए।

वृत्रासुरने अतीव उत्साह और साहससे अपना परिघ चलाया। इन्द्रने वज्रसे वृत्रासुरकी भुजा काट डाली। उसकी दोनों भुजाओंके कट जानेसे रुधिरकी धारा बह चली।

फिर दीर्घकाय वृत्रासुर अपनी ठोड़ीको धरतीसे और ऊपरके ओष्ठको आकाशसे लगाकर ऐरावत हाथीके सहित इन्द्रको निगल गया। ऐसी स्थितिमें सर्वत्र हाहाकार मच गया और सभी विलाप करने लगे। इन्द्रने नारायण कवचसे अपनेको उसके उदरमें सुरक्षित रक्खा। इससे ये उसके पेटमें पहुँचकर भी मरे नहीं। वे वज्रसे उसकी कोख फाड़कर बाहर निकल आये। अन्तमें एक वर्षमें वृत्रासुरके बधका योग आया। तब इन्द्रने तीव्र वेगशाली वज्रसे वृत्रासुरके सिरको काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया। उस समय आकाशमें दुंदुभि बजने लगी और सबने स्तुति करते हुए इन्द्रपर पुष्प-वर्षा की।

वृत्रस्य देहान्निष्क्रान्तमात्माज्योतिररिन्दम।
पयश्तां सर्वलोकानामलोकं समपद्यत॥

(भा. ६/१२/३५)

श्रीशुकदेवजीने परीक्षित्‌से कहा—हे राजन्! इस प्रकार वृत्रासुरका वध होनेपर उस महादैत्यके शरीरसे जीवरूप आत्मज्योति निष्क्रान्त होकर अर्थात् उसका पार्षद देह प्रकाशित होकर समस्त देवताओंके देखते-देखते सर्वलोकातीत भगवान संकर्षणको प्राप्त हुआ।❑

अब पछताए होत कहा

—डा. मधु खण्डेलवाल

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं
भास्वानुदेएयति हसि ष्यति पङ्कजश्रीः।
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे
हा हन्त हन्त नलिनीं गज उज्जहार॥

एक भ्रमर था, वह कमल पुष्पमें स्थित परागका रसास्वादन कर रहा था, उसकी सुगन्धसे उन्मत्त हो रहा था, इतनेमें सन्ध्या हो आयी। सूर्य तिरोहित हुआ और कमल संकुचित हो गया। जो भ्रमर दृढ़ एवं मजबूत शाल और शीशमके पेड़ोंको छेद कर डालनेकी ताकत रखता है, वही विषयासक्तिके कारण उस कमलके अन्दर ही रह गया। वह कामासक्त लोभी इस प्रकार विचार करने लगा। रात बीत जाएगी। प्रातःकाल होगा। सूर्य उदित होगा होगा और उनकी रश्मियोंसे यह कमल पुनः विकसित होगा। तब मैं इसमें से बाहर निकल जाऊँगा। तब तक तो आनन्दसे रसास्वादन करता रहता हूँ—हाय! हाय! वह ऐसा विचार कर ही रहा था कि एक मतवाला हाथी आया, उसने उसी कमलको उखाड़कर अपने मुँहमें डाल लिया और कमलके साथ ही वह दुर्भागा भौंरा भी हाथीके दाँतोंसे पिस गया। मनका मनोरथ मनमें ही रह गया।

यह भ्रमरकी कथा कोई कीट-कथा नहीं

है। यह सबके जीवनके यथार्थ स्थिति है। मनुष्यके जीवनका एक क्षणका भी पता नहीं है, न जाने किस पलमें प्रलय हो जाय, कब मृत्यु हो जाय। भ्रमर सदृश हम यही सोच समयको सांसारिक वासनाओंमें लिप्त होकर समाप्त कर देते हैं—"डामुक स्थिति हो जानेपर भगवानका भजन करेंगे।" शुभ समयकी केवल बात ही देखी जाय और साधन कुछ भी न किया जाय तो अशुभ कर्मों एवं वासनाओंका विनाश होगा कैसे और विनाश नहीं हुआ तो शुभ समय कभी आयेगा ही नहीं। अतः जो जिस अवस्थामें है, उसे उसी अवस्थामें भगवान राधा-कृष्णका आश्रय करके साधना आरम्भ कर देनी चाहिए। आधे क्षणका भी बिलम्ब नहीं करना चाहिए। मौतकी नंगी तलवार तो सदा ही सिर पर झूल रही है।

सौभाग्यसे यदि भगवद् प्रेमी-भक्तके संगसे भक्ति प्राप्त करनेकी इच्छा उदित हो जाय, और क्षण भरके लिए हम यह मान लें कि जीवनका ध्येय तो बस भगवत्-प्रेम प्राप्ति ही है, तब से ही भजनकी शुरुआत कर देनी चाहिए। फिर यह सोचना ही नहीं चाहिए कि अमुक स्थितिके प्राप्त होनेपर ही हम भजन करेंगे। स्थिति प्राप्त हो जानेपर तो वह ध्येय ही बदल जाता है। तब तक न जाने कितने दूसरे संग मिल जाते हैं। शुभ-इच्छाके सुअवसरको धन्यभाग मान मान भजन-क्षेत्रमें डट जाना चाहिए। भजनवीर बन जाना चाहिए। करोड़ों जन्मोंसे हुए अशुद्ध अन्तःकरणको प्रह्लादके वयससे ही भजनमें लगा देना होगा। नहीं तो फिर वह जन्म-मरण योनि-भ्रमणकी दारुन व्यथा नारद भक्ति सूत्रमें कहा गया है—

सुखदुःखेच्छालाभादित्यक्ते काले
प्रतीक्ष्यमाणे क्षणार्द्धमपि व्यर्थं न नेयम्।

अर्थात् सुख, दुःख, इच्छा, लाभ आदिका पूर्ण त्याग हो जाय, ऐसे समयकी प्रतीक्षामें आधा क्षण भी बिना भजनके व्यर्थ नहीं बिताना चाहिए। भतृहरिने वैराग्यशतकमें कहा है—

यावत्स्वस्थामिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा
यावच्चेन्द्रियशक्तिप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्
प्रोद्दीप्ते भवने च कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः।।

अर्थात् जब शरीर स्वस्थ है, बुढ़ापेका आगमन नहीं हुआ है, इन्द्रियाँ शक्तिमयी हैं, आयु अवशिष्ट है, तभी बुद्धिमान पुरुषको अपने कल्याणके लिए सम्यक रूपसे प्रयत्न करना चाहिए। घरमें आग लग जानेपर कूप खोदनेसे क्या होगा।

आयुर्नश्यति पश्यतां प्रतिदिनं याति क्षयं यौवनं
प्रत्यायान्ति गताः पुनर्न दिवसाः कालो जगद्‌थक्षकः।
लक्ष्मीस्तोयतरङ्ग भङ्गचपला विद्युच्चलं जीवितं
तस्मान्मां शरणगतं शरणद त्वं रक्ष रक्षाघुना।।

अर्थात् आयु प्रतिदिन देखते ही देखते नष्ट होती जा रही है, युवावस्था बीती जा रही है, बीता समय वापस नहीं आता, काल जगतको खाए जा रहा है, लक्ष्मी जलकी तरंगके समान चञ्चल है और बिजलीकी चमकके समान जीवन अस्थिर है, अतएव हे शरणदायक प्रभो! मुझ शरणागतकी रक्षा करो! रक्षा करो!

श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां स्वार्थः परः स्मृतः।
एकान्तभक्तिर्गोविन्दे यत् सर्वत्र तदीक्षणम्।।
(७/७/५५)

अर्थात् इस लोकमें मनुष्यका परम-स्वार्थ

इतना ही कहा गया है कि भगवान श्रीगोविन्दमें उसकी एकान्तिक भक्ति हो। परन्तु इसके विपरीत हमने अपने हृदयको धर्मशाला बना रखा है। उसमें पुत्र, पत्नी, सम्बन्धी, शत्रु-मित्र न जाने कितने लोगोंकी भीड़ है, पता नहीं संसारकी कितनी वस्तुएँ भरी हैं। जिन व्यक्ति या वस्तुओंसे हमारा राग तथा द्वेष है, वे हृदयमें ही तो हैं। दस जाती हैं तो बीस आती हैं। ऐसे मालगोदाममें एकान्तिक भक्तिकी सम्भावना भी कैसे हो सकती है? यहाँसे सबको विदा करना होगा, इसे स्वच्छ बनाना होगा, अपनी भी चिन्ताका त्याग करना होगा, प्रह्लादका अनुकरण करना होगा।

अतः उठो, किसी शुद्ध भक्तके पास जाओ, भक्तसे ही भक्तिकी प्राप्ति होती है। भक्तके पास श्रद्धाके साथ जाना होगा, नम्र बनकर बैठना होगा, मनको एकाग्र करना होगा, हृदयसे अभिमान निकालना होगा, तब चित्त निस्तरंग हो जाएगा। उस भक्तके हृदयमें जो भावचन्द्रका उदय हो रहा है, उसकी छाया चित्तमें पड़ेगी, मनमें भगवानका स्मरण होगा, मुखसे भगवान्नाम निकलेगा, शरीरमें रोमाञ्च होगा, नेत्रोंमें प्रेमाश्रु निःसृत होंगे, उस भक्तके भावचन्द्रके प्रभावसे ऐसी तन्मयता आएगी।

यह शरीर नौ द्वारवाला घर जिसमें पुरञ्जन (जीव) और पुरञ्जनी (बुद्धि) फँसे हैं, इसे 'मैं' और मेरा न समझे। एक प्रसिद्ध लोकगीत है—

नैहरवा हमका न भावै।
साईंकी नगरी परम अति सुन्दर,
जहाँ कोउ जाय न पावे।।

पीहर=मायका=मायाका देश हमें अच्छा नहीं लगता। वहाँ उस देशमें चलो, जहाँ अपने प्रियतम प्रभुका निवास है। इस ढंगसे रहें जिससे वे संतुष्ट हों, उनका प्रेम मिले, उनका संग मिले। यह शरीर पिंजड़ा है। जीवरूपी पक्षी फँस गया है।

सुरवि विरहुलिया छाई निज देस।
जहाँ न सूरत, जहाँ न मूरत, पूरन घनी दिनेस।।

विरहिनीने पंख फड़फड़ाये और देह त्यागकर प्रियतमके देश पहुँच गयी। क्योंकि यह देह तो उसका अपना देश नहीं, यहाँ तो उसे रहना नहीं है—

रहना नहिं देश विराना है।

यह तो दूसरेका—मायाका देश है। संसार तो सेमरके वृक्षके समान है। इसके फल देखनेमें ही सुन्दर हैं। उन्हें खानेका प्रयत्न करो तो उनमेंसे रुई निकलती है। उनमें सार-सुख नहीं मिलता।

यह संसार सुवा सेमर ज्यौं, सुन्दर देखि लुभायौ।
चाखन लाग्यौ रुई गयी डड़ि हाथ कछू नहिं आयौ।।
इसलिए विरक्तो रक्तवत्तत्र नृलोके नरतां न्यसेत्।

अर्थात् हृदयसे वैराग्यवान रहें, संसारका खोखलापन समझते रहें और ऐसा व्यवहार करें, जिससे लोग समझें कि ये बहुत प्रेम करते हैं, सावधान! नहीं तो फिर अब पछताए होत कहा—❑

होशियारपुरसे श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीकी अनुगृहीता सुदेवी दासीने श्रील महाराजजीसे कुछ प्रश्न किये, जिनका सुन्दर समाधान श्रील महाराजजीने किया। पाठकोंके लिए उसे यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

ॐ विष्णुपाद परमहंस परिव्राजकाचार्य अष्टोत्तरशत् श्रीश्रील महाराजजीके श्रीचरणकमलोंमें कोटि-कोटि प्रणाम।

महाराज जी,

मुझे नहीं पता कि श्रील गुरुदेवजीसे किस प्रकार पत्र व्यवहार किया जाता है, परन्तु फिर भी यह लिखनेका साहस कर रही हूँ। आपका पत्र मिला। आपकी कृपा पाकर मैं कृतार्थ हुई। आपने हमारे छोटे-से कार्यकी सराहना की। यह सब भगवानकी इच्छा और आपकी कृपाके परिणामस्वरूप हुआ। गुरुदेव, मेरे मनमें कुछ जिज्ञासाएँ उत्पन्न हुई हैं। आप इनका समाधान कर दें तो अति कृपा होगी।

प्रश्न

(१) भगवद् अवतारोंकी भक्ति द्वारा भी आवागमनके चक्रसे मुक्ति मिल जाती है, तो कृष्णभक्ति पर ही बल क्यों दिया जाता है?

(२) क्या-वल मोक्ष प्राप्ति ही मनुष्य जीवनका लक्ष्य होना चाहिए?

(३) भगवानकी इच्छाके बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता, तो क्या सभी अच्छे बुरे कार्य भगवानकी इच्छा से ही होते हैं?

(४) 'भगवानके विषयमें की गई इच्छा भगवान अवश्य पूरी करते हैं।' मगर मेरी वृन्दावन दर्शनकी, श्रीजन्माष्टमी, श्रीराधाष्टमीमें भाग लेने की, आपके दर्शनकी इच्छा क्यों नहीं पूरी होती?

(५) यदि हमें सुख-दुःख, यश-अपयश सब अपने कर्मोंके अनुसार मिलता है, तो इसमें भगवानकी क्या भूमिका हुई?

(६) 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।' इस महामंत्रको 'महामन्त्र' क्यों कहा जाता है। महामन्त्रको कोई सुनना न चाहे या बेहोश प्राणी पर भी क्या यह प्रभाव डालता है? गुरुदेव, अगर किसी ***प्राणी*** को प्रसाद दिया जाए और प्राण छोड़ते समय बेहोश होनेपर भी उसके पास महामन्त्र चलता रहे तो उसकी क्या गति होगी?

(७) 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मांमेकं शरणं व्रज।' भगवानने इस श्लोकमें किन धर्मोंका परित्याग करनेको कहा है?

(८) मैं राधारानी और कृष्णके विषयमें सुनना, जानना, कहना चाहती हूँ। मगर मेरे पास ऐसा कोई साधन नहीं है जिससे मैं ऐसा कर सकूँ। साधु-संग पर बल दिया जाता है। गुरुदेव, घरमें रहते हुए ऐसा क्या किया जाए जिससे साधु-संगका लाभ भी प्राप्त हो और श्रीकृष्ण भक्तिमें वृद्धि हो, वरना घरमें कृष्णसे विमुख करनेके अनेक साधन होते हैं।

(९) राधारानीको किस प्रकार प्रसन्न किया जा सकता है ताकि हमें कृष्ण भक्ति प्रदान कर दें।

(१०) निधुवनके माहात्म्यके विषयमें जानना चाहती हूँ।

(११) पूज्यपाद भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजजीके प्रवचनमें पढ़ा था कि जो वस्तु भगवानमें नहीं है, वह जीवमें हो ही नहीं सकती। जैसे भगवानमें क्रोध है तभी जीवमें क्रोध है। मेरा प्रश्न है कि जीवमें धोखा देनेकी प्रवृत्ति प्रबल होती है तो क्या यह भगवानमें

भी है?

(१२) भगवान अति कृपालु हैं। मगर जीवोंको दण्डित करनेके लिए भगवानने संसाररूपी कारागार बनाया है। जब भगवान जीवोंको दण्ड ही देते हैं तो भगवान किस प्रकार कृपालु हुए?

(१३) मायाके प्रभावको किस प्रकार क्षीण किया जा सकता है?

(१४) द्वादश तिलक क्यों धारण किया जाता है? तिलक धारण करना मुझे अति रुचिकर है और मैं इसे धारण भी करती हूँ परन्तु अक्सर लोग मुझे कहते हैं कि भक्ति तो मनमें होती है तो बाहरी आडम्बर क्यों? गुरुदेव, मुझे इसके विषयमें बताइए ताकि मैं उचित उत्तर दे सकूँ।

मेरा स्नेह आशीर्वाद ग्रहण करना तथा परिवारके सभी लोगोंको भी मेरा शुभाशीष देना। तुम्हारा पत्र पढ़कर आनन्दित हुआ। तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर दे रहा हूँ—

उत्तर

(१) जीव भगवानका नित्य दास है। वह भूलकर माया चक्रमें पड़ा हुआ दुःखोंको भोग रहा है। जन्म-जन्मान्तरके चक्रमें पड़कर त्रिताप आदि कष्टोंको झेल रहा है। भगवानके नामके अभाससे जीवोंको जन्मान्तरके दुःखोंसे मुक्ति तो मिल जाती है, किन्तु भगवत् सेवाका आनन्द वैकुण्ठ या गोलोक वृन्दावनमें नहीं मिलता। पर भगवानकी प्रेममयी भक्ति करनेसे अपने आप मुक्ति मिल जाती है और साथ ही भक्तिका मुख्य फल भगवान्की प्रेममयी सेवा भी मिल जाती है।

(२) मनुष्य जीवनका लक्ष्य केवल मोक्ष नहीं है। मुख्य फल या जीवनका लक्ष्य भगवानकी परम प्रेममयी सेवा है। वह भगवान भी राधा-कृष्ण हैं। उन्हींकी सेवा जीवनका लक्ष्य होना चाहिए।

(३) भगवानकी इच्छाके बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता यह बात ठीक है। किन्तु भगवानको भूलना, बुरे कर्म करना, यह भगवान की इच्छा नहीं है। भगवानने जीवको प्रकटकर उनमें स्वतन्त्र इच्छा शक्ति भी दी है और जब जीव स्वतन्त्र इच्छा करते हैं, तब उस स्वतन्त्र इच्छासे कर्मकर दुःख भोगते हैं। स्वतन्त्र इच्छासे अपराध करते हैं और हृदयमें प्रेरणा देनेपर भी वे नहीं मानते, वे बुरा कर्म ही करना चाहते हैं। तब भगवान चुप जाते हैं और जीव बुरे कर्म कर उसका फल भोग करता है। इसलिए भगवान जीवोंके द्वारा बुरे कर्म नहीं कराते, जीव अपने आप करते हैं।

(४) भगवानके विषयमें की गई इच्छा वे पूरी करते हैं, मगर वह इच्छा दृढ़ होनी चाहिए। दृढ़ इच्छा होने पर उसे कोई भी रोक नहीं सकता। गोपियाँ कृष्णका दर्शन करना चाहती थीं। उनके पतियों, भाइयों, सास-ससुरों तथा घर और पड़ोसवालोंने उन्हें मना किया। बहुत बिध्न-बाधाएँ उपस्थित कीं। किन्तु गोपियोंने किसी की भी नहीं मानी। लोक-लज्जा, धर्म-अधर्म, कुलकी मर्यादा सबका उल्लंघन कर कृष्णके दर्शनके लिए गईं। जब ऐसी तीव्र इच्छा होगी तो उसे कोई रोक नहीं सकता और उसकी इच्छा पूर्ण हो जायेगी।

(५) जीवको अपने कर्मोंके अनुसार सुख-दुख, हानि, लाभ, यश-अपयश मिलता है, यह बात तो ठीक है। किन्तु इसके लिए वह जो कर्म करता है, उसके लिए उपयोगी शरीर, इन्द्रिय, मन, इच्छा आदि कौन देता है, यह तो भगवान ही देते हैं। फिर साधु-संगके द्वारा अच्छे कर्मोंमें, तत्त्वज्ञानमें और भक्तिमें भगवान ही प्रेरणा देते हैं। इसलिए भगवानकी ही भूमिका मुख्य है। हमारे रहनेके लिए पृथ्वी,

जीनेके लिए हवा, पानी, प्रकाश आदि सभी कुछ वे ही व्यवस्था करते हैं।

(६) कोई महामन्त्र सुने या न सुने, कानोंमें हरिनाम टकराकर भी कुछ न कुछ प्रभाव डालता है। इसलिए जोर-जोरसे संकीर्तनकी व्यवस्था दी गई है। अगर किसी जानवरको या जानवर जैसे व्यक्तिको महाप्रसाद दिया जाय अथवा प्राण छोड़ते हुए व्यक्तिके पास बेहोशीकी हालतमें भी महामन्त्र सुनाया जाये तो उसकी सद्गति होती है। संसारसे उनको मुक्ति मिल जाती है और दूसरे जन्ममें भक्तों और गुरुका संग प्राप्तकर वह भगवानकी भक्तिमें लग जाता है तथा क्रमशः उसके जीवनका लक्ष्य पूरा हो जाता है।

(७) 'सर्वधर्मान् परित्यज्य' इस श्लोकमें शरीर और मन सम्बन्धी सारे लौकिक धर्मोंको और वर्ण एवं आश्रमके धर्मोंको छोड़कर आत्माका धर्म भगवत् सेवाकी प्राप्तिके लिए भगवानकी शरणमें जानेकी बात कही गई है।

(८) यदि सत्संग प्राप्त नहीं होता तब गीता, भागवत, मेरे द्वारा प्रकाशित जैव-धर्म और दूसरे ग्रन्थोंको पढ़नेसे भी साधु-संग होता है। गुरु वैष्णवको प्रसन्न करनेसे और उनकी सेवासे राधाजीको प्रसन्न किया जा सकता है। निधुवनमें राधा-कृष्णकी कुंज लीलाएँ हुई थीं। भगवानमें असुरोंके प्रति क्रोध है, इसलिए जीवोंमें कभी-कभी भक्त विद्वेषियोंके प्रति क्रोध होता है। भगवानमें तरह-तरहसे खेल खेलनेकी इच्छा होती है। कभी वे छिप जाते हैं। सखा लोग उन्हें खोजते हैं। कभी यशोदा मैयाको कहते हैं कि मैने माखन नहीं खाया है। ऐसा झूठ बोलते हैं। उनके लिए यह झूठ नहीं है, यह तो मनुष्योचित लीलाएँ हैं। किन्तु बद्ध जीवोंमें भगवानकी ये उच्च कोटिकी वृत्तियाँ धोखा देनेकी प्रवृत्तियाँ बन जाती हैं।

(९) भगवान बड़े कृपालु हैं। अपराधी जीवोंको दण्ड देनेके लिए उन्होंने ससांररूपी कारागारकी रचना की है। जीवोंको शुद्ध कर वे अपनी सेवामें नियुक्त करते हैं। जैसे मैले सोनेको आगमें तपाकर उसका मैल दूर कर दिया जाता है, वैसे ही भगवान जीवोंको दण्ड देकर उसे शुद्ध बना देते हैं। जैसे कभी-कभी दयालु मैया अपने बच्चोंको दण्ड देकर सुधार देती है, शिक्षक छात्रोंको दण्ड देकर उन्हें उच्च कोटिका विद्वान बना देते हैं, ऐसे ही भगवान विमुख जीवोंको दण्ड देकर अपनी प्रेममयी सेवामें लगाकर उसके जीवनको आनन्दमय बना देते हैं। साधु संगमें हरिकथा श्रवण और हरिनाम संकीर्तनसे मायाका प्रभाव क्षीण किया जा सकता है।

(१०) द्वादश तिलक धारण करनेसे अपने अंगोंमें श्रीमन्दिर बनाकर भगवानको धारण किया जाता है। इससे अंग और हृदय निर्मल हो जाता है। अज्ञानी जीव इसकी आलोचना करते हैं। यदि भारतकी साध्वी नारी सिरपर सिंदूर देती हैं, हाथोंमें चूड़ी पहनती हैं और इससे वेश्याएँ उस साध्वी नारीकी खिल्ली उड़ाती हैं, तो उड़ाती रहें। यदि सैनिक लोग खाकी कपड़ा पहनते हैं, पोस्ट-ऑफिस और रेलके कर्मचारी, पुलिस अपने विशेष प्रकारकी पोषाक पहनते हैं तो उसकी कोई खिल्ली नहीं उड़ाता, केवल मूर्ख ही ऐसा करते हैं। इसलिए भक्त लोग गलेमें तुलसी माला और तिलक धारण करते हैं, यह सौभाग्य की बात होती है। मूर्ख लोगोंकी बातों पर ध्यान देनेकी आवश्यकता नहीं हैं। वे क्यों सिंदूर धारण करती हैं? वे स्वयं क्यों चूड़ियाँ धारण करती हैं? होठों पर लिपिस्टिक क्यों लगाती हैं?

भक्ति द्वारा गुरु और वैष्णवोंको प्रसन्न किया जा सकता हैं। ❑

विविध संवाद

श्रीव्रजमण्डल परिक्रमा—

वैष्णवोंके लिये चातुर्मास्य व्रतका पालन करना कर्त्तव्य है। श्रीमन्महाप्रभु एवं श्रील प्रभुपादने स्वयं आदरके साथ इस व्रतका पालन करके जगतमें इसकी शिक्षा दी है। विशेषकर चातुर्मास्यका अन्तिम मास अर्थात् कार्तिक मास सर्वसाधारणके लिये पालनीय हैं, क्योंकि कार्तिक व्रतका पालन करनेसे श्रीमती राधारानीकी विशेष कृपा पाई जाती है।

श्रीव्रजमण्डल परिक्रमाके पूर्व श्रील महाराजजीने परिक्रमाकी महिमाको बताते हुए कहा कि श्रीश्रीमन्महाप्रभु एवं रूपानुग आचार्यवर्य श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर एवं उनके अन्तरंग पार्षदप्रवर नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके वचनोंको मस्तक पर धारणकर श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति प्रत्येक वर्ष कार्तिकके महीनेमें कार्तिक व्रत पालन करनेके लिए भगवान और भगवत-धामकी परिक्रमाकी व्यवस्था करती है। इससे सभी भगवद्भक्तोंको पारमार्थिक कल्याण लाभ करनेमें बहुत ही सहायता मिलती है। सत्संगके अभावमें तीर्थ-भ्रमण तथा धर्म-कर्म सभी व्यर्थ हैं। शुद्धभक्तोंके मुखसे भगवानकी वीर्यवती कथाओंका श्रवण करनेसे जीवोंका वास्तविक कल्याण होता है। विषयमें फँसे हुए सांसारिक जीवोंको ऐसे सुयोग बहुत ही कम मिलते हैं।

एकादशी, जन्माष्टमी, ऊर्जाव्रत, गौर पूर्णिमा आदि व्रतोंका श्रद्धाके साथ नियमपूर्वक पालन करनेसे आसक्तियाँ सहज ही दूर हो जाती हैं। व्रत और नियमोंका एक उद्देश्य आसक्तियोंको दूर करना भी है। साधुसंगमें रहते-रहते कुछ ही दिनोंमें मन फिर जाता है, विषयासक्ति नष्ट हो जाती है, हृदयमें भक्तिका अंकुर पैदा हो जाता है। धीरे-धीरे वैष्णवोंके आचार-विचार-व्यवहारके प्रति रुचि पैदा होती है।

श्रीश्रीगुरु गौराङ्ग गन्धर्विका गिरिधारी श्रीश्रीराधाविनोद विहारीजीकी असीम अनुकम्पा एवं परमपूज्यपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके आनुगत्यमें प्रति वर्षकी भाँति इस वर्ष भी देश-विदेशसे आये लगभग पाँच सौ भक्तोंने १३ अक्टूबर को शारदीय पूर्णिमाके दिन मथुरा स्थित विश्राम घाट पर संकल्प ग्रहण करके ब्रजमण्डल परिक्रमाका आरम्भ किया। उस दिन श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजीकी अध्यक्षतामें नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीका विरहोत्सव भी श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें मनाया गया। इस उपलक्ष्यमें श्रीश्रीमद्भक्तिवैभव पुरी महाराज, परमपूज्यपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त विष्णु महाराज, सन्यासी महाराज, वैष्णव महाराज, मधुसूदन महाराजजी आदि अनेक उच्चकोटिके वैष्णवगण सम्मिलित हुए, जिन्होंने उनके अतिमर्त्य जीवन चरित्र, गुरुनिष्ठा, उनकी शिक्षाओं, भजन प्रणाली एवं उनके वैशिष्ट्यसे सम्बन्धित विभिन्न विषयोंको अपने-अपने विचारोंमें अभिव्यक्त किया। श्रीलमहाराजजीने उनके गौड़ीय सम्प्रदायके प्रति अवदानका विस्तृत वर्णन किया। सन्ध्या कालमें भी विभिन्न वक्ताओंने उनके चरणोंमें भावपूर्ण वक्तृताओं द्वारा पुष्पाञ्जलि प्रदान किया।

प्रतिदिन प्रातःकाल मंगला आरतीके पश्चात् श्रीश्रीदामोदराष्टक, श्रीश्रीनन्दनन्दनाष्टक एवं श्रीराधाकृपाकटाक्षस्तोत्रका सुस्वरसे कीर्तन होता

था। श्रील महाराजजी श्रील सनातन गोस्वामीकी टीकाके आधार पर श्रीश्रीदामोदरष्टककी सुसिद्धान्त एवं रसपूर्ण व्याख्या करके भक्तोंको भावविभोर कर देते थे। इसी प्रकार श्रील महाराजजीने भजनरहस्य, श्रीचैतन्यचरितामृत आदिका भी प्रतिदिन पाठ किया।

श्रील महाराजजीके अतिरिक्त श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त विष्णु महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त आचार्य महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त वैष्णव महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त सन्यासी महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त माधव महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त वन महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त अरण्य महाराज, श्रीपाद रासानन्द ब्रह्मचारीजीने भी कार्तिकव्रत महिमा एवं वे स्थान जहाँ प्रतिदिन परिक्रमा जाती, के सम्बन्धमें अपने-अपने विचार प्रस्तुत करते थे। इस प्रकार भक्तोंने सम्पूर्ण मास ब्रजमण्डलकी परिक्रमा करते हुए समस्त लीला स्थलियोंका दर्शन एवं अनेक वैष्णवोंके मुखसे उन लीला स्थलियोंका माहात्म्य श्रवण किया।

दानघाटी पर अभूतपूर्व अन्नकूट महोत्सवका आयोजन किया गया।

भण्डारकार्यमें श्रीपाद प्रेमानन्द प्रभु एवं उनके सहयोगी भक्तोंने सम्पूर्ण दायित्व ग्रहण किया एवं स्वयं अनेक कष्ट सहन करके भी उन्होंने सभी भक्तोंको ठीक समय पर अत्यन्त स्वादिष्ट प्रसाद परिवेशन करके श्रील महाराजजीके हृदयको अपार आनन्दित करके उनकी कृपा अर्जन की। श्रीपाद कृष्णदास ब्रह्मचारी, श्रीपाद सुदर्शन ब्रह्मचारी एवं श्रीपाद वक्रेश्वर ब्रह्मचारीने सुमधुर कीर्तन द्वारा तीर्थयात्रीगणको मुग्ध किया।

परिक्रमाके बीच-बीचमें विदेशी भक्तोंने श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी, दानघाटीकी लीला एवं उद्धवका ब्रजदर्शन इत्यादि अनेक लीलाओंका अभिनय कर सबको आनन्दित किया।

कार्तिक मासमें कई प्रमुख गौड़ीय वैष्णव आचार्योंके तिरोभाव एवं आविर्भाव उत्सव भी मनाये गये।

परिक्रमाके अन्तिम दिन ११ नवम्बरको जो कि श्रीश्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ और श्रीविग्रहगणका वार्षिक प्रतिष्ठा दिवस भी है, भक्तोंने वृन्दावनमें ही व्रत समाप्ति उत्सवमें भाग लिया।

इस मास श्रीगौड़ीय समितिसे दो ग्रन्थों "श्रीहरिनाम" एवं "श्रीब्रजमण्डल परिक्रमा" का प्रकाशन किया गया। इसके लिए श्रील महाराजजीने श्रीपाद पुण्डरीक ब्रह्मचारी एवं श्रीपाद कृष्णकारुण्य प्रभुकी सेवा-प्रचेष्टाकी अत्यन्त सराहना की। परिक्रमाके उपरान्त श्रील महाराजजीके आदेशसे न चाहते हुए भी सभी भक्त अपने-अपने देशोंको प्रस्थान किये। जाते समय उनकी आँखोंमें अश्रु देखकर श्रील महाराजजी कहते कि जैसे महाप्रभुके सभी भक्त रथ-यात्राके उपरान्त महाप्रभुकी आज्ञासे अपने-अपने स्थान पर लौटकर प्रचार करते थे, तुम लोग भी वैसा करना।

१४ नवम्बर को श्रील महाराजजीके आनुगत्यमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके एक अन्यतम मठ "श्रीदाऊजी गौड़ीय मठ" में श्रीश्रीकृष्ण-बलराम, श्रीगौरांग महाप्रभु एवं श्रीराधाविनोदबिहारीके विग्रहोंकी स्थापना भव्य रूपसे की गई। लगभग पांच हजार श्रद्धालु भक्तोंने इस चिरविस्मरणीय उत्सवमें भाग लिया।

१५ नवम्बर को श्रील महाराजजीने निज करकमलोंसे श्रीदुर्वासा मन्दिरमें "वैष्णवांना यथा शम्भु" श्रीगोपेश्वर महादेवकी स्थापना की एवं शिवतत्त्वपर अत्याधिक गम्भीर विचार प्रस्तुत कर महाराजजीने भक्तोंके सभी संशयोंका समाधान किया। ❑

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

वैकुण्ठ–वार्त्तावह

बृहत्–मृदङ्ग

श्रीभागवत–पत्रिका

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना।।

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।।

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः।।

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र।।
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश।।

वर्ष ४४ } श्रीगौराब्द ५१४ वि. सं. २०५७ पौष मास, सन् २०००–२००१, १२ दिसम्बर—९ जनवरी {संख्या १०

श्रीश्रीचैतन्याष्टकम्

[श्रीमद् रूप गोस्वामि–विरचितम्]

श्रीश्रीकृष्ण चैतन्यचन्द्राय नमः

कलौ यं विद्वांसः स्फुटमभियजन्ते द्युतिभरादकृष्णाङ्गं कृष्णं मखविधिभिरुत्कीर्तनमयैः।
उपास्यं च प्राहुर्यमखिल–चतुर्थाश्रमजुषां स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु।।१।।

कलियुगमें पण्डितजन हरिनाम संकीर्तनमय यज्ञ द्वारा जिनकी उपासना करते हैं, जो कृष्णवर्णके होनेपर भी श्रीमतीराधाके भाव और कान्तिको लेकर गौरवर्ण हुए हैं एवं पण्डितजन जिनको चतुर्थाश्रमी–संन्यासियोंका भी उपास्य बतलाते हैं, वे चैतन्याकृति संकीर्तन–पिता श्रीगौरहरि हम पर अतिशय कृपा करें।।१।।

चरित्रं तन्वानः प्रियमघवदाह्लादन–पदं जयोद्‌घोषैः सम्यग् विरचितशचीशोकहरणः।
उदञ्चन्मार्तण्ड द्युतिहरदुकूलाञ्चितकटिः स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु।।२।।
अपारं कश्यापि प्रणयिजनवृन्दस्य कुतुकी रसस्तोमं हृत्वा मधुरमुपभोक्तुं कमपि यः।
रुचिं स्वामाबव्रे द्युतिमिह तदीयां प्रकटयन् स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु।।३।।
अनाराध्यः प्रीत्या चिरमसुरभावप्रणयिनां प्रपन्नानां देवीं प्रकृतिमधिदैवं त्रिजगति।
अजस्त्रं यः श्रीमान् जयति सहजानन्द–मधुरः स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु।।४।।
गतिर्यः पौण्ड्राणां प्रकटित–नवद्वीप–महिमा भवेनालंकुर्वन् भुवनमहितं श्रोत्रियकुलम्।
पुनात्यङ्गीकाराद्भुवि परमहंसाश्रमपदं स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु।।५।।
मुखेनाग्रं पीत्वा मधुरमिह नामामृत–रसं दृशोर्द्वारा यस्तं वमति घन–वाष्पाम्बु–मिषतः।
भुवि प्रेम्णस्तत्त्वं प्रकटयितुमुल्लासित–तनुः स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु।।६।।
तनुमाविष्कुर्वन् नवपुरटभासं कटिलसत्करङ्कालंकारस्तरुण–गजराजाञ्चित–गतिः।
प्रियेभ्यो यः शिक्षां दिशति निजनिर्माल्यरुचिभिः स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु।।७।।
स्मितालोकः शोकं हरति जगतां यस्य परितो गिरान्तु प्रारम्भः कुशलपटलीं पल्लवयति।
पदालम्बः कं वा प्रणयति नहि प्रेम–निवहः स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु।।८।।
शचीसूनोः कीर्तिस्तवक–नवसौरभ्य–निबिडं पुमान् यः प्रीतात्मा पठति किल पद्याष्टकमिदम्।
लक्ष्मीवानेतं निजपद–सराजे प्रणयितां ददानः कल्याणीमनुपदमबाधं सुखयतु।।९।।

जिन्होंने शान्तिपुर धामके मार्ग–मार्गमें तथा प्रत्येक भक्तके घरमें गोपियोंके आनन्दकर अपना चरित्र अर्थात हरिनाम संकीर्तन करते–करते प्राणनाथ श्रीकृष्णचन्द्रकी जय हो इस प्रकार घोषणा द्वारा पुत्रशोकमें विह्वल हुई शचीदेवीका शोक दूर किया था और जिनका कटिप्रदेश नवोदित अरुण–वर्णके वस्त्रसे सुशोभित है, वे चैतन्याकृति श्रीशचीनन्दन हम पर अत्यधिक कृपा करें।।२।।

जिन्होंने उन्नतोज्ज्वल मधुर–रस या श्रीराधाकी प्रणयमहिमा इत्यादिका आस्वादन करनेके लिए वृषभानुनन्दिनीके अपार माधुर्य–भावको चुराकर एवं उनकी कान्तिको अङ्गीकार कर अपना रूप गोपन कर लिया था, वे चैतन्याकृति राधाभावद्युतिसुवलित श्रीगोरांगदेव हम पर प्रचुर कृपा करें।।३।।

जो असुरभावापन्न तामसिक देवोपासक ब्राह्मणोंके उपास्य नहीं होनेपर भी जगत्‌में सत्त्वगुण प्रधान देवभावापन्न ब्राह्मण कुलके एकमात्र आराध्य हैं एवं जो स्वाभाविक आनन्दमय और मधुर मूर्तिमें इस जगतमें सर्वोत्कृष्टरूपसे विराजमान हैं, वे चैतन्याकृति ब्रह्मण्यदेव श्रीशचीनन्दन गौरहरि हमपर अत्यधिक दया करें।।४।।

जो पुण्ड्रदेशीय अर्थात् नवद्वीपके दक्षिण–स्थित कुलीन ग्रामवासी भक्तोंका उद्धार करने वाले हैं, जिन्होंने श्रीनवद्वीपका माहात्म्य विशेष रूपसे फैलाया है, नवद्वीपमें वैदिक ब्राह्मण कुलमें आविर्भूत होकर जिन्होंने भुवनपूज्य उस वंशको उज्जवल किया है एवं जिन्होंने परमहंस

आश्रम अंगीकार करके भक्तिशिक्षा द्वारा उस आश्रमको पवित्र किया है, वे चैतन्याकृति यतिराज–वन्दितपद श्रीनवद्वीपचन्द्र हम पर प्रचुर कृपा करें।।५।।

जो पहले–पहले श्रीमुख द्वारा हरिनामरूप अमृतरसका पानकर निरन्तर अश्रुविसर्जनका छलकर नेत्रोंके द्वारा मानो उस रसको बाहर कर रहे हैं एवं जगतमें प्रेम–तत्त्वकी शिक्षा देनेके लिए जिनका कलेवर सर्वदा उल्लसित रहता है, वे चैतन्याकृति नामप्रेमप्रदाता श्रीमन्महाप्रभुजी हम पर सविशेष दया करें।।६।।

तपाये हुए सोनेकी तरह जिनकी श्रीअंगकान्ति है, जिनका कटिदेश करंगरूप अलंकार द्वारा सुशोभित है, तरुण गजराजकी तरह जिनकी सुन्दर चाल है एवं स्वयं प्रीतिपूर्वक भगवत्–प्रसाद, निर्माल्यादि ग्रहणकर महाप्रसादका माहात्म्य और प्रपञ्च–जयका विषय अपने भक्तोंको शिक्षा दे रहे हैं, वे चैतन्याकृति अखिललोकशिक्षक श्रीगौरहरि हम पर प्रचुर कृपा करें।।७।।

जिनका ईषत्–हास्ययुक्त कृपा–कटाक्ष सबका सन्ताप हर लेता है, जिनकी मधुर वाणी जगत्‌का कल्याण करती है, जिनके श्रीचरणकमलोंका आश्रय करनेसे सब लोग कृष्णप्रेम पा लेते हैं, वे चैतन्याकृति सर्वलोक–सन्तापहारी मंगलायतन श्रीगौरहरि हम पर प्रचुर कृपा करें।।८।।

श्रीशचीनन्दनकी कीर्त्ति–कुसुमावलीके मनोहर सौरभसे परिपूर्ण इस पद्याष्टकका जो प्रेमपूर्वक पाठ करते हैं, लक्ष्मीपति श्रीशचीनन्दन गौरहरि उनको अपने कल्याणकारी श्रीचरणकमलोंमें आश्रय प्रदानकर सुखी कर देते हैं।।९।।

नामाश्रयका फल

—जगद्गुरु श्रीश्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

पूर्णतम ब्रजधाममें श्रीकृष्णकी अष्टकालीय लीला देदीप्यमान है। मधुर रसाश्रित शुद्धभक्त अप्राकृत देहमें उसका अनुभव करते हैं। उस अष्टकालीय लीलामें संभोग और विप्रलम्भ भेदसे दो प्रकारके रस हैं। श्रीमती राधा और उनकी परिचारिकाएँ उन दोनों प्रकारके रसोंका आस्वादन करती हैं। विप्रलंभके अभावमें संभोगकी स्फूर्ति नहीं होती। इसलिए अष्टकालीय लीलामें समय–समय पर पूर्वराग और विरह आदि भाव हुआ करते हैं। वह माधुर्य नये–नये रूपमें प्रकट होता है, एक ही समय समस्त भावोंका उदय नहीं होता।

शुद्धनाम–परायण भक्त नाम–रसका आस्वादन करते समय जब भक्तिके स्रोतमें बहने लगता है, उस समय उसके अप्राकृत शरीरमें समस्त तत्त्व उद्दीपित होते हैं। ब्रजधाममें श्रीराधा–कृष्ण जिस समय जो लीला प्रकट करते हैं, शुद्ध भक्त नामके प्रभावसे अनायास उसका दर्शन करता है। इस विषयमें शास्त्रयुक्ति या शास्त्र–सिद्धान्त कुछ भी सहायता नहीं कर सकते हैं। एकमात्र सद्गुरुका आश्रय लेकर निरपराध रहकर नामका आश्रय लेनेपर थोड़े

दिनोंमें ही अनर्थोंसे छुटकारा प्राप्त होकर श्रीनाममें निष्ठा होने पर संपूर्ण सिद्धि होती है। नामापराध रहने पर नामका फल नहीं मिलता। उसी प्रकार हृदय-दौर्बल्य और असत् तृष्णा दूर नहीं होनेसे भक्ति-निष्ठा नहीं होती। जो लोग शुद्धभक्ति-तत्त्वको पानेके लिए प्रयत्नशील हैं, वे इस बातका सबसे पहले प्रयत्न करेंगे कि अनर्थ-समूहका किस प्रकार शीघ्रसे शीघ्र ध्वंश किया जाय। अनर्थ एक दिनमें नहीं जाते। निरपराध होकर नाम करनेके लिये प्रयत्न करने पर क्रमशः वे दूर होते हैं। अनर्थसमूह ही भजनके प्रतिकूल हैं। अनर्थ रहते-रहते किसी प्रकार भजनमें उन्नति नहीं हो सकती है। अनर्थ चार हैं—स्वरूप-भ्रम, असत्-तृष्णा, हृदयकी दुर्बलता और अपराध। ये चारों अनर्थ एक साथ दूर होने पर श्रीकृष्णके नाम, रूप, गुण और लीला क्रमोन्नतिके अनुसार प्राप्त होते हैं। शुद्ध नाम उदित होने पर वह कृष्णनाम ही रूप होकर दर्शन देते हैं; वह रूप श्याम वर्ण है। क्रमानुसार गुणका उदय होने पर श्रीगोपालवल्लभके असाधारण गुण उद्दीपित होते हैं। सिद्धि हो जाने पर लीलाका दर्शन होता है तथा लीला-दर्शनके फल-स्वरूप ब्रज-गोपियोंकी परिचारिकाओंकी श्रेणीमें आया जा सकता है और श्रीराधा-कृष्णके अष्टकालीय सेवा-सुखका आस्वादन किया जा सकता है। निष्कपट होकर सद्गुरुके निकटसे श्रीनाम प्राप्त होकर एकान्तरूपसे नामका आश्रय करनेसे थोड़े ही दिनोंमें सर्व-सिद्धि होती है और फिर जन्म-मृत्युके चक्करसे सदाके लिए छुटकारा मिल जाता है। चिन्मय नामानन्दसे चित्तमें विचित्र भाव उदय होते हैं। उस विमल आनन्दके सामने कर्मयोग-ध्यान आदि कुछ भी श्रेष्ठ वस्तु नहीं है। श्रीहरिनाम सर्वश्रेष्ठ हैं। वे शुद्ध भक्तोंके प्राण हैं। श्रीचैतन्यचरितामृतमें कहते हैं-

कलयुगे युगधर्म नामेर प्रचार।
तथि लगि पीत वर्ण चैतन्यावतार।।

गौरावतारके निगूढ़ भाव आन्तर और बाह्य भेदसे दो प्रकारके हैं। अन्दरमें ब्रज-भाव, पारकीय रस, नव-नटवर गोपवेश, गलेमें वनमाला, पीताम्बरधारी, मुरलीवादन इत्यादि। बाहरमें राधा-भाव-कान्ति, प्रेमभक्तिका आस्वादन करते हुये जीवोंको शिक्षा देना और जगद्गुरुके रूपमें श्रीनामप्रचार। उसी नामसे अन्तर्भाव प्रकाशकर मधुर नामद्वारा मधुर रस वितरण करते हैं। उसे शुद्ध भक्त महाजनोंने प्रेम-नेत्रोंसे दर्शन कर वर्णन किया है। ब्रज-रस एक समुद्र है। उस रस-समुद्रका एक बिन्दु पाकर भी जीव अपनेको बिलकुल भूल जाते हैं। वे संसारमें रह करके भी ब्रज-माधुरीका आस्वादन करते हुये चिद्देह द्वारा समस्त सुखानुभव कर छन्नावतार (श्रीगौरावतार) का निगूढ़ भाव जान लेते हैं। श्रीधाम माहात्म्यमें लिखा है-

दास्य परिपक्वे यवे जीवेर हृदये।
श्रीमधुर रस उदे मूर्त्तिमान हये।।
से समय भजनीय तत्त्व गौरहरि।
राधाकृष्णरूप हये ब्रजे अवतरि।।
नित्यलीला-रसे सेई भक्तके डुबाय।
राधाकृष्ण-नित्यलीला ब्रजधाम पाय।।

श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षाके अनुसार जो नामका आश्रय लेते हैं, वे शीघ्र ही ऐसा देख पाते हैं कि कृष्णनाम ही अन्तमें प्रेमके रूपमें

प्रकाशित होते हैं। समस्त प्रकारके रसोंमें पारकीय मधुर रस सर्वश्रेष्ठ है। इस रसमें माधुर्य अधिक होनेके कारण मधुर रस नाममें प्रकाशित हुआ है। ❑

सच्चे महाजन कौन हैं

—ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर

महान् व्यक्तिको 'महाजन' कहते हैं। पारमार्थिक और जागतिक विचारसे 'महत्'के सम्बन्धमें भिन्न भिन्न प्रकारकी धारणाएँ विद्यमान हैं। बद्धजीव सांसारिक सुखोंको ही सब कुछ समझता है और उनको प्राप्त करना ही जीवनका मूल उद्देश्य समझता है। ऐसे लोगोंकी दृष्टिमें उनके सांसारिक भोगोंको प्रदान करनेवाला अथवा उनको प्राप्त करनेमें सहायता करनेवाला व्यक्ति ही महान् व्यक्ति अर्थात् 'महाजन' है। व्यवसायीके लिए ऋण देनेवाले व्यक्ति महाजन हो सकते हैं, भोगमें तत्पर कर्मीके लिए जैमिनी आदि ऋषि या भिन्न-भिन्न मतपोषक धर्मशास्त्रकारगण और चित्तका निरोध करनेकी अभिलाषा रखनेवालोंके लिए पतंजलि आदि ऋषि महाजन हो सकते हैं। शुष्क ज्ञानियोंके लिए निरीश्वर कपिल या वशिष्ठ, दुर्वासा या दत्तात्रेय आदि केवलाद्वैतवादी महाजन हो सकते हैं। रजस्तमोगुण मिश्रित लोगोंके निकट पाशविक संपत्तिके अहंकारमें चूर विष्णुविरोधी हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, रावण और उसका पुत्र मेघनाद, जरासन्ध आदि राजन्यवर्ग, एकलव्य व कर्णादि गुरुभक्त; स्त्री संगाभिलाषी भोक्ताभिमानियोंके निकट दक्ष आदि स्त्री-पूजक प्रजापतिगण एवं जागतिक लोगोंके निकट दैहिक व मानसिक रोग, शोक, दुःख, भय या नश्वर अभावोंको दूर करनेवाले, उनको दूर करनेमें सहायक अथवा उनमें आसक्त व्यक्ति महाजन माने जा सकते हैं। माया विमोहित जीवोंके निकट विष्णु सम्बन्धरहित 'दार्शनिक', 'वैज्ञानिक', 'ऐतिहासिक', 'साहित्यिक', 'कवि', 'वाग्मी', 'समाजपति', या 'देशनेता' ये लोग महाजन हो सकते हैं, आत्मज्ञानरहित मूर्ख, वंचित और दुर्भागे व्यक्तियोंके निकट परमार्थभूत आत्मवृत्ति भगवद्भक्तिको हाड़-चामके प्रति आसक्ति या मोह-मात्र माननेवाले तथा केवल शौक्र-वंशके नाम पर अपनेको भक्त और गुरु अभिमान करनेवाले वंचक, भाड़ाटिया, अर्थलिप्सु व्यक्ति, परम भक्त श्रीहरिदासके भावों और हरिभजनकी चेष्टाओंके बाह्यानुकरणकारी ढोंगी-विप्र जैसे सच्चे संतोंके विरोधी, लोगोंको ठगनेकी नानाप्रकारकी विद्याओंको जाननेवाले, पूतना, तृणावर्त्त, वत्स, वक, अघ, धेनुक, कालिय, प्रलम्ब प्रभृति असुरगण अथवा विष्णु-विरोधी पौण्ड्रक, शृगाल-वासुदेव, दैत्यगुरु शुक्र, नास्तिक चार्वाक, वेण, सुगत, अर्हत (जैन) आदि एवं गौर-कृष्णके वास्तव-सत्य तत्त्व या उनके परमेश्वर होनेमें अविश्वास करनेवाले वे मनोधर्मी व्यक्ति जो उन अवतारोंकी नकलकर अपनेको ही अवतार प्रचार करते हैं, वे भले ही महाजन कहलाएँ, परन्तु निरस्तकुहक परमसत्य या वास्तव-वस्तु

प्रतिपादनकारी निर्मत्सर श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

प्रायेण वेद तदिदं न महाजनोऽयं
देव्या विमोहित मतिर्बत माययाऽलम्।
त्रय्यां जड़ीकृतमतिर्मधुपुष्पितायां
वैतानिके महति कर्मणि युज्यमानः।।

(भा. ६/३/२५)

अर्थात् जगतमें जो सब कर्मी 'महाजन' माने जाते हैं, वे धर्मके सम्बन्धमें भाषण देने वाले आत्मज्ञानरहित व्यक्ति भगवत्-भक्तिके माहात्म्यको नहीं जानते। उनकी बुद्धि त्रिगुणमयी वैष्णवी-माया द्वारा विमोहित होती है; इसीलिए वे मायातीत भगवत्-भक्तिका अनादर करते हैं तथा प्राकृत उपासना-मूलक विस्तारशील कर्मकाण्डमें नियुक्त एवं मायाजालमें बँधे हुए होते हैं। ऐसे-ऐसे महाजनोंकी मति ऋक्-साम-यजुर्वेदके आपात-रमणीय मधुर मधुर अर्थवाद-वाक्य द्वारा जड़ीकृत हुई होती है; ये लोग मायामुग्ध जीवोंकी धारणासे भले ही 'महाजन' कहे जायँ, परन्तु ये लोग पुरुषोत्तम श्रीभगवानकी नित्य-सेवामें बुद्धियुक्त कदापि नहीं हैं।

जगतके लोग 'कर्मवीर' कहे जा सकते हैं, 'धर्मवीर' के नाम पर सम्मान पा सकते हैं, 'ज्ञानवीर' के नाम पर प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकते हैं तथा वैराग्य और त्यागका आदर्श कहला कर पूजित हो सकते हैं, परन्तु श्रीमद्भागवतमें भगवानके चरणकमलोंकी सेवासे रहित वैसे-वैसे कर्मवीर, ज्ञानवीर और धर्मवीरोंको जीवन्मृत कहा गया है—

नेह यत् कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते।
न तीर्थपादसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः।।

अर्थात् इस जगत्में जो कर्मवीर 'धर्म' के लिए कर्म नहीं करते हैं, जो धर्मवीर वैराग्यके लिए धर्म नहीं करते हैं, अथवा जो त्यागवीर श्रीविष्णुकी प्रीतिके लिये भोगोंका त्याग नहीं करते, वे सब-के-सब 'जीवन्मृत' हैं। वास्तवमें हरिको सन्तुष्ट करनेकी प्रवृत्तिका नाम ही 'सेवा' है, इसके अतिरिक्त जिस कर्ममें, जिस धर्ममें और जिस त्यागमें श्रीकृष्ण-प्रीतिका सम्बन्ध नहीं है, वह देशसेवा, लोगसेवा, समाजसेवा, उच्च कुल या जातिगत अदैव वर्णाश्रमकी सेवा, रोगीकी सेवा, दरिद्रोंकी सेवा, निर्धन-सेवा या धनवानोंकी सेवा, स्त्री जातिकी सेवा, नाना प्रकारकी देव-सेवा—ये सब संसारमें श्रेष्ठगुण सम्पत् या "प्रातः स्मरणीय कार्य" के नाम से प्रचारित होने पर भी वास्तवमें इन्द्रियतोषण या भोग ही है। जगतका यह दुर्भाग्य है कि जीवोंके निकट ऐसे-ऐसे इन्द्रिय-सुखोंकी प्राप्तिमें सहायक वक्ता, प्रचारक या शास्त्रकारगण ही "महाजन" कहे जाते हैं।

प्रकृतिको ही सब कुछ माननेवाले, बाह्य जगतका दर्शन करनेवाले, इन्द्रियोंके दास भवरोगग्रस्त जीव अपनी विकृत बुद्धि द्वारा सच्चे महाजनको समझ या जान नहीं सकते, कारण उनकी बुद्धि सर्वदा भ्रमादि चार दोषोंसे दूषित होती है।

अनादि कालसे रक्त, माँस या शुक्रादि सप्तधातुविशिष्ट शरीरमें आत्मबुद्धि और आसक्तिवाले व्यक्ति गड्डलिका प्रवाहकी भाँति ऐन्द्रिक ज्ञानके श्रोतमें बहे जा रहे हैं। ऐसे प्राकृत-सहजिया-सम्प्रदायके कुछ लोग श्रीमाधवेन्द्रपुरीपाद जैसे महाजनोंकी वाणियोंका

अनादर करते हैं। इस प्रकार 'महाजन' चरणोंमें अपराध संचय कर महाजनको 'अनुदार' अर्थात् संकुचित वृत्तिवाले व्यक्ति कहते हैं और अपना अहित स्वयं ही वरण करते हैं। बहुतसे लोग अपनी इन्द्रिय-तर्पणमूला धारणाके अनुसार कल्पित महाजनकी सृष्टि करते हैं तथा व्यभिचार, लम्पटता, लाभ, पूजा, प्रतिष्ठा, कपटता, जीव-हिंसा आदिके असंख्य अपराधजनक कार्योंमें लिप्त होते जा रहे हैं।

वास्तवमें जब तक यथार्थ महाजन कौन हैं—यह ठीक ठीक निर्णय न हो जाय, तब तक किसी भी चेष्टा द्वारा कोई सुफल उत्पन्न नहीं हो सकता। श्रीचैतन्यचरितामृतमें महाजनके स्वरूपका निर्णय किया गया है—

परम कारण 'ईश्वर' केह नाहि माने।
स्व स्व मत स्थापे पर मतेर खण्डने।।
ताते छय दर्शन हैते 'तत्त्व' नाहि जानि।
'महाजन' जेई कहे सेई 'सत्य' मानि।।
श्रीकृष्णचैतन्य-वाणी अमृतेर धार।
तिंहों जे कहये वस्तु सेई तत्त्वसार।।

(मध्य २५/५४-५७)

अर्थात् सांख्य-पातंजलादि दर्शन वास्तवमें ईश्वरको सब कारणोंके कारण नहीं मानते। सच बात तो यह है कि वे सभी 'प्रछन्न' या 'अप्रछन्न' नास्तिक हैं अर्थात् उनमेंसे कोई भी आस्तिक नहीं है। उन्होंने अपनी सारी शक्ति तर्क-युक्ति द्वारा स्वमत स्थापन और परमत खण्डनमें ही लगा दी है। इसलिए इन दर्शन शास्त्रोंके उपदेशक जगतमें 'महाजन' कहलाने पर भी 'महाजन' नहीं हैं, बल्कि अत्यन्त संकुचित या अनुदार हैं। इस सत्य तथ्यको सुनकर तथाकथित महाजनोंके भक्त झुँझला उठते हैं और अपने प्राकृत इन्द्रियज्ञानको ही सार समझकर श्रीमन्महाप्रभु और शुद्ध भक्तोंके चरणोंमें अपराध संचय करते हैं। वे कहते हैं—यह बात ठीक नहीं है। श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु या श्रीमाधवेन्द्रपुरी भी पूर्वोक्त व्यक्तियोंकी तरह ही एक महाजन मात्र हैं। अतएव यदि प्राकृत सहज धर्मके चिन्ता-श्रोतमें निमग्न वे चिज्जड़-समन्वयवादी इस प्रकारका सिद्धान्त करते हैं, तो इसमें सन्देह और आश्चर्य ही क्या है? परन्तु जिनका अप्राकृत स्वरूप धर्म जाग्रत हुआ है, वे ही चैतन्य-धर्मके आलोकमें उद्भासित होकर प्रत्येक जीवका स्वरूप दर्शन करनेमें समर्थ हैं। महाभागवत परमहंसोंका दर्शन अधोक्षज-दर्शन या सुदर्शन होता है। अतएव ये निष्किञ्चन महाभागवत ही एकमात्र यथार्थ महाजन हैं। श्रील माधवेन्द्रपुरी गोस्वामी निष्किञ्चन महाजन हैं। उनके आचरणमें किसी प्रकारकी मत्सरता या लोक-वंचना नहीं है। उन्होंने स्वयं जिस कृष्ण-भक्तिरूप परम धर्मका आचरण किया है, उसीका प्रचार किया है। दैव-वर्णाश्रम धर्मको आदर्श मानकर उनका अनुसरण करनेसे मंगलकारी जीवोंका निश्चय ही मंगल होगा। श्रीमन्महाप्रभुने दैव-वर्णाश्रम-धर्म पालनका आदर्श स्वयं दिखलाकर शिक्षा दी है।

श्रीमद्भागवतमें (६/३/१९-२१) बारह महाजनोंके नाम लिखे गये हैं। कलियुगमें भगवत्-भक्ति प्रचारक शुद्ध वैष्णव सम्प्रदायके चार आचार्य महाजन हैं। उनके अतिरिक्त हमारे सम्प्रदायके गौड़ीयेश्वर श्रीदामोदरस्वरूप मूल महाजन हैं। उनके अभिन्न कलेवर परमतत्त्व-श्रीगौरसुन्दरके प्रियतम श्रीरूप-सनातन,

या श्रीरूपानुग साधुजन सभी महाजन हैं। चण्डीदास, विद्यापति, जयदेव—ये सभी महाजन हैं। किन्तु जो इन महात्माओंमें भोग बुद्धि रखते हैं अर्थात् इनकी सेवा करनेकी बदले इनको अपनी-अपनी तुच्छ स्वार्थसिद्धिका यंत्र बनाकर लोगोंको ठगते हैं, खुदाके ऊपर भी खुदागिरी कहते हैं अर्थात् महाजनोंके भी महाजन बननेका दम भरते हैं, उन दुर्भागे व्यक्तियोंसे यथार्थ महाजन कोसों दूर रहते हैं। इन्द्रिय सुखभोग या मायाका दासत्व ही उनके पास कल्पित महाजनकी मूर्त्तिमें उपस्थित होता है और उनके साथ छलना कर उनकी इन्द्रियोंको प्रकृत सत्य पथसे हटाकर दूसरी ओर चला देता है। इसलिए शुद्ध भगवत्-भक्तोंकी चेष्टा कभी भी उनकी प्राकृत-बुद्धिकी धारणाका विषय नहीं हो सकती। ❑

ऊधो! इतनी कहियो जाइ

—मधु खण्डेलवाल

गोपियोंके विरहमें श्रीकृष्णकी अन्तर्व्यथा ऐसी घनीभूत हुई कि अपने अन्तरंग सहचर उद्धवजीके सम्मुख उनकी विरह-ज्वाला अभिव्यक्त होने लगी। अप्रकट रूपमें यद्यपि वे सदैव वृन्दावन (गोष्ठ) में विराजमान रहते हैं, फिर भी विप्रलम्भ रसानुभूतिके लिए इस लीलाका प्राकट्य हुआ। जल और उसकी तरंग जैसे सदा सर्वदा अभिन्न हैं, वैसे ही आनन्द-समुद्रस्वरूप श्रीकृष्ण एवं उनकी तरंगरूपा गोपांगनाएँ भी सर्वथा अभिन्न हैं। जलकी शीतलता-मधुरता जैसे जलमें अन्तर्लीन है, वैसे ही वृषभानुनन्दिनी नित्यनिकुञ्जेश्वरी राधारानी आनन्द-सुधा-सिंधु श्रीकृष्णके माधुर्य-सार-सर्वस्व ही हैं। विप्रलम्भकी प्रतीति तो लीला-विशेषके विकासका हेतु है।

यदुवंशियोंका, धर्मका, सभ्यता-संस्कृतिका हित समझकर कृष्ण अभिलाषा रखते हुए भी प्रकटरूपमें स्वयं ब्रज नहीं जाते, इसलिए—

वृष्णीनां प्रवरो मंत्री कृष्णस्य दयितः सखा।
शिष्यो वृहस्पतेः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः।।

वृष्णिवंशियोंके प्रधान पुरुष साक्षात् वृहस्पतिके शिष्य, परम बुद्धिसत्तम अपने स्नेहास्पद एवं निज कृपापात्र, विभिन्न प्रकारके उत्सवोंके अधिष्ठाता, अनेक विद्याविशारद अपने चचेरे भाई (वसुदेवके छोटे भाई देवभागके पुत्र), प्रेममें निमग्न भक्त, अनन्य निष्ठ उद्धवसे श्रीकृष्ण कहने लगे—"हे उद्धव! ये गोपियाँ मेरी परमान्तरंगा हैं, मन-मनस्का, मद्गतप्राणा, मयि धृतासवा हैं, उनसे जाकर मेरा परमान्तरंग सन्देश कहना।"

कृष्ण उद्धवको अपने भवनकी सर्वोच्च अट्टालिका पर आरोहण कराके अनेक प्रकारके उपवनोंसे शोभित मथुरा नगरीको दिखाने लगे। इस समय विरहोद्भूत दीर्घनिःश्वासके उल्लासोंसे उनके गलेकी स्थूल कमलमाला चलायमान होने लगी, नयन-वारिके प्रवाहोंसे मार्ग-प्रणालियाँ परिपूरित होकर बहने लगीं, हृदय निस्तब्ध हो गया, वे चित्रलिखितसे हो गए। खड़े न रह सके, भवनके शिखरके मणि-जटित चबूतरे पर बैठ गए। वाणी प्रणयलहरियोंसे रुद्ध होकर गदगद हो गई। येन-केन-प्रकारेण कुछ-कुछ कहने लगे—"हे

मित्र! तुम ही मेरे अभिमतकी सिद्धि कर सकते हो। देखो, जबसे गान्दिनीनन्दन अक्रूर मुझे यहाँ ले आये हैं तब से व्रजवधूटियाँ विरहानलमें तप्त हो रही हैं और मेरी प्राणप्रियतमा अपनी सखियोंके युक्तिपूर्ण गाढ़ आश्वासनोंसे जैसे तैसे प्राणोंको भार समझ धारण कर रही हैं। हे मंत्रिशिरोमणि, तुम गोपराज श्रीनन्दरायजीकी नगरीमें जाओ, यह नगरी लतापरिवेष्टित वृक्षोंसे युक्त है, नन्दीश्वर पर्वतकी रत्नमय मेखलारूप है। वहीं वह परमव्याकुला उस राधासे मेरी वार्त्ता करो। अपनी गम्भीर ध्वनिसे उसे जीवित कर उसे आह्लादित करो। यद्यपि मेरी मूर्त्तियाँ बहुत जगह विद्यमान हैं, परन्तु उद्धव, मैं शपथ ग्रहण लेकर कहता हूँ, मुझे ब्रजसे अधिक कुछ प्रिय नहीं है, यहाँ जन्म लेकर मैं धन्य हुआ हूँ।

"हे सखे, तुमसे अधिक क्या कहूँ, वियोगाग्निकी ज्वालाओंसे ये वृक्ष सूख गए होते यदि गोपियोंके नेत्रोंसे विगलित अश्रुकी धाराएँ उनको सिंचित न करतीं। उद्धव, ये गोपियाँ हैं न, सुमेरु सम कष्ट-विपत्तियोसे भी इनका हृदय व्यथित नहीं होता, परन्तु मेरे लेशमात्र दुःखको देखकर अपने हृदयमें सुमेरुके बराबर दुःखका अनुभव करती हैं।

"भैया उद्धव, उस ब्रजके प्रति जानेका तुम्हें सुगम रास्ता बताता हूँ। पहले तुम नगरके मध्यमें मनुष्योंके दुःख समूहके केवट गोकर्ण नामक गौरीपति महादेवका अनुसरण करना, उन्हींके पास सबकी मनोकामनाओंको पूर्ण करनेवाला यमुना-सरस्वतीका संगम विद्यमान है। यहीं पर गोपियोंने राधाजीसे कहा था—"हे कृशांगि! मधुर-मुरली-वादक श्रीकृष्ण तुम्हारे दृष्टिपथमें आ रहे हैं, तुम परम पुण्यवती हो। उसके बाद तुम परमानन्दपूर्ण प्रदेशके समीप अम्बिकावनका मार्ग पकड़ना। यहाँ पर ही कालियह्रदसे आए हुए सुदर्शन विद्याधरको मैंने सर्पयोनिसे मुक्त किया था। हे धीर! जब तुम रथमें जाओगे तब कुवलयापीड़ नामक हाथीके दाँतोंके आघातके कारण हुई ऊँची-नीची यमुनाकी तीर भूमिको छोड़ देना। दाहिनी ओरके उत्तर भागमें तीर्थराज अक्रूरघाट देखकर ही आगे बढ़ना, यह स्थान पक्षियोंके कूजनसे मनोहर है और नवीन कुसुमोंके समूहसे शोभायमान है। अक्रूरजीने यहाँ मेरे अपूर्व वैभवका अवलोकन किया था।

"आगे यज्ञपरायण ब्राह्मणगण मेरी अवहेलनाके कारण तुम्हें प्रियकर नहीं लगेंगे। फिर भी विनम्र भावसे तुम उनके गृह-द्वारके मार्गसे निकलना, क्योंकि ब्राह्मणीगण अहर्निश मेरे चरित्रोंका गान करती रहती हैं। पुनः उत्तरकोटि नामक स्थान पर शीघ्र पहुँचना। विकसित वृक्षोंके समूहसे युक्त उस स्थान पर लज्जावती शुद्धस्वभावा उद्यान-पालिकाने अपनी प्रणयस्निग्ध दृष्टि एवं मुस्कान मुझे अर्पित की थी। इसके बाद पुष्पितकाननमय छटीकरा जाना। यहीं पर क्रीड़ासक्त हो मैंने श्रीदामाको गरुड़ बनाकर बारह दिनों तक कन्धे पर वास किया था।

"उद्धव, जब मैं रथसे मथुरा आ रहा था तब इसी स्थानपर उन ग्रामबालाओंकी प्रगल्भ एवं उल्लासपूर्ण स्पर्द्धाका केन्द्र बना था। वे परस्पर कह रही थीं—हे मुग्धे! देख, यह युवा श्याम मुझे ही देख रहा है, तुझे तो कभी नहीं।

"दाहिनी ओर कालियह्रदका जो उच्च-प्रदेश है, उसे छोड़ देना। जो निर्मल सरोवरोंसे युक्त है, उसी मार्गको ग्रहण करके मृगोंको प्रसन्न करनेवाले मघेरा प्रदेशमें जाना। उद्धव, इसी स्थानपर प्रातःकाल मैं क्रीड़ा-विहारके लिए जाता था, मेरी वंशीका संगीत सुनकर मृग रात्रिके विरह-तापको भूल प्रसन्न हो जाते थे। यहीं पर ब्रजरमणियोंकी विलासरूपी सुगन्धको विकीर्ण करनेवाली, लक्ष्य पर निविष्ट बाणावालि जैसी प्रखर अपांग भंगिमाएँ मुझपर बरसा करती थीं। उद्धव, यहीं उन युवतियोंने अपनी कुटिल दृष्टि-भंगिमाके विलाससे राधाके प्रेमको बढ़ानेवाले ये माधव रथ पर असीम होकर मथुरा जा रहे हैं—यह कहकर राधिकाके साथ मनोहर लीलाओंका स्मरण कराके मुझे चित्रलिखित सा बना दिया था।

"इसके बाद बड़ोथा ग्राम आएगा। यहाँ नागेन्द्रभोग पर राधाने मेरे चरण-कमलोंका संवाहन करके मुझे उत्कर्ष रूपसे निद्रा-विहार कराया था। यहाँकी सुगन्ध क्षीरसागरको चुनौती देती है। यहीं मैया यशोदाने मेरे हाथोंको बाँध दिया था। यहाँ प्रचुर गोसृष्टि भी विलास करती है। तत्पश्चात् साहार (शाल्मल) विभागका अवलोकन करना। वहाँ की प्रत्येक गलीमें बालक विक्रमशाली गोवर्द्धन-धाारणादि कार्योंका अनुकरण कर रहे होंगे। महाराज उपनन्द यहीं रहते हैं। मथुरा आते समय मैंने यहीं पर माखन खाया था। उद्धव, तुम फिर रहेरा जाना। ब्रजके इस परिसरमें गोपियोंका शृंगार—सम्बन्धी मनोज्ञ विलास हुआ था। यहाँ पर ही संध्याकालमें अपनी मुरली-वादनरूपी दूतीका उपयोग करता था, जिससे गोपियाँ अर्धसुसज्जित दशामें ही दौड़ी आती थीं। यहाँ से जब तुम पीसाई प्रदेशमें जाओगे न उद्धव, तब तुम्हारा सारा श्रम दूर हो जायेगा। यहाँ प्रफुल्लित वृक्षसमूह तो हैं ही, साथ ही यही वह स्थान है, जहाँ मैं गोपियोंके दहीका बार-बार हरण करता था। इसके दक्षिणमें वृजवारी है—यहीं रथपर मुझे बैठे देख दुःखाधिक्यके कारण गोपियाँ उन्मादित-सी होकर मूर्च्छित होकर गिर गई थीं। इसके बाद सौयात्रिक स्थान है, जिसकी तटभूमि अक्रूरके मुझ सुहृदको देखनेके आनन्दसे उत्पन्न आँसुओंसे विकसित होनेवाले कदम्बोंसे परिवेष्टित है। यहीं पर गोवत्सोंकी अत्यन्त चञ्चल-चौकरी शोभायमान होती है। इसके बाद वह श्वेत गण्डशैल आएगा, जो मेरा पीठासन स्वरूप है। यहीं गोष्ठ समाजके पीछे गोपांगनाओंके नयन-कटाक्षके सम्पर्कसे मोट्टायित नामक भावका विलास होता था।

उद्धव, जब मैं मथुरा आ रहा था, तब उन भयातुर गोपियोंका महान विलाप चारों ओर परिव्याप्त हो गया था। वे राधाको सान्त्वना दे रही थीं कि तुम्हारे ही शोकके कारण श्रीकृष्णकी आँखें अश्रुयुक्त हैं, धूलि-पातके कारण नहीं। हाय! गोकुलमें किसीने कोई बाधा उपस्थित क्यों नहीं की? पापी घोड़ोंके पैर क्यों नहीं टूटे, रथ थोड़ा भी ध्वस्त क्यों नहीं हुआ, नारियोंके वधसे हे अक्रूर यदुवंशियोंके उत्तम कुलको कलंकित मत करो। और क्या क्या कहूँ उद्धव?

"ओह! अब तुम 'पावन' सरोवर जाना, जो नन्दीश्वरके समीप विराजमान है, यहीं वह विहारका स्थान है, जहाँ गोपियाँ निरन्तर पानी

भरनेके बहानेसे आती थी। उद्धव, इसी स्थल पर क्रंदनकी परम व्याप्ति हो रही होगी। पथिक भी जब ब्रजके सीमा प्रदेशमें पहुँचते हैं तब आँसू बहाती हुई गोपांगनाओंके अत्यन्त विस्तृत तथा करुणा परिभावित विलापोंको सुन हाथोंसे कान बन्द कर दूरसे ही चले जाते हैं।

"जब तुम्हारे रथको नन्दीश्वर पर्वतके समीप आया देखेंगी तब राधा और उनकी सखियाँ वहाँ दौड़ी आएँगी। तुम सखियोंके समीप ही उस रथको स्थापित करना। हे प्राज्ञ! वृन्दावनके जिन तरुवरोंने अपने नवीन किसलयोंसे गोपवधूटियोंके वपुओंको अलंकृत कर मुझे अनुरागयुक्त किया था, उन वृक्षोंको मेरा शतशः आशीर्वाद कहना। इसके पश्चात् उन गायोंके पास जाना जो मेरे वंशी स्वरकी मधुरिमासे मतवाली हो गई थीं, अपने वत्सोंसे भी आसक्ति नहीं रखती थीं, उनके समूहमें जाकर उच्च स्वरसे मेरे नामका उच्चारण करना। बादमें धीरेसे उनकी कुशलता पूछना। हे विज्ञ! ब्रह्माके द्वारा उनके वत्स चुरा लिए जाने पर मैंने ही वत्स बनकर इन प्रेमवती गायोंका मधुर क्षीर पिया था। उन विरहानलसे जर्जर गायोंके चरणोंमें मेरा बार-बार प्रणाम कहना। इसके बाद तुम श्रीदाम आदि मेरे सहचरोंके पास जाना। जब कुसुमित वनको देखनेके लिए मैं बहुत दूर निकल जाता था तब 'मैं पहले स्पर्श करुँगा' इस प्रकार मुझे छूनेके लिए वे मेरे सखागण स्पर्द्धा किया करते थे।

"हे धीर! रंगभूमिमें नृशंस कंसको मारकर काकूक्तिपूर्ण अपनी शपथ लेकर मैंने ब्रजराज अपने पिता नन्दको लौटाया था। तुम नम्र बनकर मेरा नाम लेकर उनके चरण-युगलका स्पर्श करके वन्दना करना। कहना—कृष्ण आपके चरणोंमें नमस्कार करता है।

"दुष्ट कंसराजको अभिशाप देनेवाली, चिन्तासे विषण्ण मुखवाली, माँ यशोदाको साष्टंग प्रणाम करते हुए कहना—कृष्ण आपको प्रणाम कर रहे हैं, मैया।

"अब तुम मेरी गोपियोंके पास जाना जो मेरे ही गुणोंका संकीर्तन करती रहती हैं। अत्यन्त स्वेदपूर्ण तथा निश्वासपूर्ण 'हा कृष्ण' कहकर विलाप करती हैं। आँसुओंसे उनके वस्त्र हमेशा गीले रहते हैं। मथुराके मार्गकी ओर टकटकी लगाये देखती रहती हैं, मुख-कमल सूखे रहते हैं। गोपीरूपी सरसियोंके प्राणरूपी कछुए आशारूपी मृत्तिकामें छिपकर रहते हैं। उनके पास आत्मसंयत होकर, हाथ जोड़कर जाना, क्योंकि हे गुणनिधे! तुम मुझ अपराधीके दूत बनकर जा रहे हो, कहीं वे विकृत हुईं, तो तुम्हें शाप न दे बैठें। उनसे कहना, जिन कृष्णको अक्रूर ब्रजसे मथुरा ले गये हैं, मैं उन्हींका प्रणय-सचिव दूत बनकर तुम्हारे समीप आया हूँ। मेरा नाम उद्धव है, व्यथितचित्त विरह-ताप-जनित दीर्घ-निश्वासोंसे मलिन तुम्हारे कान्त श्रीकृष्णने कुछ सुन्दर संदेश प्रेषित किया है।

"तुम्हारा अतिशय मंगल तो है न! हे गोपसुन्दरियो, तुम अब राक्षसोंसे भयभीत न होना, जरा कहो तो उन निकुंजोंकी रसमयी सेवाओंका क्या तुम्हें स्मरण होता है? तुम्हारे भ्रूविलास, तुम्हारा हस्त-अवलम्बन, हाय मेरे हृदयको मथ डालते हैं। हे विशाखे, एक बार

वसन गाँठ खींचते समय तुम्हारी सासको देखकर मैंने कहा था—'अपने वस्त्रोंमें छिपाई हुई गुंजामाला वापिस करो' और फिर मैं लज्जित हो गया था। ललिते! तुम उन प्रसंगोंको अपनी सखियाँसे कहकर अपने विरहजनित संतापका परिहार कर तो लेती हो, यहाँ मैं अपने दुःख सन्तापको किसके सामने प्रकट करूँ। तुम्हारे प्रेमपूर्ण मन्द स्मित-से तुम्हारे मधुर आलाप मुझे अति उत्कण्ठित कर रहे हैं। हे पद्मे! जब मैं लतागृहमें कपटनिद्रामें लेटा था, तुमने मेरी वंशी चुरानेका यत्न किया था। तब मैंने तुम्हारे साथ जो आचरण किए थे, वे मेरे हृदयको पीस डाल रहे हैं। हे भद्रे! प्रत्येक रात्रिमें नीवन आकर्षित सेवाओंसे तुमने मुझे उल्लसित किया था। देखो मेरी पीड़ा, यहाँ तो मेरे हृदयके भावोंको कोई जानता भी नहीं है। हे इन्दुलेखे, कैसी आन्तरिक पीड़ा है, तुम प्राणोंको कैसे धारणकर रही हो। हे शैव्ये, किसी भी प्रकारसे आँखें बन्द करके इस सन्तापको सह लेना। मैं तुम्हारे चंचल भ्रूविलासोंकी सेवामें अवश्य ही उपस्थित होऊँगा।

"इसके बाद देखो, वहाँ किसलयके बने पर्यंकपर सोई हुई, अश्रुप्लुत नेत्रोंवाली, सखियोंसे सेवित, दुर्बल, कण्ठमें स्पन्दन है कि नहीं, ऐसी वरांगी मेरी राधिका तुम्हें दिखाई देगी। तुम मेरी इस मालाको ग्रहण करो जो मेरे वक्षस्थलके संसर्गसे सुरभित है, नवमल्लिकाके फूलोंसे गूँथी हुई है। पाँच वर्णोंवाली है। इसे उस कमलनयनीको देना, क्योंकि इसीकी सुगन्ध उसे होशमें ला सकती है। होश आनेपर मालाके आमोदसे पुलकवपु उस राधाके पास जाकर विनयपूर्वक अवनत होकर माला हाथमें लेकर पवित्र दूतकर्मको निवेदित करते हुए मेरे संदेश कहनेका उपक्रम करना।

"हे धीरे! जो तुम्हें अपने सभी गुरुजनोंकी अपेक्षा अधिक पूज्य हैं और उसी प्रकार तुम भी जिसकी पूज्यतमा हो, जो तुम्हें अपने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है तथा वे भी तुम्हें अपने प्राणोंसे अधिक प्यार करते हैं, हे देवि! विरह-ज्वालामें जलते हुए उन्हीं कृष्णने अपने कातर मनमें तुम्हें धारण करके लालसासे अत्यन्त चंचल होकर बार-बार यह संदेश भेजा है। हे चन्द्रवदने! जो प्रत्येक रात्रिमें तुम्हारा और मेरा मिलन होता है, उसे तुम स्वप्न न मानना, तुम्हारी विरहवेदनासे रात्रिमें नींद तक नहीं आती, जिससे कि स्वप्नमें ही तुम्हारा और मेरा मिलन हो सके। हे रक्तोष्ठि! प्रणयके वेगके कारण आन्दोलित चित्तवाला, यह नन्दनन्दन तुमसे कुछ प्रार्थना करता है। पर्वत-कुञ्जमें जो यह वासन्तीलताकी कुञ्जवीथि है, जिसने हमारे प्रेमके उद्दाम विलासका साक्षात्कार किया है, उसे तुम किसी प्रकार भी न देखना, नहीं तो तुम्हें बहुत पीड़ा होगी। लुप्तसंज्ञा होकर तुम क्रीड़ाकुञ्जमें लेटे रहती हो, मैं आनन्द धाराओंकी तरंगोंसे एकाएक उस निर्जन स्थानको उल्लसित करूँगा। हे सहचरि! प्रेमकी अतिशयताके कारण मेरे भी अविरल आँसू बहते हैं---उद्धव, बस बस, हे दीर्घदर्शी महाप्राज्ञ! मेरे इन गारिमामय संदेशोंसे उन गोपांगनाओंको, उन कमलाक्षिनियोंको प्रसन्न करनेके लिए गोकुलमें कुछ काल निवास करना। हे सखे, इस ब्रजभूमिकी यात्रासे केवल मेरा ही

स्वार्थसिद्ध होगा, ऐसा नहीं, तुम्हारी भी अत्यन्त स्वार्थसिद्धि होगी।

'कुंजगतिं गामिता न विदामः
कश्मलेन कबरं वसनं वा।'

अर्थात् 'कु' पृथ्वीवाचक है, अतः कुंजपृथ्वीसे उत्पन्न वृक्षादि। जो मेरे प्रेमोन्मादमें 'कुंज' गतिको प्राप्त हो गयी हैं, वृक्षवत् स्तब्ध हो गयी हैं, जिनको प्रेमोन्माद-जन्य-मूर्च्छाके कारण अपने वस्त्रोंका भी ज्ञान नहीं रह गया है, उनको देखकर तुम धन्य-धन्य हो जाओगे। उन वल्लभियोंसे उद्धव तुम्हें प्रेमकी शिक्षा मिलेगी।" अधीर, व्यथित, विह्वल श्रीकृष्णने ऐसा कहकर उनको अपने ही वस्त्र पीताम्बर पहना दिए, अपनी ही माला उनको दे दी, उनकी आकृति तो वैसे ही श्रीकृष्णके समान है, नेत्र भी उन्हींके समान कमलदलतुल्य हैं। कानोंमें मणि-जड़ित-कुण्डल झलक रहे हैं। ये सभी वस्त्र और अलंकार उन्हें प्रसाद रूपमें मिले हैं। पीताम्बर तो तपाये हुए सोनेकी तरह देदीप्यमान है। व्रजवासियोंको अपने वचनोंमें आकर्षण और परम विश्वास दिलानेके लिए कृष्णने उद्धवको अपना ही रथ दे दिया, जिस पर आरूढ़ होकर उद्धवजी गोधूलि बेलामें, वनोंमें घास चरकर गायोंके लौटनेकी बेलामें, सूर्यके अस्ताचलगामी होने पर संध्याकालमें नन्दबाबाके ब्रजधाममें पहुँचे, उन वियोगाधियोंका तीव्र सन्ताप दूर करनेके लिए।❑

श्रीगौराङ्ग-सुधा

—श्रीमान् परमेश्वरी ब्रह्मचारी

श्रीगौरसुन्दरका नगर भ्रमण एवं भक्तोंकी सेवा ग्रहण

जब छात्रमण्डलीसे घिरे हुए श्रीगौरसुन्दर सूत्रोंकी व्याख्या करते थे, तो ऐसा प्रतीत होता था, जैसे वद्रिकाश्रममें नारायणको सनक-सनन्दन सनातन, सनत्कुमार आदि घेरकर बैठे हुए हैं तथा भगवान नारायण उन्हें उपदेश प्रदान कर रहे हैं। पढ़ानेके पश्चात् वे अपने शिष्योंके साथ गंगास्नानके लिए जाते थे। कुछ समय तक जलक्रीड़ा करनेके पश्चात् अपने घरमें आकर भगवानकी पूजा एवं तुलसीको जल प्रदानकर "हरि-हरि" बोलते हुए भोजनके लिए बैठ जाते। लक्ष्मीदेवी आनन्दपूर्वक उन्हें भोजन परोसती तथा श्रीगौरसुन्दर भी प्रसन्नतापूर्वक उसे ग्रहण करते। शचीमाता दूरसे अपने पुत्र एवं पुत्रवधुकी अपूर्व जोड़ीका दर्शनकर फूली नहीं समाती थीं। भोजन करनेके पश्चात् श्रीगौरसुन्दर ताम्बूल (पान) चबाते हुए शयनकक्षमें जाकर शयन करते थे तथा लक्ष्मी उनकी चरणोंकी सेवा करती थीं। कुछ समय विश्रामके पश्चात् प्रभु हाथमें पुस्तक लेकर चल पड़ते तथा नगरमें सर्वत्र भ्रमण करते हुए अनेक प्रकारकी लीलाएँ करते तथा सभी लोगोंसे हास-परिहासपूर्वक उन्हें आनन्द प्रदान करते थे। यद्यपि भगवानकी मायासे विमोहित होनेके कारण कोई समझ नहीं पाता था कि ये स्वयं भगवान हैं, तथापि सभी लोग उनका अत्यधिक सम्मान करते थे। उनके प्रति

सभीकी एक स्वाभाविक प्रीति थी। एक दिन गौरसुन्दर नगरमें भ्रमण करते हुए एक ताँती (जो धागेसे वस्त्र तैयार करता है) के घरपर पहुँचे। अपने द्वारपर प्रभुको आया हुआ देखकर ताँतीने बहुत प्रसन्न होकर प्रभुको प्रणाम किया। प्रभु बोले—"तुम मुझे एक अच्छा सा वस्त्र लाकर दो।"

यह सुनकर वह ताँती एक सुन्दर एवं कीमती वस्त्र ले आया। वस्त्र हाथमें लेकर प्रभुने पूछा—"अरे ताँती! इस वस्त्रकी कीमत क्या लोगे?"

ताँती—"प्रभो! आप स्वेच्छापूर्वक जितना देंगे, मैं प्रसन्नतापूर्वक वही ले लूँगा।"

श्रीगौरसुन्दर—"परन्तु मेरे पास अभी पैसे नहीं हैं।"

ताँती—"प्रभो! आप कृपाकर वस्त्र ले जाइए, पैसेकी चिन्ता न कीजिए। जब आपके पास हों तभी दे देंगे।"

यह सुनकर गौरसुन्दर बहुत प्रसन्न हो गये तथा उसपर कृपाकर जहाँ ग्वाले रहते थे, वहाँ पहुँच गये। एक ब्राह्मणकी भाँति हास-परिहास करते हुए बोले—"अरे बेटा! आज मैं तुम्हारे घरपर महादान लेने आया हूँ। अतः मुझे दही, दूध आदि दान दो।"

यह श्रवणकर आनन्दपूर्वक गोपोंने प्रभुको एक सुन्दर आसन प्रदान किया। गोपलोग भी प्रभुसे 'मामा मामा' कहते हुए हास-परिहास करने लगे। कोई बोला—"मामा चलो आज हमारे घरपर भात खाओ।" कोई गोप प्रभुको कन्धेपर चढ़ाकर अपने घर ले जाने लगा। इस प्रकार सभी गोपोंने प्रभुको दूध, दही, घी, मक्खन इत्यादि लाकर दिया। उन सभीपर कृपाकर वे एक बनियेकी दुकारपर पहुँच गये। उसने श्रद्धापूर्वक प्रभुको प्रणाम किया। प्रभु बोले—"अरे भाई! मुझे एक अच्छा सा गन्ध दो।"

यह सुनकर वह एक दिव्य गन्ध ले आया। प्रभुने उससे पूछा—"इसका क्या मूल्य है?" यह सुनकर बनिया बोला—"हे प्रभो! आप यह कैसी बातें करते हैं? क्या आपसे मूल्य लेना उचित है? मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप आज इस सुगन्धको अपने घर ले जाकर अपने शरीरपर धारण करें, यदि कल तक धोनेके बाद भी आपके शरीर एवं वस्त्रोंमें सुगन्ध रहे तो अपनी इच्छानुसार कुछ भी दे दीजिएगा।" यह कहकर उसने स्वयं अपने हाथोंसे प्रभुके श्रीअंगोंपर उस दिव्य गन्धको लगाया। प्रभुने भी संतुष्ट होकर उसपर कृपा की।

इसके बाद प्रभु एक मालीके घर पहुँचे। उनके अद्भुत स्वरूपका दर्शनकर मालीने प्रसन्न होकर आदरपूर्वक उन्हें बैठनेके लिए आसन प्रदान किया तथा उन्हें प्रणाम किया।

प्रभु बोले—"मुझे एक सुन्दर-सी माला दो, परन्तु मेरे पास देनेके लिए रूपये नहीं हैं।"

माली बोला—"आप कृपाकर इसे ग्रहण कीजिए। मुझे कुछ देनेकी आवश्यकता नहीं है।"

ऐसा कहकर उसने स्वयं ही प्रभुके गलेमें वह माला पहना दी। श्रीगौरसुन्दर हँसते-हँसते उसपर कृपाकर वहाँसे चल पड़े तथा एक पानवालेकी दुकानपर पहुँच गये। उसने प्रभुके मदनमोहन रूपका दर्शनकर उनकी चरणधूलि अपने मस्तकपर धारण की तथा उन्हें बैठनेके

लिए एक उत्तम आसन प्रदान किया। प्रभुके बैठनेके पश्चात् वह अत्यन्त विनयपूर्वक बोला—"हे प्रभो! आज तो मेरा परम सौभाग्य है कि मेरे जैसे तुच्छ व्यक्तिके घर आप स्वयं चले आए। अब आप कृपापूर्वक आदेश प्रदान कीजिए कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ?"

ऐसा कहते हुए उसने स्वयं ही आनन्दपूर्वक एक पान तैयारकर प्रभुको निवेदन किया। पान हाथमें लेकर प्रभु हँसते हुए बोले—"अरे भैया! तुम एक साधारण-सा पान लगा देते, इसमें कर्पूर, इलायची इत्यादि इतनी कीमती चीजें डालनेकी कोई आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि मेरे पास देनेके लिए पैसे नहीं हैं।"

ताम्बुली—"मैं क्या करूँ? मेरे मनकी ऐसी ही इच्छा हुई। इसलिए मैंने लगा दिया।"

उसकी बात सुनकर प्रभु प्रसन्न हो गये तथा पान चबाने लगे। इसके अतिरिक्त उस ताम्बुलीने अनेक दिव्य पानके पत्ते, कर्पूर, इलायची इत्यादि जितनी भी कीमती-से-कीमती वस्तुएँ पानमें प्रयोग की जाती हैं, उन सबको एक कागजमें बाँधकर श्रद्धापूर्वक बिना मूल्यके ही प्रभुको अर्पण किया। प्रभु उसपर कृपा दृष्टिकर हँसते हुए वहाँसे चल पड़े तथा नगरमें सर्वत्र विचरण करने लगे। आज नवद्वीप नगरीकी शोभा उसी प्रकार हो रही थी, जिस प्रकार मथुरापुरीमें कृष्ण बलरामके भ्रमण करते समय हो रही थी। वे जिधर भी निकलते उनके दर्शनोंके लिए लोगोंकी भीड़ लग जाती तथा सभीकी इच्छा उनकी सेवा करनेकी होती। इसी प्रकार श्रीगौरसुन्दर जिधर भी निकल जाते उनके कामदेवको भी मोहित करनेवाले अपूर्व रूपका दर्शनकर लोग ठगेसे रह जाते। भ्रमण करते-करते परम कौतुकी स्वतन्त्र इच्छामय भगवान श्रीगौरसुन्दर एक ज्योतिषीके घर पहुँच गये। प्रभुके दिव्य स्वरूपका दर्शनकर सम्भ्रमपूर्वक उसने प्रभुको प्रणाम किया।

प्रभु बोले—"मैंने सुना है कि आप अच्छे ज्योतिषी हैं। अतः हाथ देखकर बताइए कि मैं पिछले जन्ममें कौन था?" 'अच्छा' कहकर ज्योतिषी गोपालमंत्र जपते-जपते मन-ही-मन चिन्ता करने लगा। कुछ क्षण पश्चात् उसने देखा कारागारमें रात्रिके समय माता-पिताके (देवकी-वसुदेवके) सामने शंख, चक्र, गदा, पद्म लिए भगवान खड़े हैं तथा वे दोनों उनकी स्तव-स्तुति कर रहे हैं। अगले ही क्षण देखा कि पिता वसुदेव पुत्रको गोकुल पहुँचा आये। फिर उसने द्विभुजधारी नंग-धड़ंग स्वरूपका दर्शन किया। उस समय उनके श्रीअंगपर एक भी वस्त्र नहीं था। उनकी कमरमें किङ्किणी बँधी हुई थी। उनके एक हाथमें मक्खन था तथा दूसरे हाथसे उसे खा रहे थे। वह ब्राह्मण बाल-गोपालका उपासक था तथा गोपालमंत्रका जप करता था। इसलिए अपने इष्टदेव गोपालका दर्शनकर आश्चर्यचकित हो गया। उसी समय दृश्य बदल गया। अब उसने देखा कि भगवान त्रिभंगरूपमें खड़े होकर मुरली बजा रहे हैं तथा गोपियाँ उन्हें चारों ओरसे घेरकर नाना प्रकारके वाद्य यन्त्रके साथ गाना गा रही हैं। यह अद्भुत दृश्य देखकर वह ज्योतिषी विस्मित होकर बार-बार अपनी आँखें खोलकर देखता तो पाता कि सामने कोई नहीं एकमात्र प्रभु बैठे हैं। इसलिए वह मन-ही-मन अपने इष्टदेव गोपालदेवसे प्रार्थना करने लगा—"हे प्रभो! यह ब्राह्मण कौन है?

कृपाकर आप मुझे सब बताइए।" यह बोलनेके साथ ही उसने धनुष-वाण हाथमें लिये बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन किया। इस प्रकार उसे कभी प्रलयकालीन जलमें अपने दाँतपर पृथ्वीको धारण किये हुए भगवान वराहदेवके दर्शन, कभी उग्ररूपधारी भक्तवत्सल भगवान श्रीनृसिंहके दर्शन, कभी बलि महाराजके दरबारमें एक छोटेसे ब्रह्मचारीके रूपमें भगवान वामनदेवके दर्शन, कभी प्रलयकालीन जलमें मत्स्य अवतारके दर्शन, कभी हल-मूसलधारी बलदेव प्रभु के दर्शन हुए। परन्तु भगवानकी मायासे मोहित होनेके कारण फिर भी वह ब्राह्मण प्रभुको पहचान नहीं पाया। वह तो मन-ही-मन विचार करने लगा कि यह ब्राह्मण अवश्य ही कोई मंत्रविद् है अथवा कोई देवता है और मेरी परीक्षा लेनेके लिए ब्राह्मणके रूपमें आया है। क्योंकि इसके शरीरसे जैसा तेज निकल रहा है, वैसा तेज किसी साधारण व्यक्तिके लिए असम्भव है।

उसे विचारमग्न देखकर श्रीगौरसुन्दरने उससे पूछा—"हे ज्योतिषी, मैं पूर्व जन्ममें कौन था? तुमने अपने विद्याके द्वारा जो देखा उसे स्पष्ट रूपसे कहो।" ज्योतिषी प्रभुसे बोला—"अभी आप जाइए। आज सन्ध्याके समय मैं अच्छी प्रकारसे मंत्र जपकर देखूँगा, तब बताऊँगा।" "बहुत अच्छा" कहकर श्रीगौरसुन्दर हँसते हुए वहाँसे चल पड़े तथा अपने प्रियभक्त श्रीधरके घर पहुँच गये। श्रीगौरसुन्दर श्रीधरसे बहुत प्रीति करते थे। इसलिए किसी-न-किसी बहाने बार-बार उसके घर आते थे तथा उससे नाना प्रकारसे हार-परिहास करते थे। आज भी जब वे उसके घरपर उपस्थित हुए तो उन्हें आया हुआ देखकर श्रीधरने प्रभुको प्रणामकर श्रद्धापूर्वक बैठनेके लिए एक आसन प्रदान किया। बेचारा श्रीधर बहुत ही सरल एवं शान्त स्वभावका था, परन्तु बहुत ही निर्धन था। किसी प्रकारसे अपना जीवन निर्वाह कते हुए सब समय भगवद्भजनमें प्रमत्त रहता था। परन्तु भगवानको तो अपने ऐसे भक्तोंके साथ हास-परिहास करनेमें आनन्द आता है। इसलिए उससे बोले—"अरे श्रीधर! मैं देखता हूँ कि तुम सब समय हरिनाम करते हो, परन्तु तुम्हारे दुःख तो दूर ही नहीं होते। बहुत ही आश्चर्यकी बात है। लक्ष्मीकान्तकी सेवा करनेपर भी तुम्हारे पास पहननेको ढंगके कपड़े एवं खानेको पर्याप्त अन्न भी नहीं है। मैं जानना चाहता हूँ कि इसका क्या कारण है।"

श्रीधर—"हे पण्डित! यह ठीक है कि मेरे पास पर्याप्त अन्न, वस्त्र इत्यादि नहीं हैं, परन्तु मैं भूखा भी तो नहीं रहता हूँ। खानेके लिए कुछ-न-कुछ व्यवस्था तो हो ही जाती है तथा शरीरको ढकनेके लिए छोटे-मोटे कपड़ेके टुकड़े भी मिल ही जाते हैं।"

प्रभु—"श्रीधर यह बात ठीक है कि तुम्हें मिल जाता है। परन्तु देखो तो, तुम्हारे कपड़ेमें दस जगह गाँठ लगी हुई है तथा घरकी हालत देखो, घासकी छत है और वह भी टूटी हुई है। वर्षाका सारा पानी घरके अन्दर आता है। इसके विपरीत जो हरिनाम नहीं करते, चण्डी एवं विषहरि आदिकी पूजा करते हैं, उनके पास न खानेका अभाव है न पहननेको वस्त्रोंका अभाव। वे विशाल एवं सुन्दर भवनोंमें आनन्दसे रहते हैं।"

श्रीधर—“हे ब्राह्मणदेव! आप ठीक ही कह रहे हैं, परन्तु सबका समय तो एक समान ही व्यतीत होता है। राजाके घरमें अपार धन-सम्पत्ति होती है तथा वह उत्तम भोजन एवं उत्तम वस्त्र धारणपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करता है। इसके विपरीत पक्षी वृक्षोंपर रहकर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। परन्तु काल तो दोनोंका एक समान ही होगा अर्थात् काल उपस्थित होनेपर दोनोंको ही इस शरीरको छोड़ना पड़ेगा। इसलिए सभी जीव भगवानकी इच्छासे अपने-अपने कर्मानुसार विषयोंको भोगते हैं।”

प्रभु—“श्रीधर! मैं जानता हूँ कि तुम्हारे पास अपार सम्पत्ति है, जिसे तुम छिप कर भोग करते हो।” मैं कुछ दिनों बाद ही जगतमें सभी लोगोंको तुम्हारी सम्पत्ति दिखाऊँगा तथा सबको बताऊँगा कि जगतमें श्रीधरसे अधिक धनी कोई नहीं हो सकता। तब देखूँगा कि तुम मुझे कैसे ठगते हो?”

श्रीधर (हाथ जोड़कर)—“हे पण्डित! आप कृपापूर्वक चुपचाप अपने घरको जाइए। आप एक ब्राह्मण हैं तथा मेरे घरपर आये हैं। इसलिए आपसे झगड़ा करना मेरे लिए सर्वथा अनुचित है।”

प्रभु—“श्रीधर! इतना सहज नहीं है कि मैं तुम्हें बिना कुछ लिए ही छोड़ दूँगा। पहले यह बताओ कि तुम मुझे क्या दोगे? तब मैं तुम्हें छोड़ूँगा।”

श्रीधर—“पण्डित! मैं कोई बहुत बड़ा व्यवसायी नहीं हूँ कि आपको कुछ दान कर पाऊँ। मैं कुछ खोला (केलेके पेड़के अन्दरका भाग), मूली एवं थोड़ (केलेका फूल) इत्यादि बेचता हूँ। जो थोड़ी बहुत आय होती है, उसीसे गंगाजीकी सेवा तथा अपना जीवन निर्वाह करता हूँ।”

प्रभु—“श्रीधर! मुझे ठगनेकी आवश्यकता नहीं है। मैं जानता हूँ कि तुम कैसे निर्धन हो? तुमने जो अमूल्य सम्पत्ति छिपाकर रखी है, उसे तो मैं कुछ दिन बाद लूँगा, अभी तो तुम मुझे केले, मूली तथा थोड़ इत्यादि दो। यदि नहीं दोगे तो मैं यहीं बैठकर तुमसे झगड़ा करता रहूँगा, जिससे तुम्हारी दुकानपर कोई ग्राहक नहीं आयेगा तथा तुम्हारी बिक्री नहीं होगी।”

यह सुनकर श्रीधर मन-ही-मन विचार करने लगा कि यह ब्राह्मण बहुत चञ्चल है। यदि मैंने इसे मुफ्तमें ही नहीं दिया तो यह मुझे मारेगा और यह तो ब्राह्मण है, इसलिए मैं इसके साथ झगड़ा भी नहीं कर सकता और यदि बिना मूल्यके ही देता हूँ तो मेरा निर्वाह कैसे होगा? क्योंकि यह एक दिनकी बात नहीं, रोजकी बात है। इसके अतिरिक्त एक बात यह भी है कि यह जो रोज मुफ्तमें ही छल-बलसे मेरे पाससे सब्जियाँ ले जाता है, यह भी मेरा सौभाग्य ही है कि मेरी एक वस्तु ब्राह्मणकी सेवामें लग रही है। शास्त्रोंमें ब्राह्मणको दान करनेकी बात कही गयी है। ऐसा विचारकर श्रीधर बोला—“हे पण्डित! आपको मूल्य देनेकी आवश्यकता नहीं है। आपकी जो इच्छा हो ले लें। परन्तु कृपाकर मेरे साथ झगड़ा मत करें तथा मेरे ग्राहकको खराब मत करें।”

प्रभु—“अच्छी बात है। मैं अब तुमसे झगड़ा नहीं करूँगा। परन्तु फल, सब्जी अच्छी

होनी चाहिए।"

यह कहकर उन्होंने थोड़े केले, मूली इत्यादि ली तथा श्रीधरसे बोले—"श्रीधर! तुम मुझे क्या मानते हो? मुझे बताओ, तो मैं चुपचाप अपने घर चला जाऊँगा।"

श्रीधर—"आप ब्राह्मण हैं।"

प्रभु—"तुम मुझे पहचान नहीं पाये, मैं ब्राह्मण नहीं, बल्कि एक गोप हूँ। तुम मुझे एक ब्राह्मण बालक समझते हो, परन्तु मैं अपनेको एक गोप बालक मानता हूँ।"

यह सुनकर श्रीधर हँसने लगा। वह भगवानकी मायाके कारण अपने प्रभुको पहचान नहीं पाया। उसे हँसते हुए देखकर प्रभु बोले—"श्रीधर! तुम जिस गंगाजीकी सेवा करते हो, वह मेरी चरणोंकी दासी है। मेरे कारण ही उसकी महिमा है।"

श्रीधर—"हे पण्डित! आप कैसी अपराध-जनक बातें कह रहे हैं? क्या आपको गंगाजीका भी भय नहीं है? मैंने सुना था कि उम्र बढ़नेके साथ-साथ बच्चेकी चञ्चलता दूर होती है, परन्तु आपकी चञ्चलता तो दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है।"

इस प्रकार नित्यप्रति अपने भक्तसे श्रीधरसे छल-बलसे उसके दुकानसे जो सब्जी ले जाते हैं, उसे ही खाते हैं। भगवानका स्वभाव है—

भक्तेर द्रव्य प्रभु काड़ि-काड़ि खाय।
अभक्तेर द्रव्य प्रभु उलटिया ना चाय।।

अर्थात् भक्तकी वस्तुको प्रभु जोर-जबरदस्ती भी ग्रहण करते हैं परन्तु अभक्तके द्वारा दिये जानेपर वे उस ओर ताकते तक नहीं।❑

गयाक्षेत्र

गया नामक एक महाभयंकर असुर था। उसीके द्वारा स्थापित स्थानका नाम गयाक्षेत्र है।

एक दिन युधिष्ठिर महाराजने भीष्मपितामहसे पूछा—"हे पितामह! एक असुरके द्वारा स्थापित क्षेत्रका नाम गया हुआ। परन्तु वह स्थान इतना पूज्य क्यों हुआ? मैं इसे समझ नहीं पा रहा हूँ। अतः कृपाकर आप मेरी समस्याका समाधान कीजिए।"

महाराज युधिष्ठिरकी ऐसी बात सुनकर भीष्म पितामह कहने लगे—"हे धर्मनन्दन! तुम्हारी इच्छानुसारमें इस क्षेत्रके विषयमें वर्णन कर रहा हूँ। अतः तुम सावधानीपूर्वक श्रवण करो।

"त्रिपुर नामक एक परम पराक्रमी दैत्य था, जो अत्यन्त तमोगुण सम्पन्न था। त्रिभुवनमें उसका नाम प्रसिद्ध था। अत्यन्त दुष्ट प्रवृत्तिका होनेके कारण वह सर्वदा देवताओं तथा ब्राह्मणोंको सताता रहता था। इसलिए देवता लोग उसके अत्याचारसे दुःखी होकर शिवजीके पास गये तथा अनेक स्तुतियोंके द्वारा उन्हें संतुष्ट कर उनसे त्रिपुरासुरके भयसे मुक्त करनेकी प्रार्थना की। शिवजीने देवताओंकी प्रार्थनाके अनुसार त्रिपुरासुरका वध किया, इसलिए उनका एक नाम 'त्रिपुरारि' है।

"त्रिपुरासुरकी पत्नीका नाम प्रभावती था। वह शुक नामक दैत्यकी कन्या थी। वह

अत्यन्त रूपवती एवं गुणवती थी। जिस समय त्रिपुरासुर शिवके साथ युद्ध करनेकी तैयारियाँ कर रहा था, उस समय उसकी पत्नी गर्भवती थी। अचानक एक दिन उनके भवनमें नारदजी उपस्थित हुए तथा त्रिपुरासुरसे बोले—'हे असुरवर्य! तुम्हारी यह सती साध्वी स्त्री गर्भवती है। उसके गर्भमें पुत्र है। मैं अपनी दिव्य दृष्टिसे देख रहा हूँ, तुम्हारा यह पुत्र महान तथा अद्भुत पराक्रमी होगा। वह इस त्रिभुवनका एकछत्र सम्राट बनेगा तथा एक महापुण्य क्षेत्रकी स्थापना करेगा। अतः शीघ्र ही तुम अपनी पत्नीको उसके पित्रालयमें रखकर आओ। उसके बाद शिवसे युद्ध करना।' ऐसा कहकर तपोधन नारदजी अन्तर्द्धान हो गये। त्रिपुरासुर नारदजीके कहे अनुसार अपनी पत्नीको उसके पिताके घरमें रख आया तथा उसके बाद उसका शिवसे घनघोर युद्ध प्रारम्भ हो गया तथा शिवने प्राणघातक वाणोंके द्वारा उसका वध कर दिया।

"इधर पितामहके घरमें त्रिपुरासुरकी पत्नीने एक पुत्रको जन्म दिया। जिसका नाम रखा गया गयासुर। छोटी सी उम्रमें ही वह असुर बालक समस्त प्रकारकी शस्त्र विद्याओंमें प्रवीण हो गया। वह युद्धमें इतना निपुण था कि देवता लोग भी उससे सर्वदा भयभीत रहते थे। एक दिन गयासुरने एकान्तमें अपनी माताजीसे पूछा—"हे माताजी! मैं जब गुरु शुक्राचार्यके पास पढ़ने जाता हूँ, तब सभी लोग मुझे पितृहीन कहकर पुकारते हैं, जिसे सुनकर मेरे हृदयमें काँटा-सा चुभता है। विधाताने मुझे पितृहीन क्यों किया? आपको मुझे यह बताना पड़ेगा। मेरा जन्म किस वंशमें हुआ है तथा मेरे पिताजीका क्या नाम है? इन सब बातोंका मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं है। पितृहीन बालकके जीवनमें कुछ भी सुख नहीं है। जैसे जलरहित नदीका कोई मूल्य नहीं होता, चन्द्रहीन रात्रि सुखकर नहीं होती तथा कमलरहित सरोवर शोभाहीन होता है, ठीक उसी प्रकार पितृहीन पुत्रका जीवन भी व्यर्थ ही है।

"पुत्रकी इन बातोंको श्रवणकर माता प्रभावती रोने लगी। वह रोते-रोते बार-बार अपने पुत्रका मुख चूमने लगी तथा अश्रुपूर्ण नयनोंसे पुत्रका मुख निहारती हुई बोली—'पुत्र! तुम पितृहीन नहीं हो। त्रिभुवन विख्यात धन्द असुरके वंशमें तुम्हारा जन्म हुआ है तथा भुवनविख्यात त्रिपुरासुर तुम्हारे पिता थे। जिस समय तुम मेरे गर्भमें थे, उस समय अपनी इच्छानुसार भ्रमण करनेवाले देवर्षि नारद हमारे यहाँ उपस्थित हुए। वे तुम्हारे पितासे बोले—'त्रिपुर! तुम्हारे साथ शीघ्र ही शिवका घोर युद्ध होगा। इसलिए मैं तुम्हारे पास आया हूँ। इस समय तुम्हारी पत्नी गर्भवती है। उसके गर्भसे एक वीर शिरोमणि बालकका जन्म होगा। अतः तुम प्रभावतीको उसके पित्रालयमें छोड़ आओ। उसके बाद शिवसे युद्ध करना।' यह सुनकर तुम्हारे पिताजी मुझे यहाँ छोड़कर शिवके साथ युद्ध करने चले गये तथा देवताओंने छलपूर्वक शिवके हाथों उनका वध करा दिया। इतना ही नहीं, देवताओंने दैत्योंके समस्त भाई-बन्धुओंका भी संहार कर दिया। अब त्रिपुरके वंशमें एकमात्र तुम ही बचे हो।' इतना कहकर गयासुरकी माँ प्रभावती विलाप

करने लगी तथा उसकी आँखोंसे झर-झर अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी।

"अपनी माँके मुखसे यह घटना सुनकर गयासुर अत्यन्त क्रोधित हो गया। वह तुरन्त शुक्राचार्यके पास गया तथा उन्हें अपना परिचय दिया। उसका परिचय जानकर शुक्राचार्यने उसे सांत्वना प्रदान की तथा बहुत यत्नपूर्वक उसे अस्त्र-शस्त्रकी शिक्षा प्रदान की। शिक्षा समाप्त होनेपर वह गुरु शुक्राचार्यको प्रणामकर अपने देश लौट आया तथा आकर अपनी माताजीको दण्डवत् प्रणाम किया। उसने गयासुरको बहुत आशीर्वाद प्रदान किये। गयासुरने जगतमें जितने भी दैत्य थे, उन सबको एकत्रित किया तथा अत्यन्त क्रोधपूर्वक सेनाके साथ सुमेरु पर्वत पर उपस्थित होकर समस्त देवताओंको पराजित किया। इस प्रकार वह त्रिभुवनका एकछत्र सम्राट हो गया। देवतागण अपने स्वामी इन्द्रसे परामर्श कर क्षीरसागरके तटपर उपस्थित हुए तथा अनादिरादि सनातन जगदीश्वर भगवान श्रीविष्णुकी स्तुति करने लगे—'हे जनार्दन! हे जगत्पते! त्रिभुवनमें चराचर सभी वस्तुएँ आपकी विभूतियाँ हैं। आप ही सृष्टि, पालन तथा संहार करते हैं। अतः हे भगवन्! इस विपदसे आप हमारा उद्धार करनेकी कृपा करें।' देवताओंकी स्तव-स्तुतियोंसे प्रसन्न होकर शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी गरुड़वाहन भगवान मधुसूदन उनके सामने प्रकट होकर उन्हें अभय प्रदानकर बोले—'देवताओ! तुमलोग अपने-अपने स्थानको लौट जाओ। मैं अतिशीघ्र ही गयासुरका संहार करूँगा।' भगवानकी सांत्वनापूर्ण बातोंको सुनकर देवगण अशोक, अभय एवं अमृतके आधारस्वरूप भगवानके श्रीचरणकमलोंमें दण्डवत् प्रणाम कर अपने-अपने स्थानको लौट गये।

"भगवान् श्रीहरिने तुरन्त गयासुरके पास जाकर उसे युद्धके लिए ललकारा। भगवानकी ललकार सुनकर वह असुर भवनसे बाहर निकला तथा गोविन्दको सम्बोधनकर बोला—'हे प्रभो! आप तो जगतके नाथ हैं। आप जानते हैं कि मैं त्रिपुरासुरका पुत्र हूँ। देवताओंने मेरे पिता त्रिपुरासुरका वध किया है। इसलिए वे लोग मेरे शत्रु हैं। इसलिए अपने पिताके हत्यारे उन देवताओंका नाश किए बिना मुझे शान्ति नहीं मिल सकती, तथा इसे ही मैं अपना धर्म मानता हूँ। आप जब मुझसे युद्ध करने आए हैं तो इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है। क्योंकि आपके साथ युद्ध करनेसे मेरी ही कीर्ति बढ़ेगी। इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। ऐसा कहकर उसके अस्त्र धारण करनेपर भगवानने भी हँसते हुए अस्त्र धारण किये। इस प्रकार गयासुर तथा भगवान श्रीहरिके बीच घनघोर युद्ध छिड़ गया। युद्ध ऐसा होने लगा, मानो अस्त्रोंकी वर्षा हो रही हो। शेल, शूल, शक्ति, जाठि, मूसल, मुद्गर, परशु एवं गदा इत्यादि नाना प्रकारके अस्त्र एवं शस्त्रोंके द्वारा दोनों ही एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। इस प्रकार एक सौ वर्ष तक वह घनघोर युद्ध चला। कोई भी किसीको पराजित नहीं कर पा रहा था, जैसे दोनों ही समान योद्धा हों। गयासुर बहुत सोच-विचारकर भगवान श्रीहरिसे बोला—"हे प्रभो! मैं आपके युद्धसे संतुष्ट हूँ। अतः आप मुझसे अपनी इच्छानुसार वरदान माँगें। उस असुरकी बात सुनकर भगवान् बोले—'दैत्येश्वर!

यदि तुम मुझे वर देना चाहते हो तो यह वर दो कि तुम कभी भी देवताओं तथा मनुष्योंको नहीं सताओगे तथा इसी स्थानपर पाषाण शरीर धारणकर सोते रहोगे।' गयासुर परम पण्डित था। इसलिए उसने भगवानकी बातको स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् भगवान् श्रीहरिने गयासुरसे मोक्ष वर माँगनेके लिए कहा तथा उससे बोले—'त्रिभुवनमें तुम्हारी कीर्ति चिरकाल रहेगी।' यह सुनकर दैत्येश्वर गयासुर भगवान् श्रीहरिका स्मरण करने लगा तथा उन्हें प्रणाम करते हुए बोला—'हे जगदीश्वर! आप यदि मुझपर इतने प्रसन्न हों, तो मुझे यही वर प्रदार करें कि इस स्थानपर मेरे प्राण जाएँ तथा जितने दिन यह पृथ्वी रहेगी तब तक मैं यहीं पर पाषाण रूपमें रहूँ। आप मेरे मस्तकपर अपने चरणकमल स्थापित करें। यह मेरे नामसे प्रसिद्ध हो अर्थात् इसका नाम गयाक्षेत्र हो। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जगतके जितने लोग मुझ पर तर्पण करेगें तथा पिण्डदान करेगें—उनके पितृगणके समस्त पाप नष्ट हो जाएँ तथा उनका उद्धार हो जाय। यह गयाक्षेत्र चिरकाल अमर नगर होकर विद्यमान रहे। हे दामोदर! आप मुझे यही वरदान प्रदान करें। इसके अतिरिक्त मैं आपके श्रीचरणोंमें एक निवेदन और करना चाहता हूँ कि जिस दिन यहाँ पर पिण्डदान करनेपर पितृ-पुरुषोंका उद्धार नहीं होगा, उस दिन मैं उठ जाऊँगा तथा सारे संसारका संहार कर डालूँगा।' भगवान श्रीहरिने उसे तथास्तु कहकर वरदान प्रदान किया तथा जैसे ही भगवानने उसके मस्तकपर अपने श्रीचरण अर्पण किये उसी क्षण वह पाषाण बन गया।

उसी समयसे वह गयासुर भगवान श्रीहरिके चरणकमलोंको अपने सिरपर धारणकर वहीं पर अवस्थान कर रहा है। अतः देखा जा रहा है कि भगवान श्रीहरि सर्वेश्वरेश्वर हैं। एकमात्र उनकी आराधनासे ही सर्वसिद्धि हो जाती है। वे भक्तवाञ्छाकल्पतरु हैं। वे हृदयके अज्ञान एवं अनर्थरूप अन्धकारको स्वयं नष्टकर उसमें अवस्थान करते हैं। गीतामें हम देखते हैं—

यान्ति देवव्रता देवान् पितृन् यान्ति पितृव्रता।
भूतानि यान्ति भूतेज्या, यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्।।

(गी.९/२५)

अर्थात् भगवान कह रहे हैं कि देवताओंकी पूजा करनेवाले देवलोकको जाते हैं, पितरोंकी पूजा करनेवाले पितृलोकको प्राप्त करते हैं, भूतोंको पूजा करनेवाले भूतलोकको प्राप्त करते हैं। परन्तु जो मेरी पूजा करते हैं, वे मेरे धामको प्राप्त करते हैं।

अन्यान्य देवताओंको भगवान मानकर जो उनकी उपासना करते हैं, वे अनित्य वस्तुका या अनित्य धर्मका आश्रयकर उन देवताओं से अनित्य वस्तु या स्वर्ग लाभ करते हैं। जो पितृपुरुषोंकी उपासना करते हैं, वे अनित्य पितृलोकको प्राप्त करते हैं, जो भूतोंकी उपासना करते हैं, वे अनित्य भूतलोकको प्राप्त करते हैं। किन्तु जो लोग चित्स्वरूप भगवान श्रीकृष्णचन्द्रकी उपासना करते हैं, वे भगवानको ही प्राप्त करते हैं। अतः फल प्रदान करनेमें भगवान किसी प्रकार पक्ष-पात नहीं करते। उनका अटल नियम यह है कि वे निरपेक्ष होकर जीवको कर्मफलका विधान करते हैं अर्थात् जो जैसा कर्म करता है, उसे

उसीके अनुरूप फल प्रदान करते हैं। एकमात्र श्रीकृष्णचन्द्र ही स्वयं भगवान हैं। इन्द्रशत्रु असुरोंके द्वारा जब प्राणिगण उद्विग्न हो जाते हैं, तब भगवान कृपाकर अवतरित होकर प्राणियोंकी रक्षा करते हैं। इस संसारमें सभी वस्तुएँ अनित्य एवं दुःखदायी हैं तथा असार हैं। केवल वे श्रीहरि ही एकमात्र सत्य एवं सारस्वरूप हैं। उनकी अहैतुकी सेवा ही जीवका एकमात्र कर्तव्य है। हमारा चित्त यदि भगवद्गत हो जाए, तो उनकी कृपासे हम दुःखरूपी संसार-सागरको सहज ही पार कर सकते हैं, इसमें बिन्दुमात्र भी सन्देह नहीं है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर शरणागतिमें लिख रहे हैं—

दैन्य आत्मनिवेदन, गोपतृत्वे वरण।
अवश्य रक्षिबे कृष्ण, विश्वास पालन।।
भक्ति अनुकूलमात्र कार्येर स्वीकार।
भक्ति प्रतिकूल भाव वर्जनाङ्गिकार।।
षडङ्ग शरणागति हइबे जाहार।
ताहार प्रार्थना सुने श्रीनन्दकुमार।।

अतएव भगवानके श्रीचरणोंमें ये छः प्रकारकी शरणागति होनेपर हमारे समस्त पाप नष्ट हो सकते हैं। ❑

राधाकृष्ण-विज्ञप्ति

श्रीराधाकृष्ण-पदकमले मन। केमने लभिबे चरम शरण।।
चिरदिन करिया ओ-चरण-आश। आछे हे बसिया ए अधम दास।।
हे राधे! हे कृष्णचन्द्र! भक्तप्राण। पामरे युगल-भक्ति कर' दान।।
भक्तिहीन बलि' ना कर' उपेक्षा। मूर्खजने देह' ज्ञान-सुशिक्षा।।
विषय-पिपासा-प्रपीड़ित दासे। देह' अधिकार युगल-विलासे।।
चञ्चल-जीवन-स्त्रोत प्रवाहिया, कालेर सागरे धाय।
गेल ये दिवस, ना आसिबे आर, एबे कृष्ण कि उपाय।।
तुमि पतितजनेर बन्धु। जानि हे तोमारे नाथ, तुमि त करुणा-जलसिन्धु।।
आमि भाग्यहीन, अति अर्वाचीन, ना जानि भकति-लेश।
निज-गुणे नाथ, कर आत्मसात्, घुचाइया भव-क्लेश।।
सिद्ध देह दिया, वृन्दावन माझे, सेवामृत कर दान।
पियाइया प्रेम, मत्त करि' मोरे, सुन निज गुणगान।।
युगल सेवाय, श्रीरासमण्डले, नियुक्त कर आमाय।
ललिता सखीर, अयोग्या किङ्करी, विनोद धरिछे पाय।।

अनुवाद—श्रीराधाकृष्णके चरणकमलोंमें यह मन किस प्रकार ऐकान्तिकरूपसे शरणागत होगा? यह अधमदास बहुत समयसे उन श्रीचरणोंकी आश लगाये बैठा है। अतः भक्तोंके प्राणस्वरूप हे राधे! हे कृष्णचन्द्र! इस पामरको भी कृपाकर युगलभक्ति प्रदान कीजिए। भक्तिहीन जानकर आप मेरी उपेक्षा न करें; बल्कि कृपापूर्वक इस मूर्खको तत्त्वज्ञान और भजन शिक्षा प्रदान करें, जिससे कि यह आपकी सेवा कर सके। विषयोंकी तृष्णासे विशेषरूपसे

पीड़ित इस दासको श्रीयुगलकी सेवाका अधिकार प्रदान कीजिए। यह चञ्चल जीवनधारा कामरूपी सागरकी ओर प्रवाहित हो रहा है। इस प्रकार मेरे जीवनका जो अमूल्य समय व्यर्थ ही चला गया वह तो लौटकर नहीं आयेगा। अतः हे कृष्ण! अब इस कालसे बचनेका क्या उपाय करूँ? हे नाथ! आप तो करुणाके सागर हैं तथा मेरे जैसे पतितोंके परम बन्धु हैं। परन्तु मैं अत्यन्त ही दुर्भागा हूँ, भक्तिके विषयमें मुझे लेशमात्र भी ज्ञान नहीं है। हे नाथ! आप अपने गुणों द्वारा मुझे अपनी शरण प्रदानकर इस संसाररूपी क्लेशसे अर्थात् जन्म-मरणरूप क्लेशसे बचाइए। आप मुझे सिद्ध देह प्रदानकर वृन्दावनमें अपने श्रीचरणोंका सेवारूपी अमृत प्रदान कीजिए कि मैं सर्वदा आपका गुणगान करता रहूँ। पदकर्त्ता श्रीभक्तिविनोद ठाकुर ऐसी प्रार्थना कर रहे हैं—हे कृष्ण! आप मुझे श्रीरासमण्डलमें युगलकी सेवामें नियुक्त कीजिए। ललिता सखीकी आयोग्या किंकरी मैं आपके चरणोंको पकड़ रहा हूँ।

मकड़ा मारनेसे धोकड़ मिलता है

एक ताँती था। एक दिन वह किसी भट्टाचार्य पण्डितके पास गया और बोला—"मैंने आज एक मकड़ेको मार डाला।" भट्टाचार्य महाशयने उसे विधान बताया कि आपको प्राणिवधसे उत्पन्न पापका प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। ताँतीने भट्टाचार्य महाशय द्वारा बताये प्रायश्चित्तका पालन किया।

एक दिन भट्टाचार्य महाशयके पुत्रने उस ताँतीके सामने ही एक मकड़ेको मार दिया। ताँती तुरन्त भट्टाचार्यजीके पास गया और सारी बात बताई। भट्टाचार्य महाशय सारी बात सुनकर हँसते हुए बोले—"तो क्या हुआ मकड़ेको मारनेसे धोकड़ (वस्त्र) प्राप्त होता है।"

कर्मजड़स्मार्त लोगोंकी विधियाँ अधिकांशतः कपटतापूर्ण होती हैं। वे दूसरेके लिए तो कठोर व्यवस्था देते हैं, पर जब अपने पर समय आता है, तो स्वयं ही उस व्यवस्थाका पालन नहीं कर पाते हैं।

श्रीचैतन्य महाप्रभुके समय सुबुद्धिराय नामक एक महात्मा थे। उस समय तक हुसैनशाह बंगालके बादशाह नहीं बने थे। उस समय उनका नाम था हुसैन खाँ। वे सुबुद्धिरायके अधीन कार्य करते थे। एक बार सुबुद्धिराय एक तालाबका निर्माण करा रहे थे। उन्होंने हुसैन खाँको उस कार्यका परिदर्शक नियुक्त किया था। परन्तु हुसैन खाँ कार्यकी देखरेख ठीक प्रकारसे नहीं कर रहे थे। इस कारणसे सुबुद्धिरायने वेंतसे उसकी पिटाई की थी। जिस समय हुसैन खाँ बंगालके बादशाह हुए, उस समय रायको अपना भूतपूर्व मालिक समझकर उन्हें ऊँचे राजपदपर नियुक्त किया। हुसैन शाहकी बेगम अपने स्वामीके अंगोंमें वेंतकी पिटाईका चिह्न देखकर उनसे इस विषयमें पूछा। बेगमके बारम्बार पूछनेपर हुसैन शाहने यह बता दिया कि ये निशान मुझे

सुबुद्धिरायने दिए हैं। यह जानकर बेगम राजासे अनुरोध करने लगी कि सुबुद्धिरायाकी हत्या कर देनी चाहिए। किन्तु बादशाह अपने पूर्व मालिककी हत्या करनेको राजी नहीं हुआ। तब बेगमने राजासे अनुरोध किया कि अन्ततः उसे जातिभ्रष्ट अवश्य कर देना चाहिए।

बादशाहने बेगमसे कहा कि जातिभ्रष्ट कर देनेपर राय अपने प्राण त्याग देगें। जब बेगमने देखा कि बादशाह मेरे अनुरोधको नहीं मान रहे हैं, तो वह भी अपने प्राण विसर्जन करनेको उद्यत हो गई। उस समय हारकर बादशाहको सुबुद्धिरायको जातिभ्रष्ट करना पड़ा।

जातिसे भ्रष्ट हो जानेपर राय अत्यन्त दुःखी हुए। अपनी वेदनाको हृदयमें धारण करते हुए, वे प्रायश्चित्तकी व्यवस्थाके लिए अकेले ही काशीके लिए चले। काशीके स्मार्त भट्टाचार्य पण्डितोंने उनके लिए यह व्यवस्था दी कि उन्हें तप्त घृत पान कर प्राण त्याग देने चाहिए। किसी-किसी पण्डितने अन्यान्य प्रायश्चित्तकी भी व्यवस्था दी।

बेगमने रायके प्राण लेनेकी इच्छा की थी। अहिन्दू प्रतिहिंसाकारिणीने अपने पतिके अपमानका प्रतिशोध लेनेके लिए जिस प्रकारके प्राणदण्डकी व्यवस्था दी थी, काशीके भट्टाचार्य पण्डितोंने भी उनके जातिभ्रष्ट होनेके प्रायश्चित्तार्थ वैसे प्राण त्यागकी ही व्यवस्था दी। सुबुद्धिरायके आत्माके मंगलके विषयमें कोई भी व्यक्ति कोई बात नहीं बता पाया।

सौभाग्यक्रमसे उसी समय श्रीचैतन्य महाप्रभुका काशीमें आगमन हुआ। सुबुद्धिराय महाप्रभुके पास आए और उनसे पूरी घटनाका वर्णन किया। महाप्रभुने तथा कथित भट्टाचार्य पण्डितोंकी 'माकड़ मारनेसे धोकड़ मिलता है'—इस व्यवस्थाका परित्याग कर रायको वृन्दावन जाकर सर्वक्षण कृष्णनाम-संकीर्तन करनेका उपदेश दिया। कृष्णनाममें समस्त शक्तियाँ हैं। नाम-ग्रहणके द्वारा जिह्वा पर नामका उदय होनेपर श्रीकृष्णकी चरण प्राप्ति और प्रेम प्राप्ति होती है। श्रीकृष्णनाम द्वारा जीवकी चेतन-वृत्ति परिस्फुटत होती है। प्रायश्चित्तादि दैहिक दण्डके द्वारा अन्तःशोधन अथवा आत्माका विकाश नहीं होता है। अतएव पातक, अतिपातक, महापातक सभी हरिनामके आभाससे ही विदूरित हो सकते हैं। इसके द्वारा सबका मंगल होता है। इसमें किसी प्रकारकी कपटता नहीं है। और शुद्ध भावसे आभास मात्रसे ही समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं।

विविध-संवाद

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके उपाध्यक्ष श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज प्राच्य और प्रतीच्य देशोंमें श्रीचैतन्यवाणीका प्रचार करनेके लिए श्रीकेशवजी गौड़ीय मठसे २९ नम्बम्बरको परिकरवर्गके साथ दिल्लीके लिए प्रस्थान किए। वहाँसे उन्होंने १ दिसम्बरको जर्मनीके लिए प्रस्थान किया। जर्मनीसे ब्राजील, हवाई, न्यूजीलेण्ड, आस्ट्रेलिया, इण्डोनेशिया, फिलीपींस, मलेशिया, सिंगापुर आदि देशोंमें प्रचार करनेके बाद फरवरी माहमें भारत लौट आएँगे।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अन्यतम सदस्य श्रीभक्तिवेदान्त वन महाराज कार्तिक परिक्रमाके बाद १६ नबम्बरको ईंग्लेण्ड होते हुए ब्राजीलमें प्रचारके लिए प्रस्थान किए। वहाँ वे श्रील महाराजजीके पहुँचनेसे पहले प्रचारके लिए अनुकूल वातावरणका निर्माण करेंगे।

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

वैकुण्ठ–वार्त्तावह

बृहत्–मृदङ्ग

श्रीभागवत–पत्रिका

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना।।

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।।

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः ।।

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र।।
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश।।

वर्ष ४४ } *श्रीगौराब्द ५१४*
वि. सं. २०५७ माघ मास, सन् २०००, १४ नवम्बर—१३ दिसम्बर {**संख्या ११**

श्रील प्रभुपाद तिरोभाव तिथि

आज (४ नारायण,१२ पौष, ई॰ २८।१२।५० वृहस्पतिवार) मदीय परमाराध्यतम श्रीश्रीगुरुपादपद्म नित्यलीला-प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर के चतुर्दश अर्थात् चौदहवाँ वार्षिक अप्रकट तिथि-पूजाका दिन है। श्रील प्रभुपाद अंग्रजी १८७४ ख्रीष्टाब्द (१७९५ शकाब्द, १२८० बंगाब्द) ६ फरवरी शुक्रवार माघी कृष्णा पंचमी तिथिको दोपहर ३:३० बजे श्रीपुरुषोत्तम धाममें श्रीजगन्नाथ मन्दिरके सन्निकट स्थित 'नारायण छाता' से संलग्न नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीलभक्तिविनोद ठाकुरके कृष्ण-कीर्त्तन-मुखरित भवनमें प्रकटलीला आविष्कारपूर्वक जगतमें सर्वत्र श्रीचैतन्य महाप्रभुके

आचरित और प्रचारित शुद्ध भक्तिसिद्धान्त-वाणीकी विजय-वैजयन्ती पताकाको फहराकर विगत १६ पौष श्रीकृष्णचतुर्थी तिथिको (१ जनवरी १९३७) निशान्त लीलामें कलकत्ता महानगरी स्थित बागबाजार श्रीगौड़ीयमठ में श्रीनामसंकीर्त्तनरत शिष्यगणोंसे परिवृत होकर "प्रत्याशां मं त्वं कुरु गोवर्धन पूर्णां" और "निज निकट-निवासं देहि गोवर्धन त्वं" इत्यादि श्रीरूप-रघुनाथ वाणी तथा "श्रेष्ठ उपास्य युगल श्रीराधाकृष्णनाम" उच्चारण और निशान्तलीला स्मरण करते-करते श्रीश्री राधागोविन्दकी प्रथम याम सेवामें प्रवेश किये। तत्काल ही श्रीलप्रभुपादके परम प्रियतम निजजन-स्नेहके मूर्त्तविग्रह महामहोपदेशक आचार्यात्रिक श्रीपाद कुञ्जविहारी विद्याभूषण प्रभु(जो वर्त्तमानमें त्रिदण्डसन्न्यास ग्रहण करके त्रिदण्डीस्वामी श्रीमद्भक्तिविलास तीर्थके नामसे परिचित हैं) अनेक सतीर्थ एवं श्रद्धावान् सज्जन, मिलकरके प्रभुपादके उस अप्राकृत चिन्मय कलेवरको दिव्यविमानमें आरोहण करके उसको स्वयं वहन करके विराट संकीर्त्तन-शोभायात्राके साथ सियालदह स्टेशन पर्यन्त लाये, बादमें वहाँसे स्पेशल ट्रेन द्वारा कृष्णनगर, वहाँसे मोटरयान द्वारा नवद्वीप घाट एवं वहाँसे पुनः स्कन्ध पर आरोहण करके विराट संकीर्त्तन-शोभायात्राके सहयोगसे उनके(श्रीलप्रभुपादके) परमप्रिय भजनस्थली, अभिन्न-गिरिराज-गोवर्धन और तटस्थ श्रीराधाकृष्ण-तटवर्त्ती श्रीचैतन्यमठ ले आये। वहाँ श्रील प्रभुपादके सभी शिष्योंको लेकर श्रील आचार्यात्रिक प्रभु(अब श्रीमद् तीर्थ महाराज)ने अपने हाथोंसे 'संस्कार दीपिका'के विधानुसार एकत्रित सहस्रकण्ठ-सम्मुखरित उच्च संकीर्त्तन और मुहुर्मुहुः जयध्वनिके साथ श्रीराधिकाकी नयनमणि-श्रीवार्षभानवी दयितातिदयित श्रील प्रभुपादको यथाविधि समाधि प्रदान की। उनके(श्री आचार्यात्रिक प्रभु) आनुगत्यमें उपस्थित सभी वैष्णववृन्दने भी यथाक्रम श्रीगुरुपादपद्मकी समाधि-सेवाका विधान किया।

प्रभुपाद हम सभीको एक अद्वय-ज्ञानके अप्राकृत इन्द्रियतृप्तिके उद्देश्यसे आश्रय-विग्रहके आनुगत्यमें मिलजुलकर रहना एवं अत्यधिक उत्साहके साथ 'भक्तिविनोद-मनोभीष्ट' प्रचार करनेके लिए कहा है। श्रीलभक्तिविनोद-मनोभीष्ट क्या है, वह भी हम मासिक गौड़ीय १ वर्ष, १ संख्या में स्वयं श्रीलप्रभुपादकी लेखनीसे उद्धृत करके प्रदर्शन किया है। संक्षेपमें-

१) वृत देव-वर्णाश्रम धर्म प्रचार (त्रिदण्ड सन्न्यास विधि प्रवर्त्तन)

२) शुद्ध भक्तिसिद्धान्त प्रचार और प्रकृत आचार

३) श्रीधाम नवद्वीप परिक्रमा आरम्भ, श्रीधाम मायापुरकी सेवा जिससे स्थायी और दिन-प्रतिदिन उज्ज्वल हो, उसके लिए यत्न; मुद्रायन्त्र स्थापन, भक्तिग्रन्थ प्रचार और नामहट्ट प्रचार द्वारा श्रीमायापुरकी प्रकृत सेवा, सम्पादन; निर्जन भजन करने जाकर प्रचार या श्रीमायापुरकी सेवामें क्षति न करना।

४) श्रीमायापुरकी सेवाके लिए विशेष यत्न करना (श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका विशेष आदेश); श्रीमद्भागवत, षट् संदर्भ, वेदान्त दर्शन प्रभृति ग्रन्थकी शुद्धभक्ति-तात्पर्यमयी व्याख्या; श्रीमायापुरमें विद्यापीठ स्थापन।

५) अर्थ व स्वार्थके लिए कभी भी दुसंग न करना।

श्रीलठाकुर भक्तिविनोदकी यह कुछ मनोऽभीष्ट श्रील प्रभुपादने हम सभीको स्वलिखित पत्र द्वारा जनाये हैं। सूतरां यही श्रील प्रभुपादका भी मनोऽभीष्ट है।

'आज्ञा गुरुणां ह्यविचारणीया' विचारके अनुसार शिष्यका गुरुवाक्य पालन एकान्त कृत्य और एकमात्र भजन-साधन बोलकर विचार होने पर किंकर्त्तव्य-विषयमें सभीके लिए ही स्थिर चित्तसे ग्रहण करना अत्यावश्यक है, ऐसा मेरे मनमें आता है। गुरुवाक्य पालन वा पालनकी चेष्टा पर्यन्त न होने पर विरहोत्सव आदि स्व-स्व इन्द्रिय-तर्पणोत्सवको छोड़कर और कुछ भी नहीं होगा। श्रीगुरुपद्मके साथ मिलन न होने पर, उनमें अहैतुकी प्रीति न जागने पर उनके अभावसे हृदयमें प्रकृत विच्छेद-व्यथाकी अनुभूति सम्भव नहीं हो सकती। अवश्य ही कोमलश्रद्ध कनिष्ठाधिकारी साधककी श्रीअर्चा-पूजाके समान विरहकी एक मौन प्रतीक पूजा मात्र होती है।

"श्रीगुरुचरणपद्म केवल भकतिसद्म", अति सावधानीके साथ उनकी पूजा होने पर, उनके प्रसादसे संसार-निवृत्तिक्रम द्वारा श्रीकृष्ण चरण प्राप्ति संभव हो सकती है। गुरुदेवकी प्रसन्नताको छोड़कर कृष्णप्रसाद लाभ अत्यन्त दुर्ल्लभ है। श्रीकृष्णकी साक्षात् करुणा-शक्ति ही गुरुरूपमें आत्मप्रकाश करती है। "यस्य प्रसादात् भगवत् प्रसादो यस्य प्रसादान्न गतिः कुतोऽपि" यही महाजन वाक्य है। श्रीगुरुमुखपद्म-वाक्यको चित्तके साथ एक करके, भुक्ति-मुक्ति-सिद्धि आदि दूसरी सभी आशाओंके मुखपर राख पोतकर श्रीगुरुपादपद्ममें रति-मतिको ही उत्तम विधानगति जानकर गुरुके आनुगत्यमें हृदयमें एकमात्र "श्रीराधिकामाधवाशा" पोषण करके ही कृपाके सागर परदुःखदुःखी गुरुदेव उस आशाकी पूर्ण करते हैं।

सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजन ज्ञानरूप दिव्य ज्ञानचक्षु प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचन प्रकाश करके कृष्ण-कार्ष्ण वस्तुके अप्राकृत स्वरूप प्रदर्शन करके आत्माकी स्वाभाविक वृत्तिको जगाकर अप्राकृत प्रेम संपद प्रदान करनेमें एकमात्र करुणामय श्रीगुरुदेवको छोड़कर ऐसा दरदी(दुःखको समझनेवाला) वन्धु हमारा और कौन है? उनके श्रीमुखवाक्य सहित आदर्श आचारमय प्राणमय प्रचारके साथ जितना अधिक मिलन वा घनिष्ठता संघटित होयेगी, उतनी ही श्रीगुरुपादपद्मके लिए व्यथा तीव्रसे तीव्रतर रूपमें अनुभूत होगी। उनकी अहैतुकी करुणाकी कथा जिस हृदयमें जितनी अधिक जागेगी, उस हृदयमें उतनी अधिक विरह-व्यथा होकर शुद्धभक्तिके संपदाके लिए लालायित होयेगा। तब कर्मी, ज्ञानी, योगीका प्रार्थनीया भुक्ति-मुक्ति-सिद्धि स्पृहा नरकतुल्य यातना देनेवाली लगेगी, यहाँ तक कि लक्ष्मीपति-रति भी लोभनीय नहीं होगी, गोलोकका विशुद्ध प्रेम ही एकमात्र वाञ्छनीय होगा।

हाय, ऐसे करुणामय श्रीगुरुपादपद्मके स्वरूप-ज्ञानाभावमें हम उनका अभाव समझ नहीं पा रहे हैं, तब भी लोकानुकरण द्वारा व्यथाका अभिनय करने पर भी प्रकृत व्यथा हृदयमें नहीं जाग रही, वक्षस्थल फटी नहीं जा रही, आँखोंकी आँसुओंसे वक्षस्थल सिक्त नहीं हो रही। क्यों ठाकुर नरोत्तम पाषाणमें माथा पीटना चाहते थे, अनलमें प्रवेश करना चाहते थे, 'तुया अदर्शने अहि-गरले जारल देह'

कहकर करुण विलाप किया था, श्रीगौरहरि और उनके प्रिय परिकरगणके अदर्शन हेतु, उनके संगके अभाव हेतु अपने जीवनको क्यों शत शत धिक्कार प्रदान किये थे; क्यों श्रीरघुनाथ श्रीरूपके विरहमें महागोष्ठको शून्यरूपमें, अतिप्रिय गिरिराज गोवर्धनको अजगर रूपमें, परम प्रियतम श्रीकुण्डको व्याघ्रतुण्ड(व्याघ्र का मुख) रूपमें एवं स्वयंको प्राणोंसे रहित दर्शन किये थे एवं श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी प्रभुके विरहमें श्रीवृन्दावन जाकर गोवर्द्धनसे भृगुपात(कूदना) करके देहरक्षा करना चाहते थे; क्यों श्रीगदाधर पंडित गोस्वामी श्रीगौरके विरहमें अहर्निश अश्रुजलसे वक्षस्थलको भर दिये थे, क्षणकालके विरहको भी युगसम जानकर प्राणत्यागनेके लिए कृतसंकल्प हुए थे; श्रीगौरविरहमें श्रीशचीमाता, श्रीविष्णुप्रिया क्यों पागलिनी प्राय हो रहे थे, क्यों नदीयावासी पागलोंके समान नदीयाको त्याग करनेमें उद्यत थे; क्यों श्रीवासपण्डित कुमारहट्ट जाकर वास करने लगे थे; क्यों श्रीनिवास आचार्य प्रभु श्रीगौर और उनके निजजनके विरहमें अहर्निश छटपट किये थे; स्वयं श्रील प्रभुपाद ही क्यों पूर्व आचार्यगणके विरहमें अत्यन्त कातर होकर गिर पड़ते थे, यह समझनेकी शक्ति मेरे जैसे जड़विषयासक्त बद्धजीवकी कैसे हो सकती है? जड़विषय संयोगके लिए हर्ष और वियोगके लिए विमर्ष द्वारा जो हृदय आक्रांत, उसमें श्रीकृष्ण-कार्ष्ण-विरह वेदनाको स्थान कहाँ है? श्रीकृष्णके विरहमें व्रजके स्थावर-जंगम किस प्रकार कातर हुए थे, श्यामली, धवली प्रभृति धेनुगण क्यों तृण जल त्याग करके आँखोंसे आँसु बहा रहे थे, रक्तक-पत्रक-चित्रक-वकुल-भृंगार-भंगूरादि श्रीकृष्णके भृत्यगण क्यों रो-रोकर आकुल हो गये थे, अति क्रीड़ाचपल कृष्णसखा श्रीदाम-सुदाम-वसुदाम-स्तोककृष्ण आदि गोपबालकगण क्यों खेलना छोड़कर अकस्मात् गंभीर भावावलंबन करके अहर्निश कानाई-कानाई बोलकर आर्त्तनाद करते हुए ब्रजके दिग-दिगन्तमें घूमते थे, माँ यशोदा, पिता नन्द एवं अन्यान्य मातृपितृस्थानीय व्रजवासीगण क्यों रोते-रोते अंधप्राय-मृतप्राय हो गये थे, क्यों व्रजगोपीगण एवं सर्वगोपिका-शिरोमणि श्रीमती वृषभानुराजनन्दिनी श्रीकृष्णविरहमें निमेषको भी युगसम जानती थी, नयनोंके श्रावण की धारा बही थी, संपूर्ण जगत शून्यायित हुआ था, रोते-रोते वह क्यों मुहुर्मुहुः मूर्च्छाप्राप्त हुए थे; इस अप्राकृत विरहके मर्म स्वरूपको समझनेकी शक्ति किसको हो सकती है?

स्त्रीपुत्र आदिमें अत्यासक्ति-निबंधन, मिलन व विच्छेद जीवको जिसप्रकार सुख व दुःखप्रद होता है, अप्राकृत विषयमें प्रीति-निबंधन भी उसीप्रकार अप्राकृत सुखदुःखका उदय होता हैं वैशिष्ट्य यह है कि जागतिक सुखदुःख अनित्य विषयके संबंधमें एवं अप्राकृत सुखदुःख नित्यविषयके संबंधमें होता है। नित्यविषय श्रीकृष्णही प्रपञ्चमें नामरूपमें उदित होकर जीव पर कृपा करते हैं। जीव सद्गुरुपदाश्रयमें इस नामके आश्रित होकर नामी कृष्णके सन्धान पाते हैं। नाम-मामी अभिन्न हैं, इनमें विन्दुमात्र भी भेद नहीं है। कृष्ण ही गुरुपादपद्मरूपमें आविर्भूत होकर भाग्यवान जीवको यह नाम प्रदान करते हैं। जीव गुरुपादपद्मके आश्रयमें आर्त्तिसहित इस नामकी ग्रहण करते रहने पर शीघ्र ही नाम 'ईषत् विकसि पुनः, देखाय निज

रूप गुण, चित्त हरि लय कृष्ण पास। पूर्ण विकसित हञा, ब्रजे मोरे जाय लञा, देखाय निज स्वरूप-विलास।।' श्रीगौर-करुणाशक्ति श्रीगुरुदेव संकीर्त्तनपिता-श्रीगौर-करुणास्वरूप इस नाममहिमाको बताकर जीवके ऊपर करुणा करते हैं। यही नाम ही कृपापूर्वक हमारे हृदयमें अप्राकृत विरहवेदनाको जगा देता है। वह विरह वा विप्रलंभ रसही भजन है। इसमें व्यथा होनेपर भी परानन्द वर्त्तमान है। जागतिक व्यथा जड़सुख भोगमें बाधा होनेपर उतपन्न होती है, किन्तु इस अप्राकृत व्यथामें जो कृष्ण-कार्ष्ण विरहके लिए वेदना है, उसमें किसी जड़ सुखदुःखका घात-प्रतिघात भय द्वन्द्वधर्म नहीं है। यही जीव स्वरूपकी स्वाभाविक अवस्था है। जीव अनित्य अभावानुभावके लिए दुःख और उसकी भाव परिपूर्तिके लिए सुख – इन दोनोंमें निरपेक्ष होकर एकमात्र नित्य वास्तववस्तु कृष्ण-कार्ष्णके लिए अभाव या सद्भाव विशिष्ट हो, यही गुरुपादपद्मकी जीवोंके प्रति कृपादृष्टि, शुभेच्छा या शुभाशीर्वाद है। प्रकटाप्रकट दानों लीलामें ही श्रीगुरुदेव सर्वदा ही कृष्णको "जीव प्रति कर प्रभु शुभदृष्टिपात"- यही प्रार्थना जनाते हैं। इसलिए उनके समान नित्य हितकारी वान्धव और निजजन हमारा और कोई नहीं है। उनकी कृपा लाभके लिए प्रकृत आर्त्तिके अभावमें हृदयमें नानाप्रकारकी अवास्तव स्पृहा जाग उठती है।

श्रीरूपानुगवर ठाकुर नरोत्तम श्रीरूपगोस्वामीके पादपद्मको ही एकमात्र संपद, भजन पूजन, प्राणधन, आभरण, जीवनका भी जीवन, रसनिधि, वाञ्छासिद्धि, वेदका धर्म, व्रत, तप, मंत्रजप, धरम करम— यथासंभव सर्वस्व बोलकर वन्दना किये हैं। उसी पदमें ही सिद्धिलाभ और दोनों नेत्रसे उसी श्रीरूपमाधुरी राशिको ही निरीक्षण करनेकी प्रार्थना जनाते हैं। अदर्शनाहि गरले हृदयमें सुतीव्र ज्वाला बोध करते हैं। श्रीगुरुपादपद्मकी करुणा लाभके लिए हृदयमें इस प्रकारकी ज्वाला बोध न होनेपर साधन-भजन सभी वृथा है। अवश्य ऐसी ज्वाला सहसा उपलब्धि न होनेपर भी उसके लिए साधन-प्रयास तो होना चाहिए! वह न होने पर साधकके जीवनका परिचय कहाँ है?

शिष्यमात्रका ही श्रीगुरुपादपद्मके संबंधरूपी गंधमें उल्लास रहेगा; उनके मनोऽभीष्टको पूर्ण करनेकी चेष्टा रहेगी; उनके भजन स्थान पर वास, उनके द्वारा प्रतिष्ठित मठ मन्दिरमें श्रीविग्रह आदिकी सेवा-चेष्टा; उनके द्वारा प्रवर्त्तित शुद्धभक्तिसिद्धान्तके संप्रसारण चेष्टा; उनके सेवकसंघके प्रति यथायोग्य समादर, सत् हृदयसे प्रणाम और संसेवन वृत्ति रहेगी।

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

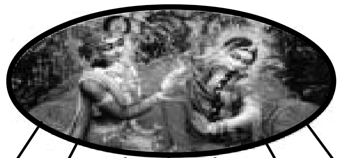

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

वैकुण्ठ–वार्त्तावह

बृहत्–मृदङ्ग

श्रीभागवत–पत्रिका

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना।।

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।।

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः।।

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र।।
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश।।

वर्ष ४४ } श्रीगौराब्द ५१४ वि. सं. २०५७ फाल्गुन मास, सन् २०००, ९ फरवरी–९ मार्च {संख्या १२

श्रीश्रीवृन्दादेव्यष्टकम्

[श्रीलविश्वनाथचक्रवर्तिठाकुरविरचितम्]

श्रीवृन्दादेव्यै नमः

गाङ्गेय–चाम्पेय–तडिद्विनन्दि–रोचिः प्रवाहस्नापितात्मवृन्दे।
वन्धूकरन्धुद्युतिदिव्यवासो वृन्दे नुमस्ते चरणारविन्दम्।।१।।

हे अतिशय उज्ज्वल लाल रंगके वस्त्रोंको धारण करनेवाली वृन्दे! आप अपनी परम सुन्दर अङ्गकान्ति द्वारा स्वर्ण, चम्पक–पुष्प और सौदामिनीका भी तिरस्कार कर रही हैं एवं स्वजनोंको अर्थात् कृष्णभक्तोंको अभिषिक्त कर रही हैं। हम आपके श्रीचरणकमलोंको नमस्कार करते हैं।।१।।

विम्बाधरोदित्वरमन्दहास्यनासाग्रमुक्ताद्युतिदीपितास्ये ।
विचित्ररत्नाभरणाश्रियाढ्ये वृन्दे नुमस्ते चरणारविन्दम्।।२।।
समस्तवैकुण्ठशिरोमणौ श्रीकृष्णस्य वृन्दावनधन्यधाम्नि।
दत्ताधिकारे वृषभानुपुत्र्या वृन्दे नुमस्ते चरणारविन्दम्।।३।।
त्वदाज्ञया पल्लवपुष्पभृङ्गमृगादिभिर्माधवकेलिकुञ्जाः।
मध्वादिभिर्भान्ति विभूष्यमाणा वृन्दे नुमस्ते चरणारविन्दम्।।४।।
त्वदीय-दूत्येन निकुञ्जयूनोरत्युत्कयोः केलिविलाससिद्धिः।
त्वत्-सौभगं केन निरुच्यतां तद् वृन्दे नुमस्ते चरणारविन्दम्।।५।।
रासाभिलाषो वसतिश्च वृन्दावने त्वदीयाङ्घ्रिसरोजसेवा।
लभ्या च पुंसां कृपया तवैव वृन्दे नुमस्ते चरणारविन्दम्।।६।।
त्वं कीर्त्यसे सात्वततन्त्रविद्भिर्लीलाभिधाना किल कृष्णशक्तिः।
तवैव मूर्त्तिस्तुलसी नृलोके वृन्दे नुमस्ते चरणारविन्दम्।।७।।
भक्त्या विहीना अपराधलक्षैः क्षिप्ताश्च कामादितरङ्गमध्ये।
कृपामयि त्वां शरणं प्रपन्ना वृन्दे नुमस्ते चरणारविन्दम्।।८।।
वृन्दाष्टकं यः शृणुयात् पठेद् वा वृन्दावनाधीशपदाब्जभृङ्गः।
स प्राप्य वृन्दावननित्यवासं तत्-प्रेमसेवां लभते कृतार्थः।।९।।

हे वृन्दे! विम्बके समान लाल-लाल होठोंसे निकली हुई आपकी मधुर मुस्कान और नासिकाग्रवर्त्ती मुक्ताकान्ति द्वारा आपका वदन-मण्डल अतिशय शोभित हो रहा है। विचित्र रत्नमय आभरणोंको धारणकर आप परमसौन्दर्यशालिनी हो रही हैं। हम आपके श्रीचरणकमलोंको नमस्कार करते हैं।।२।।

हे वृन्दे! वृषभानुराजनन्दिनी श्रीराधिकाने निखिल वैकुण्ठसमूहके शिरोमणि और अशेषगुण-समन्वित परम पवित्र श्रीकृष्णके प्रियधाम श्रीवृन्दावनमें आपको अधिकार दिया है। हम आपके श्रीचरणकमलोंको नमस्कार करते हैं।।३।।

हे वृन्दे! आपकी आज्ञासे ही वृन्दावनमें पत्र, पुष्प, भ्रमर, मृग, मयूर और शुक-सारिका आदि पशु-पक्षियोंसे श्रीकृष्णका केलिकुञ्जसमूह विभूषित होकर परम शोभाको प्राप्त हो रहा है। हम आपके श्रीचरणकमलोंको नमस्कार करते हैं।।४।।

हे वृन्दे! दूतीत्वके चातुर्य-प्रभावसे ही विलासवासनामयी श्रीराधाकृष्णका केलिविलास सम्पन्न हुआ करता है अर्थात् आप ही दूतीके रूपमें श्रीराधाकृष्णका सुदुर्घट मिलन सम्पादन कराती हैं, उनके केलिविलासमें सहायता किया करती हैं; अतएव संसारमें आपके सौभाग्यकी सीमाका कौन वर्णन कर सकता है? हम आपके श्रीचरणकमलोंको नमस्कार करते हैं।।५।।

हे वृन्दे! कृष्णभक्तगण आपकी ही कृपासे श्रीरासलीला-दर्शनाभिलाष, श्रीवृन्दावनमें वास और आपके प्राणवल्लभ श्रीराधा-माधवकी चरणसेवा प्राप्त करते हैं। हम आपके

श्रीचरणकमलोंको नमस्कार करते हैं।।६।।

हे वृन्दे! श्रीनारद आदि भक्तों द्वारा रचित मन्त्रोंमें सुनिपुण पण्डितोंने आपको श्रीकृष्णकी लीलाशक्ति बतलाया है और इस नरलोकमें सुप्रसिद्ध वृक्षरूपी श्रीतुलसी देवी आपकी ही मूर्त्ति हैं। हम आपके श्रीचरणकमलोंको नमस्कार करते हैं।।७।।

हे कृपामयि देवि! हम भक्तिहीन हैं, सैकड़ों अपराधोंसे पूर्ण हैं, भवसमुद्रकी काम-क्रोधादिरूप भीषण तरङ्गोंमें निक्षिप्त हैं; अतएव हम आपकी शरणमें आये हैं। आप कृपाकर इस सुदुस्तर भवसागरसे हमारा उद्धार करें। हम आपके श्रीचरणकमलोंको नमस्कार करते हैं।।८।।

जो व्यक्ति वृन्दावनाधिपति श्रीश्रीराधा-गोविन्दके चरणकमलोंका भृंगस्वरूप होकर श्रीवृन्दादेवीके इस अष्टकका पाठ या श्रवण करते हैं, वे श्रीवृन्दावनमें नित्य-निवास प्राप्तकर श्रीश्रीराधाकृष्णकी प्रेमसेवा लाभकर कृतार्थ हो जाते हैं।।९।।

सद्गुण और भक्ति

—ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

श्रीहरिभक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थमें भक्तिके छः माहात्म्य बतलाये गये हैं, जिनमें शुभदत्व एक है। यह कितने प्रकारका है, इसके उत्तरमें यह श्लोक है—

शुभानि प्रीणनं सर्वजगतामनुरक्तता ।
सद्गुणाः सुखमित्यादीन्याख्यातानि मीनषिभिः।।

(भक्तिरसामृतसिन्धु)

जिन पुरुषमें भक्ति उदित होती है, वे सम्पूर्ण जगतको प्रीति प्रदान करते हैं तथा वे समस्त जगतके अनुरागभाजन होते हैं। वे सहज ही सब सद्गुणोंके आधार बन जाते हैं, सब प्रकारके पवित्र सुखों और अनेक प्रकारके दूसरे कल्याणोंको प्राप्त कर लेते हैं। विद्वानोंने इनको शुभ बतलाया है।

भगवद्भक्तमें सभी गुण और देवताओंका समावेश होता है।

भक्तोंमें जिन गुणोंका समावेश होता है, उन सबका श्रीमद्भागतमें इस प्रकार वर्णन किया गया है—

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना
सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः।
हरावभक्तस्य कुतो महाद्गुणाः
मनोरथेनासति धावतो बहिः।।

(भा.५/१८/१२)

जब तक भक्ति-उन्मुखी श्रद्धा नहीं होती, तब तक जीव योगमार्गीय गुणोंकी ओर आकृष्ट रहता है। जिनकी भक्ति उन्मुखी श्रद्धा उदित हो गई है, सत्पुरुषोंके सत्सङ्गमें उनका यह होता है कि योगमार्गमें जिन गुणोंका अभ्यास किया जाता है, उनके लिये अभ्यास करना वे आवश्यक नहीं समझते। क्योंकि उन गुणोंकी प्राप्ति हो जाने पर भी यदि भक्तिका अभाव रहता है, तो वह वैसा ही होता है जैसे किसी अत्यन्त कुरूपा स्त्रीको बहुत-से आभूषण पहना दिये जायँ। दूसरी बात यह कि इनको उसी प्रकार सौभाग्यवश

सन्तोंकी कृपासे भक्ति-उन्मुखी श्रद्धा यदि हो जाय, तो वे बहुत शीघ्र ही उत्तमा भक्तिके साधनमें प्रवृत्त हो सकेंगे—इसमें सन्देह नहीं।

सत्सङ्गमें कृष्णभक्ति साधनका उपदेश

प्रिय भाईयो! आपलोग अपने समयको व्यर्थ न गवाँकर अपने सद्गुणोंके उत्तम फल-स्वरूप भक्त-सन्तोंका पदाश्रय कर जीवन और धर्मको सफल कीजिये। केवल सद्गुणोंके होनेसे ही भक्ति उदित हो जायेगी—ऐसी बात नहीं है। परन्तु भक्ति होनेसे समस्त प्रकारके सद्गुण सहज ही उपस्थित हो जाते हैं। कृष्णैकशरणके अतिरिक्त दूसरे-दूसरे सद्गुण होनेपर भी जब तक भक्तिके प्रति श्रद्धा नहीं हो जाती, तब तक भक्ति नहीं हो सकती। कृष्ण-भक्तिके बिना सारे सद्गुणोंका कोई महत्त्व नहीं है। कृष्णभक्ति-विहीन सद्गुणसम्पन्न जीवका जीवन व्यर्थ ही समझना चाहिए। ❑

कृष्णे मतिरस्तु

—ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर

संसारमें जब कोई व्यक्ति अपनेसे श्रेष्ठ व्यक्तिको प्रणाम करता है, तब उसके उत्तरमें श्रेष्ठ व्यक्ति ऐसा कहते हैं कि 'तुम्हारा कल्याण हो।' इसमें दो बातें अन्तर्निहित होती हैं। एक तो प्रणाम या नमस्कार करनेवाले व्यक्तिके अन्दर यह भावना होती है कि इन श्रेष्ठ व्यक्तिके आशीर्वादसे मेरा धन-जन, पुत्र-परिवार सुखी रहें, मैं सांसारिक सुखोंको प्राप्त कर सकूँ। दूसरी ओर श्रेष्ठ व्यक्तिको वह सम्मान भी प्रदान करता है। लोगोंको सम्मान बड़ा प्रिय होता है। सम्मान पाते ही वे गद्गद होकर आशीर्वाद देने लगते हैं—चिरंजीवी होओ, तुम्हारा कल्याण हो, यश बढ़े, धन-जन बढ़े, निरोग होओ इत्यादि इत्यादि। इन आशीर्वादके वचनोंको सुनकर प्रणाम करनेवाले संसारी लोग भी अपनेको कृतार्थ समझने लगते हैं। मनोऽभीष्ट पूर्ण हो, विद्यालाभ हो, शरीर सुखी रहे—यहीं तक आशीर्वादकी दौड़ है। देव और द्विजोंके चरणोंमें दण्डवत् करके भी हम 'वरं देहि, धनं देहि, पुत्रं देहि' आदि नाना प्रकारके कल्याणकी कामना किया करते हैं।

इस जगतमें भगवानकी शक्तिका परिचय है—जो लोग ऐसा समझते हैं, वे भगवानको एक तात्कालिक अवस्था-विशेष मानकर ब्रह्मकी नित्यता या परमात्माके व्यापकत्वको भगवत्तासे श्रेष्ठ समझते हैं। कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि निःशक्तिक ब्रह्म या परमात्माकी जड़ाशक्तिकी प्रबलता ही सब कुछ है। परन्तु ऐसी-ऐसी कामनाएँ बद्धजीवोंके अपस्वार्थ तक ही सीमित होती हैं। जब तक सारी कामनाएँ अप्राकृत कामदेवकी सेवाके लिए नहीं होतीं, तब तक बद्धजीव सांसारिक कामनाओंकी पूर्त्तिके लिये ही बेचैन होता है।

संसारमें भ्रमण करता हुआ जीव बड़े सौभाग्यसे सत्संग लाभ करता है। उसके द्वारा जब वह भगवानके पराक्रमकी कथाओंका श्रवण करता है, उस समय भगवान त्रिविक्रमके

स्वरूपकी उपलब्धि करके अपने अस्तित्वकी रक्षाकी भावना उनके हृदयमें उदित होती है। धीरे-धीरे गुरु-कृष्णकी कृपासे भजनके प्रभावसे भगवद्वस्तुकी नित्यता, भगवद्वस्तुकी पूर्णज्ञानमयता तथा भगवद्वस्तुकी निरवच्छिन्न आनन्दमयताकी उपलब्धि करने पर वे पूर्णकी सेवाके अतिरिक्त और किसी प्रकारकी अभिलाषा नहीं रखते। उन्हें सांसारिक कल्पित कल्याणोंकी आवश्यकता नहीं होती।

जीव अंश है, भगवान पूर्ण हैं। यदि जीव भी पूर्ण होता, तो वह मायाके चक्करमें कदापि नहीं पड़ता। जो लोग सदा सांसारिक भोगोंके पीछे ही दौड़ते रहते हैं, उनकी मति भगवानके श्रीचरणकमलोंमें भला कैसे लग सकती है? परन्तु सत्संगका सेवन करने पर जब वे यह सुनते हैं कि यह जड़ जगत् सर्वशक्तिमान भगवानकी अचित् शक्तिका ही कार्य है और मैं, जीवात्मा भी उन्हीं पूर्ण और सर्वशक्तिमानका क्षुद्र अंश हूँ, तब उनके भजन द्वारा पवित्र हुए अन्तःकरणमें सर्वतन्त्र स्वतन्त्र भगवानकी सर्वशक्तिमत्ता और पूर्णस्वतन्त्रताकी उपलब्धि होती है। उसी समय वह यह भी जान लेता है कि पूर्णपुरुषकी सेवा किसे कहते हैं, अर्थात् भक्तिका स्वरूप क्या है? तात्पर्य यह कि वह जान लेता है कि जीव भगवानका क्षुद्र अंश है तथा भगवानकी सेवा ही मुक्त जीवात्माका नित्य-स्वभाव है। इसीलिए साधुपुरुष जब कभी किसीको आशीर्वाद देते हैं तो यही कहते हैं कि ***'कृष्णे मतिरस्तु'*** अर्थात् 'कृष्णके चरणोंमें मति रहे।'

श्रीकृष्णमें मति नहीं रहनेसे जीव श्रीसीतारामकी उपासनामें नियुक्त हो पड़ता है। श्रीसीतारामकी उपासनामें उत्साहका अभाव होनेपर श्रीलक्ष्मी-नारायणकी सेवामें रुचि होती है। इसमें भी विघ्न उत्पन्न होनेपर जीव पुरुषोत्तम वासुदेवकी सेवाको ही नित्य-धर्म मानता है। इसमें भी बाधा उपस्थित होनेपर जीव स्वगत-सजातीय-विजातीय-भेदरहित निर्विशेष ब्रह्मकी ओर अग्रसर होकर अपनेमें शिवत्व या ब्रह्मत्वकी कल्पना करनेका दम्भ भरने लगता है।

इतने पर भी सन्तुष्ट न होकर जीव प्रकृति-पूजाको श्रेष्ठ अनुमान कर इसी तरफ बड़े उत्साहसे झुक पड़ता है तथा भवानीपतिके वक्षःस्थल पर देवीको उदण्ड नृत्य करते देख कर सकाम हो पड़ता है।

हम जड़ीय दृष्टिसे भौतिक पदार्थोंको देख कर उन्हींकी आलोचना करते हैं तथा उन्हींके सम्बन्धमें हम चेतन-धर्मका व्यवहार भी करते हैं। उस समय जड़वाद, सन्देहवाद, नास्तिक्यवाद, क्लीवविचार, निर्विशेष जड़ाप्रकृतिका विचार—ये सब हमें निगलकर हमारी पूजाकी चेष्टाको नष्ट कर देते हैं और हमें भोगी बना देते हैं। उसी समय हम दूसरोंसे नमस्कार और प्रणाम आदि पानेकी आशासे बैठे रहते हैं।

कोई-कोई गुरुके आसन पर बैठ कर स्वयं अपने शिष्योंके भी शिष्य बन पड़ते हैं और उसके मनोरंजनके लिए सब कुछ करते हैं। कोई-कोई कुछ अर्थके बदले भगवानके सेवक भक्तोंको भगवानकी सेवासे अलग कर अपनी सेवामें ही नियुक्त करते हैं तथा उसे कनक-कामिनीका प्रलोभन देकर अपने भोगमें लगाते हैं। कभी-कभी नाम-भजनमें प्रेमोदय नहीं हो रहा है—ऐसा सोचकर नाम-भजन

परित्याग कर ***'यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे'*** आदि जड़ीय विचारोंको भगवानके कन्धोंपर चढ़ाकर आप मौनी बन जाते हैं और इसीको श्रुतिका प्रतिपाद्य विषय कहते हैं। कभी-कभी अष्टयोगिनीकी सिद्धिके लिये चक्रमें भैरवीकी पूजामें तत्पर होते हैं।

प्राकृत सहजियागण ***'कृष्णे मतिरस्तु'*** आदि साधुजनोंके आशीर्वादका गलत अर्थ लेकर कृष्णको भोग करनेकी इच्छासे प्राकृत नारीकी पूजामें अपने स्त्रैण विचारको ही अभिधेय (साधन) समझते हैं। ऐसा करना ***'कृष्णे मतिरस्तु'*** का अपव्यवहार करना है। भोग-वासनाग्रस्त व्यक्ति जड़ीय भोगोंमें आसक्त होनेके कारण ***'अनासक्तस्य विषयान्'*** और ***'प्रापञ्चिकतया बुद्ध्या'***—इन दोनों श्लोकोंका अर्थ समझ नहीं सकते। इसीलिए दयानिधि श्रीकृष्णचैतन्यदेवने 'युक्त' और 'फल्गु' दोनों वैराग्योंका स्वरूप बतलाकर ***'कृष्णे मतिरस्तु'*** के विचारको बद्धजीवोंके हृदयमें उद्भासित किया है। श्रीकृष्ण और श्रीकृष्णचैतन्य—भिन्न नहीं हैं। अतएव श्रीचैतन्यका दान ही श्रीकृष्णका कल्याणदान है। ❑

श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलम्

(गताङ्कसे आगे)

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिप्रकाश पुरी महाराज

फिर प्रश्न होता है कि पुराणोंके स्कन्द पुराण, अग्नि पुराण, वायु पुराण, गरुड़ पुराण आदि नाम कैसे हुए? इसका उत्तर यह है कि जिस प्रकार कठ आदि ऋषियोंने वेदोंकी जिन कतिपय शाखाओंका अध्ययन किया था अथवा कराया था, उन शाखाओंकी प्रसिद्धि उनके ही नामके अनुसार 'काठक शाखा' इत्यादि हुए हैं, उसी प्रकार सृष्टिके आरम्भमें स्कन्द और अग्नि आदिने जिन-जिन पुराणोंको कहा है, उन-उन पुराणोंका नामकरण उनके ही नामानुसार हो गया है। शास्त्रोंमें कहीं-कहीं पुराणोंका रचयिता व्यासदेवको बताया गया है। इसका एकमात्र कारण यह है कि व्यासदेवने उनको प्रकाशितमात्र किया है।

यहाँ पर पुनः प्रश्न उठता है कि वेदाध्ययनका अधिकार केवल ब्राह्मणको ही है; किन्तु यदि इतिहास और पुराणोंको वेद माना जाता है तो उनका अध्ययन करनेका अधिकार सबको (मानवमात्रको) क्यों है? इसका उत्तर यह है कि जिस प्रकार 'श्रीकृष्ण नाम' समस्त वेदरूपी कल्पलताओंका सत्फल होने पर भी उसमें मानवमात्रका अधिकार है, परन्तु वेदोंमें सबका अधिकार नहीं है, उसी प्रकार इतिहास और पुराण साक्षात् वेद होने पर भी उनमें सबका अधिकार है।

स्कन्द पुराणके प्रभास खण्डमें कृष्णनामके सम्बन्धमें कहा गया है—

मधुरमधुरमेतन्मंगलं मंगलानां
सकल निगमवल्ली सत्फलं चित्स्वरूपम्।
सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा
भृगुवर! नरमात्रं तारयेत् कृष्णनाम।।

हे भृगुश्रेष्ठ! मधुरसे भी सुमधुर, समस्त

प्रकारके कल्याणोंका कल्याणस्वरूप, ज्ञानस्वरूप एवं समस्त वेदलताओंका सत्फल श्रीकृष्णनामका श्रद्धापूर्वक हो या अश्रद्धापूर्वक हो एक बार भी उच्चारण करनेसे मनुष्यमात्र ही मुक्तिको प्राप्त हो जाता है।

विष्णुधर्मोत्तरमें भी लिखा है—

ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदोऽप्यथर्वणः।
अधीतास्तेन येनोक्तं हरिरित्यक्षरद्वयम्॥

जो व्यक्ति 'हरि' केवल इन दो अक्षरोंका उच्चारण कर लेता है, उसका ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद सबका अध्ययन करना हो जाता है।

इतिहास और पुराण साक्षात् वेद हैं तथा वे ऋग्वेदादि वेदोंके अर्थनिर्णायक हैं, यह बात पहले ही कही जा चुकी है। इनमें से इतिहास और पुराण साक्षात् वेद हैं, यह बात सिद्ध हो चुकी है। अब यह दिखलाया जा रहा है कि इतिहास और पुराण वेदार्थनिर्णायक शास्त्र हैं। विष्णु पुराणमें कहा गया है—"भगवान् श्रीव्यासदेवजीने महाभारतमें समस्त वेदोंका अर्थ प्रकाशित किया है।"

नारद पुराणमें भी कहा गया है—

वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः।

अर्थात् समस्त वेद पुराणोंमें सन्निहित हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

यद्यपि मनु इत्यादि ऋषियों द्वारा प्रकटित स्मृति आदि शास्त्र यथार्थ प्रकाशक हैं, तथापि साक्षात् भगवान व्यासदेव द्वारा प्रकाशित इतिहास और पुराणोंकी श्रेष्ठता और वैशिष्ट्य स्मृति शास्त्रोंसे कहीं अधिक है। पद्म पुराणमें भी लिखा गया है कि वेदव्यास जो जानते हैं, उसको ब्रह्मादि देवता भी नहीं जानते हैं; किन्तु जो कुछ ब्रह्मादि देवता जानते हैं, उन सबको वेदव्यासजी जानते हैं।

स्कन्द पुराणमें भी कहा गया है—"जिस प्रकार गृहस्थके घरसे कोई व्यक्ति किञ्चिन्मात्र धन लेकर व्यवहारमें लाता है, उसके घरके सभी सामानोंका व्यवहार नहीं कर सकता है, उसी प्रकार श्रीव्यासदेवजीके हृदयस्थित तत्त्वका कुछ अंश ही ब्रह्मादि देवतागण व्यवहारमें लाते हैं।"

विष्णु पुराणमें श्रीपराशर मुनि भी कहते हैं—"हे मैत्रेय! मेरे पुत्र व्यासने वैवस्वत मन्वन्तरके अट्ठाइसवें चतुर्युगमें एक वेदके चार भाग किये हैं। इस बुद्धिमान व्यासने समस्त वेदोंको जिस प्रकार विभक्त किया है तथा उनमें शाखा-भेद किया है, उसीका दूसरे-दूसरे ऋषि तथा मैं चारों युगोंमें व्यवहार करता हूँ। हे मैत्रेय! कृष्णद्वैपायन व्यासको साक्षात् भगवान श्रीनारायण समझो।"

स्कन्द पुराणमें भी देखा जाता है—"सत्ययुगमें श्रीनारायण भगवानके मुखारविन्दसे उत्पन्न यह ज्ञान पूर्ण था, त्रेता युगमें यह ज्ञान कुछ विकृत हो गया, बादमें द्वापर युगमें यह सारा ज्ञान लुप्त हो जानेसे देवतालोग दूसरा कोई उपाय न देखकर ब्रह्मा और शिवजीके साथ शरणागतपालक श्रीनारायणके शरणागत हुए और उनसे सारा वृत्तान्त कहा। उनकी बात सुनकर भगवान श्रीहरि पराशरनन्दन व्यासदेवके रूपमें अवतीर्ण हुए एवं वेदादि शास्त्रोंका पुनरुद्धार किया।"

अतएव वेदोंका अर्थ प्रकाश करनेवाले इतिहास-पुराणोंको पंचम वेद मानना ही कल्याणप्रद है। विचारकर देखनेसे वेदोंकी

अपेक्षा पुराणोंका ही गौरव अधिक दृष्टिगोचर होता है। श्रीनारद पुराणमें कहा गया है—

वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थं वरानने।
वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः।।
पुराणमन्यथा कृत्वा तिर्यक् योनिमवाप्नुयात्।
सुदान्तोऽपि सुशान्तोऽपि न गतिं क्वचिदाप्नुयात्।।

श्रीमहादेवजी पार्वतीजीसे कह रहे हैं—"हे सुमुखि! मैं तो पुराणार्थको वेदार्थसे भी अधिक समझता हूँ। क्योंकि वेदोंका सब कुछ पुराणोंमें सन्निविष्ट है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जो लोग पुराणोंकी उपेक्षा करते हैं, वे जितेन्द्रिय और धार्मिक होने पर भी पक्षीका जन्म प्राप्त करते हैं। उन लोगोंकी सद्गति होनेकी कोई सम्भावना नहीं।

स्कन्द पुराण, प्रभास खण्डमें भी देखा जाता है—

वेदवन्निश्चलं मन्ये पुराणार्थं द्विजोत्तमाः।
वेदाः प्रतिष्ठिता सर्वे पुराणे नात्र संशयः।।
विभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं चालयिष्यति।
इतिहासपुराणैस्तु निश्चलोऽयं कृतः पुरा।।
यन्न दृष्टं हि वेदेषु तद्दृष्टं स्मृतिषु द्विजाः।
उभयोर्यन्न दृष्टं हि तत् पुराणैः प्रगीयते।।
यो वेद चतुरो वेदान् सांगोपनिषदो द्विजाः।
पुराणं नैव जानाति न च स स्याद्विचक्षणः।।

अर्थात् ब्राह्मणो! मैं वेदोंकी तरह पुराणोंको भी सर्वसम्मत और नित्य सत्य मानता हूँ। पुराणोंकी उपेक्षा करनेसे वेदार्थ कभी भी उपलब्ध नहीं हो सकता, क्योंकि वेदका अर्थ पुराणोंमें प्रकाशित है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है। पुराणोंका अध्ययन किये बिना वेदोंका अर्थ समझना असम्भव है। इतिहास और पुराणों द्वारा जिनका वैदिक सिद्धान्त दृढ़ नहीं होता, उन अल्पज्ञोंसे वेदमाताको भी डर लगता है। क्योंकि जिस प्रकार अल्पज्ञ मूर्ख पुत्रकी तरफसे पूजनीया जननी पर प्रहार होना सम्भव है, उसी प्रकार इतिहास और पुराणसे अनभिज्ञ व्यक्ति द्वारा वेदोंका कदर्थ होना भी सम्भव है। इतिहास और पुराणोंमें ही वेदोंका वास्तविक अर्थ प्रकाशित है। उनका विपरीत अर्थ करनेसे वेदोंका ही विकृत अर्थ करना होता है। हे द्विजो! वेदोंमें जिन विषयोंका स्पष्ट रूपसे वर्णन नहीं है, उसका स्मृतियोंमें वर्णन है, स्मृति वचनोंसे अस्फुट वेदमंत्रोंका भी स्पष्टीकरण हो जाता है। स्मृतिमें भी जो विषय स्पष्ट नहीं है, वह पुराण वचनोंमें स्पष्ट है। इसलिए जो लोग साम आदि वेद और उपनिषद तो पढ़ चुके हैं, परन्तु पुराणोंको नहीं मानते, उनको बुद्धिमान नहीं कहा जा सकता है।

अब यह सिद्ध हो गया कि तत्त्व-निर्णयके सम्बन्धमें पुराण शास्त्र ही यथार्थ प्रमाण हैं। परन्तु आजकल पुराण ठीक-ठीक प्रचलित न होनेके कारण तथा भिन्न-भिन्न पुराण भिन्न-भिन्न देवताओंका प्रतिपादक होनेके कारण अल्पज्ञ जनसाधारणके लिए वेदोंकी भाँति ही पुराणोंका तात्पर्य निर्णय कर लेना बड़ा कठिन है। मत्स्य पुराणमें भी कहा गया है—"सात्त्विक पुराण शास्त्रोंमें श्रीहरिका माहात्म्य अधिक रूपमें वर्णित है, राजस पुराणोंमें ब्रह्माजीका और तामस पुराणोंमें अग्नि, दुर्गा और शिव आदि तामस देवताओंका; मिश्रित शास्त्रोंमें अर्थात् सात्त्विक, राजसिक, तामसिक गुणोंवाले पुराणोंमें सरस्वती और पितृ पुरुषोंका माहात्म्य अधिक बतलाया गया है।" अतएव इस प्रकारके

पुराणोंमें कौन-सा पुराण श्रेष्ठ है और किस पुराणके अनुसार उपासना करना उत्तम है, इसका उत्तर यह है कि—***'सत्त्वात् संजायते ज्ञानः', 'सत्त्वं यद् ब्रह्मदर्शनम्'*** अर्थात् सत्त्वसे ज्ञान प्राप्त होता है और सत्त्वसे ही ब्रह्मका साक्षात्कार होता है। इस न्यायके अनुसार सात्त्विक पुराण ही परमार्थका निरूपण करनेमें यथार्थ प्रमाण माने गये हैं। किन्तु सात्त्विक पुराणोंमें भी भगवत्स्वरूपकी प्राप्तिके साधन भिन्न-भिन्न रूपमें बतलाये गये हैं। अतः फिर प्रश्न होता है कि सात्त्विक पुराणोंमें भी कौन-सा पुराण सर्वश्रेष्ठ है। ऐसी दशामें संशय करनेवाले व्यक्तियोंके संशयको दूर करनेका क्या उपाय है? यद्यपि वेदोंका सुस्पष्ट रूपमें अर्थ समझानेके लिए भगवान श्रीव्यासदेवजीने ब्रह्मसूत्रकी रचना की है और उसके द्वारा ही परमार्थको भलीभाँति समझा जा सकता है। परन्तु उसके सम्बन्धमें भी भिन्न-भिन्न प्रकारके मत हैं। क्योंकि उसके सूत्रोंमें थोड़े ही शब्दोमें गागरमें सागरकी भाँति गूढ़तम अनेक भाव भरे होनेके कारण कोई-कोई उन सूत्रोंका विरुद्ध या कल्पित अर्थ बतलाकर जनसाधारणको विभ्रान्त करते हैं। इसलिए तो पूछता हूँ, यथार्थ निर्णय करने तथा नाना प्रकारके संशयोंका समाधान करनेका उपाय क्या है? हाँ, यदि कोई ऐसा सर्वोत्तम पुराण हो, ऐसा सर्वश्रेष्ठ पुराणरूप अपौरुषेय ग्रन्थ हो जिसमें वेद, इतिहास और पुराणोंका सारार्थ भरा हो, तो उसके द्वारा ही वास्तव सिद्धान्तका निर्णय किया जा सकता है।

इसके सम्बन्धमें श्रील जीव गोस्वामी कहते हैं—सर्व-प्रमाणचक्रवर्त्तिस्वरूप श्रीमद्भागवत महापुराण ही ऐसा सर्वश्रेष्ठ पुराण है। भगवान श्रीव्यासदेवजीको चार वेद, ब्रह्मसूत्र, अट्ठारह पुराण एवं महाभारतका संकलन कर देने पर भी सन्तोष नहीं मिला। अन्तमें उन्होंने समाधिस्थ हो श्रीमद्भागवतका प्रकाश किया। मत्स्यपुराणमें श्रीमद्भागवतका स्वरूप बतलाया गया है—"जिस पुराणमें गायत्रीको आधार मानकर धर्मका विस्तृत रूपमें वर्णन है और जिसमें वृत्रासुर वधका प्रसंग विद्यमान है, उसीको श्रीमद्भागवत कहते हैं। जो व्यक्ति भाद्रमासमें स्वर्ण-निर्मित सिंहासन पर श्रीमद्भागवतको स्थापित कर दान करता है, वह निश्चय ही वैकुण्ठधाममें गमन करता है।"

श्रीमद्भागवत भगवान और भक्त दोनोंके बड़े ही प्रिय हैं। पद्मपुराणमें महर्षि गौतमजी महाराज अम्बरीषसे पूछते हैं—"राजन्! क्या आप भगवान श्रीहरिके सामने श्रीभागवत पुराणका और उसमें भी भक्त प्रह्लादके उपाख्यानका पाठ करते हैं?" अन्यत्र उसी पुराणमें वे व्यञ्जुली द्वादशीके प्रसङ्गमें अम्बरीष महाराजसे कहते हैं—"हे राजन्! विष्णुकी प्रीतिके लिए रात्रि-जागरण, हरिकथा-श्रवण, गीता, विष्णु-सहस्रनाम और श्रीशुकदेव द्वारा कथित भागवत पुराणका पाठ करना कर्त्तव्य है।"

पद्म पुराणमें और भी कहा गया है—

अम्बरीष! शुकप्रोक्तं नित्यं भागवतं शृणु।
पठस्व स्वमुखेनापि यदीच्छसि भवक्षयम्॥

अम्बरीष! यदि तुम संसारसे मुक्त होना चाहते हो, तो प्रतिदिन श्रीशुकदेवके मुखसे कहे गये श्रीमद्भागवतका अवश्यमेव श्रवण करो।

स्कन्दपुराणमें भी कहा गया है—

श्रीमद्भागवतं भक्त्या पठते हरिसन्निधौ।
जागरे तत्पदं याति कुलवृन्दसमन्वितः॥

जो हरिवासर (एकादशी) में श्रीहरिके समीप श्रीमद्भागवतका पाठ करता हुआ रात्रि-जागरण करता है, वह अपने कुलके साथ वैकुण्ठधामको प्राप्त होता है।

गरुड़ पुराणमें भी कहा गया है—

पूर्णः सोऽयमतिशयः।
अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थविनिर्णयः।
गायत्रीभाष्यरूपोऽसौ वेदार्थपरिबृंहितः॥
पुराणानां सामरूपः साक्षाद्भगवतोदितः।
द्वादशस्कन्धयुक्तोऽयं शतविच्छेदसंयुतः।
ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रः श्रीमद्भागवताभिधः॥

अर्थात् श्रीमद्भागवत परिपूर्ण वस्तु है। इसमें ब्रह्मसूत्रका अर्थ और महाभारतका तात्पर्य विशेषरूपसे निर्णीत हुआ है। यह गायत्रीका भाष्यस्वरूप भी है। श्रीमद्भागवतमें वेदोंका अर्थ भी परिस्फुट है। जिस प्रकार वेदोंमें सामवेद श्रेष्ठ है, उसी प्रकार पुराणोंमें श्रीमद्भागवत प्रधान है। यह साक्षात् भगवानकी वाणी है। इसमें बारह स्कन्द, तीन सौ पैंतीस अध्याय और अट्ठारह हजार श्लोक हैं।

स्कन्दपुराणमें भी श्रीमद्भागवतको सर्वश्रेष्ठ पुराण कहा गया है—

शतशोऽथ सहस्त्रैश्च किमन्यैः शास्त्रसंग्रहैः।
न यस्य तिष्ठते गेहे शास्त्रं भागवतं कलौ॥
कथं स वैष्णवो ज्ञेयः शास्त्रं भागवतं कलौ।
गृहे न तिष्ठते यस्य स विप्रः श्वपचाधमः॥
यत्र यत्र भवेद् विप्र शास्त्रं भागवतं कलौ।
तत्र तत्र हरिर्याति त्रिदशैः सह नारद॥
यः पठेत् प्रयतो नित्यं श्लोकं भागवतं मुने।
अष्टादश पुराणानां फलं प्राप्नोति मानवः॥

अर्थात् कलियुगमें जिस व्यक्तिके घरमें श्रीमद्भागवत नहीं होता, वह दूसरे हजार-हजार ग्रन्थोंका संग्रह करके भी अपना कुछ भी कल्याण नहीं कर सकता। कलियुगमें जिस ब्राह्मणके घरमें श्रीमद्भागवत नहीं होता वह भला कैसे वैष्णव कहा जा सकता है? वैसा ब्राह्मण तो चण्डालसे भी अधिक नीच होता है। हे विप्र नारद! कलियुगमें जहाँ जहाँ श्रीमद्भागवत विराजमान होता है, वहाँ वहाँ भगवान श्रीहरि अपने नित्य पार्षदोंके साथ पधारते हैं। हे मुने! जो व्यक्ति यत्नपूर्वक प्रतिदिन श्रीमद्भागवतके श्लोकोंका पाठ करता है, उसको अट्ठारहों पुराणोंका पाठ करनेका फल प्राप्त होता है।

प्रसिद्ध हेमाद्रिकारने भी कहा है-

वेदाः पुराणं काव्यञ्च प्रभुर्मित्रं प्रियेव च।
बोधयन्तीति प्राहुस्त्रिवृद्भागवतं पुनः॥

अर्थात् वेद, पुराण और काव्य—ये क्रमशः प्रभु, मित्र और प्रेयसीकी भाँति हितका बोध कराते हैं। परन्तु श्रीमद्भागवत उक्त वेद आदि तीनोंके गुणोंसे युक्त रहनेके कारण अकेले ही तीनों शास्त्रोंकी भाँति हितोपदेश करते हैं।

श्रीश्रीगौर-कृष्णके नित्यपार्षद श्रीजीव गोस्वामीने अपने श्रीतत्त्वसन्दर्भ नामक ग्रन्थमें श्रीमद्भागवतको अमल पुराण तथा शास्त्र-शिरोमणि प्रमाणित किया है। जगद्गुरु श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुरने भी स्वरचित प्रसिद्ध श्लोकमें श्रीमद्भागवतको अमल प्रमाण बतलाया है-

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं
रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो न परः॥

श्रीगौराङ्ग सुधा

श्रीमान् परमेश्वरी ब्रह्मचारी

गृहस्थियोंको शिक्षा

प्रभुके द्वारा दिग्विजयी पण्डितकी पराजयका समाचार सवर्त्र फैल गया। सभीको अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि सरस्वतीके वरपुत्र एक दिग्विजयी पण्डितको निमाईने किस प्रकार पराजित किया? जो पण्डिताभिमानी लोग श्रीगौर सुन्दरसे द्वेष करते थे, वे भी श्रीगौरसुन्दरके पाण्डित्यकी प्रशंसा करने लगे। उन सभीने एक स्वरसे प्रभुको 'आध्यापकशिरोमणि' की पदवीसे अलंकृत किया। बड़े-बड़े विषयी लोग भी पालकीसे जाते समय मार्गमें श्रीगौरसुन्दरके दर्शन होते ही सम्भ्रम बुद्धिसे पालकीसे नीचे उतरकर उन्हें प्रणाम करते। नवद्वीपमें जिस किसीके घरमें भी किसी भी प्रकारका धर्म-कर्म होता, तो वे खाद्य-वस्त्र एवं नाना प्रकारकी वस्तुएँ भेंटस्वरूप प्रभुके घरमें पहुँचाते थे। इस प्रकार प्रभुके घरमें खाने-पीने-पहननेकी वस्तुओंके ढेर लग जाते थे। परन्तु अपने स्वभावके अनुरूप प्रभु दीन-दुखियोंको वे वस्तुएँ सप्रेम दान कर देते थे। अतः प्रायः सब समय उनके घरमें अतिथियोंका आना जाना लगा ही रहता था।

एक दिन नवद्वीपमें दूर देशसे दश-बीस साधु आये। श्रीगौरसुन्दरकी दृष्टि उनपर पड़ी तो बिना कुछ सोचे-विचारे उन्हें अपने घरपर भोजनके लिए उन्हें आमंत्रित कर दिया तथा शचीमाताके पास किसीके माध्यमसे संदेश पहुँचवा दिया कि बीस संन्यासियोंके लिए प्रसादकी व्यवस्था करनी पड़ेगी। यह सुनकर माता बहुत चिन्तित हो विचार करने लगी कि यह लड़का बिल्कुल निर्बोध है। शचीमाता यह सोचकर अवाक रह गईं कि निमाईको पता है कि आज घरमें हमारे खानेके लिए ही पर्याप्त भोजन नहीं है, फिर भी इसने बीस संन्यासियोंको निमंत्रित कर दिया।

अभी शचीमाता इस विषयमें चिन्ता कर ही रही थीं कि उसी समय एक व्यक्ति आकर दाल-चावल-घी इत्यादि बहुत-सी खाद्य वस्तुएँ उन्हें देते हुए बोला कि आपके पुत्रने ये सब वस्तुएँ भेजी हैं। यह सुनकर शचीमाता अतिप्रसन्न हो गईं। लक्ष्मीजी प्रसन्न होकर रसोई बनानेमें जुट गईं। उसी समय उन संन्यासियोंके साथ श्रीगौरसुन्दर आ गये। उन्होंने अपने हाथोंसे उन संन्यासियोंको प्रसाद भोजन कराया तथा उन्हें संतुष्टकर विदा किया।

अपने प्रभुको पहचान कर कभी-कभी ब्रह्मा, शिव आदि भी संन्यासियोंके वेषमें अपने प्रभुके दर्शन एवं उनकी कृपा प्राप्त करनेके लिए आते थे। जितने भी अतिथि अथवा साधु-सन्त प्रभुको दिखते, उनसे वे अवश्य ही प्रसाद पानेके लिए निवेदन करते थे। इस प्रकार प्रभु स्वयं अतिथिसेवाका आचरणकर गृहस्थियोंको शिक्षा प्रदान करते थे। शास्त्रोंमें वर्णन है कि यदि गृहस्थी अतिथिसेवा न करे तो वह पशु-पक्षियोंसे भी अधम है। क्योंकि पशु-पक्षी तिर्यक जीव होनेके कारण जो कुछ प्राप्त करते हैं, उसे खा लेते हैं। वे सञ्चय

नहीं कर सकते, क्योंकि उनका निश्चित आश्रय नहीं होता। मनुष्य सामाजिक और श्रेष्ठ प्राणि है, अतः इसका आश्रय होता है तथा सञ्चय भी कर सकता है। परन्तु इन सञ्चित वस्तुओंसे यदि वह भगवानकी सेवा अथवा भक्तोंकी सेवा न कर आश्रयविहीन एवं नग्न पशुओंकी भाँति केवल अपना ही पेट भरता है तो वह मनुष्य कहलाने योग्य नहीं है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि जिसके पास अत्यधिक धन अथवा सेवाके उपकरण हों, केवल वे ही भक्त अथवा अतिथि सेवा कर सकते हैं। इस विषयमें मनु संहितामें कहा गया है—

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सुनृता।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन्।।
(मनु.सं.३/१०)

धार्मिक व्यक्तियोंके घरमें निर्धन होनेके कारण अन्न आदिका अभाव हो सकता है, किन्तु अतिथि-सत्कारके लिए बैठनेके लिए तिनकोंका आसन, विश्रामके लिए भूमि, हाथ-पैर धोनेके लिए तथा पीनेके लिए जल एवं मधुर वाणीका अभाव कदापि सम्भव नहीं है। अर्थात् तन, मन, वाणीके द्वारा जैसे भी सम्भव हो गृहस्थियोंको अपनी सामर्थ्यके अनुसार अतिथियोंकी सेवा अवश्य ही करनी चाहिए। इन्हीं बातोंकी शिक्षा प्रदान करनेके लिए स्वयं गौरसुन्दर भक्तों एवं अतिथियोंको आमन्त्रित करते थे तथा स्वयं लक्ष्मीदेवी अपने हाथोंसे रसोई बनाती थीं। लक्ष्मीजी प्रतिदिन प्रातःकाल भगवानकी पूजाके लिए फूल, जल, धूप एवं दीप इत्यादि पूजाका समान प्रस्तुत करती थीं तथा तुलसीजीकी सेवा करती थीं। परन्तु इन सबसे अधिक मन लगाकर वे शचीमाताकी सेवा करती थीं। लक्ष्मीजीकी सेवा एवं सरल तथा मधुर व्यवहारसे प्रभु मन-ही-मन अत्यन्त ही संतुष्ट रहते थे, परन्तु मुखसे कुछ बोलते नहीं थे।

बंगदेशकी यात्रा

एक दिन स्वतन्त्र इच्छामय भगवान श्रीगौरसुन्दरकी बंगदेश (बंगलादेश) वासियोंका उद्धार करनेकी इच्छा हुई। अतः मातासे बोले—"हे माता! मैं कुछ दिनोंके लिए बंगलादेश जाना चाहता हूँ। आप मुझपर कृपा करें, जिससे मेरी यात्रा सफल हो।" शचीमातासे आदेश प्राप्तकर लक्ष्मीदेवीसे बोले—"तुम अच्छी प्रकार माताकी सेवा करना। मैं अतिशीघ्र लौट आऊँगा।" ऐसा कहकर अपने कुछ शिष्योंको साथ लेकर प्रभु आनन्दपूर्वक बंगदेशकी ओर चल पड़े। मार्गमें जाते हुए प्रभुपर जिसकी दृष्टि पड़ जाती, वह ठगा-सा रह जाता था। खड़ा होकर बस अपलक नेत्रोंसे प्रभुको निहारता रह जाता था। जब स्त्रियाँ प्रभुका दर्शन करती थीं तो परस्पर कहने लगती—"अहो! जिसको ऐसा पुत्ररत्न प्राप्त हुआ, वे माता-पिता धन्य हैं। उनके श्रीचरणोंमें हमारा कोटि-कोटि प्रणाम। जिस सौभाग्यवतीने इन्हें पतिरूपमें प्राप्त किया है, स्त्रीजन्म तो केवल उसीका ही सार्थक हुआ है।" इस प्रकार प्रभुका दर्शनकर अनेक लोग अनेक प्रकारसे अपना-अपना मत प्रस्तुत करते थे। जिनका दर्शन देवताओंको भी सुलभ नहीं है, आज ऐसे प्रभुका दर्शनकर अनेक लोग अनेक प्रकारसे उनकी महिमाका गान करने लगे।

मार्गमें अपने दर्शनके द्वारा लोगोंका उद्धार करते हुए प्रभु कुछ दिन पश्चात् पद्मावती

नदीके किनारे उपस्थित हुए। पद्मावतीका दृश्य अत्यन्त ही मनोहर था। पद्मावतीकी ऊँची-ऊँची लहरें तथा उसके दोनों किनारों पर हरे-भरे वृक्षोंसे युक्त सुन्दर-सुन्दर उपवन उसकी शोभामें चार चाँद लगा रहे थे। यह देखकर महाप्रभुने आनन्दित होकर अपने भक्तोंके साथ उसमें स्नान किया, जिसके प्रभावसे सौभाग्यवती पद्मावती उसी दिनसे समस्त लोकोंको पवित्र करनेवाली बन गई। पद्मावतीका सौभाग्य वर्धन करनेके लिए प्रभु कुछ दिन वहीं पर अपने छात्रोंके साथ नित्य-प्रति उसमें विविध प्रकारकी जलक्रीड़ाएँ करने लगे। यह समाचार समस्त बंगदेशमें फैल गया कि निमाई पण्डित पद्मावतीके किनारे पर आए हुए हैं। इसे सुनकर बंगदेशवासियोंकी प्रसन्नताकी सीमा ही नहीं रही। दिग्विजयीको परास्त करनेके पश्चात् चारों दिशाओंमें अद्वितीय पण्डितके रूपमें प्रभुकी ख्याति फैल गई थी। बहुत दूर-दूरसे छात्र आकर उनके पास शिक्षा ग्रहण करने लगे तथा प्रभुके पास शिक्षा ग्रहण करनेपर अपनेको धन्य मानने लगे।

आज उन्हें अपने यहाँ आया हुआ जानकर हजारों ब्राह्मण बालक अपने हाथोंमें विविध प्रकारके उपहार लेकर उपस्थित हुए तथा प्रभुको प्रणामकर उपहार देते हुए बोले—"हे पण्डितवर्य! हमारी इच्छा थी कि नवद्वीप आकर आपके पास हम विद्या अध्ययन करें, जो बहुत ही मुश्लिक था। परन्तु आज भगवान स्वयं ही आपको हमारे निकट ले आए। आप तो साक्षात् वृहस्पतिके अवतार हैं। आपके समान अध्यापक इस जगतमें अन्य कोई नहीं है। आपको वृहस्पतिका अवतार कहने पर आपकी महिमाको घटाना ही हो जाता है। आप तो अवश्य ही भगवानके ही अंश (अवतार) हैं। क्योंकि भगवानके अतिरिक्त ऐसा अगाध पाण्डित्य किसी अन्यमें सम्भव नहीं है। अतः आपके श्रीचरणोंमें एक निवेदन है कि आप हमें विद्या दान करें। अभी तक तो हम आपके द्वारा रचित पुस्तकोंके माध्यमसे शिक्षा ग्रहण करते थे, परन्तु अब आप हमें प्रत्यक्षरूपमें भी अपना शिष्य बनाकर कृतार्थ करें, जिससे समस्त संसारमें आपकी कीर्ति फैल जाए।"

उनकी ऐसी बातें सुनकर प्रभुने हँसते-हँसते उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली तथा कुछ दिन वहीं पर निवास करनेका निश्चय किया। जिस प्रकार नवद्वीपमें गंगाके किनारे अध्यापन करते थे, उसी प्रकार उन्होंने पद्मावतीके तटपर भी व्याकरण पढ़ाना आरम्भ कर दिया। कुछ ही समयमें हजारोंकी संख्यामें ब्राह्मण बालक आकर उनके छात्र होने लगे। प्रभुने भी कृपा दृष्टिकर सभी छात्रोंको मात्र दो महीनोंमें ही परम विद्वान बना दिया। सैकड़ों छात्र पदवी प्राप्तकर जब अपने घर वापस जाते तो उनसे प्रभावित होकर और भी हजारों छात्र पढ़नेके लिए प्रभुके पास आते। इस प्रकार यहाँ तो प्रभु विद्यारसमें मग्न थे, परन्तु उधर नवद्वीपमें लक्ष्मीजी प्रभुके विरहमें व्याकुल होकर रोती रहती थीं। सारा दिन घरका कार्य एवं शचीमाताकी सेवामें रत रहती थीं तथा खानेके नामपर एक मुट्ठी अन्न खाती थीं। सारी रात प्रभुके विरहमें रोती रहती थीं। उनका विरह जब असहनीय हो गया तो उन्होंने प्रभुके पास

जानेकी इच्छा से अप्रकटलीलाका आविष्कार किया तथा गुप्तरूपसे प्रभुके श्रीचरणोंकी सेवामें नियुक्त हो गईं।

लक्ष्मीके अन्तर्द्धान होनेपर शचीमाताके सिरपर मानो वज्राघात हो गया। उनकी जैसी अवस्था हुई, उसका वर्णन करना भी कठिन है। उनका क्रुन्दन सुनकर पत्थर भी पिघल जाते। केवल शचीमाताका ही नहीं नवद्वीपके सभी सज्जन पुरुष एवं स्त्रियोंकी ऐसी ही अवस्था हो गयी।

उधर बंगदेशमें अन्तर्यामी प्रभुने लक्ष्मीके विरहमें शचीमाताको दुःखी जानकर वापस नवद्वीप आनेकी इच्छा की। अब सर्वत्र यह समाचार फैल गया कि निमाई पण्डित अपने घर वापस जा रहे हैं, तो जिसका जैसा सामर्थ्य था, उसके अनुसार सोना, चाँदी, रूपये-पैसे, भोज्य सामग्री, वस्त्र, अलंकार आदि वस्तुएँ उपहार स्वरूप प्रभुको भेंट देने लगे। प्रभुने भी उनकी वस्तुओंको सहर्ष स्वीकार किया तथा उनपर कृपादृष्टि की। उनपर कृपाकर प्रभु अपने वासस्थानकी ओर चल पड़े। अनेक छात्र भी उनके साथ नवद्वीपमें ही विद्या अध्ययनके उद्देश्यसे चल पड़े। उसी समय महासौभाग्यवान एक ब्राह्मण आये तथा उन्होंने प्रभुको प्रणाम किया। उनका नाम तपन मिश्र था। वे एक जिज्ञासु थे। वे साध्य-साधन तत्त्वके विषयमें जानना चाहते थे, परन्तु उन्हें ऐसा कोई दिखाई नहीं देता था जिसके पास जाकर वे इस विषयमें पूछते। सदा-सर्वदा वे अपना इष्टमन्त्र (गोपालमन्त्र) जपते थे। परन्तु फिर भी उनका मन अशान्त रहता था। एक दिन वे इस विषयमें चिन्ता करते-करते सो गये। उसी रात स्वप्नमें उनके पास एक दिव्य महापुरुष आए। उनके शरीरसे अद्भुत तेज निकल रहा था। वे मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए बोले—"हे विप्र! मेरी बातोंको ध्यानपूर्वक सुनो। आजकल इस बंगदेशमें जो निमाई पण्डित आए हैं, वे कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं। ये अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंके स्वामी, समस्त अवतारोंके भी अवतारी स्वयं श्रीकृष्ण ही हैं। तुम उनके पास जाओ तथा तुम्हारे मनमें जो जिज्ञासाएँ हैं, उन्हें उनके श्रीचरणोंमें निवेदन करो। वे तुम्हारी समस्त जिज्ञासाओंका समाधान कर देगें। परन्तु तुम इन बातोंको किसीके सामने प्रकट मत करना, अन्यथा तुम्हारा सर्वनाश हो जायेगा।"

ऐसा कहकर वे महापुरुष अन्तर्द्धान हो गये। उसी समय तपनमिश्र जग गये तथा स्वप्नका विचार कर अपनेको धन्य मानकर खुशीसे रोने लगे। कुछ समय पश्चात् धैर्य धारणकर प्रभुके दर्शनके लिए चल पड़े। जिस समय मिश्र प्रभुके निवास स्थानपर पहुँचे, उस समय वे अपने शिष्योंके साथ बैठे हुए थे। मिश्रने उनके पास जाकर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया तथा दोनों हाथ जोड़कर प्रभुके समक्ष खड़े होकर दीनतापूर्वक उनसे कहने लगे—"हे प्रभो! आप कृपाकर मेरा संसार बन्धन नष्ट कर दीजिए। यद्यपि मैं गोपालमन्त्र जपता हूँ, परन्तु साध्य-साधनके विषयमें कुछ भी नहीं जानता हूँ अर्थात् भजनका उद्देश्य क्या है तथा भजन कैसे करना चाहिए इस विषयमें मुझे तनिक भी ज्ञान नहीं है। अतः कृपाकर आप मुझे इस विषयमें ज्ञान प्रदान करें।"

मिश्रके दैन्यभावको देखकर प्रभु संतुष्ट

होकर बोले—"हे विप्र! तुम्हारे सौभाग्यके विषयमें क्या कहूँ जो आज आपकी कृष्ण भजन करनेकी इच्छा हो रही है? भगवद्भजन अत्यन्त ही दुर्लभ है। भगवानने स्वयं चारों युगोंमें चार युगधर्मोंका प्रचार किया है—

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्।।

अर्थात् सत्ययुगमें ध्यानके द्वारा, त्रेतायुगमें यज्ञके द्वारा, द्वापरयुगमें अर्चन-पूजाके द्वारा भगवानकी आराधनाकी जाती थी, परन्तु कलियुगमें हरिनाम-संकीर्तनके द्वारा ही भगवानकी आराधना सम्भव है। हरिनाम-संकीर्तन ही कलियुगका युगधर्म है। हरिनामके अतिरिक्त कर्म, ज्ञान, यज्ञ, दान, पुण्य आदि किसी भी उपायसे कलियुगमें भगवानको संतुष्ट नहीं किया जा सकता।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।।

अतः आप इस सोलह नामात्मक बत्तीस अक्षरयुक्त महामंत्रका श्रद्धापूर्वक जप एवं कीर्तन करें। इस प्रकार कीर्तन तथा जप करते-करते कुछ ही समयमें साध्य-साधन तत्त्वका ज्ञान आपको स्वतः ही हो जायेगा।"

प्रभुके श्रीमुखसे इस उपदेशरूपी अमृतका पानकर सौभाग्यवान मिश्र पुनः पुनः प्रभुके श्रीचरणकमलोंमें प्रणाम करते हुए बोले—"प्रभो! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं भी आपके साथ चलूँ।

प्रभु—"विप्र! तुम्हें मेरे साथ चलनेकी आवश्यकता नहीं है। तुम अतिशीघ्र वाराणसी जाओ। वहीं पर कुछ दिनों बाद मेरा तुमसे मिलन होगा। तभी तुम्हें समस्त तत्त्वज्ञान सुनाऊँगा।"

ऐसा कहकर प्रभुने उनको आलिङ्गन किया। प्रभुका स्पर्श प्राप्त होते ही ब्राह्मणका शरीर पुलकित हो गया। जब प्रभु सबसे विदाई लेकर जाने लगे तब उस समय तपनमिश्रने एकान्तमें चुपचाप प्रभुको स्वप्नकी बात बताई। यह सुनकर प्रभु बोले—"विप्र! आपने जो देखा, वह सब सत्य है। परन्तु उसे किसीके सामने प्रकट मत करेंगे।" इस प्रकार विप्रको निषेधकर प्रभु हँसते हुए उठे तथा शिष्योंके साथ चल पड़े।

बंगदेशका उद्धारकर प्रभु नवद्वीप वापस आ गए। जब वे नवद्वीपमें पहुँचे, उस समय संध्या हो चुकी थी। उनके साथ अनेक छात्र, धन-सम्पत्ति, वस्त्र एवं अन्यान्य बहुत-सी व्यावहारिक वस्तुएँ थी। उन सभी वस्तुओंको शचीमाताके चरणोंमें अर्पितकर प्रभुने माताको प्रणाम किया तथा शिष्योंको साथ लेकर गङ्गा स्नानको चले गए। प्रभुके जानेके पश्चात् शचीमाता भी रसोई बनानेके लिए चली गईं। अन्दरसे वे बहुत दुःखी थीं, परन्तु उन्होंने प्रभुके सामने उस दुःखको छिपा लिया। उधर गङ्गामें जाकर प्रभुने सर्वप्रथम गङ्गाजीको प्रणाम किया। तत्पश्चात् शिष्योंके साथ कुछ क्षण स्नान करनेके पश्चात् घर आ गये। वे यथोचित नित्यकर्म करनेके पश्चात् भोजनके लिए बैठ गए तथा उन्होंने आनन्दपूर्वक भोजन किया। भोजन करनेके बाद वे मन्दिरमें बैठे तो उसी समय बन्धु-बान्धव उन्हें घेरकर बैठ गए। प्रभु भी उनके साथ हास-परिहास करने

लगे। अन्दरसे सभी यह सोचकर बहुत दुःखी थे कि यदि निमाई लक्ष्मीजीके परलोक गमनकी बात जान गये तो वे दुःखी होगें। इसलिए उस बातको छिपानेका प्रयास करते हुए प्रभुसे उनकी यात्राके विषयमें जिज्ञासा करने लगे। परन्तु अन्तर्यामी प्रभुसे क्या छिपा था? अतः उन्होंने शचीमातासे पूछा—"हे माता! क्या बात है? मैं इतने दिनोंके पश्चात् सकुशल लौटा हूँ। परन्तु आपको प्रसन्न नहीं देख रहा हूँ। इसका क्या कारण है? परन्तु शचीमाताने कोई उत्तर नहीं दिया, वे तो बस सिर नीचाकर फूट-फूटकर रोने लगीं। उन्हें इस प्रकार दुःखसे व्याकुल होकर रोते हुए देखकर प्रभुका हृदय द्रवित हो गया। वे बोले—"हे माँ! मैंने सुन लिया है कि आपकी बहूका परलोक गमन हो गया है। परन्तु इसमें रोनेकी क्या बात है? जो होना है, वह तो होगा ही। सारा संसार ही ईश्वरके अधीन है। अतः मिलना-बिछुड़ना मनुष्यके हाथमें नहीं है। और फिर आपकी बहू तो परमसौभाग्यवती है क्योंकि पतिके सामने ही जो स्त्री शरीर छोड़ती है, वह परमसौभाग्यवती होती है।" इस प्रकार नाना प्रकारकी युक्तियोंके द्वारा जब प्रभुने शचीमाता एवं अन्यान्य बन्धु-बान्धवोंको सांत्वना प्रदान की तो प्रभुके मुखसे ऐसे अमृतमय वचनोंको सुनकर एवं प्रभुके मुखकमलका दर्शनकर सभी लोग उस दुःखको भूल गये। (क्रमशः)

काजीसे हिन्दू पर्व पूछना

मुसलमान धर्मके नेता या विचारकको काजी कहते हैं। वे हिन्दू धर्मका आचार और प्रचार नहीं करते हैं। उनसे हिन्दू धर्मके किसी मत-अमतके सम्बन्धमें पूछे जानेपर वास्तविक तथ्य नहीं जाना जा सकता है।

बहुत-से लोग स्मार्त पण्डित अथवा स्मार्तोंके नेतासे अथवा मायावादीके निकट वैष्णवधर्म अथवा शुद्धभक्तिके विषयमें जिज्ञासा करते हैं। जगतके साधारण लोगोंके साथ यदि कभी शुद्धभक्तिके विषयमें मतभेद होता है, तो बहुत-से लोग संसारके नामी पण्डित या मायावादियोंकी मध्यस्थतामें विचार-सभाका आह्वानकर शुद्धभक्तिकी मीमांसा करनेका आग्रह प्रकाश करते हैं। इन व्यक्तियोंको मध्यस्थ या प्रामाणिक स्वीकार करना 'काजीसे हिन्दू पर्व पूछने' की भाँति मूर्खता है। जिस प्रकार काजी हिन्दू पर्वका समाधान नहीं कर सकता है, उसी प्रकार स्मार्त, मायावादी अथवा जागतिक दृष्टिसे तथाकथित नामी-नामी पण्डित, बड़े-बड़े प्रचारक, हिन्दू समाजके बड़े-बड़े नेता—इनमेंसे कोई भी शुद्धभक्तिके विषयका समाधान नहीं कर सकता है। ये सभी विद्धा भक्ति, छल भक्ति अथवा लौकिक भक्तिके अभिनयको ही 'भक्ति' मान लेते हैं। इनका लौकिक सम्मान और जनमतके निकट उच्च आसन देखकर इनके ऊपर शुद्धभक्तिके किसी विषयकी मीमांसाका भार प्रदान करना 'काजीसे हिन्दू पर्वकी जिज्ञासा' जैसा कार्य होगा।

किन्तु, बड़े दुःखकी बात है कि साधारण

लोग इसे नहीं समझ पाते हैं। वे सोचते हैं कि वैष्णवगण बड़े अभिमानी होते हैं। वे और लोगोंको मनुष्य ही नहीं समझते हैं।

वस्तुतः साधारण लोगोंकी अज्ञता ही इसके लिए उत्तरदायी है। साधारण लोग यह नहीं समझ पाते कि जागतिक पाण्डित्य, प्रतिष्ठा अथवा बुद्धिमत्ताके द्वारा भक्तितत्त्वको नहीं समझा जा सकता है। तथाकथित बड़े-बड़े धार्मिक नेताओंके बीच यदि मायावाद अथवा अन्य अभिलाषका लेशमात्र भी रहता है, तो वे भक्तिके स्वरूपको नहीं समझ पाएँगे।

कई बार बहुत-से लोग बाह्यतः भक्तिके अनेक प्रकारकी मुद्राओंका प्रदर्शन करते हैं। इससे साधारण अज्ञ लोग उन्हें 'परम भक्त' मानते हैं और यह भी समझते हैं कि ये भक्तिके विषयमें मत-अमतका प्रकाश करनेमें सक्षम हैं। वस्तुतः इन लोगोंमें भी नाना प्रकारकी अभिलाषाएँ और निर्विशेषवादका विचार रहनेके कारण ये लोग शुद्धभक्तिके सम्बन्धमें कोई मत-अमत प्रकाश करनेके योग्य नहीं हैं। इनसे शुद्धभक्तिकी मीमांसा नहीं हो सकती है। ❑

पौराणिक उपाख्यान

भक्त पुण्डरीक

प्राचीन कालमें पुण्डरीक नामक एक महाबुद्धिमान ब्राह्मण थे। वे सर्वदा गुरुजनोंके अनुगत होकर नियमपूर्वक रहते हुए ब्रह्मचर्यका पालन करते थे। उन्होंने तपस्याके बलसे इन्द्रियोंको अपने अधीन कर लिया था। वे वेद-वेदाङ्ग एवं अन्यान्य शास्त्रोंमें निष्णात थे। भक्तप्रवर नारदजीकी भाँति वे सर्वव्यापी यज्ञपति भगवान् विष्णुकी विधिपूर्वक आराधना करते थे एवं सर्वदा उन्हींका ध्यान किया करते थे। वेदादि शास्त्रोंका अध्ययन एवं भगवद्भजन—ये ही उनके नित्य कार्य थे। अपने सद्व्यवहारके कारण वे सभीके बड़े प्रिय हो चुके थे। वे सर्वदा पराविद्याकी समालोचना करते। वे सभी भूतोंमें भगवद्दर्शन करते, उनके हितकी चेष्टा करते रहते। उन्हें संसारके भोगोंके प्रति विरक्ति हो गयी थी। उनकी बुद्धि संसारसमुद्र पार करनेके उपयुक्त थी।

उन्होंने ऐसा वैराग्य प्राप्त किया कि अपने माता-पिता, भाई-बन्धु-बान्धव एवं मित्रादिका तृणवत् परित्यागकर शाक, फल, मूलादि आहार करते हुए वे पृथ्वी पर सर्वत्र भ्रमण करने लगे। उन्होंने यौवन, रूप, आयु एवं धनादिकी अनित्यताका अनुभवकर समस्त त्रिभुवनको मिट्टीके एक तुच्छ ढेलेके समान समझा। इसके पश्चात् उन्होंने सभी पुण्य तीर्थक्षेत्रों एवं भगवत्-लीला-स्थलियोंका भ्रमण किया। इस प्रकार बहुत काल भ्रमण करते-करते अन्तमें वे श्रीशालग्राम क्षेत्रमें पहुँचे।

वह तीर्थ तत्त्वज्ञानी ऋषियोंका निवास स्थान था। ऋषि-मुनियोंके आश्रमोंसे परिपूर्ण वह तीर्थ चक्रनदी द्वारा सुशोभित था। वहाँके शिलाखण्ड भगवानके चक्रके चिह्नसे शोभित

थे। वह अत्यन्त एकान्त स्थान था एवं बड़ा विस्तृत क्षेत्र था। वहाँ चक्रके चिह्नोंसे सुशोभित कुछ प्राणी रहते थे, जिनका दर्शन बहुत ही पुण्यजनक था। वहाँ असंख्य दर्शनार्थी आया जाया करते थे। उस महापवित्र शालग्रामक्षेत्रमें महाभागवत पुण्डरीकजी प्रसन्नचित्त होकर रहने लगे एवं नियमित रूपसे देहहृदतीर्थमें, पूर्व-जन्मस्मृतिदायिनी सरस्वतीके जलमें, चक्र-कुण्ड एवं चक्र-नदीमें स्नान करते। वहाँ वे भगवद्भजनमें रत रहते।

उस क्षेत्रके प्रभावसे एवं तीर्थोंके तेजसे उनका चित्त परम पवित्र एवं प्रसन्न हो गया। इस प्रकार शुद्धचित्त एवं ध्यानयोगमें तत्पर रहकर परम सिद्धिकी इच्छासे परम भक्तिके साथ वे शास्त्रोंमें वर्णित विधिके अनुसार जगत्पति भगवान विष्णुकी आराधना करने लगे। अपनी इन्द्रियोंको वशमें करते हुए वे जगतके सुख-दुःखोंसे मुक्त होकर वहाँ रहने लगे। उनकी सर्वत्र समदृष्टि थी। वे निरालस्य होकर दृढ़ भक्तियोगके द्वारा भगवानका भजन करते रहते। समस्त पुरुषार्थोंके ज्ञाता निष्पाप महामना पुण्डरीकजी देवदेवेश्वर भगवान विष्णुमें चित्त लगाकर उनकी आराधना एवं उन्हींका चिन्तन करते हुए उनके परम अनुग्रहको पानेकी आशासे भजन करने लगे।

जब इस प्रकार वहाँ रहते हुए उनका बहुत समय बीत गया, तब एक दिन साक्षात् सूर्यके समान तेजस्वी, वैष्णवजनोंके परम बन्धु, परमार्थवेत्ताओंमें उत्तम एवं विष्णुभक्तिपरायण देवर्षि नारदजी परम भक्त पुण्डरीकको देखनेकी इच्छासे वहाँ पधारे। सर्वशास्त्रोंके ज्ञाता, बुद्धिमान और पूर्ण तेजस्वी नारदजीको देखकर पुण्डरीकको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने अत्यन्त विनयके साथ हाथ जोड़ते हुए उनको पाद्य-अर्घ्य आदि प्रदानकर उनके चरणोंमें गिरकर प्रणाम किया। नारदजीके दर्शनसे मुग्ध होकर वे मन-ही-मन तर्क-वितर्क करने लगे। उनके मनोरम स्वरूप, हाथमें सुशोभित वीणा, मस्तकपर वर्त्तमान जटा-जूट आदि देखकर कुछ ठीक नहीं कर पाए। अतएव उन्होंने पूछा—"हे परमदिव्य ऋषे! आप कृपा कर बतलावें कि आप कौन हैं एवं किस हेतु पधारे हैं? इस पृथ्वीमें पुण्यहीन व्यक्ति आपका दर्शन नहीं प्राप्त कर सकते।"

नारदजी कहने लगे—"हे भक्तवर पुण्डरीक! मैं नारद हूँ। तुम्हारे दर्शनकी लालसासे ही यहाँ आया हूँ। तुम्हारे जैसे भगवद्भक्त सुदुर्लभ हैं। भगवद्भक्त चाण्डाल होनेपर भी उसके स्मरणमात्रसे, वार्त्तालाप से या सम्मानित होनेपर या स्वेच्छासे ही दूसरोंको पवित्र कर देता है। फिर तुम्हारे समान ब्रह्मण्यस्वभावसम्पन्न भक्तके बारेमें कहना ही क्या है? मैं शार्ङ्गधनुषधारी भगवान वासुदेवका दास हूँ।"

नारदजी द्वारा ऐसा परिचय प्रदान किये जानेपर उनके दर्शनसे परम आनन्दित होकर पुण्डरीकजी प्रेमसे गद्गद होकर इस प्रकार मधुर वाणी बोलने लगे—"आज मैं कृतकृत्य हो गया एवं मेरा जीवन सार्थक हुआ। आज मेरे पितर लोगोंका उद्धार हो गया। मैं आपका सेवक हूँ। हे मुनिश्रेष्ठ! आप मुझपर कृपा करें। मैं अपने पूर्वजन्मोंके कर्मानुसार इस संसाररूपी वनमें भटक रहा हूँ। आप कृपाकर बतलावें कि किस प्रकार मेरा इससे उद्धार होगा? मेरे लिए परम कर्त्तव्य क्या है, यह अत्यन्त

गोपनीय होनेपर भी कृपया मुझे इसका उपदेश दें। आप सभी व्यक्तियोंकी सहायता करते हैं और वैष्णवोंके लिए परम आश्रयदाता हैं।"

नारदजी बोले—"हे द्विज! इस जगतमें अनेक शास्त्र एवं अनेक प्रकारके कर्म हैं। इसी तरह यहाँ अनेक प्राणिगण हैं एवं उनके लिए मार्ग भी अनेक हैं। इसीलिए जगत बड़ा विचित्र दीख पड़ता है।

"कुछ लोगोंका विचार यह है कि जगत अव्यक्त प्रकृतिसे उत्पन्न होकर समय आनेपर उसीमें लीन हो जाता है। हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ! कुछ दूसरे तत्त्वदर्शी व्यक्ति आत्माको अनेक, नित्य एवं सर्वत्र विचरणकारी बतलाते हैं। हे निष्पाप! इन सभी बातोंपर विचार कर नाना मतोंको जाननेवाले सभी ऋषि लोगोंने उनकी बुद्धि एवं विद्याके अनुसार जिन सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया है, उसे सावधानीसे सुनो। यह परम गोपनीय परमार्थ तत्त्व घोरतर भवसागरसे मुक्ति दिलानेवाला है। मनुष्योंकी बुद्धि प्रायः वर्त्तमान विषयोंको ही ग्रहण कर पाती है। वह सुदूरवर्त्ती भूत एवं भविष्यको ग्रहण नहीं कर पाती। हे उत्तमव्रती पुण्डरीक! इस विषयमें पहले मेरे द्वारा पूछे जानेपर ब्रह्माजीने जो कुछ मुझे बतलाया था, वह कह रहा हूँ। तुम सावधानीसे श्रवण करो। मेरा प्रश्न था—सबसे उत्तम ज्ञान एवं उत्तम योग कौन-सा है? इसके उत्तरमें श्रीब्रह्माजीने कहा था—तेईस विकारोंके कारणरूप चौबीसवें तत्त्व प्रकृतिसे भिन्न पच्चीसवाँ तत्त्व ही सम्पूर्ण प्राणियोंमें वर्त्तमान 'नर' (पुरुष या आत्मा) कहलाता है। सारे तत्त्व (चित् एवं अचित्) इसी नरसे उत्पन्न हैं, अतएव वे 'नार' कहलाते हैं। इस नारके जो अयन या आश्रय हैं अर्थात् जो इनमें व्याप्त हैं, वे भगवान 'नारायण' कहे जाते हैं। सृष्टिकालमें सारा जगत भगवान नारायणसे ही प्रकट होता है एवं प्रलयके समय उन्हींमें लीन हो जाता है। नारायण ही परब्रह्म, परम तत्त्व, परम ज्योति एवं परम आत्मा हैं। वे परसे भी पर हैं। उनसे बढ़कर कोई तत्त्व नहीं है एवं उनको छोड़कर किसीकी भी सत्ता नहीं है। वे सबके भीतर एवं बाहर स्थित हैं। इसलिए देवताओंने उन्हें साकार (सच्चिदानन्दस्वरूप) बतलाया है एवं वे 'ॐ नमो नारायणाय' मन्त्रका ध्यान अनन्य मनसे करते हैं। जो व्यक्ति अनन्यचित्तसे भगवान नारायणका ध्यान करे, उसके लिए दान, तीर्थसेवन, तपस्या एवं यज्ञादिकी क्या आवश्यकता है? भगवान नारायणका ध्यान ही सर्वोत्तम ज्ञान है एवं इससे बढ़कर और कोई दूसरा योग भी नहीं है। परस्पर विरोधी अर्थ प्रतिपादनकारी दूसरे-दूसरे शास्त्रके विस्तारसे क्या प्रयोजन है? जिस प्रकार एक नगरसे बहुत-से मार्ग निकलते हैं, ठीक उसी प्रकार भिन्न-भिन्न शास्त्रोंके ज्ञान नारायणसे ही निकले हैं। वे भगवान अव्यक्तरूपसे सर्वत्र व्याप्त हैं, सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म हैं, नित्य वर्त्तमान सनातन पुरुष एवं सारे जगतके आदि कारण हैं। वे दूसरे किसीसे उत्पन्न नहीं हैं, अतएव 'स्वयम्भू' कहलाते हैं। वे आदि और अन्तरहित एवं सम्पूर्ण प्राणियोंको प्रकट करनेवाले हैं। वे विभु, अचिन्त्य, सबके प्रिय, नित्य एवं कार्य-कारणस्वरूप हैं। वे सारे जगतमें निवास करते हैं एवं सम्पूर्ण जगत उनमें निवास करता है। इसलिए वे भगवान वासुदेव कहे जाते हैं।

वे पुराणपुरुष, त्रिकालदर्शी एवं अविकारी हैं। यह सम्पूर्ण चराचर जगत उन्हींसे व्याप्त होनेके कारण स्थित है। अतएव वे 'विष्णु' कहलाते हैं। युगान्त होनेपर महत्तत्त्व आदि सभी तत्त्व एवं सभी प्राणियोंका उन्हींमें निवास होनेके कारण वे 'वासुदेव' हैं। कुछ लोग उन्हें पुरुष (एकमात्र भोक्ता), ईश्वर (सबके वशीकर्त्ता) एवं अविनाशी बतलाते हैं। कोई-कोई उन्हें विज्ञानस्वरूप, कोई परब्रह्म और कोई आदि एवं अन्तरहित 'काल', कोई और सनातन जीव (आत्मा) कहते हैं। कोई उन्हें परमात्मा, तो कोई अनामय (क्षयरहित, विशुद्ध), कोई क्षेत्रज्ञ (जीव एवं मायाके अन्तर्यामी), कोई छब्बीसवाँ तत्त्व (प्रकृत एवं पुरुषसे भिन्न पुरुषोत्तम), कोई अंगुष्ठपरिमाणवाले एवं और कोई कमल-पुष्पके मकरन्दके एक कणके समान 'अणु' मानते हैं। ये सभी नाम जो उल्लिखित किये गए हैं एवं ऋषिशास्त्रों द्वारा वर्णित भिन्न-भिन्न नामों द्वारा साधारण लोग भेद-भ्रम प्राप्त कर मोहमें पड़ जाते हैं। एक ही शास्त्र होनेपर ज्ञान निश्चयात्मक होता है। शास्त्र बहुतसे हैं। अतएव ज्ञानका तत्त्व सुदुर्लभ है। अतएव सभी शास्त्रोंका सम्यक् अवलोकन कर एवं बारम्बार विचार कर यही एक बात सभी सिद्धान्तोंके साररूपमें प्रकट हुई कि सब समय नारायणका ही ध्यान करना चाहिए। अतएव मोहमें डालनेवाले सारे शास्त्र-विस्तारको छोड़कर अनन्य मनसे उत्साहपूर्वक भगवान नारायणका ध्यान करो। ऐसा सब समय चिन्तन करनेपर उन अविनाशी देवदेव नारायणका तत्त्व जानकर तुम शीघ्र ही परम मुक्तिरूप भगवत्पार्षदत्व प्राप्त कर लोगे, इसमें कोई सन्देह नहीं। इस प्रकार ब्रह्माजीके मुखसे इस परम दुर्लभ ज्ञानकी बात श्रवणकर मैं भी तभीसे भगवान नारायणकी परिचर्यामें लग गया। जो व्यक्ति 'ॐ नमो नारायणाय'—इस सनातन ब्रह्मस्वरूप मन्त्रको जानकर जप करते हैं, वे अन्तकालमें भगवान् विष्णुके परम धामको प्राप्त कर लेते हैं। भगवान नारायण जगद्व्यापी सनातन परमेश्वर हैं। वे ही सारे लोकोंकी सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय आदि कार्य करते हैं। सर्वक्षण उनके नाम, रूप, गुण, लीला आदिका श्रवण, कीर्त्तन एवं स्मरण करना चाहिए। अपना हित चाहनेवाले व्यक्तिको सर्वथा भगवान नारायणकी आराधना करनी चाहिए। निस्पृह, नित्यप्रसन्न, ज्ञानी, जितेन्द्रिय, ममता-अहंतारहित, राग-द्वेष आदि विकार-रहित भगवद्-ध्यानयोगकारी व्यक्ति जगदीश्वरका साक्षात्कार प्राप्त कर लेते हैं। जो व्यक्ति त्रिभुवनका अनित्य सम्बन्ध परित्याग कर जगद्गुरु भगवान वासुदेवका कीर्त्तन कहते हैं, वे उन जगत्पतिका दर्शन प्राप्त कर लेते हैं। अतएव हे पुण्डरीक! तुम भी भगवान् नारायणकी आराधनामें तत्पर हो जाओ।

"अवहेलनापूर्वक भी जिनका नाम ग्रहण करने पर जो भगवान भक्तको अपना परम धाम प्रदान कर देते हैं, उन भगवान् नारायणके सिवाय और कौन महान उदार हैं, जो माँगी हुई वस्तुको देनेमें समर्थ हैं? जप या स्वाध्याय या जो भी कार्य किया जाए, वह उन देवेश्वर भगवान नारायणके उद्देश्यसे ही सर्वदा आलस्य त्यागकर करो। अनेक मन्त्रों एवं अनेक व्रतोंसे क्या लाभ है? 'ॐ नमो नारायणाय' यह मन्त्र

ही सब मनोरथों एवं सर्वकामनाओंको सिद्ध करनेवाला है। चीर-वस्त्रधारण, जटाधारण, त्रिदण्ड-धारण, माथाका मुण्डन या तरह-तरहके भूषणोंका धारण आदि बाहरी कार्य धर्मके कारण नहीं हो सकते। जो मनुष्य भगवान नारायणकी शरण ग्रहण कर चुके हैं, पहले भले ही वे निर्दयी, दुष्ट, सदा पापरत क्यों न रहे हों, वे भी भगवानके परम धामको पधारते हैं। हजारों जन्मोंमें भी जिसकी ऐसी बुद्धि हो जाये कि 'मैं देवदेव शार्ङ्गधनुषधारी भगवान वासुदेवका दास हूँ', उसे निश्चय ही भगवानका सालोक्य प्राप्त होता है। फिर जो पुरुष जितेन्द्रिय होकर सदा भगवानमें ही अपने प्राणोंको नियुक्त रखे उसके लिए क्या कहना?"

परोपकारमें सर्वदा रत रहनेवाले त्रिभुवनके एकमात्र भूषण देवर्षि नारदजी ऐसी बातें बतलाकर वहीं अन्तर्धान हो गए। अब धर्मात्मा पुण्डरीक भी एकमात्र भगवान नारायणके भजनमें तत्पर हो गये। वे बारम्बार इस प्रकार उच्चारण करने लगे—"भगवान केशवको नमस्कार है। हे महायोगिन्! आप मुझपर प्रसन्न होवें।" ऐसा कहकर पुरुषार्थ-साधनमें परम चतुर तपोधन पुण्डरीकजी हृदयकमलरूपी आसनमें जनार्दन भगवान गोविन्दकी स्थापना कर तपकी सिद्धि देनेवाले उस शालग्राम क्षेत्रमें दीर्घ कालतक एकाकी ही वास करते रहे। वे महाभागवत स्वप्नमें भी भगवान केशवको छोड़कर और किसी भी वस्तुको नहीं देखते थे। उनकी नींद भी उनके पुरुषार्थ-साधनमें बाधा नहीं देती थी। अपनी तपस्या, ब्रह्मचर्य (भगवत् चिन्तन), शौचाचारके पालन एवं जन्म-जन्मान्तरकी साधनासे परिपक्व हुए भगवद्भक्तिसाधक संस्कारके बलसे निर्मल चित्त होकर सम्पूर्ण लोकोंके एकमात्र साक्षी देवदेव भगवान विष्णुकी कृपा द्वारा पुण्डरीकने परम उत्तमा वैष्णवी सिद्धि प्राप्त कर ली। उनके निकट सिंह, व्याघ्र, अन्यान्य हिंसक जीव-जन्तु, मृगादि हिंसाशून्य जीव स्वाभाविक वैर-भावका परित्यागकर परस्पर मिलकर रहते थे। उनके निकट उन हिंसक जन्तुओंकी इन्द्रिय वृत्तियाँ अत्यन्त शान्त रहती थीं।

इसके पश्चात् एक दिन कमलदलके समान विशाल नेत्रवाले जगदीश्वर भगवान् नारायण कृपापूर्वक उन भक्तप्रवर पुण्डरीकके सम्मुख आविर्भूत हुए। उनके हाथोंमें शंख, चक्र, गदा आदि थे। वे पीताम्बर धारण किये हुए थे। उनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सचिह्न एवं लक्ष्मीका निवास-स्थान था। वे कौस्तुभमणि द्वारा विभूषित एवं दिव्य पुष्पोंकी माला द्वारा अलंकृत थे। वे श्यामवर्णके थे एवं गरुड़पर आरूढ़ होकर अत्यन्त शोभित हो रहे थे। भगवानके ऊपर रजतमय श्वेत छत्र तना था, जो मोतियोंकी मालाओंसे युक्त था। छत्र एवं चामर-व्यजनादि द्वारा उनकी बड़ी शोभा हो रही थी।

उन भगवान् देवदेवेश्वर नारायणका प्रत्यक्ष दर्शन पाकर पुण्डरीकजीने अपने दोनों हाथ जोड़ लिये एवं उनको प्रणाम किया। वे प्रेमसे परम विह्वल हो गये। उन भगवान हृषीकेशकी ओर आँखें विकसित कर इस प्रकार देखने लगे मानो उनको पी जायेंगे। जिनके दर्शनकी वे चिरकालसे प्रार्थना कर रहे थे, उन भगवानका प्रत्यक्ष दर्शन पाकर वे भक्तश्रेष्ठ पुण्डरीकजी परम प्रसन्न हुए। तीन पगोंसे

त्रिलोकीको नाप लेनेवाले भगवान पद्मनाभने पुण्डरीकसे कहा—"हे वत्स! पुण्डरीक! तुम्हारा कल्याण हो। हे महामते! मैं तुमपर बहुत ही प्रसन्न हूँ। तुम्हारे मनमें जो अभिलाषा हो वही माँग लो। मैं उसे अवश्य पूरा करूँगा।"

भगवान नारायणकी ऐसी वाणी सुनकर भक्तप्रवर पुण्डरीक कहने लगे—"देवेश्वर! मुझ जैसा अत्यन्त दुर्बुद्धिमान पुरुष अपने वास्तविक हितकी बात कैसे जान सकता है? हे माधव! आप मेरे लिए जो हितकर हो, सो कृपापूर्वक आज्ञा करें।" पुण्डरीक द्वारा ऐसा कहे जानेपर भगवान बड़े ही प्रसन्न हुए एवं हाथ जोड़ हुए खड़े उस भक्तसे कहने लगे—"हे सुव्रत! तुम्हारा कल्याण हो। तुम मेरे ही साथ आ जाओ एवं मेरे ही समान रूप धारणकर मेरे नित्य-पार्षद बन जाओ।"

भक्तप्रवर भगवान नारायण द्वारा ऐसा प्रेमपूर्वक कहनेपर देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं एवं आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी। उस समय इन्द्र आदि सभी देवता, किन्नर, गन्धर्व एवं सिद्धगण बड़े आनन्दित होकर साधुवाद देते हुए यशोगान करने लगे। इधर सर्वदेववन्दित, जगदीश्वर, भगवान वासुदेवके साथ गरुड़पर बैठकर पुण्डरीक वैकुण्ठ धामको चले गए।

अतएव हमारा भी कर्त्तव्य है कि अपना काय, मन, प्राण भगवानके चरणोंमें अर्पणकर भक्तोंकी एवं पुरुषोत्तम भगवानकी सेवा करें। सर्वदा उनकी कथा सुनें एवं उनके प्रसन्नकारी कार्य यत्नपूर्वक करें। भगवान नारायणसे विमुख व्यक्ति असंख्य अश्वमेध एवं वाजपेय यज्ञ करनेपर भी पावन गतिको प्राप्त नहीं कर सकते। भगवानकी ऐसी स्तुति करनी चाहिए—"हे प्रभो! हे विष्णो! आप अजर, अमर, द्वितीयरहित, सबके व्ध्या करने योग्य, आदि-अन्तरहित, सगुण (सच्चिदानन्द अप्राकृत गुण), विगुण (जगत्‌से अतीत विलक्षणगुण), अत्यन्त महान् एवं अत्यन्त सूक्ष्म, सबके कारण, अणुपर होकर भी भक्ति द्वारा जाने जाते हैं। भक्ति द्वारा आपके स्वरूपका दर्शन होता है। इस त्रिभुवनके ईश्वर एवं गुरु आपके मैं शरणागत होता हूँ।" ❑